Shodh-Rityu तिमाही शोध–पत्रिका

PEER Reviewed & Refereed JOURNAL

ISSUE

रत्नकुमार सांभरिया ई-विशेषांक

ISSN-2454-6283 **30 May-2022**

IMPACT FACTOR **- (IIJIF-7.312)** **SJIF-6.586,** IIFS-4.125,

AN INTERNATIONAL MULTI-DISCIPLINARY RESEARCH JOURNAL

सम्पादक–डॉ.सुनील जाधव,नांदेड 9405384672

तकनीकी सम्पादक–अनिल जाधव, मुंबई

पत्राचार हेतु पता–

महाराणा प्रताप हाउसिंग सोसाइटी, हनुमान गढ़ कमान के सामने, नांदेड–431605

प्रकाशन / प्रकाशक
डॉ.सुनील जाधव
नव साहित्यकार
पब्लिकेशन, नांदेड–महाराष्ट्र

मुद्रण / मुद्रक
तन्मय प्रिंटर्स,नांदेड
डॉ.सुनील जाधव,नांदेड

मेल पता shodhrityu78@yahoo.com
वेबसाइट www.shodhritu.com

"शोध–ऋतु ' तिमाही पत्रिका में आलेख लेखक निम्न बिन्दुओं पर अवश्य ध्यान दें ।
फॉण्ट–कृति देव 10 वर्ड फाइल में ही सामग्री स्वीकृत की जायेगी ।
आलेख पेज की मर्यादा चार पेज होगी ।
आलेख विशेषज्ञों द्वारा चयन किये जायेंगे ।
चयनित आलेख की सूचना मेल द्वारा आलेख लेखक को दी जायेगी ।
चयनित आलेख के लिए 1000रु प्रोसेसिंग शुल्क लिया जायेगा ।
लेखक मौलिक शोधपरक एवं वैचारिक आलेख ही भेंजे ।
व्हाट्स एप–9405384672

ISSN-2454-6283 PEER Reviewed JOURNAL

बैंक विवरण

NAME	SUNIL GULABSING JADHAV
BAINK	BANK OF MAHARASHTRA, WORKSHOP CORNER, NANDED, MAHARASHTRA
ACCOUNT NO.	2015 8925 290
IFSC CODE	MAHB0000720

PhonePe
ACCEPTED HERE
Scan & Pay Using PhonePe App
or Pay to Mobile Number using PhonePe App
9405384672
Sunil Jadhav

वार्षिक परामर्श मंडल (2022)

- प्रो .डॉ.रामप्रसाद भट, हैम्बुर्ग विश्वविद्यालय, जर्मनी
- प्रो.डॉ.रंजित उपुल, केलनिया विश्वविद्यालय, श्रीलंका
- प्रो.डॉ.रिदिमा निशादिनी लंसकारा, श्रीलंका
- प्रो.डॉ.अनुषा सल्वाथुरा, श्रीलंका
- प्रो.डॉ.नुर्मातोव सिराजोद्दीन, उज्बेकिस्तान
- सौ.सविता तिवारी, मॉरिशस
- प्रो.डॉ.मक्सीम देम्चेंको, मास्को, रशिया
- प्रो.डॉ.हिदायतुल्लाह हकीमी, जलालाबाद, अफगानिस्तान
- प्रो.हुरुई,उप–संकायाध्यक्ष,अफ्रीकी–एशियाई भाषा एवं संस्कृति संकाय क्वान्तोंग विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, चीन
- प्रो.विवेक मणि त्रिपाठी, चीन
- प्राचार्य डॉ.आर.एन.जाधव,पीपल्स कॉलेज,नांदेड
- प्र.उपकुलपति डॉ.जोगेन्द्रसिंह बिसेन, स्वामी रामानंद तीर्थ विश्वविद्यालय, नांदेड
- प्रो.डॉ.मुकेशकुमार मालवीय, हिन्दू बनारस विश्वविद्यालय,बनारस
- प्रो.डॉ.राजेद्र रावल,राजकोट,गुजरात
- प्रो.डॉ.अरविंद शुक्ल,उत्तर प्रदेश
- प्रो.डॉ.संगम वर्मा,पंजाब
- प्राचार्य.डॉ.राजेन्द्र प्रसाद,प्रतापगढ
- प्राचार्य डॉ.प्रवीण कुमार सक्सेना, गांगड़तलाई,राजस्थान
- प्रो.डॉ मंगला रानी, पटना
- प्रो.डॉ.पठाण रहीम, हैदराबाद
- प्रो.डॉ.श्यामराव राठोड, तेलंगाना
- प्रो.डॉ.भारत भूषण, पंजाब
- प्रो.डॉ.परिमल अम्बेकर, गुलबर्गा
- प्रो.डॉ.ओमप्रकाश सैनी, हरियाणा
- प्रो.डॉ.लक्ष्मी गुप्ता,यमुनानगर,हरियाणा
- प्रो.डॉ.शबाना दुर्यानी, (उर्दू) नांदेड़

ISSN-2454-6283 PEER Reviewed JOURNAL

अनुक्रमणिका

1.रत्नकुमार सांभरिया की कहानियाँ 7
–*डॉ0सूर्यनारायण रणसुभे* 7
2.रत्न कुमार सांभरिया के नाटकों में दलित क्रांति चेतना........10
–*प्रो.डॉ.रमेश संभाजी कुरे*........10
3. 'वीमा' नाटक कथावस्तु एक अध्ययन........12
–डॉ.सुनील गुलाबसिंग जाधव 12
4.वीमा नाटक में चरित्र चित्रण........15
–*सुषमा कृष्णकुमार यादव*........15
5.रुढ सामाजिक धारनाओं को दूर करते वीमा नाटक के पात्र........18
–*प्रा.डॉ.मीना भाऊराव घुमे*........18
6.रत्नकुमार सांभरिया का नाटक साहित्य (वीमा नाटक के विशेष संदर्भ में...) 23
–डॉ. *संजय भाउसाहेब दवंगे*........23
7.रत्नकुमार सांभरिया के कथा साहित्य में स्त्री विषयक दृष्टिकोण 26
–*नेहा प्रधान*........26
8.रत्नकुमार सांभरिया के 'वीमा' नाटक में दलित चेतना 28
– *प्रा.डॉ.सावते प्रकाश नवनितराव*........28
9.रत्नकुमार सांभरिया का कहानी साहित्य 30
– *प्रा.विद्या बाबूराव खाने*........30
10.रत्न कुमार सांभरिया की कहानियों में वृद्ध विमर्श........32
– *डॉ.जय शंकर शुक्ल* 32
11.बहिष्कृत समाज की मुक्ति की कहानियाँ........36
–*प्रो.डॉ.किशोरी लाल 'पथिक'* 36
12.रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में विकलांग चेतना 39
–*रीता आहूजा*........39
13.सात्विक आक्रोश की आग है, रत्नकुमार सांभरिया की कहानियाँ........43
–*माधव नागदा* 43
14.'स्त्री विमर्श' : आधी दुनिया का अध्ययन........46
–*डॉ.अमल सिंह भिक्षुक*........46
15.रत्न कुमार सांभरिया की कहानियों का अवलोकन एक दृष्टिमें........48
–*डॉ.नवीन अग्रवाल* 48
16.अनुभूत सत्य की अभिव्यक्ति है : सांभरिया के नाटक........54
–*डॉ.अनिल कुमार बारिया*........54
17.रत्नकुमार सांभरिया के नाटकों की अंतर्वस्तु वाया 'वीमा'........59

ISSN-2454-6283 PEER Reviewed JOURNAL

–प्रोमिला 59
18.रत्नकुमार सांभरिया द्वारा रचित वीमा इस नाटक की प्रासंगिकता....63
–डॉ.व्यंकट अमृतराव खंदकुरे....63
19.रत्न कुमार सांभरिया की कहानियां और दलित विमर्श....65
–डॉ. अनिता गोयल....65
20.रत्नकुमार सांभरिया के नाटकों में सामाजिक यथार्थ....70
–डॉ. रत्ना कुशवाह....70
21.रत्नकुमार सांभरिया के नाटक 'वीमा' की समीक्षा....73
–डॉ. सुधा राजपूत....73
22.रत्नकुमार सांभरिया जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विश्लेषणात्मक अध्ययन....75
–डॉ0 शशिबाला त्रिवेदी....75
23.रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में दलित चेतना....81
–डॉ. जाधव ज्ञानेश्वर भाऊसाहेब....81
24.स्त्री–विमर्श की दस्तावेजी कहानिया....84
– डॉ.पद्मजा शर्मा....84
25.रत्न कुमार सांभरिया की कहानियों में नारी चेतना....88
– [1]शिखा पाण्डेय [2]शिल्पी शर्मा....88
26.रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में– 'दलित चेतना'....91
–डॉ0 इन्दु यादव....91
27.रत्नकुमार सांभरिया के कथा साहित्य में दलित चेतना....92
–डॉ0फतेह सिंह....92
28.रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में दलित चेतना....95
–[1]शिल्पी शर्मा, [2]शिखा पाण्डेय....95
29.रत्नकुमार सांभरिया के कथासाहित्य में दलित सामाजिक यथार्थ....98
–डॉ.मनिषा गंगाराम मुगळीकर....98
30.रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में भाषा–विधान....100
–डॉ.स्नेहलता....100
31.रत्नकुमार सांभरिया का व्यक्तित्व : एक दृष्टि....105
–डॉ.अनिता वर्मा....105
32.रत्नकुमार सांभरिया के कथा साहित्य में सामाजिक समस्याओं पर मंथन....108
–श्रद्धा श्री यादव....108
33. 21वीं सदी का दलित साहित्य; रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में दलित जीवन के संदर्भ में....110
–डॉ0विजय पाल....110
34.रत्नकुमार सांभरिया का व्यक्तित्व व कृतित्व....113

ISSN-2454-6283 PEER Reviewed JOURNAL

–*यादवेन्द्र चेजारा*..........113
35.वंचितों की कलम : रत्न कुमार सांभरिया..........117
–*रिछपाल* 117
36.फुलवा कहानी का भाव सौंदर्य..........121
–*डॉ.मीना शर्मा*..........121
37.रत्नकुमार सांभरिया के नाटकों में दलित चेतना 'उजास' नाटक के विशेष संदर्भ में..........123
–*शेख वसीम अ. रहिम*..........123
38.रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में वृद्ध विमर्श..........125
–*नीलम* 125
39.'वीमा' नाटक की समीक्षा..........127
–*डॉ. नमिता जैसल*..........127
40.परिवर्तित होते मूल्यों का नवस्वरूप रत्नकुमार सांभरिया की कहानी 'फुलवा': एक अध्ययन..........129
–[1]*डॉ0नमिता जैसल* [2]*चन्द्रावती*..........129
41.सांभरिया की कहानियां :दलित विमर्श का विस्तार एवं नई दिशा..........132
–*अनिल कुमार*..........132
42.रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में दलित चेतना..........138
–*रजाक शाह कादरी*..........138
43.रत्नकुमार सांभरिया का आलोचना साहित्य..........141
–*प्रज्ञा पाण्डेय*..........141
44.रत्नकुमार सांभरिया का कथा–साहित्य..........142
–*सुरेश कुमार वर्मा,*..........142
45.दलित मिथक को तोड़, नया सौन्दर्यशास्त्र रचती कहानियां..........144
–*राजा कुमार (ऋत्विक भारतीय)*..........144
46.रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में अभिव्यक्त सामाजिक विषमताओं के प्रति विद्रोह..........150
–*डॉ 0राजमुनि*..........150
47.दलित समाज की कहानियाँ : एक अध्ययन..........154
–*नीतू, हिसार*..........154
48.रत्नकुमार सांभरिया के'वीमा' नाटक में विकलांग और दलित विमर्श..........156
–*डॉ.ज्योति मुंगल*..........156
49.वीमा नाटक में क्रांतिकारी चेतना..........158
–*डॉ.पठान जे.सी.*..........158

ISSN-2454-6283 PEER Reviewed JOURNAL

1.रत्नकुमार सांभरिया की कहानियाँ

–डॉ0सूर्यनारायण रणसुभे
'निष्कर्ष' 19, अजिंक्य सिटी, अंबाजोगाई रोड, लातूर (महाराष्ट्र)

हिन्दी की लिखित कहानी परंपरा का इतिहास केवल 100–125 वर्षों का है। इन 100–125 वर्षों में कहानी में अनेक प्रकार के मोड़ आए। गुलेरी जी की प्रसिद्ध कहानी ''उसने कहा था'' ने आरंभ में ही हिन्दी कहानी को प्रेम, समर्पण और मानवीयता से जोड़ दिया। यह युद्ध और प्रेम की बेजोड़ कहानी है। प्रेमचंद ने इस कार्य को अनेक आयामों में विकसित किया। उनकी सहानुभूति का क्षेत्र बहुत विशाल था। वहाँ "दो बैलों की कथा" से लेकर सामाजिक और आर्थिक विषमता के कारण संवेदनशून्य होते जा रहे मनुष्य को भी चित्रित किया गया है। प्रेमचन्द्र पहले कहानीकार हैं, जिन्होंने वृद्धावस्था से सम्बन्धित व्यथा, वेदना और भूख को चित्रित किया ।

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी कहानी मध्यवर्ग की संवेदना तक सीमित होती गयी। नई कहानी ने इस मध्यवर्गीय संवेदना से परे जाकर मनुष्य को समझने की कोशिश की, अलबत्ता, यशपाल की कहानियों में आर्थिक दृष्टि से पूर्णतः नाकारे गए वर्ग की कहानियाँ मिलती हैं। दलित कहानियों ने हिन्दी कहानी की संवेदना के क्षेत्र को और भी विस्तृत किया। बावजूद इसके उसकी भी कुछ सीमाएँ रही हैं।

दलित जीवन हो या सवर्ण जीवन, सभी इस व्यवस्था के अनिवार्य अंग हैं। प्रत्येक संवेदना समय सापेक्ष आकार लेती है। तत्कालीन समाज या समकालीन व्यवस्था में दलित सवर्ण जैसा भेद करके यहाँ के मनुष्य को पूर्ण रूप से हम समझ नहीं पाएँगे।

दलित के ऐसे भयानक जीवन के मूल में जैसे यहाँ की वर्णाधिष्ठि व्यवस्था है, वैसे ही सवर्णों की श्रेष्ठता श्रेष्ठ की ग्रंथि के मूल में भी यहाँ की विषम समाज व्यवस्था ही है। इसकी समझ रख कर लिखने वाला लेखक किसी भी वर्ग के प्रति पूर्वाग्रह नहीं रखता। अपितु इन दोनों को समझने हेतु तटस्थ होकर दोनों के मन के भीतर उतर कर वहाँ की सूक्ष्म आहट को शब्दों में बाँधने की कोशिश करता है। किसी भी लेखक की अपने लेखन के प्रति ऐसी ही जिम्मेदारी होती है। लेखन के प्रति प्रामाणिकता इसी को कहते हैं।

रत्नकुमार सांभरिया ऐसे पहले दलित लेखक हैं, जो अपने पात्रों की ओर वर्ण, जाति, धर्म, प्रदेश, भाषा और लिंग के परे जाकर केवल मनुष्य मात्र के रूप में देखते हैं। उनके मन की परतें खोलते जाते हैं। इसी कारण से उनकी कहानियाँ हिन्दी कहानी साहित्य के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। मेरी इस बात को प्रस्तुत संग्रह की कहानियाँ प्रमाणित करती हैं।

कहने के लिए तो इनमें से अधिकांश कहानियाँ वृद्धावस्था से सम्बन्धित हैं। इन कहानियों को वृद्ध–विमर्श की कहानियाँ कहा है, परन्तु मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ। इसलिए कि इन कहानियों में वृद्धावस्था से सम्बन्धित समस्याओं का, फिर वे समस्याएँ स्वास्थ्य विषयक हों या पारिवारिक या सामाजिक–आर्थिक, उसका यहाँ अभाव है। अधिकांश वृद्ध स्वस्थ्य प्रकृति के हैं। आर्थिक दृष्टि से विकलांग नहीं है, बल्कि अत्यंत स्वाभिमानी हैं। इस आयु में भी अपनी प्रतिष्ठा के लिए, अपनी श्रेष्ठता की ग्रंथि को बनाए रखने का प्रयास करने वाले सवर्ण यहाँ हैं। अन्याय, अत्याचार, पक्षपात के प्रति कहानियों में आए दलितों में प्रतिरोध हैं। गुस्सा है। और इसी कारण वे कभी–कभार हाथ में तलवार लेकर प्रतिशोध के लिए भी उठ खड़े होते हैं।

वृद्धावस्था के कारण पंगु या मजबूर नहीं हैं। यहाँ जितने दलित वृद्ध हैं उतने ही सवर्ण वृद्ध भी हैं। वे विषम परिस्थितियों को अनुकूल बनाने की हिम्मत रखते हैं। जितने वृद्ध हैं, उतनी वृद्धाएँ भी हैं। और ये वृद्धाएँ भी जिद्दी, साहसी और स्वाभिमानी हैं। अधिकांश अकेले में रहते हैं। पर भीतर से अकेले नहीं हैं। बेटा या बेटी से उनका लगातार संपर्क रहा है।

इन कहानियों में अभिव्यक्त संवेदना की जो विशेषताएँ मुझे महसूस हुईं, उसे क्रमशः यहाँ रख रहा हूँ।

सांभरिया की इन अधिकांश कहानियों केन्द्र में वृद्ध हैं, परंतु प्रत्येक वृद्ध की समस्याएँ भिन्न–भिन्न स्वरूप की हैं। लेखक कहीं पर भी खुद को दोहराता नहीं है। कुछ की समस्याएँ आर्थिक मजबूरी की हैं (फुलवा), कहीं अपनी बेटी के आगत स्वागत की चिंता है (बूढी), तो कहीं कुरूपता के कारण नकार दी गई पत्नी की उदारता है, (इत्तफाक), कहीं भूख से पेरशान बूढ़ा और उसे परेशान करने वाली मुर्गी हैं (मियांजान की मुर्गी)।

दलित के रूप में किसी कांड में फंसा दिये जाने के बाद उसमें से पूरी कुशलता से बाहर निकलने वाला भी यहां है (झंझा), तो बाबरी ध्वंस के बाद मुस्लिम परिवारों में जो असुरक्षा और भय की ग्रंथि निर्माण हो गई थी, उसका बहुत ही सूक्ष्म चित्रण है (लाठी) कहानी। कहीं चमरवा बूढ़े की श्रेष्ठता की ग्रंथि का और बाद में उसकी पराजय को चित्रित करने वाली कहानी है (चमरवा), तो एक बूढ़ा दलित, महन्त के द्वारा अपमानित होने के बाद उसका प्रतिशोध लेता है (मुक्ति), तो विरासत से मिले खेत के अंतिम टुकड़े को बचाने के लिए एक बूढ़ा कितना आक्रामक हो जाता है, इसका बेबाक चित्रण यहाँ है (खेत), "बाढ़ में वोट" कहानी तो

हमारे नेताओं के पाखंडीपन, एय्याशी और भ्रष्ट चरित्र को स्पष्ट करती है।

पद–प्रतिष्ठा और व्यवस्था के कारण जाति कैसे खत्म हो जाती है, इसे स्पष्ट करने वाली दो कहानियाँ यहाँ हैं। वर्ण श्रेष्ठता की मानसिकता पर एक और कहानी "मांडी" शीर्षक से है। आज भी देश के अनेक प्रदेशों में अनमोल विवाह होते हैं। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार इस प्रकार के विवाह का औसत हिन्दी पट्टी में अधिक है। "बिल्लो का ब्याह" कहानी का सम्बन्ध वृद्धावस्था के साथ नहीं है, क्योंकि यहाँ अधेड़ उम्र का विधुर है। स्मृति शेष पत्नी की बहन के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध शादी कराई जाती है। पत्नी बिल्लो की आयु इस विधुर की लड़की के बराबर है। नवोढ़ा वधू उसकी बेटी की मौसी है। इस विवाह के कारण बिल्लो की अपेक्षा उसकी बेटी पर और विधुर पर क्या बीतती है, इन दोनों की मानसिकता का यथार्थ चित्रण इस कहानी की उपलब्धि है। कहानी नाटकीय ढंग से खत्म होती है। परन्तु उस घटना के कारण ही अधेड़ की सोच में परिवर्तन हो जाता है। अपनी पत्नी को वह अपनी लड़की के रूप में स्वीकारता है।

अंतिम कहानी "आश्रम" नई पीढ़ी जो शहर के निवासी बन गई है। कैसी आत्मकेन्द्रित, स्वार्थी और कितनी कृतज्ञ हो गई है, इसका पर्दाफाश करती है। वृद्ध पिता उनके षड्यंत्र को कैसे उल्टा देता हैं, इसे यहाँ व्यक्त किया गया है। वर्ण श्रेष्ठत्व के अहंकार से सम्बन्धित तीन कहानियों को छोड़ दे तो शेष ग्यारह कहानियों के चरित्रों में, परिवेश में, काफी विविधता है। वर्ण श्रेष्ठता की जो तीन कहानियाँ हैं, वहाँ भी कथ्य की विविधता है। मानसिकता एक ही प्रकार की हो तो भी आवश्स्त करने वाली बात यह है कि सवर्ण मानसिकता से बाहर आ रहे हैं। मजबूरी के कारण कहिए, परिवेश के दबाव के कारण कहिए, दलितों में जो भौतिक परिवर्तन हुआ है, जो पद उन्हें प्राप्त हो रहे हैं, इस कारण कहिए। परिवर्तन की इन लहरों में मानवीय स्तर पर आ रहे हैं।

अन्य दलित लेखकों की रचनाओं में सवर्णों की मानसिकता के प्रति उनकी श्रेष्ठता ग्रंथि के प्रति आक्रमकता होती है। परंतु सांभरिया में इस प्रकार की आक्रमकता नहीं है। और न ही सवर्णों से कोई शिकायत हैं। अपितु सवर्णों के मन के बहुत भीतर उतर कर उनकी जो असहाय जैसी हालत इन दिनों हो रही है, उसका यथार्थ चित्रण लेखक ने किया है। लेकिन लेखक उन्हें सवर्ण के रूप में नहीं अपितु परिस्थिति और परंपरा की पकड़ में फंसे हुए मजबूर मनुष्य के रूप में ही देखते हैं। और यही इस लेखक की सबसे बड़ी उपलब्धि हैं कि वह मनुष्य को मनुष्य मात्र के रूप में देखते हैं न कि सवर्ण या दलित।

राजस्थान और प्रकारांतर से पूरी हिन्दी पट्टी में दलितों के पढे– लिखे समाज में और अनपढ़ों में भी भौतिक मानसिक दृष्टि से जो विशेष परिवर्तन हो रहे है, और उससे सवर्णों की मानसिकता में जो बदलाव आ रहे हैं, उसे भी सांभरिया की कहानियाँ उजागर कर रही हैं। ये कहानियाँ महत्त्वपूर्ण समाजशास्त्रीय दस्तावेज हैं। आज से करीब पचास वर्षों बाद कोई समाजशास्त्री हिन्दी पट्टी के (समाजशास्त्रीय दृष्टि से) समाज जीवन में जो परिवर्तन हो रहा है, उसका अगर अध्ययन करना चाहता है, तो ये कहानियाँ उसके लिए महत्त्वपूर्ण स्त्रोत साबित होने वाली हैं।

इसका यह अर्थ नहीं हैं कि कलात्मक दृष्टि से इन कहानियों का कोई महत्त्व नहीं हैं। कहानियाँ कहानी कला की दृष्टि से सर्वोत्तम हैं।

किसी भी रचना की सबसे बड़ी पहचान उसकी पठनीयता होती है। और दूसरा निकर्ष होता है, रचनाएँ पाठकों को कहाँ तक जीवन और उसकी समस्याओं से जोड़ती हैं। पाठक को आत्म परीक्षण के लिए ललकारती हैं, पाठकों का मात्र मनोरंजन करती हैं, अथवा उन्हें श्रेष्ठ जीवन मूल्यों से जोड़ती हैं। इन सभी निकषों पर कहानियाँ खरी उतरती हैं, इसलिए लेखक का अभिनंदन।

"इत्तफाक़" कहानी का अपवाद करें तो सभी कहानियाँ ठोस जमीन पर, यथार्थ भाव भूमि पर दृढ़ता से खड़ी हैं। "मियांजान की मुर्गी" इस संग्रह की सबसे विशिष्ट और सबसे अप्रतिम कहानी है। इस कहानी में एक ओर भूख से परेशान बूढ़े की मानसिकता का चित्रण है, तो दूसरी ओर मुर्गी की जिजीविषा का बहुत ही जीवंत चित्रण किया गया है। कहानी से यह स्पष्ट हो जाता है कि लेखक केवल मनुष्य के मन में नहीं, अपितु प्राणियों के तन में भी उतर कर उनकी जीने की छटपटाहट को चिह्नित कर सकता है। इस कहानी के कारण लेखक प्रेमचंद के और भी निकटतम चले जाते हैं, संदर्भ "दो बैलों की कथा"।

कहानी के सभी पात्र एक ही समय विशिष्ट भी हैं और प्रातिनिधिक भी हैं। जब निर्णय का क्षण आ जाता है, तब वे विशिष्ट बन जाते हैं, अन्यथा शेष जीवन में वे प्रातिनिधिक ही हैं।

मैं सर्वाधिक प्रभावित रहा हूँ लेखक की भाषा और शैली से। इतने छोटे–छोटे परंतु अत्यंत प्रभावपूर्ण, लयात्मक ऐसे वाक्य वे लिखते हैं कि पाठक उसे पढ़ते समय एक अलग ही प्रकार के भाषिक आनंद को महसूस करता है। इनकी वाक्य रचना को पढ़ते समय मुझे मराठी के प्रतिष्ठित लेखक स्मृति शेष साने गुरुजी के लेखन शैली की याद आती है। बिहारी के दोहों को लेकर कभी यह लिखा गया था कि 'देखन में छोटे लगे, घाव करे गंभीर'। वैसी स्थिति इनकी वाक्य रचना की है। कई वाक्य सूक्त की तरह

आए हैं। यह सब इतना सहज है कि वाक्य रचना में कोई कृत्रिमता नहीं, न शब्द थोंपे हुए लगते हैं यहाँ शब्दों के साथ कोई खेल नहीं है। अनुभूति और शब्द रचना का अद्वैत यहाँ देखने को मिलता है। जैसे –दो कमरे हैं। उनके बीच में दीवार है। लेकिन गेट है। गेट पर पर्दा है। पर्दा तो शर्म होता है आड़ नहीं होता। बहू है, जवान लड़कियाँ है (फुलवा)। या चेहरा गोल। आंखें बडी–बडी । लंबी नाक। नाक में कांटा। कद लंबा। बीस की लग रही थी (इत्तफाक़)। हवा में ठंड की हौले–हौले दस्तक थी। गांव मंझला है। न छोटा, न बड़ा (झंझा)। पड़ोसी–सा सगा नहीं, पड़ोसी–सा दगा नहीं (लाठी)। हमें मोह ने मारा, इसे ममता ने मारा(बाढ़ में वोट)। श्यामू धंधा छोड़ दिया, जाति मिट गई। लड़का बड़ा अफसर बन गया। जात बड़ी बन गई (विपर सूदर एक कीने)

एक पाठक के रूप में इस लेखक के भाषा प्रयोग को लेकर एक ओर मैं बहुत प्रसन्न हूँ, तो दूसरी ओर मेरी यह शिकायत भी है कि इन कहानियों में आए दर्जनों शब्द ऐसे हैं, हिन्दीतर भाषी तो जाने दीजिए, हिन्दी भाषी भी इन आंचलिक शब्दों के अर्थों का कहाँ तक आकलन कर पाएगा, इसकी मुझे शंका हैं। लेखक का मूल निवास स्थान हरियाणा प्रदेश का हैं, इसलिए वह हरियाणवी जानते हैं लिखते खड़ी बोली में। चालीस वर्षो से वे राजस्थान के निवासी हैं इसलिए राजस्थानी भी जानते हैं। परिणामतः इनकी भाषा में हरियाणवी के देशज शब्द आते हैं। उनका आना स्वाभाविक है। परंतु इससे पाठकों को आकलन के समय अनेक दिक्कतें आने लगती हैं। संदर्भानुसार कुछ शब्दों के अर्थ उसे समझ में आते हैं। जैसे टाबर मतलब बच्चे। एक कहानी का शीर्षक है– "विपर सूदर एक कीने"। लेखक से बातचीत होने के बाद पता चला कि विपर का अर्थ है विप्र और सूदर का अर्थ शूद्र। शिक्षा के उन्नयन ने विप्र और शूद्र दोनों को एक किया है। अच्छा होता लेखक अपने पाठकों की सुविधा के लिए बंधनी (कोष्ठक) में मानक हिन्दी का वैकल्पिक शब्द दे देते। इस प्रकार के वैकल्पिक शब्द देने से पाठक भाषिक दृष्टि से समृद्ध हो जाता।,

अक्सर यह देखा गया है कि लघुकथाओं को लिखने वाला लंबी कहानियाँ लिख नहीं पाता और लंबी कहानियाँ लिखने वाला लघुकथा लिख नहीं पाता हैं। प्रत्येक की विधागत शैली है। रत्नकुमार यहाँ पर भी अपवाद साबित हो जाते हैं। क्योंकि उन्होंने बहुत ही सुंदर प्रभावपूर्ण लघुकथाएँ लिखी हैं। उनकी लघुकथाओं के दो संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं। ठीक उसी समय उतनी ही ताकत से उन्होंने कहानियाँ लिखी हैं, जो कहानियाँ आकार की दृष्टि से लघुकथाएँ नहीं हैं। वे लंबी कहानियाँ भी नहीं हैं। मंझले आकार की कहानियाँ हैं। उन्हें जो कुछ भी पाठकों तक पहुँचाना है, वह बराबर पहुँच जाता है। कहीं पर कोई भी अनावश्यक लंबा चौड़ा वर्णन नहीं होता है। इन कहानियाँ में कई ऐसे स्थान हैं, जहाँ विस्तार संभव था,लेकिन आवश्यक नहीं।

इनके कार्यों को पढ़ते समय मैं यह तीव्रता से महसूस करता रहा हूँ इस लेखक को दलित या अन्य किसी कठघरे में बंद करना उस पर अन्याय ही करना हैं, क्योंकि इनकी कहानियों में जो पुरुष–स्त्री पात्र हैं, वह धर्म व प्रदेश लिंग के परे, जाति लिंग के परे जाकर आम आदमी की व्यथाकथा को कहते हैं इसलिए वह विशुद्ध मानवीयता के जनकथाकार हैं।

अन्य दलित कहानियों से इसलिए भी यह कहानियाँ भिन्न हैं कि यहाँ लेखक पूरी तत्परता से सवर्णों के मन में उतर कर उनके भीतरी अन्तर्द्वन्द्व को व्यक्त करते हैं, केवल एक मनुष्य के रूप में देखते हैं, ऐसा मनुष्य जो अपनी श्रेष्ठता वृति का शिकार हैं। बदलती परिस्थितियों के सम्मुख वह पराजित सा हो गया है उनके प्रति ना आक्रामकता है, ना किसी भी प्रकार की प्रतिशोध की भावना है। विशुद्ध मानवीय दृष्टि का प्रतिरोधात्मक स्वर है।

सर्वाधिक आश्वस्त करने वाली बात यह है कि देश का सवर्ण अपनी श्रेष्ठता ग्रंथि से बाहर आने की कोशिश कर रहा है। यह काल तो उसकी मानसिकता के संक्रमण का काल है। सामंती और वर्णव्यवस्था की मानसिकता से बाहर आते समय वह भयंकर पीड़ा से गुजर रहा है। मजबूरी से क्यों न हो अब वह दलितों को अपनी बराबरी का दर्ज़ा दे रहा है। बहुत भीतर से नहीं, मजबूरी से। परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजरते समय यह सब तो होगा ही। (विपर सूदर एक कीने)

वास्तव में मानवता के स्तर पर आकर सभी मानवीय व्यवहार करने की ज़रूरत सवर्णों को ही है। मानवीय व्यवहार के संदर्भ में सवर्ण इस देश का सबसे पिछड़ा आदमी है। मानवीय मूल्यों की बात तो वह जोर शोर से वर्षों से कर रहा है, परन्तु आचरण के स्तर पर वह घोर सनातनी मनुवादी हो रहा है। रत्नकुमार ने इस ओर इशारा किया है कि क्या उसके आचरण में भी परिवर्तन हो रहा है ? जैसे "फुलवा" कहानी का सवर्ण। 'झंझा' और 'मांडी' का बामन, 'विपर सुदर एक कीने' पंडित जी और उनका बेटा। इन सवर्णों की मनुवादी मानसिकता में यह जो आचरणगत परिवर्तन हो रहा है उसके मूल में बदलती परिस्थितियाँ हैं और ये परिस्थितियाँ बदल रही हैं। भारतीय संविधान ने पिछड़े दलित, विमुक्त जन और आदिवासियों की स्थिति में बदलाव लाने के लिए जो व्यवस्था दी है, उस कारण। इसलिए हम फिर से डॉ0 बाबासाहेब अंबेडकर के संघर्ष को रेखांकित करते हुए संविधान सभा के सदस्यों को और उन सबके पीछे खड़े महात्मा गांधी को भूल नहीं सकते।

बहुत ही खूबसूरती के साथ यथार्थ की नींव पर खड़े होकर रत्नकुमार सांभरिया ने यह जो कहानियाँ हिन्दी साहित्य को दी हैं, उससे हिन्दी कहानी का अनुभूति–क्षेत्र अधिक विस्तृत, अधिक समृद्ध हो गया है, इसलिए सांभरिया जी का पुनः पुनः अभिनंदन।

2.रत्न कुमार सांभरिया के नाटकों में दलित क्रांति चेतना

–प्रो.डॉ.रमेश संभाजी कुरे
प्रोफेसर एवं हिंदी विभागध्यक्ष,
नारायणराव वाघमारे महाविद्यालय, आ.बालापुर जी.हिंगोली

'एक समाज दृष्टा साहित्यकार रत्नकुमार सांभरिया जी अपने गाँव से निकलकर वंचितों की संवेदना से मुक्त साहित्य द्वारा राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी अलग पहचान बनाने में सकल हुए हैं। उन्होंने अब–तक करीब 52 कहानियाँ, एक एकांकी संग्रह, तीन नाटक और अन्य समीक्षात्मक वैचारिक लेखन किया है। उनका साहित्य ही इतना स्तरीय है कि आज देश के कई विश्विद्यालयों में स्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में नई पीढ़ी को पढ़ाया जा रहाँ है। इतना ही देश के विभन्न विश्वविद्यालयों में लगभग तीस शोधार्थी अपने साहित्य पर शोधकार्य भी कर रहें है। सांभरिया जी व्यक्ति के जीवन, न्याय, समाज और नैतिकता के प्रति साहित्य सृजन में आधुनिक और जनतांत्रिक मूल्यो का आग्रह करते है। डॉ.लोकेश कुमार गुप्ता जी कहते हैं यहाँ, "यदि उपस्थित है तो कर्म सौंदर्य वह भी किसी तथा कथित देव अथवा प्रभु आश्रय के अभाव में, अभाओ से जूझते चरित्रों को सामाजिक रूप से स्थापित होते हुए उपेक्षितो की अपेक्षित दास्तानों का।"2

दलित शब्द और साहित्य :– मानक हिंदी अंग्रेजी शब्दकोश में दलित शब्द के लिए 'डिस्प्रेड' या 'डाउन ट्रोनेड' शब्द मिलते हैं। तो हिंदी शब्दकोशों में मसला हुआँ, रौंदा हुआँ, विनष्ट किया हुआँ या खंडित किया हुआँ आदि दलित शब्द के अर्थ मिलते हैं। परंतु आज वर्तमान शोषक समाज व्यवस्था को ध्यान में रखकर दलित शब्द की एक व्यापक व्याख्या निश्चित करनी होगी केवल हरिजन या नव बौद्ध ही दलित नहीं है तो गाँव की सीमा के बाहर बहिस्कृत जीवन जीने के लिए अभिषक्त सभी अछूत जातियाँ, भूमिहीन खेत मजदूर, और श्रमिक इन सबको दलित शब्द से परिभाषित करने की आवश्यकता है।

हिंदी साहित्य की मध्यकालीन निर्गुण साहित्य की ज्ञानमार्गी शाखा के संतों की वाणी में हमें दलित साहित्य के बीज दृष्टिगोचर होते हैं। जहाँ निर्गुण संतो ने ब्राम्हण, शुद्र वर्ण व्यवस्था आदि का विरोध कर समता मूलक समाज का आग्रह किया था। इसलिए तो संत कबीर और महात्मा फुले जी को डॉ. बाबासाहब अंबेडकर अपने गुरु का स्थान देते हैं। दलित साहित्य शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख डॉ.अंबेडकर ने ही दलित साहित्य सेवक संघ में किया था। उनके अनुसार, "अछूतपन सामाजिक मनोविज्ञान का एक पहलू है, यह संगठन द्वारा दूसरे संगठन पर जबरन शासन करने का सिद्धांत है, यह समाज विज्ञान का स्वार्थी तथा विकृत रूप है"3 संविधान द्वारा दलितों को समानता, स्वतंत्रता के साथ पढ़ने–लिखने का अधिकार प्राप्त हुआँ जिससे दलितों में सामाजिक चेतना का उदय हुआँ। इसी चेतना के चलते उन्हें यह ज्ञात है कि उनपर होनेवाले अन्याय अत्याचार की मूल जड़ वर्ण–जाति व्यवस्था है। इन सबका मूल ऋग्वेद और मनुस्मृति आदि ब्राम्हणवाद के पवित्र ग्रन्थों में है। प्रसिद्ध दलित साहित्यकार डॉ.जयप्रकाश कर्दन लिखते हैं, "दलित साहित्य सभी प्रकार की असमानता, अन्याय, अपमान, उपेक्षा, दमन, शोषण, उत्पीड़न और अमानवीयता का प्रबल प्रतिकार करता है तथा समानता, स्वतंत्रता, न्याय और भातृत्व के मूल्यों का स्वीकार और उनका समर्थन करता है। ... दलित साहित्य 'वाह' का नही 'आह' का साहित्य है। ...इसे पढ़कर पाठक का ह्रदय आनंद से झूमता नही है, उनकी संवेदनाएँ उसे झकझोर देती है।" 4

मोहनदास नैमिशराय के अनुसार दलित साहित्य, "शोषक वर्ग के खिलाप अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए समाज में समता, बंधुता तथा मैत्री की स्थापना करना ही दलित साहित्य का उद्देश्य है।"5 इस तरह दलित साहित्य ने बरसों से अनुत्पादक और बंजर पड़ी जमीन को वैचारिक रूप से उर्वर और उत्पादक बनाया। सभी दलित साहित्यकारों ने जिस पीड़ा को झेला है, जिससे वे आहत और जख्मी हुए। इसी कारण उनके मन व्यवस्था के प्रति आक्रोश, और संघर्ष की चेतना जागृत हुई। परिणामतः आत्मकथा, कथा, कविता और नाटक साहित्य ने दलित संघर्ष, क्रांति चेतना और विमर्श को आगे बढ़ाकर साहित्य के केंद्र में लाकर खड़ा किया।

शिक्षा के प्रति जाग्रति :– सांभरिया जी के अनुसार दलित, वंचितों के लिए सृजित नाटक का ध्येय होगा। डॉ.बाबासाहब अंबेडकर ने दलितों को शिक्षित बनने का मंत्र दिया है। क्यों कि शिक्षा ही उनकी गुलामी से मुक्ति का एक मात्र मार्ग है। 'उजास' नाटक दलितों के पूनर्वास और बदलते परिवेश का चित्रण करता है। इसलिए नायक कालिया दलितों वाल्मीकि समाज को महात्मा फुले और बाबासाहब अंबेडकर के शिक्षा विषयक विचारों को अपनाने का ऐलान करता है। उसने शहर जाकर पढाई (शिक्षा) की है। शिक्षा के बिना ऐसे ही पिटोगे, लूटोगे, धोखा खाओगे, बरबाद हो जाओगे ऐसी चेतावनी देता है। वह शेरसिंह से कहता है कि, आज से हमारे बच्चों के हाथ में कलम होगी। जो अन्याय–अत्याचार के खिलाप लड़ने का सबसे बड़ा हथियार होगी। कालिया शिक्षा का महत्व जानते हुए मंदिर के बदले शिक्षा की

माँग करता है। पंडित रामानंद से सीधे भीड़ जाता है।" रामानंद जी, मंदिर–प्रवेश कराने से कौनसा भला हो जाएगा, हमारा ? कुछ करना चाहते हो, हमारे बच्चों को शिक्षा दिलाओ। हमारे लिए स्कूल मंदिर है। शिक्षा मूर्ति है। शिक्षा के मंदिर में भेदभाव होता है, हमारे साथ मास्टर हमारे बच्चों को स्कुल से भगा देते हैं।"6 वीमा नाटक का नायक नेत्रहीन जमन वर्मा भी पढ़ा–लिखा होने के कारण अपने अधिकारों के प्रति सजग है। इन दोनों नाटकों में हम दिखते हैं कि शिक्षा के कारण ही दलितों में अपने अस्मिता और अस्मिता के प्रति जागृति हुई है। शिक्षा के कारण उनमें परिवर्तन की नई हवा बह रही है।

संगठन शक्ति का उदय :– किसी भी क्रांति या परिवर्तन की सफलता उनकी संघठन शक्ति पर निर्भर होती है। यूँ कहो तो दुनियाँ में अब तक जहाँ कही भी क्रांति या परिवर्तन हुआँ है वहाँ एक मजबूत एकता या संघठन शक्ति का उदय हुआँ है। शोषित, वंचित समाज को डॉ . बाबासाहब अंबेडकर ने शिक्षा के बाद संघठित होने को कहाँ है। वीमा नाटक में जमन वर्मा और देवतसिंह वीमा की वापसी के लिए निःशक्तों का जबरदस्त संघठन करते हैं।" न केवल शहर के ही, बल्कि दूर–दराज के गाँवो के निःशक्त आकड़े है, यहाँ। ...नेत्रहीन स्कूल में तुम अध्यापक थे न, उनका समूचा स्टाफ और स्टूडेंट्स आ गए हैं, धरना स्तल पर ताला लग गया है, स्कूल को।"7 इसी संगठन शक्ति के आधार पर वे नेत्रहीन संस्थान के संस्थापक श्यामजी, काका, पुलिस प्रशासन और पत्रकारों से तीव्र संघर्ष करते है। परिणामतः निःशक्तों की संगठन शक्ति के आगे जातिवादी षडयंत्र कारियों को घुटने टेकने पड़ते हैं, और वे वीमा को वापस देते हैं। निःशक्तों के संगठन की जीत पर देवत सिंह कहता है, "निःशक्तों के एकत्र होने को मेंढक तोलने जैसा मानते हैं, लोगो में कहता हूँ, अगर निःशुक्त अपनी पर उतर आएँ, लोहे की गेंद हैं। लोहे की गेंद को न कि लाथ मारी जा सकती है, न उसे उछाला जा सकता है।"8

'उजास' नाटक मुख्य चरित्र भी पढ़ा–लिखा युवक है। उसने शहर में रहकर डॉ. बाबासाहब अंबेडकर के विचार और साहित्य पढ़ा है, भी संगठन की ताकत को अच्छी तरह समझता है। वह ब्राह्मण रामानंद द्वारा खुद को सरपंच बनने के लिए चलाए जा रहें दलितों के मंदिर प्रवेश आंदोलन का विरोध करता है। सरपंच शेरसिंह के दलितों को कुओं पर चढ़वाने का अभियान और रामानंद के मंदिर प्रवेश आंदोलन के षडयंत्र की पोल–खोल कर सारे दलितों को संगठित करता है। वह कहता है, "वोटो के लिए नाटक है, सब, ... आप ही को आयी थी, ज्यादा चोटें, वह पूरे वाल्मिकी समाज को सावधान करते हुए सुवर पालन और गाँव की गंदगी साफ करने जैसे गंदे धंधे को छोड़कर एक सन्मान की जिंदगी जीने के लिए प्रेरित करता है।

व्यवस्था के प्रति तीव्र आंदोलन :–सांभरिया के दोनों नाटकों में हम देखते हैं कि दलित–पीड़ित, वंचित समाज को शोषण का विरोध करने के लिए व्यवस्था के लिए आंदोलन करना पड़ता है। क्यों कि क्रांति का प्रत्यक्ष रुप से आंदोलन ही होता है। डॉ. अंबेडकर ने दलितों को शिक्षित बनकर, संगठित होकर संघर्ष करने का मूलमंत्र दिया था। वीमा और उजास नाटक अंबेडकर मिशन को पूर्ण करनेवाले परिवर्तनकारी नाटक है। वीमा नाटक दलित , दिव्यांग और स्त्री विमर्श का परिचायक है। जिसमें इन तीनों को चेतना और संघर्ष को अभिव्यक्त किया है। एक वेगहीन वीमा की अपहरण पीड़ा का भी यथार्थ चित्रण हुआँ है। निःशक्तों का आंदोलन और तीव्र संघर्ष केवल दाद देनेवाला ही नहीं तो शोषित व्यवस्था के खिलाफ दलितों को संघर्षरत रहने की प्रेरणा भी देता है।

विकलांग संघ के अध्यक्ष देवतसिंह और दो सौ निःशक्त मिलकर जमन वर्मा की अपहरण की हुई पत्नी वीमा को छुड़ाने के लिए श्यामजी से सीधे भीड़ जाते हैं। जमन अपनी नौकरी की परवाह न करते हुए श्यामजी को चुनौती देता है, "मुझे अंधा ठूठ और नीच जान कहकर अपने अपनी जात बता दी है, श्यामाजी... कान खोलकर सुन लें आप वीमा को चौथा महीना है। अगर मेरी बीबी और होनेवाले बच्चे को कुछ हो गया, कठघरे में होंगे, आप।"9 निशक्तों के मन में आपके खिलाप जबरदस्त गुस्सा और आक्रोश है। वे नारे लगाते हुए आका को दफ्तर में घुसने नहीं देते इसी छीना–झपटी में आका की कमीज तो फटती है परंतु उन्हें खुली हुई धोती छोड़कर भागना पड़ता है। जो धोती अंत में आंदोलन कारी जमन वर्मा के पाँव के नीचे दबा पड़ी है। जमन वर्मा, देवतसिंह और निःशुक्त मिलकर पुलिस प्रशासन, पत्रकार और जातिवादी आकाओं से तीव्र संघर्ष कर अपहरित वीमा को वापस प्राप्त करते है, यही दलित आंदोलन और संघर्ष की जीत है। 'उजास' नाटक का कालूसिंह, संती, भोलू और बस्ती के बुजुर्ग मिलकर चतुर्वण्यव्यवस्था, जातिवाद और शोषण के खिलाफ क्रांति का आव्हान करते हुए हैं। पुजारी सेवानंद, रामानंद और शेरसिंह के दबाव को ठुकराकर गंदा धंधा छोड़ने का ऐलान करते है। मंदिर के सामने ही झाडू, पोचे और परात के ढेर को केरोसिन डालकर फूँकते हुए कहते हैं, "फूँक दिया हमने अपना गंदा धंधा। छोड़ दिया मैला उठाना,...नही थूकेंगे, नही पिटेंगे, एकजुट होकर हम मर मिटेंगे। ...जो गंदगी फैलाएगा, पंडतजी... पंडतजी हमने सुअर और सफाई दोनों छोड़ दिये हैं, आज से।"10

दलित नेतृत्व का उदय :– वीमा और उजास नाटकों में हम पाते हैं कि दलित क्रांति चेतना के साथ दलित नेतृत्व निर्माण का नाटककार का सफल प्रयास रहाँ है। यही तो दलित साहित्य और मिशन का लक्ष्य है। जमन वर्मा नेत्रहीन होने के बावजूद और देवतसिंह दोनों पैरों से अपाहिज होने के बाद भी उनके चरित्र में नेतृत्व करने का अदम्य साहस और क्षमता दिखाई देती है। इसी अदम्य साहस की क्षमता के बल पर वे पुलिस प्रशासन, पत्रकार और आकाओं को परास्त कर अपनी नेतृत्व क्षमता का दमखम दिखाते हैं। 'उजास' नाटक के अंत में कालिया भी' राजनीति किसी की बपौती नही हैं। ना किसी जात ठेकेदारी है।'कहकर सलपुर गाँव के सरपंच चुनाव में ताल ठोकर खड़ा होता है। केवल खड़ा नही होता तो सरपंच के लिए सारे गाँव का रुख अपनी तरफ बनाने में सफल भी होता है तब मजबूरन शेतसिंह, रामानंद और

सेवानंद भी गाँव का सरपंच कैसा हो ? प्रो.किशोरीलाल रैगर के अनुसार, "वस्तुतः उजास बाबासाहब के मिशन को पूरा करने वाला रंगमंचीय नाटक है। दलित बस्तियों में इसका मंचन अपेक्षित ही नही, अपरिहार्य है।"11 क्यों कि बाबा साहब ने कहाँ था, राजनीति वह चाभी है, जो विकास के सारे ताले खोल देती है। यहाँ नाटककार दलित समाज में मजबूत नेतृत्व उदय के द्वारा दलितों के विकास के विकास की चाबी को प्राप्त करना चाहते है।

कुलमिलाकर सांभरिया जी के प्रस्तुत दोनों नाटक दलित क्रांति चेतना से ओतप्रोत है। कथानक दलित अस्मिता की पहचान के चिंतन से उभरकर जातिभेद, छुवाछुत, शोषण, अत्यचार, दलन और उत्पीड़न के कई षडयंत्रों पर प्रहार करते हुए दलित पुनर्वास और परिवर्तन की बात करते हैं। दलित नाटकों को के नायकों के लिए आवश्यक संघर्षशील व्यक्तित्व, साथ ही अत्यधिक साहस, दृढ निश्चय, जीवट जज्बा और जिजीविषा का भाव जमन वर्मा, देवतसिंह और कालूसिंह में भरा मिलता है। इसलिए दलित क्रांति चेतना और दलित अस्मिता में और अस्तित्व को नये परिवेश में सिध्द करने वाले यह दोनों नाटक और नाटकार सही मायने में 'दलित नाटक' ऑर 'दलित नाटककार' कहलाने के प्रबल अधकारी हैं। "तुम फैलाते रहे गंदगी और मैं करता रहाँ सफाई,/चलता रहाँ अपनी झाइ तुम फैलाते रहे घृणा, में बाँटता रहाँ प्यार/मैंने उठाली है अपनी कलम, झाडू के बदले करेंगे साफ तुम्हारी गंदगी, बचाएँगे हम टूटी एकता को।" सी बी. भारती

संदर्भ ग्रन्थ–

(1) हिंदी मराठी दलित साहित्य में अभिव्यक्त क्रांति चेतना, संपादक डॉ.उद्धव तुकाराम भंडारे, विद्यापीठ प्रकाशन मुंबई, 2020, पृष्ठ संख्या 27(2) रत्नकुमार सांभरिया की प्रतिनिधि कहानियाँ, संपादक, डॉ. लोकेश कुमार गुप्ता, श्री साहित्य प्रकाशन दिल्ली, 2019, पृष्ठ संख्या,12(3) हिंदी और मराठी दलित साहित्य में अभिव्यक्त क्रांति चेतना, संपादक डॉ.उद्धव तुकाराम भंडारे, विद्यापीठ प्रकाशन मुंबई, 2020 पृष्ठ संख्या–28(4)वही, पृष्ठ संख्या–152,153(5) साहित्य और संस्कृति में दलित अस्मिता और पहचान का सवाल, नैमिशराय मोहनदास, नया पथ, अंक 24–25 जुलाई–सितंबर 1987, पृष्ठ 104,105 (6) रत्नकुमार सांभरिया वीमा, भभूल्या, उजास तीन नाटक, श्री नटराज प्रकाशन दिल्ली, 2020, पृष्ठ, संख्या–177(7) वीमा, रत्नकुमार सांभरिया, श्रु नटराज प्रकाशन दिल्ली, 2020, पृष्ठ, संख्या 78, 79(8)वही, पृष्ठ संख्या, 77(9) वही, पृष्ठ संख्या, 21(10)रत्नकुमार सांभरिया, वीमा, भभुल्या, उजास–तीन नाटक, श्री नटराज प्रकाशन दिल्ली, 2020, पृष्ठ संख्या 196, 197(11) समाज द्रष्टा साहित्यकार रत्नकुमार सांभरिया भाग–2 संपादक डॉ.विवेक शंकर, द्रष्टि प्रकाशन जयपुर, 2020, पृष्ठ संख्या–25

3. 'वीमा' नाटक कथावस्तु एक अध्ययन

–डॉ.सुनील गुलाबसिंग जाधव
नांदेड़, महाराष्ट्र

वीमा नाटक में एक नेत्रहीन पति की नेत्रहीन पत्नी का अपहरण होने के बाद पत्नी को पाने के लिए पति का दृढ़ सघर्ष हैं। इस अपहरण का कारण जाति–भेद हैं। रतन कुमार सांभरिया द्वारा रचित वीमा नाटक में नेत्रहीन विजातीय दम्पति हैं। नेत्रहीन जमन वर्मा दलित हैं तो उसकी पत्नी वीमा सवर्ण जमीदार की लडकी हैं। नाटक में दलित होने का खामियाजा जमन वर्मा को भुगतना पड़ता हैं। अपनी पूरी सच्चाई के साथ आपसी सहमती से जमन वर्मा और वीमा का विवाह हुआ था। किन्तु कथावस्तु में मोड़ तब आता हैं जब जमीदार पिता द्वारा वीमा को जमन वर्मा को बिन बतायें घर लेजाया जाता हैं। जमन वर्मा वीमा की खोज करता हैं तो पता चलता हैं कि वीमा को जबरन ले जाया गया हैं। वह इसका विरोध करता हैं। वह अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करता हैं इसीलिए वह उसे किसी भी हालात में पाना चाहता हैं।

नाटक की कथावस्तु में पूर्वदीप्ति (फैलशबैक) शैली का प्रयोग किया गया हैं। किसी फ़िल्म की तरह जमन और वीमा की पहली मुलाक़ात का दृश्य हमें दिखाई देता हैं। नाटक की नायिका अर्थात हिरोइन वीमा सवर्ण जमीदार की लडकी हैं। उसे दो भाई हैं। माँ की मृत्यु हो चुकी हैं। वह घर पर उससे जो बनता हैं वह काम कर लेती हैं। जमीदार पिता अपनी नेत्रहीन बेटी का विवाह अपने ही जैसे एक अधेड़ उम्र के पहले से विवाहित निसंतान जमीदार से करवाना चाहता हैं। किन्तु वीमा इसका विरोध करती हैं और एक दिन मौका पाकर घर से भाग कर शहर पहुँचती हैं। वीमा – " हमारा खाता–पीता नामी–गिरामी घर है। जमीन है। माँ नहीं है तो क्या ! बाप है। दो भाई हैं। दोनों सर्विस में हैं। दो भावजें हैं। एक टीचर है। घर–परिवार में दो रोटियों के लिए हाथी का पेट बन गई मैं। आँखें नहीं तो क्या ? जितना बनता था, करती थी। बर्तन–भांडे धोना, बच्चों को नहलाना–धुलाना स्कूल भेजना।" 40

"मेरी शादी एक अधेड़ से करना चाहते थे।" 40

अकेली, बेसहारा नेत्रहीन जवान वीमा को देखकर एक गुण्डा उसे स्टेशन के पास एक गढ्ढे में लेजाकर अवसर का लाभ उठाना चाहता हैं। ऐसे में उसकी चीख–पुकार सुनकर नाटक के नायक अर्थात हीरो नेत्रहीन जमन वर्मा की इंट्री होती हैं। और वह नेत्रहीन होने के बावजूद भी उस गुण्डे को पत्थर से मारकर भगा देता हैं। और वीमा को बचा लेता हैं। नायक जमन का नेत्रहीन

होने के बावजदू भी नायिका वीमा को बचना उसके साहस का परिचय देता हैं।

जमन वीमा को अपने साथ लेजाता हैं और नेत्रहीन संस्था के चालक श्यामाजी से मुलाक़ात करवाता हैं। श्यामाजी ने ही जमन को नौकरी और रहने के लिए अपने ही स्कूल के उपर कमरा दिया हैं। जमन के अनुसार श्यामाजी उसे अपने बेटे की तरह देखता हैं। इसीलिए वह वीमा को श्यामाजी से मिलवाना चाहता हैं। श्यामाजी वीमा को देखकर उसे जमन को अपने साथ रखने के लिए कहता हैं।

जमन वीमा को स्कूल के उपरी भाग पर स्थित अपने रूम में लेजाता हैं। तीन दिन से भूकी वीमा को बाहर भोजन लाकर खिलाता हैं। रात में जब वे एक ही बिस्तर पर सोते हैं तो इंसानियत और नैतिकता का पालन जमन करता हैं। इस बात से वीमा जमन से प्रभावित हो जाती हैं और उसे अपने विवाह के संकेत देती हैं। इस पर जमन श्यामाजी के पास अनुमति के लिए जाता हैं। इससे पहले जमन श्यामाजी से अनुमति ले श्यामाजी ही उसे विवाह कर लेनी की बात करता हैं।

" वह भी नेत्रहीन। तुम भी नेत्रहीन।वह भी सुंदर। तुम भी सुंदर। हम उम्र से भी हो तुम दोनों। चाहो तो शादी कर लो अभिभावक की भूमिका मे मैं हूँ ना।" **44**

और फिर दोनों का आपसी सम्मति से विवाह हो जाता हैं। विवाह से पहले वह अपनी दलित होने की सच्चाई को उसके सामने व्यक्त करता हैं। वीमा को जाति–पाती से कोई भेद नहीं हैं वह तो उससे उपर हैं।

जमन– "तुम ऊँची जात। मैं नीची जात। तुम सवर्ण होम मैं दलित हूँ। मन में उंच–नीच का भेद रहते गृहस्थी की गाड़ी नहीं चलती।"45

वीमा –"छोडो भी जमन ! इतने पढ़े–लिखे होकर भी जात की काप में पांव मार रहे हो। तुम मर्द हो, मैं औरत हूँ। दो जात तुम नेत्रहीन, मैं नेत्रहीन। एक जात।" 45

विवाह होने के बाद वीमा चार माह के पेट से हैं। एक दिन उसे पता चलता हैं कि घर पर ताला लगा हुआ हैं और वीमा घर पर नहीं हैं। वह अंदाजा लगाता हैं कि वह पेट से होने के कारण मइके गयी होगी। किन्तु बिन बतायें जाना उसे यह बात खलती हैं। वह श्यामाजी के पास जाता हैं और वीमा की बात कहता है किन्तु श्यामाजी उसे सामूहिक विवाह में किसी दूसरी लडकी से विवाह और पाँच सौ रूपये तनखाह बढ़ाने की बात कहता हैं।

"निशक्तो के सामूहिक विवाह के लिए हमें आवेदन आमंत्रित किए है। तुम भी अपनी अर्जी लगा दो। हाँ, जाति के कॉलम में अपनी जाति जरुर लिख देना, साफ–साफ।"17

"वह जमींदार, तुम फाकामार। वह सिर, तुम चरण। शर्म आणि चाहिए तुम्हें।" 19

"तुमने जात छुपा कर शादी कर ली बेचारी से कि दलित से सवर्ण बन जाऊँ।" 19

वह तलाक के कागजात पर हस्ताक्षर करने के लिए कहता है। जब जमन नहीं मानता तो श्यामाजी उसे जाति छुपाने का आरोप लगाता हैं। इस वक्त जमींदार और उसका लड़का वहीं पर बैठे हैं। श्यामाजी उसे स्कूल से निकाल देता हैं। लेकिन जमन वर्मा उनसे डरता नहीं। वह निडर होकर स्पष्ट कहता हैं,

" मैं नेत्रहीन हूँ।कायर नहीं। विमा की खातिर मरने से भी नहीं डरूंगा मैं। ––––– वीमा को चौथा महिना है। अगर मेरी बीवी और होने वाले बच्चे के साथ कुछ हो गया तो कटघरे में होंगे आप।" **21–22**

स्कूल से निकाले जाने पर वह निशक्त जनों के आका के पास जाता हैं। आका निशक्त जनों के रक्षक हैं। वहाँ दिन भर निशक्तो जनों की अपनी समस्याओं को लेकर भीड़ बनी रहती हैं किन्तु वह भी श्यामाजी की बोलती बोलता हुआ दिखाई देता हैं।

"हम सालों–साल, उम्र भर, बिना धर्म जी सकते हैं, बिना जात एक पल भी नहीं रह सकते। पक्षी भी अपनी हैसियत के मुताबिक ही पंख फडफडाटा है। उड़ता है। तुमने अपनी औकात का अतिक्रमण किया है वर्मा। पेज–**31**

जमन–"आप इतने बड़े पद पर होकर भी जात जी रहे हैं ? बड़े होकर छोटे विचार रखते हैं ?"–**31**

"प्रेम के पौधे पर जात की कुल्हाड़ी मार रहे हैं आप। जो श्यामाजी कह रहे थे, वही आप कह रहे हैं।"**31**

"ये जो आका हैं ना, दो मुहे हैं। उनको अपने चहेते चाहिए। ऐसे वफादार जो पैर चाटते रहें और पूंछ हिलाते रहें। निःशक्तों की पीड़ा से उनका दूर–दूर तक कोई लेना–देना नहीं हैं।" **52**

जमन समझ जाता हैं कि श्यामाजी, जमींदार और उसका लड़का पहले से ही वहाँ बैठे हुए हैं। जमन किसी से डरता नहीं हैं। वह किसी भी हालत में अपनी पत्नी वीमा को पाना चाहता हैं। वह वहाँ से हताश होकर निकल जाता हैं।

वह ऑटोरिक्शा में सवार हो विकलांग संघ के अध्यक्ष एवं अपने मित्र देवत सिंह की ओर निकल पड़ता हैं। देवत सिंह को पत्नी वीमा के अपहरण, श्यामाजी एवं निशक्तजनों के आकां, वीमा के जमीदार पिता एवं भाई का व्यवहार बताता हैं। देवतसिंह उसके साहस एवं विश्वास को बढ़ाते हुए पुलिस थाने में शिकायत

दर्ज करने की बात करता हैं। देवतसिंह चौहान को घुटने के निचे दोनों पैर नहीं हैं। वह जमन वर्मा के साथ पुलिस थाने जाता हैं। थाने में शिकायत दर्ज की जाती हैं। किन्तु बाद में पता चलता हैं कि थानेदार ने एफ.आर.आई दर्ज करवाकर ली ही नहीं वह तो वैसे ही टेबल पर पड़ी हुई हैं।

देवतसिंह अपने परिचित शहर के प्रतिष्ठित अखबार 'दैनिक बाज' के संवाददाता अर्थात पत्रकार सी.सी.झा अर्थात चमक चन्द्र झा को बुलाता हैं। उसे वीमा के अपहरण, श्यामाजी, आंका, जमीदार पिता, भाई, थानेदार के व्यवहार के बारें में बताता हैं। श्यामाजी द्वारा वीमा का अपहरण, नौकरी से निकाला जाना, जाति छिपाने का आरोप, जबरन तलाक पेपर पर हस्ताक्षर करने की बात आदि सारी घटित बातें सुनकर इस पर पत्रकार उन्हें अपने समाचार पत्र के माध्यम से न्याय देनी की बात करता हुआ चला जाता हैं। और सीधे श्यामाजी से रूबरू होता हैं। और वीमा के अपहरण, जमन वर्मा को नौकरी से निकालने, जाति–भेद आदि का कारण पूछता हैं। श्यामाजी पत्रकार झा के कारण अपने भविष्य को संकट में पाता हैं इसीलिए पहले वह उसे जाति का प्रलोभन देता हैं।

"नीची जात होकर भी उसने बड़ी जात की लड़की से शादी की है। यह धर्मघात है। जात को मात है। बेटे झा, यह जात–पांत, छुआछात ही हमारी सांसे हैं। जात मरी, हम बदर हुए।" **66**

"बेटे, आपकी शिराओं में भी उसी जाति का रक्त है, जो मेरी शिराओं में बह रहा है। झा बेटे, दुर्योग यह रहा कि वह लड़की मेरी रिश्तेदार निकल आई। नीची जाति का जमन वर्मा मेरे स्कूल में टीचर और उसकी पत्नी मेरी रिश्तेदार। बेटे, आँखों देखे मक्खी नहीं निगली जाती न ?" **67**

जब वह जाति के प्रलोभन से नहीं मानता तब वह पैसों के प्रलोभन से खरीद लेता हैं। पत्रकार झा श्यामाजी के अनुसार खबर को दूसरे दिन दैनिक बाज समाचार पत्र में छाप देता हैं। जमन वर्मा को समाचार पत्र से न्याय देने की बजाय, उसे ही गलत साबित करते हुए वह श्यामाजी को सही साबित करता हैं।

"नेत्रहीन ने जात छुपा कर ब्याह रचाया, पत्नी को तलाक चाहिए।

वीमा नाम की भोली–भाली एक ग्रामीण लड़की घर से रूठ कर शहर आ गई। संयोग से रेलवे स्टेशन पर उसे नेत्रहीन संस्थान का एक नेत्रहीन अध्यापक जमन वर्मा मिल गया। वर्मा उस बेचारी को बहला–फुसला कर अपने कमरे पर ले आया।कई दिनों तक अवैध रप से उसे अपने कमरे पर रखा और उस बेचिर के साथ ज्यादती करता रहा।

जब लड़की को जमन वर्मा के नीची जाति का होने का पता लगा तो उसे मूर्च्छा आ गई। लड़की की हालत बिगडती रही, लेकिन जमन उससे ज्यादती करता रहा। एक दिन मौका पाकर लड़की नेत्रहीन संस्थान के संस्थापक श्यामाजी के चैम्बर में गई और आपबीती सुनाई। जमन के चंगुल से छुडाने के लिए वह खूब रोई, गिडगिड़ाई। सहृदय श्यामजी ने उसको ढाढस बंधाया। उन्होंने ही वीमा के गाँव खबर की । वीमा के पिता और उसका भाई आए उसे अपने साथ गाँव ले गए। नेत्रहीन संस्थान के संस्थापक श्यामाजी ने जमन वर्मा के इस कुकृत्य पर कठोर कारवाई करते हुए उसे अध्यापक की नौकरी से बर्खास्त कर दिया।

(जमन का झूठा बयान)–मुझे नहीं मालूम लड़की किस जात की है। अगर वह तलाक लेना चाहती है तो मुझे कोई एतराज नहीं है–जमन वर्मा, नेत्रहीन संस्थान का पूर्व अध्यापक।" 70–71

दुबारा जब जमन और देवत सिंह थाने जाते हैं तब थानेदार समाचार पत्र में छपी बात को लेकर उन्हें ही डराता हैं,

"स्साले, अंधे, लंगड़े–लूले भी बड़े घरों की लडकियों को धोखा देकर उसने शादी रचाने लगे हैं। ज्यादती करने लगे हैं। गुंडे कहीं के।" **70**

"ले ये तेरी अर्जी पकड़ और भाग जा यहाँ से। विकलांग हो दोनों। और होते, सीधा अंदर कर देता। आइंदा ऐसी झूठी शिकायत लेकर थाने मत चले आना।" **73**

जमन के पास यह एक ही मौका था। जिस कारण वह वीमा को प्राप्त कर सकता था। वह श्यामाजी, निशक्त जनों के आँका, थानेदार, पत्रकार, विकलांग संघ के अध्यक्ष देवत सिंह चौहान के पास जाता हैं। लेकिन चहुँ ओर से वह अपने आपको असफल पाता हैं। वीमा को पुनः पाने की जिद्द, उसका सपना सबकुछ उसके सामने धरा का धरा–सा लगता हैं। किन्तु उसका मित्र विकलांग संघ के अध्यक्ष देवत सिंह चौहान उसमें साहस, आशा, विश्वास को जगाता हैं। वह कहता हैं,

"निःशक्त अपनी पर उतर आएं तो लोहे की गेंद हैं। लोहे की गेंद को न किक मारी जा सकती है, न उसे उछाला जा सकता है।"

जमन वर्मा, देवत सिंह और अन्य विकलांगों के साथ निशक्तो के आका के कार्यालय के सामने धरना देता है। वह एक पैर पर खड़ा हो जाता है। पैर के नीचे श्यामाजी का गमछा दबाया हुआ है। निशक्तो के आका को कार्यालय में जाने से रोकाजाता। इस खिचातानी में उसकी धोती निकल जाती है और वह धोती जमन के पैर के नीचे रखा जाता है। यह खबर शहर के सभी अख़बारों में सुर्खियाँ बनती हैं। यह समाचार सुनकर सभी विकलांग धरने में शामिल हो जाते हैं। इस का प्रभाव ऐसा पड़ता

है कि डर के मारे वीमा को जमन को लौटा दी जाती है।

इस प्रकार एक ओर पति की पत्नी को पुनः पाने का साहस, वीरतापूर्ण संघर्ष पूरा होता है। तो दूसरी ओर जाति पर इंसानियत की जीत होती है। वहीं पर जाति भेद, नेताओं, थानेदार, पत्रकारों की दोगली निति का पोल खोलने का काम भी यह नाटक करता हुआ नजर आता हैं। नाटक कई महत्वपूर्ण विषयों को एक साथ लेकर चलता हुआ नजर आता हैं। 1.विकलांग अर्थात दिव्यांगों की समस्याओं का चित्रण 2.वैवाहिक जीवन में बाधा उपस्थित करता जाति–भेद 3.एक नेत्रहीन पति की अपने नेत्रहीन पत्नी के अपहरण के बाद उसे पाने का साहसपूर्ण कड़ा संघर्ष का चित्रण। 4.निशक्तो के रक्षक कहलाने वाले नेता का दोहरा रूप 5.बिकाऊ पत्रकार 6. दबाव में काम करनेवाली पुलिस व्यवस्था 7. ईमानदार विकलांग संघ का कार्य 8.नेत्रहीनो के रहनुमा का दोगला रूप 9.जाति–भेद का शिकार अध्यापक का चित्रण हुआ हैं।

कथावस्तु अभिनेय एवं रंगमंच के अनुकूल हैं। समाज में स्थित जाति–भेद के भयंकर जहर की समस्या की वास्तविकता का चित्रण करते हुए नाटक को विकलांग विमर्श से जोड़ते कर नया मोड़ देने का काम किया गया है। पात्रों की संख्या की भरमार न करते हुए कम पात्रों को लेकर कथावस्तु को न्याय देने का कार्य किया गया है। सम्पूर्ण नाटक 78 पन्नो में और दो अंकों में लिखा गया हैं। अन्य पात्रों को पकड़ कर पात्र संख्या 12 हैं। नाटक का रचनाकाल 2012 का हैं। इस नाटक की कथावस्तु उन्ही के द्वारा लिखी गयी एक कहानी 'संवाखे' के कथावस्तु से प्रेरित है किन्तु मौलिक भी हैं।

4.वीमा नाटक में चरित्र चित्रण

–सुषमा कृष्णकुमार यादव
शोधर्थी– हिन्दी–विभाग,
मुंबई विश्वविद्यालय, कलिना परिसर, सांताक्रूज (पूर्व), मुंबई

किसी भी नाटक में चरित्रों की विशेष भूमिका होती है। चरित्रों के माध्यम से ही एक नाटककार अपनी कथावस्तु को प्रकट करता है। नाटकरकार अपने विचारों को पाठकों तथा दर्शकों तक पहुँचाने का कार्य पात्रों द्वारा ही सम्पन्न करता है। किसी भी नाटक को सफल बनाने में पात्रों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। चरित्र–चित्रण नाटककर के भावों का वह आधार स्तम्भ होता है, जो उसके नाटक में जान डालकर पाठकों व दर्शकों पर अपना प्रभाव स्थापित करने सफल होता है। डॉ० सूरजकांत शर्मा ने नाटक के पात्रों व उनके चरित्र–चित्रणों को बारें में विशेष टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि "नाटक में चरित्र के महत्ता को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता है। कार्य व्यापार स्वयं नहीं करता है। वह तो पात्रों के चरित्र का अनुमान करता है। पात्र चरित्र के ही अनुरूप होते हैं।"[1] नाटक में पात्रों का अभाव नाटक को कमजोर बनाता है। जिस नाटक के पात्र जितने स्पष्ट होते हैं, वह नाटक उतना ही सफल, प्रभावी और रंगमंचीय स्तर पर कारगर होता है। उपर्युक्त सूत्रों को ध्यान में रखकर रत्नकुमार सांभरिया ने अपने नाटक 'वीमा' के चरित्रों का चित्रण किया है। शायद यही कारण रहा है कि इनका नाटक सफल एवं रंगमंच पर खरा उतरने में कामयाब रहा है। क्योंकि नाटक में चरित्र–चित्रण ही एक मात्र वह जरिया जिसके कारण नाटक सफल व असफल हो सकता है।

'वीमा' नाटक कुल बारह दृश्यों में दर्शाया गया है। नाटक के मुख्य पात्रों में जमन वर्मा, वीमा, श्यामाजी, आका, देवत सिंह व पत्रकार सी० सी० झा हैं। नाटक के कथावस्तु की शुरुआत बीती हुई कहानी यानि फ्लैश बैक से होती है जिसमें जमन वर्मा की पत्नी वीमा को ढूँढने का प्रयास किया जाता है। जमन वर्मा और उसकी पत्नी वीमा नेत्रविहीन रहते हैं। जामन वर्मा नेत्रविहीन संस्थान में शिक्षण का कार्य करते हैं और वीमा अपने परिवार वालों की उत्पीड़न से तंग आकार गाँव से शहर चली जाती है। जहां पर एक व्यक्ति वीमा के नेत्रहीन होने का फायदा उठाने की कोशिश में उसके पीछे–पीछे लग जाता है। वीमा को जब इस बात का अंदेशा होता है तो अपनी मदद के लिए गुहार लगाती है। मदद की गुहार सुनकर जमन वर्मा वीमा को बचा लेता है और उसे अपने कमरे पर ले जाकर उसे आश्रय देता है। उसके

ISSN-2454-6283 PEER Reviewed JOURNAL

बाद नेत्रहीन संस्थान के संस्थापक श्यामाजी कोर्ट में इन दोनों का विवाह करवा देते हैं। श्यामाजी इन दोनों को विवाह के लिए मनाते हुए कहते हैं कि "वो भी नेत्रहीन तुम भी नेत्रहीन। वो भी सुंदर तुम भी सुंदर हम उम्र हो, जोड़ी अच्छी रहेगी चाहो तो शादी कर लो। अभिभावक के भूमिका में मैं हूँ ना।"[2]

भारत जैसे देश में जब बात जातिगत भेदभाव की हो तो अक्सर वह विद्रोह का रूप धारण कर ही ही लेता है। इस नाटक में जमन वर्मा और वीमा के विवाह के पश्चात भी कुछ ऐसा ही हुआ। शादी के बाद संयोगवश वीमा श्यामाजी की रिश्तेदार निकल जाती है, यह बात जैसे ही श्यामाजी को पता चलता है तो वे गर्भवती वीमा का अपाहरण करवा लेते हैं। जब उसकी जांच होती है और जांच के दौरान पत्रकार लोग श्यामाजी से वीमा के बारे में पूंछते हैं तो वे धर्म और जाति की वकालत करते हुए पत्रकारों से कहते हैं कि "नीची जात का होकर भी उसने बड़ी जाति की लड़की से शादी की है। ये धर्मघात है। जात को मात है। बेटे, झा, ये जात–पात छूयाछूत ही हमारी सांसें हैं जात मरी हम बदर हुए।"[3] इस बात से नेत्रहीन संस्थान के संस्थापक श्यामाजी का दोहरा चरित्र और उनकी पूंजीवादी विचारधारा का परदाफाश होता हुआ दिखाई देता है। एक तरफ तो श्यामाजी उन दोनों का विवाह करवाते हैं, तो वहीं दूसरी तरफ जब यह बात पता चलता है कि वीमा उनकी रिश्तेदार है तो उसका विरोध करने लगते हैं। यहाँ तक कि वे अपनी राजनीतिक पहुँच व धन के प्रयोग से जमन वर्मा की थाने में शिकायत भी दर्ज नहीं होने देते हैं। नाटक में मुख्य पात्रों का चरित्र–चित्रण कुछ इस प्रकार से किया गया है–

वीमा–

दलित नाटककार रत्नकुमार सांभरिया का वीमा नाटक वीमा नामक नायिका के जीवन को केंद्र में रखकर लिखा गया है। नाटक में वीमा एक ऐसी नेत्रहीन उच्च घराने की लड़की है, जो अपने घर के लोगों से परेशान होकर गाँव छोडकर शहर की ओर भाग जाती है। शहर में उसे एक नेत्रहीन जमन वर्मा नामक लड़के से मुलाक़ात होती है जो नेत्रहीन संस्थान में संगीत शिक्षक के रूप में कार्यरत है। नेत्रहीन संस्थान के संस्थापक श्यामाजी की मदद से वीमा और जमन वर्मा की शादी करवा दी जाती है। लेकिन कुछ समय बाद यह बात जब श्यामाजी को पता चलती है कि वीमा उसके रिश्ते में आती है तो श्यामाजी उसका अपाहरण करवा लेते हैं। और वीमा का जीवन अपने पति जमन वर्मा के वियोग में बितने लगता है। नाटक की मुख्य नायिका वीमा पूरे नाटक में अपने जीवन से संघर्ष करती हुई दिखाई देती है। वीमा आज के समाज और भगवान को केंद्र में रखकर एक बात बहुत सटीक कहती है। वह यह है कि "जो ज्योतिहीन है ना उनकी ओर भगवान भी नहीं देखता।"....... "जिनके साथ वे मेरी शादी करना चाहते थे ना, उनकी बीबी कोख पाट रह गई। दूसरी बीबी मैं उनकी....."[4]

जमन वर्मा :

नाटक में जमन वर्मा मुख्य नायक के रूप में नजर आते हैं। जमन वर्मा की भूमिका नाटक में एक ऐसे व्यक्तित्व की भूमिका है जो नेत्रहीन संस्थान में एक संगीत शिक्षक के रूप में कार्य करता है। गाँव से भागकर शहर में आई एक आंधी लड़की की पुकार सुनकर जमन वर्मा उसकी मदद करता है। परिणाम स्वरूप नेत्रहीन संस्थान के संस्थापक श्यामाजी उन दोनों का विवाह करवा देते हैं। लेकिन वीमा उनकी रिश्तेदार है यह बात सुनते ही वे दोनों को एक दूसरे से अलग करने की फिराक में लग जाते हैं। ऐसे में जमन वर्मा अपनी पत्नी की तलाश करता है। यहाँ तक कि पत्नी के न मिलने पर वह धैर्यपूर्वक आंदोलन भी करता है। हालांकि आंदोलन के बाद जमन वर्मा को उसकी पत्नी मिल जाती है और वे दोनों आरामपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगते हैं। पूरे नाटक में जमन वर्मा की मानवता और उसका अपनी पत्नी के प्रति प्रेम को दिखाया गया है। नाटक में जमन वर्मा की भूमिका मुख्य पात्र के रूप में कारगर साबित होती हुई दिखाई देती है। जमन वर्मा अपने आपको कोसते हुए अपनी पत्नी के लिए नौकरी भी छोड़ने के लिए तैयार हो जाता है और वह कहता है कि "सर मैं नौकरी को तिलांजलि दे सकता हूँ। वीमा मेरी अर्धांगिनी है।"....... "वीमा से अलग कुछ सुनने को तैयार नहीं हूँ मैं।"[5]

देवत सिंह : नाटक में देवत सिंह एक अपाहिज की भूमिका में दर्शाया गया है। यह जमन वर्मा का खास दोस्त है, जो विकलांग होकर भी परिश्रमी और सहयोगी प्रवृत्ति का व्यक्ति है। देवत सिंह की मदद से ही जमन वर्मा की गायब पत्नी वापस उसके पास आती है। देवत सिंह अंधे की लाठी होने फर्ज निभाता हुआ दिखाई पड़ता है। वह जमन वर्मा की हर कोशिश मदद करता है। पूरे नाटक में देवत सिंह का यह संवाद बहुत ही प्रभावशाली दिखाई पड़ता है। एक जगह वह कहता है कि "अपंग एक साथ लोहे की गेंद है। लोहे की गेंद को न किक मारी जा सकती है, न उछाला जा सकता है।"[6]

श्यामा सिंह :

नाटक में श्यामा सिंह नाटक में दिखाए गए नेत्रहीन संस्था के संस्थापक हैं। अच्छी कद काठी होने के बाद भी नाक की बीमारी से परेशान हैं। नाटक में इनकी भूमिका एक जाति–पाती

को महत्ता देने वाले खलनायक के रूप में चित्रित किया गया है। जो एक अंधे संगीत शिक्षक जमन वर्मा और अंधी लड़की वीमा जो इन्ही की रिश्तेदार रहती है कि शादी करवा देते हैं, लेकिन जब यह पता चलता है कि वीमा उनकी रिश्तेदार है तो उसे उसकी गर्भावस्था में ही अपाहरण करवा लेते हैं। इसके अलावा जमन वर्मा और वीमा को कई तरह से प्रताड़ित कराते हैं। श्यामा सिंह जमन वर्मा को नौकरी से मिल रहे तंख्वाह में इजाफा करने का लालच देकर वीमा को भूल जाने के लिए कहता है। वह कहता है कि "तुम्हारी नौकरी तो बनी रहेगी 500 रु० का इजाफा हो जाएगा तुम्हारी तंख्वाह में महावर। वीमा को भूल जाओ।"[7]

आका :

आका निशक्तों का धनी गोरा और विकलांग लोगों का मसीहा तथा क्षयमा सिंह का पहचाना वाला रईस व्यक्ति है। सोने–चांदी के आभूषणों से भरापुरा श्यामा सिंह खास मित्र है। इसकी ही मदद से श्यामा सिंह जमन वर्मा की गर्भवती पत्नी व अपनी रिश्तेदार वीमा का अपाहरण करवाता है और जमन वर्मा को उसकी पत्नी से मिलने के लिए रुकवाता है। आका अमीर होने के साथ ही साथ काफी बड़े–बड़े लोगों से परिचित भी है। नाटक में इसका प्रवेश नाटक के बीच और अंत में दिखाया गया है। बीच में इसे अपने कार्यालय में बैठा हुआ और अंत में वीमा को लाते हुए दिखाया गया है।

बुजुर्ग एवं नवयुवक :

नाटक में यह दोनों पात्र वीमा के भाई और पिता की भूमिका में नजर आए हैं। पूरे नाटक में इनका प्रवेश केवल एक ही जगह होता है, वह भी श्यामा सिंह की दफ्तर में। जहां पर ये दोनों श्यामा सिंह से वीमा के संदर्भ में बात करते हुए दिखाई देते हैं।

पत्रकार :

पत्रकार सी० सी० झा दैनिक बाज अखबार में कार्यरत हैं। साथ ही ये देवत सिंह के खास मित्रों में से एक हैं जिंहोने देवत सिंह के साथ मिलकर जमन वर्मा की मदद वीमा को तलाशने के लिए वादा तो करते हैं, लेकिन श्यामा सिंह से पैसा खाकर जमन के खिलाफ अपने अखबार में खबर लिख देते हैं। पत्रकार महोदय जमन वर्मा को दिलासा देते हुए कहते हैं कि "यह तो अमानवीयता की पराकाष्ठा है लेकिन जमन रोओ मत, अब मैं इन सबको गज की तरह सीधा कर दूंगा।"[8]

रिक्शा चालक :

नाटक में यह एक ऐसा पात्र है, जो अभी हाल ही में गाँव से आया रहता है। शहर में रोटी–रोजी के लिए रिक्शा को अपना सहारा बनाता है। इसी रिक्शा वाले की मदद से ही जमन वर्मा अपने मित्र देवत सिंह के पास पाए थे।

थानेदार :

नाटक में थानेदार के माध्यम से भारतीय प्रशासानिक व्यवस्था को दर्शाया गया है। जो कभी भी सही समय पर अपना कार्य नही करती है। उसकी नजर कोई भी गरीब व्यक्ति इस धरती का कीड़ा होता है। हाँ इतना जरूर कहा जा सकता है कि पुलिस वाले अक्सर पूँजीपतियों के तलवे चाटते हुए नजर आते हैं। अक्सर कहावतों में सुना जाता है कि "जिसकी लाठी उसी की भैंस।" साथ ही यह भी कि "उल्टा चोर कोतवाल को डांटें।" यह दोनों कहावतें नाटक में भी पुलिस विभाग के कर्मचारियों के लिए सटीक साबित होता दिखाई देता है। पुलिस स्टेशन में जमन वर्मा श्यामा सिंह के खिलाफ एफ० आई० आर० दर्ज करवाता है, लेकिन दरोगा श्यामा सिंह पर कोई कार्यवाही न करते हुए जमन वर्मा को ही दोषी और झूठा करार दे देता है। थानेदार जमन वर्मा और वीमा को कानून की कुछ धाराओं को बताकर धमकी देते हुए समझाता है कि "गुनाह 420, 120, 375, जमानत नहीं मिलेगी"..... ... ये कम दया है क्या कि तुम दोनों विकलांग हो। अगर सही होते तो अंदर ले जाकर ऐसी पिटाई करता कि ऐ–बे सब भूल जाते रस्सालों विकलांग हो या उचक्के।"[9]

चपरासी :

नाटक में एक पात्र ऐसा भी है, जो आका की दफ्तर में चपरासी का कार्य करता है। यह आका के दफ्तर के अंदर चल रही सभी बातों को जमन वर्मा तक पहुँचाने का कार्य करता है। इसके अलावा नाटककार रत्नकुमार सांभरिया ने अपने इस नाटक में गौड़ पात्रों का सफल परीक्षण किया है। हालांकि यहाँ पर सभी पात्रों के बारे बता पाना सम्भव नहीं है। इस नाटक के संदर्भ में उदमपुर राजस्थान के वरिष्ठ साहित्यकार डॉ० राजेन्द्र भटनागर कहते हैं कि "'वीमा' नाटक को पढ़कर ऐसा लगा कि निशक्तों की पृष्ठभूमि पर इस रूप में लिखा गया यह नाटक देश का पहला नाटक है। अतः यहाँ पर स्पष्ट है कि वीमा नाटक समाज में घटित समस्याओं से जोड़कर लिखा गया है। तथा सभी ने उसकी बड़ी सराहना की है।"[10]

निष्कर्षतः

यह कहा जा सकता है कि नाटककार रत्नकुमार सांभरिया ने अपने नाटक में आए सभी पात्रों का सही और सुचारु रूप प्रयोग किया है। वीमा नाटक रंगमंच की दृष्टि से भी एक सार्थक नाटक है। यह नाटक एक दलित और सवर्ण के बीच चल रहे दोहरे मानसिक संघर्ष का प्रतीक है। जिसका शिकार अंधकार

की दुनिया से जूझ रहे दो अंधे जमन वर्मा और वीमा हो जाते हैं। नाटककर ने जिन सिद्धांतो को ध्यान मे रखकर नाटक लिखा है ऐसा प्रतीत होता है कि वह सफलता और सार्थकता की चरम सीमा को छूने में सफल रहा है। वीमा नाटक निशक्त और दलित जनों पर आधारित नाटक है। भारतीय समाज में असल जीवन में लाचार लोगों के साथ क्या–क्या घटित होता है, इस बात को नाटककार ने बखूबी प्रस्तुत करने का कार्य किया है। पात्रों के आधार पर रत्नकुमार सांभरिया ने अपने नाटक में संवादों का सही प्रयोग किया है। नाटक का एक–एक दृश्य भारतीय समाज में जाति–पाती का भेदभाव रखने वाले लोगों को 'प्रत्यक्षम किम प्रमाणम' वाली स्थिति को प्रकट करने का सफल प्रयास किया है। नाटक में चित्रित पात्रों के संदर्भ में नाटककार रत्नकुमार सांभरिया ने खुद लिखा है कि "नाटक का कथावस्तु चरित्र–चित्रण बहुत मार्मिक ढंग से उकेरा गया है। पात्रों के माध्यम से नाटक में सजीवता प्रदान की गई है।"[11]

संदर्भ सूची :–

(1)हिन्दी नाटक में पात्र कल्पना और चरित्र चित्रण, डॉ० सूरजकान्त शर्मा, पृष्ठ– 86(2)वीमा, रत्नकुमार सांभरिया, पृष्ठ– 50 (3)वही, पृष्ठ– 74 (4)वही, पृष्ठ– 46(5)वही, पृष्ठ– 24 (6)वही, पृष्ठ– 84 (7)वही, पृष्ठ– 22 (8)वही, पृष्ठ– 66(9)वही, पृष्ठ– 77 (10)साक्षात्कार(11)वीमा, रत्नकुमार सांभरिया, पृष्ठ– प्रस्तावना

5.रुढ सामाजिक धारनाओं को दूर करते वीमा नाटक के पात्र

–प्रा.डॉ.मीना भाऊराव घुमे
हिंदी विभाग, दयानंद कला महाविद्यालय, लातूर

रत्नकुमार सांभरिया द्वारा लिखित वीमा नाटक आज के युग में भी दलितों वंचितों के साथ हो रहे दुर्व्यवहार का प्रामाणिक दस्तावेज है। करनी और कथनी के अंतर को दर्शाने हुए सांभरिया जी ने आका, श्यामाजी थाने दार यहाँ तक की लोकतंत्र का चौथा स्तंभ, आमजन का आसरा प्रेस की भी पोल खोलकर रख दी है। निशक्तों के नाम पर मिलनेवाले अनुदान के भ्रष्टाचार को उद्घाटित किया है। जाती को जीवन का आधार मानकर दुर्व्यवहार पर उतरने वाली मानसिकता पर खुला प्रहार किया है। प्रेम की महत्ता को जाति पांति से परे हटकर स्थापित किया है। नि : शक्तजनों को कमजोर मानकर उनपर अत्याचार करने वालों को करारा जवाब दिया है। यह नाटक दलित विमर्श, विकलांग विमर्श तथा नारी विमर्श के मनिकांचन योग का सुंदर सनन्वय है। यह नाटक मानसिक रुप से विकलांग लोगों को सोचने पर बाध्य करता है। नेत्रहीन होने के वावजूद किसी असहाय की मदद करना, सहरा देना, यह उदारता अच्छे भले नेत्र वालों के पास नहीं होती तथा विकलांग होने के वावजूद किसी परेशानी में डूबे व्यक्ति को बचाने की उसे न्याय दिलाने की ताकत बडे बडे पदों पर बैठनेवालों में नहीं होती का सटिक उदाहरण यह नाटक प्रस्तुत करता है।

रत्नकुमार सांभरिया ने नाटक में कुल 2 प्रमुख 4 सहायक तथा 6–7 अन्य पात्रों का सृजन किया है। नाटक का विवेचन करते समय चरित्र चित्रण यह तत्व नाटक को सजीव बनाता है। उन चरित्रों का चित्रण करते हुए उनमें चारित्रिक विशेषताओं को घोल के समान घोला जाता है ताकि हम नाटक पढते समय उस पात्र को प्रत्यक्ष देखने का अनुभव प्राप्त कर सकें। नाटक में जो संवाद, कथानक बुना जाता है वह इन पात्रों के इर्दमिर्द ही। इस तरह नाटक का अध्ययन करते समय इन चरित्रों को अनायास ही हम उन्हें समझने लगते है उनके साथ संवेदना के स्तर पर जुडने लगते हैं। इन चरित्रों को लेखक ने बडे मनोयोग से गढा है लेखक का मूल उद्देश्य इन चरित्रों को गढने के पिछे क्या रहा होगा ? लेखक स्वयं कहते है, निःशक्तों और वंचितों के दुख दर्द, कष्ट दुश्वारियों से निजात दिलाना नाटक का मूल उद्देश्य होना चाहिए।[1] इन पात्रों के माध्यम से लेखक सामाजिक सद्भावना पैदा करना चाहते है। इनके पात्र विषम स्थितियों से मुकाबला करनेवाले तथा संघर्ष के लिए तैयार

तत्पर है। लेखक ने इस नाटक के खल नायकों को भी अमर बना दिया है। उसे अपेक्षित नहीं रखा है। यथार्थ के घरातल पर यह नाटक सौ प्रतिशत खरा उतरता है। क्योंकि नाटक की जमीन उसकी प्रामाणिकता होती है।[2] नाटक के चरित्रों का चित्रण इस अध्ययन का मुख्य विषय है अतः प्रत्येक चरित्र अपनी उपस्थिति दर्ज करता चला जाता है और पाठकों को झकझोरने में सफल होता है।

1.जमन वर्मा : वीमा नाटक का जमन यह प्रमुख पात्र है। यह किसी फिल्म के नायक से कम नहीं है। 25 वर्ष का अत्यंत विनम्र, सहृदय, संयम से लैस, समझदार, होनहार परंतु बेसहारा, वक्त का मारा, नेत्रहीन दलित युवक है। वह नेत्रहीन है परंतु उसे अपने कर्मो पर विश्वास है वह भाग्यवादी कतई नहीं है। वह नेत्रहिनों की संस्था में म्यूजिक टीचर के रुप में कार्यरत है। वह नेत्रहीन बच्चों कों संगीत की शिक्षा देता है। बच्चों से वह इस कदर जुडा हुआ है कि बच्चे उससे अलग किसी अन्य अध्यापक से संगीत सीखना नहीं चाहते। वह नेत्रहीन होने के कारण दुखी जरुर है परंतु बुजदिल बिलकुल नहीं। प्रत्येक परिस्थिति को वह सोच समझकर सुलझाता है। वह जन्मांध है और उपर से दलित है ये दोनों बाते उसकी कमजोरी जरुर है परंतु वह अपनी कमजोरी को ही अपनी ताकत बनाता है। शेरशाह सुरने जायसी के एक आँख से कुरुप होने पर ताना कसा था। तब जायसी अपनी विकलांगता को कोसने की बजाय उसे महिमामंडित करते हुए बडे गर्व के साथ कहते है ,"एक नैन कवि मुहम्मद गुनी /सोई बिमोह जेहि कवि सुनी/ चाँद जैसे जग विधि औतारा/ दीन्हं कलंक कीन्ह उजियारा "[3] जायसी विकलांगता पर पुरुषार्थ की जीत दर्ज करते हैं। कुछ ऐसा ही पुरुषार्थ अपने संघर्ष के माध्यम से जमन दर्ज करता है। अपने इसी अंदाज के कारण वह वीमा का दिल जीत लेता है। वीमा नामक असहाय युवती को वो नेत्रहीन होने के बावजूद पत्थरों को फेंकफेंककर अत्याचार करनेवाले गुंडे से बचाता है और नारी निकेतन जैसी सुरक्षित जगह पर उसे पहुँचाने की बात करता है। वह उसे आसरा देता है। वह कर्म पर विश्वास करने वाला कबीर पंथी है, दार्शनिकों जैसी बाते करता है "सपने वे नहीं होते जो नींद में आते हैं, सपने वो होते है, जो सोने नहीं देते हैं।"[4] वह वीमा को अपने घर लाता है तो संयम का परिचय देता है। वह अतिथि धर्म का निर्वहन करते हुए वह उसे पलंग पर सोने को कहता है। उसे असुविधा न हो इसलिए पलंग के दो हिस्से करते हुए वह छडी को कंबल लपेटकर बिचोबीच रखना है और कहता है, "दर असल तुम एक स्त्री हो और मैं एक पुरुष। यहाँ आकर स्त्री–पुरुष दो देह रह जाते हैं। वीमा, यह हमारे चरित्र और नैतिकता के लिए परीक्षा की घडी है। उपाय किया है, मैंने। चादर लपेट कर छडी रख दी है, पलंग के बीच। तुम उस करवट सोती रहना। मैं इस करवट सोता रहूँगा। तुम अपनी सीमा रहना मैं अपनी सीमा रहूँगा। यह आड भी है, ईमान की सीमा–रेखा भी।"[5] वह वीमा को अधिक से अधिक सुरक्षित महसुस हो इसके प्रयत्न करता है। उसकी सच्चाई पर वीमा कायल होती है। वह अपने संयम का परिचय देता है। जब वह वीमा से वीवाह करता है उससे पहले वीमा की इच्छा का आदर करता है तथा अपने दलित होने की सच्चाई जरुर बताता है। "तुम उंची जात। मैं नीची जात। तुम सवर्ण, मैं दलित। मन में उंच–नीच का भेद रहते गृहस्थी की गाडी नहीं चल सकती।"[6] और वह परिवार को सूचारु रुप से चलाने का मूल मंत्र जानता है। दोनों का विवाह श्यामाजी स्वयं करवाते है। एक पति के रुप में वह अपने सारे कर्तव्यों का पूरी आत्मियता के साथ वहन करता है। वह अपनी गर्भवती पत्नी की चिंता में उसका खयाल रखना नहीं भूलता परंतु श्यामाजी को जैसे ही इस बात का पता चलता है कि वीमा उनके जात बिरादरी की है उन्हें यह जाति का अपमान लगता है और वे जमन और वीमा को अलग करने की चाल चलते हैं। वे वीमा का अपहरण करवाते है और जमन को किसी काम में उलझाते है। जमन को अपनी पत्नी घर में न मिलने पर वह हक्का–बक्का रह जाता है। जमन को श्यामाजी धमकियाँ देते है की वह वीमा को भूल जाएँ किसी अन्य लडकी से विवाह करे और तलाक के कागजों पर दस्तखत करें। वरना उसकी नौकरी अफत में आ जाएगी। परंतु जमन कहता है, "सर, मैं नौकरी को तिलांजली दे सकता हूँ। वीमा मेरी अर्धांगिनी है।"[7] वह उन्ही की शिकायत लेकर आका जो निशक्तों के मालिक है, संरक्षक है, के पास जाता है वहाँ भी उसे वही धमकियाँ मिलती है। वह पुलीस थाना, पत्रकार आदि जगहों पर भी न्याय की गुहार लगाता है। वह विधायक मार्ग से हक पाना चाहता है, न्यायप्रणाली पर उसका पूर्ण विश्वास है। परंतु उसकी गुहार सुननेवाला सिवाय उसके मित्र देवत के कोई नही है। पाँच दिनों तक वीमा का पता–ठीकाना न मिलनेपर जमन आका के ऑफीस के सामने अपने मित्र और कुछ निशक्तजनों के साध धरने पर बैठता है। उसके स्कूल के स्टाफ के साथ छात्र और गाँव शहर से कितनेही निशक्त उसके इस आंदोलन में उसे साथ देने आते है। उसका बल बढता है परिणाम स्वरुप आका को वीमा लौटानी पडती है। जमन की जीत होती है। उसकी इस बुलंदी को देख जमन का मीत्र देवत कहता है, "निःशक्त अपनी पर उतर आएँ, लोहे की गेंद हैं। लोहे की गेंद को न किक मारी जा सकती है, न उसे उछाला जा सकता है।"[8] जमन नेत्रहीन

होने के बावजूद अपने हक की लडाई स्वयं के बूते लडता है और जीत भी हासिल करता है।

2. वीमा : यह नाटक की प्रमुख पात्र है। भरे–पूरे जमींदार परिवार की यह लडकी कुमारावस्था में नेत्रहीनता की शिकार होती है और इसके लिए उसका अपना परिवार जिम्मेदार होता है। वीमा की माँ का देहांत होने के बाद स्वयं पिता जो सामंती ठाटबाट, संस्कार से युक्त है। बडा भाई, जमींदारी का बाना ओढे हुए है तथा दूसरा भाई और दो भाभियों के लिए बोझ बन जाती है। जैसा की आम भारतीय घरों में लडकियाँ को घर के कामों में ही व्यस्त रहती है वैसे ही वीमा भी घर के भाँडे बर्तन धोने, भाइयों के बच्चों को नहलाने, धुलाने, उन्हें स्कूल भेजने सभी कार्यों को करती है परंतु फिर भी वह नेत्रहीन होने के कारण दो जून रोटी के लिए बोझ बन जाती है। उसके पिता, भाई–भाभियों का यह कर्तव्य है कि उसे अच्छी से अच्छी सुविधा उपलब्ध कराए परंतु सामंती परिवार उसका विवाह किसी दूसरे अधेड जमींदार से कराना चाहता है। तेईस वर्ष की वीमा यह सहन नहीं कर पाती और स्वाभिमान से भरी कह उठती है, "आँखे नहीं हैं तो क्या ? कठपुतली होऊं, उनकी ?" [9] और वह किसी तरह गाँव में उनके खेतों के पास रेलवेस्टेशन से रेलवे में बैठ झुंझलाहट भरी अवस्था में घर छोड देती है। रेलवे जहाँ रुकी वहाँ उतरने में वह शहर पहुँच जाती है। वहाँ उसे एक गुंडा फुसलाकर उसे गुमराह करता है उस पर अत्याचार करने का प्रयत्न करता है तब उसे जमन बचाता है और सहारा देते हुए अपने घर ले जाता है तो वह यह समझती है कि जमन एक गरीब घर में जन्म लेनेपर भी उसके घरवालों ने उसे पढाया लिखाया तब उसे लगता है "काश ! मैं भी छोटे घर में पैदा हुई होती ।"[10] वीमा एक अच्छे संस्कारोंवाली लडकी है वह उन श्यामाजी के झुककर चरण स्पर्श करती है जो उन दोनों के विवाह को मान्यता देते हैं। वह एक अच्छी पत्नी होने के सारे धर्म निभाती है। वो जमन में फरिश्ता ढूंढती है। उसके मन में सच्चे और सह्यदय जमन के प्रति अत्यधिक प्रेम पनपता है। वह अपना प्रेम कुछ इस तरह से प्रकट करती है, मरद हो, "इशारा खूब "[11] वह गृहस्थी में डूबे पति जमन से जिसे श्यामाजी लेटर टाइप करवाने का काम सौंपने है और वह अपनी पत्नी को छोड कंही जाना नहीं चाहता कहती है, "आप तो कतई गृहस्थी में डूब गए हो, जमन । एक लेटर टाइप करने में कितना सा वक्त लगेगा। हाकिम का हुक्म है उन्हीं की पगार खाते हैं। नौकरी से निकाल दिया, हाथ–पाँव मार कर रह जाओगे। जाओ–जाओ बडे लोग ना नहीं सुनते।"[12] मानो वीमा में सांसारिक समझ विकसित होती है वह अपनी गृहस्थी को सुचारु रुप से चलाने के लिए आनेवाली संतान को सुखी देखने के लिए पति को इसतरह की नसीहत देती नजर आती है। वह सवर्ण होने के बावजूद जाती–पाती, उंच–नीच को नहीं मानती वह कहती है, "छोडो भी जमन । पढे–लिखे होकर जात की काप में पाँव मार रहे हो। तुम मर दहो, मैं औरत हूँ। दो जात। तुम नेत्रहीन, मैं नेत्रहीन एक जात।" [13] वीमा भी जमन की ही भाँति बहादुर, स्वाभिमानी, संघर्ष के लिए तैयार रहनेवाली युवती है। वह अपने उपर हो रहे जुल्म के विरुद्ध आवाज उठाती है, वो अपने ही घरवालों के विरुद्ध आवाज उठाती है, के अपने ही घरवालों के विरुद्ध विद्रोह का बिगुल बजाती है। और उस घर को छोड देती है, जहाँ उसका सम्मान किसी अधेड उम्र के व्यक्ति के साध विवाह तय कर कुचल के रखने के मनसुबे बनाते है। उसकी इस बहादुरी पर जमन वीमा को 'वीरांगना' केहता है।

3.देवत सिंह चौहान : वीमा नाटक में यह सहायक पात्र है। यह विकलांग संघ का अध्यक्ष है और स्वयं दोनों पैरों से विकलांग है। 12 वी पास, पढालिखा जमन का यह सच्चा मित्र है। वह विकलांगों के लिए कल्याणकारी योजनाओं को उनकी मांगो को पूरा करने के लिए जी–जान से कोशिश में लगा रहता है। वह निःशक्तों की एक वाजिब मांग को लेकर सरकार तक पहुँचाने के लिए आका के पास भी जाता है ताकी वे उसे सीएम तक पहुँचा सके। "सरकार की और से पहली क्लास से लेकर एम.ए. तक निःशक्तों को निःशुल्क शिक्षा दी जाए।"[14] परंतु उसकी माँग को अनसुना कर दिया जाता है। उसके मित्र जमन पर भी यही आका श्यामाजी के साथ मिलकर अन्याय करते है तब देवत अपने मित्र को न्याय दिलाने उसके हक की लडाई लडने में उसका पूरा साथ देता है। स्वयं विकलांग होने के बावजूद देवत समाज में अपना एक अलग स्थान निर्माण करता है। वह श्यामाजी और आका जैसे लोगों की असलियत से वाकिफ है। वह देवत को कहता है, "मै उनके एक–दो कार्यक्रमों में गया हूँ मुझे कीच लगी, उनकी आँखों में।"[15] इतना ही नहीं जब देवत को यह पता चलता है कि उन दोनों ने जमन को फुसलाया धमकाया तब वह कहता है, "फुसलाते ही नही, छलबल भी काम में लाते हैं।"[16] देवत जमन के साथ उसके संघर्ष में मदद करते हुए, ढाढअ बंधाते हुए कहता है, "विश्वास पर जग रोशन है, जमन , हिम्मत रखो, ये लोग बेनकाब होंगे। हमारी जीत होगी। हम सब तुम्हारे साथ है।"[17] वह धरने पर भी जमन के साथ ही रहता है। आका को दफ्तर जाने से रोकता है, उन्हें चुनौती देते हुए कहता है, "जब तक वीमा नहीं लाओगे, न आप अंदर जा सकते हैं न आप का स्टाफ।"[18] देवत अपनी हिम्मत के बल पर आंदोलन स्थल

पर सभी निःशक्तों को एकजूट करता है। और भ्रष्टाचारी लोगों का पर्दाफाश करते हुए उन्हें धूल चटाता है। वह सारे निःशक्तों की ताकत बन चुका है।

4.श्यामाजी : नाटक में श्यामाजी का व्यक्तित्व दोहरे चरित्र का है। नेत्रहिनों की संस्था के ये संस्थापक है तथा अपनी संस्था के नाम पर ये सरकार से अनुदान तो लेते हैं परंतु अपनी संस्था में काम करनेवाले अध्यापकों को वे बहुत कम मेहनताना देते हैं। वे अपने स्वार्थ के लिए गरीबों, निःशक्तों का मनमाना उपयोग करते हैं। उनका रिश्वतखोरी में कोई सानी नहीं। मीठी छुरी हमेशा उनकी जुबान पर विराजमान रहती है। जिस विमा और जमन का विवाह वे करवाते है ये पता चलने पर की वीमा उन्हीं की जाती से है तो वे वीमा का अपहरण करवाते है। एक दलित युवक के साथ वे अपनी जाती की लडकी का विवाह होना अपमान समझते हैं। और जमन को अलग से लालच के साथ धमकियाँ देते है, जमन जाने दो उसे, जैसे पाई थी, वैसे ही गुम हो गई।"[19] " तुम्हारी नौकरी तो बनी रहेगी ही, पाँच सौपये का और इजाफा हो जाएगा तुम्हारी तनखा में महावार। भूल जाओ वीमा को।"[20] वे जाती पाती को महत्व देने वाले व्यक्ति है वे जमन को अपनी औकात याद दिलाते हुए कहते है, "वह जमींदार तुम फाकामार। वह सिर तुम चरण। शर्म आनी चाहिए तुम्हे,।"[21] वे जमन से जबरदस्ती तलाक के कागज पर हस्ताक्षर करने को कहते है जब जमन नहीं मानता तो वे उसे दुत्कारते हुए कहते है, "अंधा ठूँठ। नीच जात। अरे काबू रह तू। दफा हो जा, मेरी आँखों के सामने से।" , "बडा आया पत्नी वाला। वह तो जेहन्मुम में भी जूत मारेगी तेरे। मुर्ख के लिए दुत्कार ही सबक है। जा, भाग जा, यहाँ से।", "चला जा , चला जा, यह लोग पेड से लटका देंगे तुझे।"[22] व्यक्ति देखकर रंग बदलने वाले श्यामजी नाटक में खलनायक की भूमिका निभाते हैं। वे उन सभी को घूस खिलाते हैं जहाँ जहाँ जमन उनकी शिकायत लेकर जाता है । पत्रकार झा को घूस देते समय वे अपने काइयाँपन को युँ प्रस्तुत करते है, "जी, नाचीज को ही कहते हैं, श्यामाजी। खाकसार के दफ्तर तशरीफ लाए आप। मेहरबानी हुई, आपकी।"[23] झा जब यह बताता है कि उनपर ऑनर किलिंग का केस बनता है तो वे बुरी तरह घबरा भी जाते हैं। परंतु उन्हें वे घूस देकर मामला रफा–दफा करवाने की कोशिश करते है। रिश्वत के बल पर वे सबको अपने जैसा बनाते हुए कहते है, "आप भी अपने हैं। थानेदार भी अपने है।"[24] और वे ठहाका लगाकर हँसते है। उन्होंने इसी रिश्वत के दम पर सरकार की ओर से मिलनेवाले पुरस्कारों को भी लूटा था। परंतू वे समाज में उजले चेहरे के साथ घूमते हैं। अपने गलत कामों पर सफेद पर्दा डालते हैं। आका जैसे लोगों के साथ मिलकर जात पात, उंच नीच की नितियों से अपना स्वार्थ साधते है।

5.आका : आका इस नाटक में निःशक्तों के संरक्षक के रुप में दिखाए गए हैं। यह उनका बाहरी, उपरी व्यक्तित्व है। ये भी श्यायाजी की तरह ही दोहरे व्यक्तित्ववाले इन्सान है। वे अपने इस सामाजिक पद का खूब फायदा उठाते हैं। 52 वर्ष की उम्र तक उन्होंने बहुत अधिक अनुभव प्राप्त किए है तथा वे अपने आप को बडे गर्व से 'कद्दावर' मानते हैं। वे भले स्वयं को निशक्तों का संरक्षक मान ले परंतु देवत उनकी असलियत जानता है, "जमन , ये आका हैं न, दो मुँहे हैं। उनको अपने चाहेते चाहिए। ऐसे चाहेते पैर चाटते रहें, पूँछ हिलाते रहें। निःशक्तों की पीडा से, उनकी समस्याओं से, उनका दूर–दूर तक लेना–देना नहीं है।"[25] देवत उनकी रग–रग पहचानता है वीमा के अपहरण की जड में भी यही आका है। जमन झा को आका के बारे में बताते हुए कहता है, "जड में वही है।"[26] देवत आका और श्यामाजी को चारे चोर मौसेरे भाई की उपाधी देता है। यही आका श्यामाजी की संस्था को सरकार की ओर से चाहे जितना अनुदान दिलवाते है उनकी संस्था को फायदा दिलवाते है उसके ऐवज श्यामाजी से रिश्वत लेते हैं। देवत कहता है, "श्यामाजी की नेत्रहीन संस्था है न, प्रत्यक्ष या परोक्ष उसी को लाभ पहुँचाना है। उन्हीं के बूते श्यामाजी अघाये हैं।"[27] वे जमन पर अन्याथ करने वाले श्यामाजी के साथ खडे हैं। आका के एक इशारे पर जमन के लिए परेशानियों का अंबार खडा हो जाता है।

6.सी.सी.झा : दैनिक 'बाज' नामक लीडिंग पेपर का सी.सी.झा संवाददाता है। चमकचंद्र झा नामक पत्रकार की निःशक्तजन और वृद्धजन कल्याण बीट है। इन की खोजी और तेवर भरी खबरों के कारण शाशन–प्रशासन की चूलें हिला दी है। इसलिए देवत को ऐसे लगता है कि पीत पत्रकारिता के इस दौर में, "झा साबह घिनौनी से दूर है।"[28] परंतु यह तो आका और श्यामाजी दोनों को मात देता है। वह दोनों और की ठीक–ठीक जानकारी प्राप्त कर लेता है और उसे अंदाजा आता है कि वह इससे बहुत सारा फायदा उठा सकता है तब वह जमन को पहले विश्वास देने पर भी धोखा देता है। वह श्यामाजी से जा मिलता है क्योंकि उसे आका के दफ्तर में किसी अपने का तबादला करवाना था और वह अपना काम करवा लेता है, "श्यामाजी आका के दफ्तर में अपने एक आदमी का ट्रांसफर करवाना है। सेवक है, अपना। काम होना चाहिए।"[29] और वह उसी रीश्वत के पैसों में से एक नोट श्यामा जी के हाथों में थमा देता है जो थोडी ही

देर पहले श्यामाजी ने उसे देवत के खिलाफ अखबार में खबर छापने के लिए दी थी । देवत को झा पर विश्वास होता है इसलिए वह जमन को न्याय दिलाने के लिए झा को बुलाता है। जब जमन हताश होता है तो झा के बारे में जमन से वह कहता है, "झा साहब बात के पूरे हैं। भँवर में फँसों का सहारा हैं झा साहब।"[30] इसी विश्वास पर झा कुल्हाडी मारता है तब देवत का विश्वास तार–तार हो जाता है और वह कहता है, "हाँ, शातिर, शुतुर, धोखेबाजों ने स्तंभ में दरार ला दी है।"[31] जमन समझता है की श्यामाजी ने झा को भी मैनेज कर लिया है। जमन तो पहले ही यही सोचता रहा, "अखबार वाले आज कितने खरे हैं,। मसल और मनी के सामने उनकी कलम भोथा है।"[32] और सचमुच झा जो लोकतंत्र का आधारस्तंभ माना जाना चाहिए वह भी जात की जाजम पर बैठकर अपना हित साधने में लगा है। लेखक ने देश के इन जैसे लोगों की पोल खोलकर रख दी है।

नाटक में उक्त दो प्रमुख और चार सहायक पात्रों के अतिरिक्त अन्य पात्र भी समयानुसार आते है और अपनी छाप छोड जाते है। इसमें एक रिक्शावाला है। यह बहुत कम समय के लिए नाटक में दाखिल होता है परंतु जमन की भरपूर मदद करता है। यह एक गरीब इन्सान है। अपनी रोजीरोटी कमाने के लिए गाँव से शहर आ चुका है। और वह अत्यधिक प्रामाणिक है। वह जमन की पूर्णरुप से मदद करता है और उसे ढाढस भी बंधाता है। वह अत्यंत सह्यदय व्यक्ति है। वह दुखी जमन की आत्मियता से पूँछ ताछ कर उसे जहाँ जाना है ले जाता है। उस का सामान भी रिक्शे में लदवाता है और आका के दफ्तर ले जाता है। जमन का काम न होते देख उससे पकडते हुए पूँछता है, "बाबुजी, आपकी आँखों में पानी काम नहीं हुआ न ! बताओ, किधर, कहाँ चलना है, अब ?"[33] इतनाही नहीं वह जमन को देवत के घर तक छुडाता है और दुखी जमन से पैसे भी नही लेता। कहता है, "किराया नहीं लूंगा मैं। नेत्रहीन बाबूजी बहुत दुःखी हैं।" [34] रिक्शावाला एक सीधा सच्चा आम इन्सान है जो दूसरों का दूख देखकर स्वयं भी दुखी हो उठता है। और उसकी मदद करने को तत्पर होता है।

नाटक में थानेदार की भी अहम भूमिका है। थानेदार के वर्णन से ही जान पडना है कि वह एक कामचोर घुसखोर, खूसट और बेरहम किस्म का आदमी है। वह हमेशा तकरार लेकर आनेवालों के साथ गुस्से में ही बात करता है। अकडना, तैश दिखाना, आँखे दिखाना, अपराधि आए या फिरयादी के रुप में आए लोगों को डराना, धमकाना, छडी दिखाना, आदि कार्यकलापों द्वारा वह अपने पद का कैसे गलत प्रयोग कर रहा है यह समझा जा सकता है। आका और श्यामाजी के खिलाफ रपट लिखवाने आए जमन और देवत से भी वह ऐसे ही लहजे में बात करता है कि उसके सामने जमन –देवत की घिग्घी बंध जाती है। जमन कार्यवाही के लिए जल्दबाजी करता है तो उसपर गरजकर बोलता है, "अरे, थानेदार तू है या मै हूँ ? तफ्तीश कौन करेगा, यह तू जानता है या मैं जातना हूँ क्या बताओगे उनको ? जाओ–जाओ साहब आने को है। रवाना हो जाओ, यहाँ से ! .....वरना।"[35] "चुपचाप सुनता रहा, वरना चमडी उधेड दूंगा।"[36] वो जमन को भगाते हुए कहता है, "ले ये तेरी अर्जी पकड और भाग जा यहाँ से । विकलांग हो दोनों। और होते, सीधा अंदर कर देता। आइंदा झूठी शिकायत लेकर थाने मत चले आना।"[37] और जब आका के दफ्तर के सामने आका और निःशक्तो की हाथापाई होती है तो आका धोती छोडकर भाग खडे होते है और जिस थानेदार को आका ने रिश्वत दी थी वह थानेदार देखता ही रहा जाता है। इसपर देवत कहता है, "खूसट क्या, चमचा है स्साला। अब दूर खडा घूर रहा है।"[38] असल में थानेदार जैसे लोग किसी के नहीं होते वे दोनों ओर के लोगों से अपना स्वार्थ साधते हैं। ऐसे पुलीस प्रशासन व्यवस्था पर नाटककार वीमा के माध्यम से सवाल खडे करते है। इसके साथ ही बुजुर्ग और नवयुवक यह दो पात्र नाटक में अप्रत्यक्ष रुप में आते है। वे नाटक में संवादात्मक रुप में कहीं पर भी सामने नहीं आते और न ही एक भी वाक्य बोलते है परंतु इनकी उपस्थिति हमेशा महसुस होती है। और इन्हीं के कारण सारा नाटक घटित होता है। ये वीमा के पिता तथा भाई हैं। ये वीमा के घर से भाग जाने, उसके किसी दलित नेत्रहीन से विवाह करने से अत्यधिक नाराज है और सामंती वृत्ति से लैस ये दोनों वीमा– जमन को अलग करने की चाले चलते हैं। वे उंची जाति के है यही कारण है कि वह नीची जाति के जमन का गला घोटने, उसे दबोचने तथा उसे गोली से उडाने के लिए लालायित है। बार बार वे जमन को जान से मार देते के लिए उतावले होते दिखाया गया है। ये दोनों पितृसत्ता, सामंति वृत्ति के प्रतिक रुप है। वे दोनों इस नाटक में हो रहे अन्याय –अत्याचार की जड है। साथ ही प्रसंगानुरुप गुंडा, चपरासी कॉन्स्टेबल और कार्मिक यह पात्र समयानुसार आते हे और अपनी उपस्थिति दर्ज करते हैं। सभी पात्र महत्वपूर्ण बन पडे है। इन पात्रों में आका, श्यामाजी, पत्रकार, थानेदार के सभी ये सभी एक ही जाति के है और उंची जाति के है तथा उंची जाति, उंचे कुल की डींगे हाँकते हैं परंतु नाटक में देखने लायक बात यह भी है कि इन्हीं उंची जाति के लोगों में उंचे उंचे व्यसन भी है। लेखक कहते है, "नाटको का सृजन करते वक्त द्यूत या व्यभिचार का

किरदार प्रायः वंचित या उपेक्षित होता है। व्यसन आदि का होना व्यक्ति की प्रवृत्ति से जुडा आयाम है, किसी जाति, वर्ग, धर्म या सम्प्रदाय में सन्नद्ध नहीं।"[39]

लेखक यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि व्यसन निम्न जाति के लोगों में ही नहीं होते समाज की इस धारना को वे नकारते हैं। व्यसन को व्यक्ति की प्रवृत्ति का द्योतक बताते हुए उंची जाति के लोगों में किस प्रकार यह प्रवृत्ति फैली है का उद्घाटन लेखक करते हैं। इन चरित्रों का अध्ययक करने के पश्चात हम मानवियता की जाँचपडताल में और अधिक स्पष्ट रुप से समझने लगते है हमारी रुढ सामाजिक धारणाएँ क्या है। और ये सारे पात्र इन धारनाओं को दूर करने में सफल होते है।

संदर्भ सुची : –

(1)रत्नकुमार सांभरियाः वीमा पृ.7(2)रत्नकुमार सांभरियाःवीमा पृ.8 (3)मलिक मुहम्मद जायसी : पद्मावत(4)रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 43 (5)रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 42(6)रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 46(7)रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 17(8)रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 77(9)रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 40(10) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 41(11) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 43(12) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 50(13) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 46(14) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 53 (15) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 53 (16) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 53(17) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 58(18) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 75(19) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 15(20) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 17(21) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 18(22) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 21–22 (23) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 65–66 (24) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 69 (25) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 53 (26) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 60 (27) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 53 (28) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 59 (29) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 69 (30) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 50 (31) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 64 (32) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 57 (33) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 32 (34) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 52 (35) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 35 (36) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 71 (37) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 73 (38) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा पृ. 77 (39) रत्नकुमार सांभरिया : वीमा मेरी बात पृ. 7

6.रत्नकुमार सांभरिया का नाटक साहित्य (वीमा नाटक के विशेष संदर्भ में...)

–डॉ. संजय भाउसाहेब दवंगे
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
के.जे.सोमैयाकला,वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय,कोपरगांव महा.

हिंदी साहित्यिक पटल पर अपनी लेखनी से विशिष्ट पहचान बनानेवाले रत्नकुमार सांभरिया का नाम दलित नाटककारों में अग्रीम है। विविध विषयोंपर यथार्थ लेखन करनेवाले रत्नकुमार सांभरिया अपनी रचनाओं में पात्रों के माध्यम से हमारे बिच मौजूद रहते है, मानो नायक की अभिव्यक्ति नायक की न होकर खुद रत्नकुमार सांभरिया की है। विविध विधायों में लेखनकार्य करनेवाले रत्नकुमार सांभरिया का समग्र साहित्य निम्नलिखित है।

नाटकः– वीमा, उजास, भभूल्या

कहानीसंग्रह :– हुकम का दुगी, काल तथा अन्य कहानियां, खेत तथा अन्य कहानियां, एयरगन का घोड़ा।

एकांकीसंग्रह :– समाज की नाक

लघुकथासंग्रह :– बांग तथा अन्य लघुकथाएँ

आलोचनाः– मुंशी प्रेमचंद और दलित समाज

अनुवाद :– डॉ. आंबेडकरः एक प्रेरक जीवन (अरबी–सिंधी में अनुवाद)

रत्नकुमार सांभरिया को साहित्यलेखन के कारण कई पुरस्कारों से सन्मानित किया गया है।

- नवज्योति कथा सम्मान
- वीमा नाटक के लिए राष्ट्रीय अश्वघोष पुरस्कार
- चपड़ासन कहानी के लिए उपराष्ट्रपति द्वारा सम्मानित
- कथादेश अखिल भारतीय हिन्दी कहानी प्रतियोगिता–प्रथम पुरस्कार "बिपर सूदर एक कीने" कहानी
- राजस्थान पत्रिका सृजनात्मक पुरस्कार
- हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा हरियाणा गौरव सम्मान
- घासीराम वर्मा साहित्य पुरस्कार

डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर के विचारों से प्रेरित होकर साहित्य लेखन करने वाले साहित्यकारों में रत्नकुमार सांभरिया एक है जिनकी लेखनी में डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर का कार्य दृष्टिगोचर होता है। दलित जाति पर हो रहें अत्याचार को दिखाते हुए लेखक ने अन्याय के विरोध में उठाई गई आवाज में सफलता की गुंजाईश दिखाई हैं। यह नाटक एक साथ कई समस्याओं को लेकर चलता है तथा इस समस्याओं के समाधान को भी प्रस्तुत

करता है।जहाँ तक मेरा अध्ययन है वीमा हिंदी का पहला नाटक है, जिसमें नाटककार ने दोनों प्रेमियों को नेत्रहीन दिखाते हुए दलित विमर्श के साथ–साथ विकलांग व्यक्तियों के दुःख–दर्द तथा संघर्ष को चित्रित करने की कोशिश की है। जैसे– नेत्रहीन वीमा के साथ अत्याचार करने की कोशिश करना, नेत्रहीन जमन की शादी नेत्रहीन वीमा के साथ करवाना, नेत्रहीन वीमा का अपहरण करना आदि।

विकलांगता अगर शारीरिक हो तो बात अलग हैं, पर यही विकलांगता अगर मानसिक बन जाती है तो व्यक्ति खुद के साथ–साथ समाज को भी बरबाद कर देती है। नाटक के श्यामाजी, झा, आका इसके उदाहरण है।व्यक्ति कितना भी कमजोर क्यों न हो अगर उसमें आत्मविश्वास और निस्वार्थ भाव है और मन में कुछ करने का साहस है तो वह कौन–सा भी कार्य सफलतापूर्वक कर सकता है। यह नाटक का नायक जमन हमें दिखाता है।संसार का सबसे पवित्र शब्द प्रेम है। प्रेम की गरिमा को कबीरदास ने इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है। 'प्रेमी को ढूंढ़त मैं फिरा, प्रेमी मिला ना कोय, प्रेमी को प्रेमी मिले, तो सब विष अमृत होय।'प्रेम की इसी उदात्तता तथा पवित्रता को नाटककार ने वीमा नाटक में दिखाई है। सवर्ण परिवार की लड़की वीमा और दलित जाति के जमन की एक घटना से मुलाकात हो जाती है, और यह भेट प्रेम से शादी में परिवर्तित होती है। "सपने वे नहीँ होते जो नींद में आते है, सपने वो होते है, जो सोने नहीँ देते। एक सपने ने मुझे सोने नहीं दिया। " (पृ. क्र. 42)

दलित या निम्न जाति के लोगों को आज भी उपेक्षा या तिरस्कार की नजर से देखा जाता है। कबीरदास के 'जाति न पूछो साधु की, पुछ लीजिए ज्ञान" पद का उदात्त अर्थ को ही वीमा प्रतिपादित करती है अर्थात वह इस जातिव्यवस्था का विरोध करती है साथ ही जातिप्रथा का पालन करनेवालों को जाति की विद्वत् परिभाषा भी अपनाने की सलाह देती हुई जमन से कहती है " छोडो भी ज़मन। इतने पढ़ें– लिखे होकर भी जात की काप में पाँव मार रहे हो। तुम मरद हो, मैं औरत हूं। दो जात तुम नेत्रहीन, मैं नेत्रहीन– एक जात" (पृ. क्र. 45) वर्तमान समय में सुदृढ तथा सर्व इंद्रिय संपन्न व्यक्ति किसी महिला पर हो रहें अत्याचार को अनदेखा करता है वहाँ जमन जैसा आँखों से विकलांग व्यक्ति वीमा पर हो रहे शारीरिक अत्याचार का विरोध करता है और पत्थर मारकर गुंडों को भगाकर वीमा की इज्जत बचा लेता है। नाटक में अधिकांश पात्र जमन के विचारों से जुड़े हैं इसलिए वे हर बार जमन का पक्ष लेते है पर जाति के नाम पर सब उसके विरोध में चले जाते हैं। निम्न जाति का जमन जब पीड़ित वीमा को बचा लेता है तो सब जमन की प्रशंसा करते हैं, पर वह जब वीमा से शादी करता है तो वही लोग जमन और वीमा के जीवन में दिवार बनकर खड़े होते है।

जातिप्रथा को नष्ट करने में 'अंतरजातीय विवाह' की अहम् भूमिका होती है। इस जाति व्यवस्था की दिवार को तोड़ने के लिए लेखक ने नाटक में जमन तथा वीमा दोनों विजातियों की शादी भी दिखाई है, इसके माध्यम से लेखक ने 'जाति निर्मूलन' का संदेश भी हमें दिया है। "हमारा समाज एक सीढ़ीनुमा समाज है। जिसमें हर जाति से बड़ी तथा हर जाति से छोटी जाति का अस्तित्व विद्यमान हैं। यह सिर्फ ऊँची व नीची जाति का विभाजन नहीँ है। बल्कि निम्न जाति को भी आपस में बाटा गया है। यह जातिप्रथा अंदर तक अपनी जड़ जमा चुकी है। इसकी जड़ों को हिलना संभव है। परतु जड़ों से उखड़ना असंभव है। " (पृ. क्र. 12) उच्चपदस्थ तथा सवर्ण के लोग जमन और वीमा को केवल जातिभेद के कारण त्रस्त कराते है। पीड़ित समाज में अस्मिता जगाने हेतु हडताल का हत्यार उपयोगी सिद्ध होता है। अपनी बुद्धि का उपयोग करके जमन हडताल को और प्रभावी बनाता है। हडताल की इस सफलता से वीमा और जमन का मिलन हो जाता है।

जमन अपनी खोई हुई पत्नी को प्राप्त करने हेतु जी जान कोशिश करता है और नाटक के अंत में वीमा को हासिल ही कर लेता, नेत्रहिन होकर भी जमन की यह कोशिश समाज को दिशानिर्देश देता है।इस नाटक में रत्नकुमार सांभरिया ने अपहरण की समस्या को दिखाया है जो वर्तमान में एक ज्वलंत समस्या के रुप में सामने आई है क्योकिं आज पैसो के लिए बालको का तथा हवस का शिकार बनाने हेतु युवा लड़कियों का अपहरण किया जाता है। पूर्वदिप्ती शैली में लिखा यह नाटक विकलांग व्यक्तियों के साहस और कार्यक्षमता का परिचय देता है। नाटक का नायक जमन दिव्यांग होकर भी वीमा को गुंडे की चपेट से बचाता है तो नेत्रहिन वीमा मां के निधन के बाद घर का सब काम करती है "आँखे नहीं तो क्या? जितना बनता, करती थी। बर्तन भांडे धोना, बच्चों को नहलाना धुलाना स्कूल भेजना। " (पृ. क्र. 40) जो श्यामाजी जमन और वीमा की शादी में अभिभावक की भूमिका निभाते है– "वह भी नेत्रहीन तुम भी नेत्रहीन। वह भी सुंदर तुम भी सुंदर। हम उम्र से भी हो तुम दोनों। चाहो तो शादी करलो अभिभावक की भूमिका में मैं हू ना।" (पृ. क्र. 44) वहीं श्यामाजी जाति के नाम पर दोनों की शादी तोड़ने हेतु वीमा का अपहरण कर लेते है। जमन के सामने नई शादी का प्रस्ताव रखते हुए कहते है तुम सामुहिक विवाह मे किसी दूसरी लड़की से विवाह

कर लो। साथ ही पाँच सौ रुपये वेतन बढ़ाने की बात भी करते है।–" निःशक्तो के सामुहिक विवाह के लिए हमने आवेदन आमंत्रित किए है। तुम भी अपनी अर्जी लगा दो। हाँ जाति के कॉलम में अपनी जाति जरूर लिख देना, साफ़ साफ़"। (पृ. क्र. 17) "वह ज़मींदार, तुम फाकामार। वह सिर, तुम चरण। शर्म आनी चाहिए तुम्हें।" (पृ. क्र. 19) यहां तक श्यामाजी उसे वीमा से तलाक लेनेवाले कागज़ात पर हस्ताक्षर करने के लिए भी कहते है।

वर्तमान में अनेक जगहों पर अन्याय अत्याचार पीड़ित के खिलाफ़ आवाज उठानेवाली संस्था, संघटना निर्माण हुई है, अत्याचारित पीड़ित व्यक्ति बड़ी उम्मीद से ऐसी संस्था या संघटना में अपनी समस्यांओं को लेकर आते हैं पर कई बार वहा उनका भ्रमनिराश हो जाता है। वहां के प्रमुख या ठेकेदार आज स्वार्थकेंद्रित जीवन जी रहें हैं। श्यामाजी द्वारा जातिभेद के कारण वीमा का अपहरण करना, जमन को स्कूल से निकाल देना, इन सब बातों से जमन जब निशक्तो के रक्षक आका के पास आता है तो आका का यह व्यवहार इस बात को सिद्ध करता है –" हमें सालों साल, उम्रभर, बिना धर्म जी सकते है बिना जात एक पल भी नहीँ रह सकते। पक्षी भी अपनी हैसियत के मुताबिक ही पंख फड–फडाता है, उड़ता है। तुमने अपनी औकात का अतिक्रमण किया है वर्मा।" (पृ. क्र. 31)ऐसे लोग केवल स्वार्थ के लिए इस प्रकार के काम करते हैं। जमन का आका के संदर्भ में यह वाक्य इस बात की पुष्टि कराता है –" ये जो आका है ना दो मुंहे है। उनको अपने चहेते चाहिए। ऐसे वफादार जो पैर चाटते रहें और पुछ हिलते रहें। निश्कतों की पीड़ा से उनका दूर–दूर तक कोई लेना देना नहीं है। " (पृ. क्र. 52)नाटककर ने इस नाटक में समाज परिवर्तन का प्रमुख आधारस्तंभ पत्रकारिता को मानते हुए आजकल प्रलोभन से काम करनेवाले पत्रकारों पर भी करारा व्यंग किया है। नाटक में चित्रित पत्रकार झा इसका उदाहरण है। 'दैनिक बाज' समाचार पत्र में जमन के विरुद्ध छपा यह समाचार इसका पर्दापाश खोलने में सहायक सिध्द होता है। "नेत्रहिन ने जात छुपा कर ब्याह रचया, पत्नी को तलाक चाहिए।"

आज अनेक पढ़े लिखे लोग जो सरकारी सेवा में उच्चपदस्थ है, उनकी जाति प्रथाओं को तोड़ने में अहम् भूमिका होती है। पर कई बार यही लोग जाति को बरकरार रखने की कोशिश करते हैं। जाति से पीड़ित जमन और दैवतसिंह जब समाचार पत्र में छपी गलत खबर की शिकायत हेतू थानेदार के पास जाते है तो वह शिकायत दर्ज करने की बजाय जमन को ही डराते–धमकाते है " स्साले, अंधे, लंगडे– लुले भी बड़े घरों की लड़कियों को धोका देकर उससे शादी रचाने लगे है। ज्यादती करने लगे है। गुंडे कही के। "(पृ. क्र. 70)सर्वसामान्य जनता या शोषित समाज जब एकत्रित आकर क्रांति की मशाल को जलाते हैं तो बड़ी–बड़ी शक्तियां भी उनके सामने तितर–बितर हो जाती है। निशक्तो की शक्ति का एहसास कराते हुए विकलांग संघ के अध्यक्ष दैवतसिंह जमन को कहते है–"निशक्त अपनी पर उतर आए तो लोहे की गेंद है। लोहे की गेंद को न किक मारी जा सकती, न उन्हें उछाला जा सकता है। "(पृ. क्र. 88)शैक्षिक समस्या का चित्रण करने में भी यह नाटक सफल सिध्द हुआ है, क्योंकि इस नाटक में लेखक ने दलित जाति के जमन को अध्यापक दिखाया है, जो जातिभेद का शिकार बना है। जमन श्यामाजी के शैक्षिक संस्था में अध्यापक का काम करता है परंतु उन्होंने सवर्ण जाति की लड़की से शादी की इसलिए उसे श्यामाजी नोकरी से निकाल देते है। जब पत्रकार झा इस सन्दर्भ में श्यामाजी से प्रश्न पूंछते है तो उत्तर में संस्थापक श्यामाजी कहते है–"बेटे आपकी शिराओं में भी उसी जाति का रक्त है, जो मेरी शिराओं में बह रहा है। झा बेटे, दुर्योग यह रहा कि वह लड़की मेरी रिश्तेदार निकल आई। नीची जाति का जमन वर्मा मेरे स्कुल में टीचर और उसकी पत्नी मेरी रिश्तेदार है। बेटे, आँखों देखी मक्खी नहीं निगली जाती न ? " (पृ. क्र. 67)

संविधान ने सभी जाति धर्म को जीने का अधिकार दिया है। इसी कारण सभी जातियों के लिए कायदे कानुन बने है। कुछ जातियो में विशेषकर सवर्ण जातियों में जातिवादी समायोजन भी दिखाई देता है, जैसे नाटक में चित्रित श्यामाजी सवर्ण होते हुए भी नाटक के अंत में डरे हुए महसुस होते है तथा वीमा को जमन के पास देते है। इस घटना में लेखक ने संविधान के महत्व को अधोरेखित करते हुए उच्चवर्णिय लोगों की बदलती मानसिकता को भी चित्रित करने की कोशिश की है। दलित और नेत्रहिन होकर भी जातिगत संघर्ष तथा सफलता का जीता जागता उदाहरण जमन है। विकलांग अर्थात नेत्रहिनों के अद्वितीय कार्य की एक गौरवशाली परांपरा है जैसे सूरदास, जायसी आदि। इन गौरवशाली परंपरा की शृंखला को जोड़ने का काम वीमा नाटक का जमन करता है जो संघर्षमय जीवनयापन करके अपनी सफलता को हासिल करता है। निड़रता से कहा नाटक का यह संवाद जमन के आत्मविश्वास को दिखाता है– "मैं नेत्रहिन हूँ कायर नहीं वीमा की खातिर मरने से नहीं डरुंगा।" (पृ. क्र. 21)तन–मन से अगर किसी चिज को हम पाना चाहते है तो एक ना एक दिन वह चिज हमें मिल जाती है। नेत्रहिन जमन नेत्रहिन पत्नी वीमा को पाने के लिए भरसक कोशिश करता है, हमेशा संघर्षरत रहता है और नाटक के अंत में वीमा को प्राप्त करता ही

है। अपने दृढ निश्चय से जाति व्यवस्था को तोड़ते हुए सवर्ण तथा शोषक वर्ग को घुटने टेकने के लिए मजबुर कर देता है। जाति व्यवस्था की दलदल से दूर आकर हम सबने एक होकर एक–दूसरे का सम्मान करके अपनी प्रगति करने की नवदृष्टि यह नाटक हमें देता है।

संदर्भ ग्रंथ सूचि :–(1)वीमा, भभुल्या, उजास तीन नाटक – रत्नकुमार सांभरिया – श्री नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली (2)दलित समाज की कहानियां – रत्नकुमार सांभरिया – अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्टीब्यूटर्स, नई दिल्ली

शोधालेख :–

(1)रत्नकुमार सांभरिया रचित नाटक 'वीमा' की कथावस्तु – डॉ. सुनील जाधव

(2)वीमा नाटक में दलित चेतना – राजाराम कानड़े

(3) रत्नकुमार सांभरिया के नाटक वीमा में निःशक्त चेतना – पूनम यादव

7.रत्नकुमार सांभरिया के कथा साहित्य में स्त्री विषयक दृष्टिकोण

–नेहा प्रधान

व्याख्याता इतिहास विभाग

कैरियर प्वाइंट विश्वविद्यालय कोटा, राजस्थान

साहित्य निरन्तर गतिशील रहा है। साहित्य की विकास यात्रा अपने युगानुरूप विभिन्न सोपानों से गुज़री है। कहीं विषयवस्तु के स्तर पर परिवर्तन हुए हैं तो कहीं सामाजिक सरोकारों को लेखनीबद्ध किया गया। साहित्य में महिलाओं की स्थिति की बात करें तो छः दशकों की यात्रा में साहित्य परम्परा में स्त्री के विभिन्न रूपों को लेखनीबद्ध किया गया –अबला, सबला, अशिक्षित, शिक्षित, शोषित, शोषक आदि कहानियों, उपन्यासों की लम्बी श्रृंखला विद्यमान है। प्रत्येक लेखक की स्वयं की सोच और अनुभूति से उनका लेखन प्रभावित होता है। विडम्बना यह है कि इतनी लम्बी यात्रा के उपरान्त वर्तमान में भी स्त्री विषय में कुछ खासा बदलाव दिखलाई नहीं देता है। इन्हीं में श्री रत्नकुमार सांभरिया वर्तमान युग के उन साहित्यकारों में स्थान रखते हैं जो स्त्री को अबला न मानकर उसके हक़ की बात करते हैं। उनकी कहानियों की कथावस्तु छोटे कस्बों और गांवों की रही है। इन्हीं स्थानों पर स्त्रियों को उनके अधिकार प्राप्त नहीं हो पाते हैं। उनकी भाषा शैली व वाक्यों से वह यह स्पष्ट कर देते हैं कि उनकी कलम स्त्री के अधिकारों और अहसासों की प्रबल दावेदार है। वास्तव में स्त्री दलित या सामान्य नहीं होती बल्कि समाज की नज़र में स्त्री सिर्फ स्त्री ही होती है। अंतर मात्र इतना होता है कि सवर्ण की स्त्री की दशा परिवार में थोड़ी बहुत अच्छी होती है जबकि दलित में उनकी दशा दयनीय होती है। भारतीय पितृसत्तामक समाज में सारे नियम और कायदे सिर्फ स्त्रियों के लिए ही बनाए गए हैं। इनमें भी दलित स्त्रियों को ही जाति और पितृसत्तामकता दोनों का दंश झेलना होता है लेकिन सांभरिया जी ने सिर्फ दलित स्त्री की मनोदशा और संघर्ष का ही चित्रण नहीं किया है बल्कि यह सभी स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती प्रतीत होती हैं। उनके पात्र चाहें वो स्त्री हो या पुरूष गिड़गिड़ाकर परिस्थितियों से समझौता नहीं करते बल्कि दृढ़ता से अपने अधिकार का दावा प्रस्तुत करते हैं उदाहरणार्थ 'शर्त' कहानी में जमींदार का बेटा जब पानाराम की बेटी के साथ गलत काम करता है और जमींदार पानाराम को प्रलोभन देकर मामला निपटाने की कोशिश करता है तब पानाराम अपनी बेटी की इज्ज़त की शर्त पर दृढ़ता से कहता है " मुखिया साब, इज्जत का सवाल है यह। आपकी इज्जत सो

ISSN-2454-6283 PEER Reviewed JOURNAL

मेरी इज्जत। आपकी लड़की मेरे लड़के के साथ रात रहेगी।'' कहानी में लेखक पुरूषवादी सोच से कहीं ऊपर की सोच रखता है। वह अपनी छोटी जात और गरीब होने के कारण अपनी बेटी की इज्जत का सौदा नहीं करता बल्कि जमींदार के मन में स्त्री के प्रति किए गए शोषण के प्रति अपराध बोध जगाना चाहता है।'गाड़िया' कहानी में पुरूष पात्र जो कि अशिक्षित है और जाति से घुमंतू है फिर भी वह अपनी बेटी को छेड़ने वाले फकीरचंद को सबक सिखाता है। उनमें स्थितियों से लड़ने का अदम्य साहस है हांलाकि उनके साहित्य में देसी–परदेसी भाषा के दर्शन हैं लेकिन उनमें देश की मिट्टी की सुगंध भी है। उन्होंने जहां जो कुछ गलत होते देखा उस पर लिखा है चाहें वह दलित साहित्य हो, स्त्री विषय हो या फिर अन्य।

उनकी कहानी 'आखेट' में भी रेवती अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए लड़ती है और समय आने पर खुद पर हुए अत्याचार का बदला लेने को तैयार हो जाती है। 'मांडी' कहानी में भी कुमुद अपने अधिकारों के प्रति सचेत है और किसी भी प्रकार से शोषित होने से साफ इंकार करती है। श्री सांभरिया के स्त्री पात्र अपने पूरे विद्रोही स्वरूप के साथ दृढ़ता से अपनी बात रखते हैं। उनके पात्र 'आखेट' की रेवती, 'चपड़ासन' की मीता किसी भी दृष्टि से कमजोर नहीं कहे जा सकते हैं। उनकी कथा साहित्य के सभी स्त्री पात्रों में यह भावना प्रबल है। 'फुलवा' कहानी में पंडिताइन डरती नहीं है बल्कि पुरूष का घमंड तोड़ते हुए बेबाक कहती है कि '' तू तो कुंए का मेंढक ही रहा रामेसरिया। अब तो पद और पैसे का जमाना है, जात–पांत का नहीं।''

उनकी कहानी बात में एक गरीब और मजबूर विधवा स्त्री सुरती अपने अधिकारों और सम्मान के लिए संघर्ष करती है और जब बात उनकी रक्षा पर आ पड़ती है तब वह अपना रौद्र रूप दिखाने में भी नहीं झिझकती। उनकी स्त्री पात्रों की यह खासियत है कि वह दूसरों पर हावी होने की कोशिश नहीं करतीं बल्कि आवश्यकता होने पर ही अपने अधिकारों के लिए लड़ती हैं। श्री सांभरिया के लेखन के लिए अधिकतर की राय रही है कि उनके स्त्री पात्रों में विद्रोह का स्वर है जबकि यह कहा जा सकता है कि उनके स्त्री पात्र जागृत हैं। उनमें गलत फैसले के विरूद्ध बोलने का साहस है। जब जरूरत हो वहां वह न सिर्फ इंकार करते हैं बल्कि उस व्यक्ति को अपराधबोध करवाने और सजा दिलाने के लिए तत्पर होने में क्षणिक देर नहीं करते। उनके स्त्री पात्रों की यह विशेषता है कि वह अपने पर हुए अन्याय के लिए किसी अन्य की गुहार लगाते या आस में नहीं रहते बल्कि वह स्वयं ही कार्य को अंजाम तक पहुंचा देते हैं। उनकी कहानियों में नकारात्मक भावनाओं के स्थान पर सकारात्मक सोच और दृढ़ता देखने को मिलती है। उनके साहित्य को दलित की संज्ञा दिए जाने के बाद भी उसमें दलित का नाममात्र अंश भी दिखलाई नहीं देता है। अन्य लेखकों के साहित्य से तुलना करने पर उनके पात्रों में उतना साहस नहीं है जो कि सांभरिया जी के साहित्य में प्राप्य है। उनकी भाषा में स्थानीयता के दर्शन अवश्य हैं लेकिन उनमें कहीं भी अश्लील वाक्यों, गाली का प्रयोग नहीं किया गया है। इसी प्रकार उनके वाक्य सीधे–साधे और स्पष्टतापूवर्क अपनी बात समझाते हैं। उनमें दूसरे अर्थ की कोई भी गुंजाइश नहीं होती है।

उनके कहानी संग्रह 'दलित समाज की कहानियां' में दलितों के शोषण की कथा हैं। उनकी स्त्रियां दो प्रकार से शोषित हैं, एक दलित स्त्री होने के कारण तो दूसरी तरफ पुरूषवादी सोच के कारण शोषित। फिर भी उनके स्त्री पात्र कहीं भी रिरियाते या रोते–बिसूरते नज़र नहीं आते हैं। 'इत्तेफाक' कहानी में दलित स्त्री को स्वाभिमानी दर्शाया गया है लेकिन फिर भी उसके पति के 44 साल बाद अचानक मिल जाने पर भी वह उसका अनादर नहीं करती बल्कि उसे समाज में सम्मान देती है। सांभरिया जी इक्कसवीं सदी के लेखकों में उस पंक्ति में स्थान रखते हैं जिन्होंने दलित पुरूषों तक की स्त्रियों के प्रति सोच को बदलकर सकारात्मकता में प्रस्तुत किया है। रमणिका गुप्ता जी के अनुसार स्त्री की इस दशा के लिए ''स्त्री की असमानता का मूल मंत्र धर्म है।'' क्योंकि भारतीय संस्कृति में धर्मानुसार पितृसत्ता सर्वोच्च मानी जाती है। इससे स्त्री को सदैव बलिदान का पर्याय माना जाता रहा है लेकिन सांभरिया जी ने इस प्रथा का खंडन कर अपने साहित्य में स्त्री को आवाज़ दी है। उनके साहित्य में स्त्री का सम्मान जाग गया है और वह अपने पर होने वाले अत्याचार का प्रतिरोध करती है और वह भी पूरे आत्मसम्मान के साथ दूसरों के सम्मान का ध्यान रखते हुए।

संदर्भ–

1.'मांडी' शुक्रवार पत्रिका, दिल्ली, संपादक विष्णु नागर, साहित्य वार्षिकी विशेषांक में संकलित 2012

2.'गाड़िया' राजस्थान पत्रिका, जयपुर के रविवारीय पृष्ठ 2 अंक 26.08.12 में प्रकाशित कहानी।

8.रत्नकुमार सांभरिया के 'वीमा' नाटक में दलित चेतना

– प्रा.डॉ.सावते प्रकाश नवनितराव

कला विज्ञान महाविद्यालय तेलगाव ता.धारूर जि.बीड

'वीमा' नाटक भारतीय समाज व्यवस्था पर गहरी चोट करता है। समाज में जातियता की मानसिकता का पर्दाफाश करता है। भले ही संविधानिक अधिकारों से सभी को समानता का दर्जा मिला है किंतु जो इस अधिकारों की रक्षा करने हेतु खडे है या चुने गए है वही जातियता की मानसिकता से ग्रासित है। इसी भेदभाव की दोगली प्रवृत्तिको 'वीमा' नाटक दर्शाता है। दलितों के साथ हो रहे भेदभाव और अन्याय का वास्तविक चित्रण यथार्थ की धरातल पर अभिव्यक्त हुआ है। नेता, समाज व्यवस्था, न्याय व्यवस्था और मिडिया, पत्रकार, सभी अपने अपने स्वार्थपूर्ति के लिए और अपनी श्रेष्ठता कायम रखने के लिए दलित वर्ग पर अन्याय करते नजर आते है।

प्रस्तावना :हिंदी साहित्य में उपन्यास, कहानी विधा जिस प्रकार लोकप्रिय है। उतनी ही नाटक विद्या लोकप्रिय है। साहित्य मानवीय जीवन के संघर्ष उत्कर्ष की यशोगाथा मानी जाती है। हिंदी साहित्य में जो आज विविध विमर्शो ने अपनी अभिव्यक्ति के जोर पर हिंदी साहित्य में आपनी पहचान बनाई है। नारी विमर्श, आदिवासी विमर्श, किन्नर विमर्श, वृध्द विमर्श तथा दलित विमर्श इन विमर्शो में अभिव्यक्त विचार इनके जीवन की दाहकता को प्रस्तुत करते है। दलित विमर्श के लेखकों ने अनुभूति की दाहकता से समाज के उस पक्ष को सामने लाया है जो सदियों से दबे कुचले और हीन भाव से देखा जाता था। इन के अनुभव वास्तविकता की कसौटी पर निखर कर शब्दों में अभिव्यक्त हुए है। दलित विमर्श लेखको को एक अलग पहचान प्राप्त है। दलित विमर्श यह मराठी साहित्य की देन है यह भी कहा जा सकता है। दलित साहित्य में आत्मकथा, कहानिया, काव्य आदि लोकप्रिय है उसी को बराबर नाटक भी प्रचलित है लेकिन आत्मकथा और कहानियों की तुलना में नाटक कम है। लेकिन इनकी दाहकता तथा मानवीयता उतनी ही गहन है।

विश्लेषण 'वीमा' नाटक रत्नकुमार सांभरिया द्वारा लिखा गया नाटक है। राजकुमार सांभरिया का जन्म 06 जनवरी 1956 में भाड़ावस, जिला रेवाडी हरियाण में हुआ। वे पिछले तीस वर्षो से राजस्थान में है। राजस्थान सूचना एवं जनसंपर्क सेवा के वरिष्ठ अधिकारी सहायक निदेशक रहे है। इनकी रचनाएँ समाज की नाक (एकांकी संग्रह), बांग और अन्य लघुकथाएँ (लघुकथा संग्रह), हुकम की डुग्गी (कहानी संग्रह), काल तथा अन्य कहानियाँ (कहानी संग्रह) खेत तथा अन्य कहानियाँ (कहानी संग्रह) मुंशी प्रेमचंद और दलित समाज (आलोचना), डॉ,अंबेडकर : एक प्रेरक जीवन (संपादन) 'वीमा' नाटक आदि।

'वीमा' नाटक दो अंकों में लिखा गया है। प्रथम अंक में तेरह दृश्य है। दूसरे अंक में बारह दृश्य है। इस नाटक के प्रमुख पात्र जमन वर्मा जो नेत्रहीन है। वीमा नेत्रहीन, श्यामाजी जो नेत्रहीन संस्थान के संस्थापक, आका जो नि:शक्तो के धनीधोरा (नेताजी), देवत सिंह जो जमन वर्मा का दोस्त है। सी.सी.झा. पत्रकार अन्य पात्र रिक्शाचालक, थानेदार, कांस्टेबल, चपड़ासी तथा अन्य।

'वीमा' नाटक जमन वर्मा के संघर्ष और अपनी पत्नी 'वीमा' जिसका अपहरण नेत्रहीन संस्थान के संस्थापक श्यामजी और उसके परिवारवाले करते है। उनसे वापस हासिल करने के लिए किए गए आंदोलन की कथा वस्तु है। जमन यह निम्न जाति का है और 'वीमा' एक नेत्रहीन है, उच्चवर्ग से है। वीमा जब गांव से भागकर शहर आयी थी तो जमन ने उसे गुंडे से बचारकर अपने घर ले आया था। और श्यामाजी को तब 'वीमा' उनकी दूर की रिश्तेदार है यह पता नही था। इसलिए वह जमन को कहते है कि वह भी नेत्रहीन तुम भी नेत्रहीन हम उम्र से चाहो तो शादी कर लो।"श्यामाजी : वह भी नेत्रहीन। तुम भी नेत्रहीन वह भी सुंदर तुम भी संदुर। हम उम्र से भी हो तुम दोनों। चाहो तो शादी करलो। अभिभावक की भूमिका में मैं हूना"[1]

जमन कहता है कि हम अलग सलग जाति के है। इसलिए कोर्ट मैरिज ज्यादा ठीक रहेंगा करके कोर्ट मैरिज कर लेता है। जब श्यामाजी को पता चलता है कि 'वीमा' उनके किसी दूर के रिश्तेदारी में आती है तो वह 'वीमा' को उनके घरवालों से मिलकर वहाँ से ले जाते है। और श्यामाजी परेशान जमन को कहते है कि, "सर ! सर !! तेरा सर। वह वीमा, तुम जमन वर्मा। वह जमींदार, तुम फ़ाकामार। वह सिर, तुम चरण। शर्म आनी चाहिए तुम्हें।..."[2]

जमन श्यामाजी से वीमा को खोजने की बात करता है तो वह उलटा उसे ही कहता है कि तुम ने वीमा से जात छूपा ली है। वह उच्च वर्ग की और तुम दलित, तुमने धोखा देकर उनसे शादी करली है। "हे नही, हां। जात छुपा गए तुम। बगुला भगत कहीं के। हर कोई ऊपर चढ़ना चाहता है, नीचे कोई नही आना चाहता। तुमने जात छुपा कर शादी कर ली बेचारी से कि

दलित से सवर्ण बन जाऊ।"[3] जमन उनके इस आरोप को झुटा साबित कर देता है वह कहता है कि कोर्ट मैरिज के वक्त वीमा को सब सच सच बताया था। इस बात पर श्यामाजी के मन की बात सामने आती है वह कहते है जा जा, जान बचा अपनी। न हाय न साय, दो कौडी की जात। इस तरह जमन को कहते है और उसे मकान और नौकरी से निकाल देते है।जमन एक नेत्रहीन तो है ही लेकिंन वह निम्न जाति का है यह बात श्यामाजी के द्वेष का कारण है।

जमन अपने ऊपर हुए अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने के लिए वह नेत्रहीन के नेता उन्हें आका कहते है उनके पास फिरियात लेकर जाता है लेकिन वहाँ आका भी जमन वर्मा की मदत करने से मना कर देता है। वह कहते है – "हम सालों–साल, उम्र भर, बिना धर्म जी सकते है, बिना जात एक पल भी नही रह सकते। पक्षी भी अपनी हैसियत के मुताबिक ही पंख फडफडाता है। उडता है। तुमने अपनी औक़ात का अतिक्रमण किया है वर्मा।"[4]

यहाँ राजनीति के एक बडे नेता भी जाति के नामपर अन्याय करते दिखाई देते है। यह आज भी हमारे समाज में जाति के नाम पर अन्याय अत्याचार किया जाति है। इतना ही नही वह जमन वर्मा को धमकी भी देते है कि उनके पास बैठे लोग बहुत ख़तरनाक हैं। और जमन को वहां से भी निकाल दिया जाता है।

जमन वर्मा और उनका मित्र देवत जो वह भी नि:शक्त है। दोनों मिलकर थाने जाते है। और अपनी पत्नी के अपहरण की अर्जी थानेदार को देते है। काईवाई करने को कहते है। यह अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एक्ट का केस है। इस की तफ्तीश उप–अधीक्षक के स्तर पर होती है। तब थानेदार भडक जाता है। और कहता है – "अरे, थानेदार तू है या मैं हूँ ? तफ्तीश कौन करेगा, यह तू जानता है या मैं जानता हूँ ? साहब आने को हैं। रवाना हो यहां से।"[5]

जमन को थाने से डांटकर वहाँ से रवाना कर देते है जहाँ न्याय की उम्मिद हो वहाँ एक नेत्रहीन तथा दलित के साथ इस तरह का व्यवहार होता है तो वहाँ की व्यवस्था आम आदमी को क्या न्याय दे सकती है। यह हम सोच सकते है। कई दिन जाने के बाद भी जमन के अर्जी पर कोई कारवाई नही होती तो जमन वर्मा और उसका मित्र देवत यह निर्णय लेते है कि लोकशाही के चौथे स्तंभ के पास जाने के लिए पत्रकार सी.सी.झा. से मिलते है और अपने उपर हुए अन्याय के बारे में सारी बाते बताते है। पत्रकार झा उनसे एप्लीकेशन की कार्बन कॉपी उनसे लेता है। झा. जमन और देवत को कहता है कि दरशन तो मैं खुद ही लगा दूंगा वह यह भी कहता "यही कि नेत्रहीन संस्थान के संस्थापक श्यामाजी ने मुझे नेत्रहीन की नेत्रहीन गर्भवती पत्नी का अपहरण करा दिया है। मुझे अध्यापक के पद से भी बर्खास्त कर दिया है और मुझे जान से मारने की धमकी दी है – जमन वर्मा, पूर्व अध्यापक, नेत्रहीन संस्थान।"[6] इस तरह खबर पेपर में आएगे का आश्वासन देकर झा एक बडे नेता तो सेंटर से आए है उनकी प्रेस ब्रीफिंग है सर्किट हाउफस में वहाँ के लिए निकल जाते है।

जमन वर्मा और देवत अपनी अर्जी के बारे में जानने के लिए थाने जाते है तो थानेदार दोनों को दैनिक बाज़ की छपी खबर दिखा ता है और देवत को खबर पढकर जमन को सुनाने को कहता है खबर थी लडकी को जान से मारने की धमकी देकर जमन वर्मा ने उससे कोर्ट मौरिज कर ली। जब लडकी को जमन वर्मा के नीची जाति का, होने का पता लगा ता उसे मूर्च्छा आ गई। लडकी पर जमन वर्मा ज्यादतिया करता था उसके चंगुल से छुडाने के लिए श्यामाजी ने मदत की। वीमा के पिता और उसका भाई आए और उसे साथ ले गए। थानेदार उन्हें उनकी अर्जी वापस करता है और थाने से भगा देता है। यहाँ पत्रकार झा को दोगले पन की पोल खोली है। दलित को उस के सच को छुपाकर उसपर ही आरोप लगा दिया गया। जब झा और श्यामाजी के बीच इस जमन वर्मा को लेकर बात चित होती है। तब श्यामजी कहते है – "नीची जात होकर भी उसने बड़ी जात की लडकी से शादी की है। यह धर्मघात है। जात को मात है। बेटे झा, यह जात–पांत छुआछात ही हमारी सांसे है। जात मरी, हम बदर हुए ।"[7]

यहाँ समाज के उन लोगों की मानसिकता को प्रस्तुत किया है जो अपने स्वार्थ और झुठे जाति के अभिमानियों की सोच जो दलित निम्नवर्ग की जाति के प्रति रिस्कार की भावना रखते है। श्यामाजी 'झा' बडी खुबसूरती से जाति के नाम पर अपने पक्ष तथा अपनी खबर छापने को तयार करते है उन्हें रिश्वत भी देते है।

"बेटे, आपकी शिराओं में भी उसी जाति का रक्त है, जो मेरी शिराओं में बह रहा है। झा बेटे, दुर्योग यह रहा कि वह लडकी मेरी रिश्तेदार निकल आई। नीची जाति का जमन वर्मा मेरे स्कूल में टीचर और उसकी पत्नी मेरी रिश्तेदार बेटे, आंखो देखे मक्खी नही निगली जाती न ?............ बस, एक मिनट बेटे (श्यामाजी उठते है। अलमारी खोलते है। उस में से बैग निकालते है। उसकी चेन खोलते है। उसमें हाथ डालते है। बंद पुड्डी बाहर निकालते है और सी.सी. झा की जेब में खाली कर देते है। झा पैन और स्लिपपैड हाथ में लेकर उठ खडा होता है।"[8]

एक नेत्रहीन दलित जमन को समाज में अन्याय के और झुठे आरोप के शिवाय कुछ नही मिलता। फिर भी जमन और देवत इन व्यवस्था के खिलाफ खडे रहते है वह आक़ा के खिलाफ धरने पर

बैठ जाते है। यह धरना उनके नेता जो निःशक्तीं के हितों और रक्षण की बात करते है। उनके दफ्तर के सामने धरने पे बैठते है और दफ्तर में आक़ा या उनके कर्मचारीयों को घुसने नही देते और जोर जोर से नारे बाजी करते है। आक़र पुलिस बुलाते है लेकिन निःशक्तों की भीड इतनी है कि पूलिस भी कुछ नही कर सकी यहां पर संघटन की ताकद पर देवत कहता है – निःशक्तों के एकत्रित होने को मेंढक तोलने जैसा मानते हैं लोग। मै कहता हूँ, अगर निःशक्त अपनी पर उतर आएं तो लोहे की गेंद है। लोहे की गेंद को न किक मारी जा सकती है, न उसे उछाला जा सकता है।"[9]

यहाँ यह साबित होता है कि कमजोर अगर संघटित होकर उनके उपर हो रहे अन्याय का विरोध्द करे तो वह निश्चित न्याय प्राप्त कर सकते है। और यहाँ यही साबित हुआ आक़ा और श्यामाजी जमन की पत्नी 'वीमा' को लेकर धरनेवाली जगह आते है। यह देवत कहता है – "हां–हा, वीमा ही है। वीमा भाभी है जमन! वह! ळमारी जीत हुई...। संघर्ष फलीभूत हुआ।

निष्कर्ष : इस नाटक ने नेत्रहीन दलित के माध्यम से आज के व्यवस्था तथा जातिय द्वेष को प्रस्तुत किया है। यहाँ एक संस्था का संस्थापक, एक बडा राजनेता, कानुन की रक्षा करनेवाला बडा थानेदार और लोकशाही का चौथा स्वयं मानेजाने वाले पत्रकार इन सारी जगहों पर उच्च जाति के लोगों द्वारा होने वाले अन्याय की पोल इस 'वीमा' नाटक ने खोली है। किसी दलित पर जब अन्याय होता है तो वह थाने जाता है तो वहा अगर अन्याय करने वाले व्यक्ति जाति उच्च हो और वहाँ का अफसर भी उच्च वर्ग का हो तो वह उनकी शिकायत दर्ज ही नही करता। दुसरा राजनेता भी, यहाँ पत्रकार को भी जाति का वास्ता देकर सच्चाई को छुपाकर झुठी खबर छापने पर रिश्वत दि जाती है। रत्नकुमार कुमार सांभरियाने समाज के उस अन्याय को सामने लाया है। उच्च पदों पर आसिन न्याय, नियम को छोडकर जाति के नाम पर निम्न वर्ग पर अन्याय अत्याचार करते है।

सांबरियाने अंतिम में जो सकारात्मक दिखाई है कि वीमा को जमन के हवाली कर देते है। क्या? आज समाज में ऐसा हो सकता है। यह एक बड़ा सवाल है। आज भी दलितों को समानता, न्याय अपने हक के लिए संघर्ष करना पडता है यह एक कडवी सच्चाई है।

संदर्भ सूची–1.वीमा रत्नकुमार सांभरिया, पृ.44 **2.**वीमा रत्नकुमार सांभरिया, पृ.19 **3.**वीमा रत्नकुमार सांभरिया, पृ.19 **4.**वीमा रत्नकुमार सांभरिया, पृ.31 **5.**वीमा रत्नकुमार सांभरिया, पृ.55 **6.**वीमा रत्नकुमार सांभरिया, पृ.62 **7.**वीमा रत्नकुमार सांभरिया, पृ.66 **8.**वीमा रत्नकुमार सांभरिया, पृ.67 **9.**वीमा रत्नकुमार सांभरिया, पृ.75

9.रत्नकुभार सांभरिया का कहानी साहित्य

– प्रा.विद्या बाबूराव खाने
कला महाविद्यालय, नांदुरघाट ता. केज बीड

रत्न कुमार सांभरिया एक महत्त्वपूर्ण कथाकार के रूप मे जाने जाते है। इनकी लगभग कहानियाँ दलित साहित्य से जुडी हुई है। जिनमें दलित जीवन के हर एक पहलुओं को लिया गया है। इनकी कहानियों में ज्यादा तर दलित समाज के यथार्थ और दलितों की बदलती सामाजिक हैसियत का विषय लिया है। सांभरिया जी की कहानियों के जरिये भारतीय समाज के जातीवादी चरित्र के तमाम प्रश्नों को समजा जा सकता है।

रत्न कुमार सांभरिया की 52 कहानी अब तक प्रकाशित हो चुकी है। इन की पहिली कहानी 'फुलवा ' उ1997 में हंस पत्रिका मे प्रकाशित हुई। रत्नकुमार सांभरिया की कहानी फुलवा ऐसी कहानी है जो नब्बे के बाद के मानवी लोकतंत्र में दलीतो की प्रतिभागी सवर्ण मानसिकता को अभिव्यक्त करती है। फुलवा के गठ बाँध को देखकर ही ईष्या वश वह सामंती मानसिकता से उभर नही पाता है। उसकी दृष्टि से फुलवा की द्वारा कहे गये इन शब्दों में तोडा है – "अब तो पद और पैसे का जमाना है , जात–पात का नही। बेटी के लिये नोकरी की सिफारिश करनी है , तो जा कर फुलवा की बहू के पाँव पकड़ ले और तब तक मत छोड़ जब तक वह हाँ कह दे।" 1

बकरी के दो बच्चे :

इस कहानी मे देखने को मिलता है कि दलितों के भेड – बकरी समझने वालों की कमी नही है। कहानी में दलित दलपत के बकरी के दो बच्चे जमीनदार दान सिंह के घर मे गुस जाते है। जमीनदार का बेटा इन्हें जमीन पर पटकर मार देता है। जब दलपत जमीनदार से इस की शिकायत करता है तो जमीनदार पश्चाताप करने की बजाय अकडकर अहं का भाव से कहता है, " देड और भेड को हम जीवन नही मानते।" 2

चपडासन :

यह आणि विधवा ओ के शोषण को अभिव्यक्त करती है। इस कहानी के मुख्य पात्र मीता है। तहसीलदार धर्मपाल उसका हाथ कसकर पकडते हुए कहता है , " तुम्हारे कारण मुझे अनिद्रा की बिमारी हो गई है ।"3 इस पर मीता झटके से अपना हाथ छुडाकर तहसीलदार को मजा चखाने के लिए पुलिस स्टेशन जाकर एफ. आय. आर. दर्ज कराती है।

अनुष्ठान :

इस कहानी मे अंधविश्वास की पराकाष्टा देखने को मिलती है। जहा पर कहानी की नायिका सरस्वती पुत्र प्राप्ति के लिए अपने पति से विश्वासघात कर तांत्रिका को अपना शरीर सौप देती है। सरस्वती को पुत्र प्राप्त नही होता, लेकिन पुत्र शांक में तांत्रिक प्राण पुणेरु उड जाते है।

विपर सुदर एक कीने :

इस कहानी मे गाँव के बहुत से चमार गंगाजल हाथ मे लेकर सुत का धागा पहन लेते है। इससे उनकी जात बडी हो गई है ; लेकिन जीवन लाल को छोटा भाई श्याम लाल अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों के चलते ऐसा नही करता है। अतः जीवन लाल श्याम लाल को नीच जात का ही मानता है। कहानी मे शाम लाल का कथन भी है – " आज बड़ो बन गयो तू! अरे बाजरा की रोटी, चिगल चिगल दाँतों से काट काट। मैंने तुझे खिलाई थी। माँ नहीं रही थी अपनी। मैने तेरा गू – मूत तक धोया । मैं ना हो तो, तो तागों लेने से खून ना बदल गयो आपणों । " 4

मै जीती :

इस कहानी मे एक नाजायज गर्भ को खेत में गिरा दिया जाता है। तथा किन्हीं परोपकारी व्यक्तियों द्वारा उसे शिशु अस्पताल पहुचाने पर उस लहुलुहान संक्रमित एवं मवादयुक्त लोथड़े को डॉक्टर एवं नर्स बचाने का लाख प्रयास करते हैं। इसके बावजूद वह उसे बच्चा नही पाते तथा वह इस संसार से मुक्ति पा लेता है। एक ओर यह कहानी अनैतिक काम संबंधो पर कुठाराघात करती है। वही दुसरी ओर समाज मे हो रही 'कन्या भ्रूणहत्या ' का भी पर्दापाश करती है।

खेत :

इस कहानी में सांभरिया जी द्वारा पिछड़े एवं कमजोर वर्ग के प्रति शिक्षित चालबाज लोगो की बदली नियती और कुटील नीती पर प्रहार किया है। जिसमे कहानी का पात्र बुडा केरसिंग दलित होते हुए भी खुद्दारी एवं जीवटता की मिशाल हैं। शहरों के विकास से गाँव कंकरीट के जंगल में तब्दील हो रहे है। जमीन की कीमत प्रत्यक्षित रूप से बढ रही है। जिसके कारण बूढ़े केरसिंह के खेत को हडपने के लिए कपटी, दुष्ट , धोकेबाज लोगो की लाईन खडी है। केरसिंह खरीददारों को जवाब देता है कि , " कह देना ना बेचूं. बूढा की ना में दुत्कार भी है और फटकार भी है।" 4 अंत मे एक कुटील भ्रष्ट वकील द्वारा साँठ – गाँठ करके दस्तखत किया पेपर बूढ़े केरसिंह के समझ रखता है।

बदन दबाना :

इस कहानी में जाँत पाँत के आधार पर नहीं बल्कि रूपया पैसा, पद एवं शोहरत के आधार पर जमींदार हलक सिंह की खैर खबर ली गई है।

सबाखे :

एक ऐसी कहानी है जो विकलांगो का प्रतिनिधित्व करती है। सभी प्रकार के विकलांग एकत्रित होकर जमन वर्मा के साथ अन्याय का प्रतिकार करते है।

आखेट : इस कहानी में नायक ' सोमा ' एवं नायिका रेवती है। इस्मे रेवती त्रासदी का शिकार होती है। "वासना के वशीभूत नानक सिंह की नजर रेवती पर थी। नानक सिंह पशुता पर उत्तर आता था। रेवती चीखी , चिल्लाई और छुटने के लिए चटपटाई लेकिन नानकसिंह उसे अपनी बाहो से भींचता चला गया। निरीह और असहाय रेवती, जैसे छिपकली के मुँह में फँसी तिल्ली...! द्रोपदी सबल थी रक्षक श्रीकृष्ण थे गरीब रेवती का यहाँ कौन, दुर्योधन से उसकी अब्रू कौन बचाये। " 6

शर्त :

इस कहानी मे दलितों द्वारा शोषण के विरोध में आक्रोश और बदला होने की भावना बलवती होती दिखाई देती है। जिसमे एक बाप द्वारा अपनी बेटी की इज्जत लूट जाने पर प्रतिक्रिया स्वरूप वह बदला लेता है। जिसमे वह गाव के मुखिया का हिसाब – किताब इन शब्दों मे करता है – " मुखिया साब इज्जत का सवाल है यह आपकी सो मेरी इज्जत। आपकी लडकी मेरे लडकी के साथ रहेगी।" 7

निष्कर्ष :

रत्नकुभार सांभरिया की दलित कहानियों की रूढियों से भी अपने को मुक्त करते करते हुए दिखाई पडते है। इससे दलित कहानी मे एक ढंग की एक रस्ता और एकरूपता दिखाई पडती है। सांभरिया जी की कहानियों के शिल्प पर अलग से बात करना जरुरी है। इनकी ज्यादातर कहानिया संरचना के लिए काफी लिहाज से संधी हुई है। इनकी कहानियों मे दो – दो शब्द वाक्य भी मौजूद हैं। इनकी कहानियों में जिस जातीवादी समायोजन की बात उपर की जा रही हे स्पष्ट है कि वह इस कहानी में मौजूद है। कहानियों में दलित समाज की प्रगति और उसकी बदलती सामाजिक हैसियत की साक्षी है।

10.रत्न कुमार सांभरिया की कहानियों में वृद्ध विमर्श

– *डॉ.जय शंकर शुक्ल*

कहानियों में वृद्ध विमर्श की जब हम बात करते हैं तो हमारे सामने निश्चित तौर पर आज के मुख्य धारा के साहित्य में वृद्धों पर चर्चा परिचर्चा उनके समस्याओं पर विचार और उनके लिए समाधान की प्रस्तुति प्रमुख रूप से हमारे सामने आती हैं। हमारे आलेख के लिए हमारे द्वारा चयनित लेखक रत्न कुमार सांभरिया की कहानियों में वृद्ध विमर्श को लेकर के हम देखते हैं कि वह वृद्धों के लिए न केवल उनकी समस्याओं पर चर्चा करते हैं बल्कि उनके लिए समाधान भी प्रस्तुत करने की ओर प्रतिबद्ध दिखाई पड़ते हैं। लेखक की प्रतिबद्धता उनके लिए स्थान बनाने की प्रवृत्ति को भी दर्शाती है। लेखक की कहानियां अपने आप में कथा नायक और कथा नायिका के साथ–साथ एक सफल आधार के रूप में वृद्धों को प्रस्तुत करने का आधार रहा है, जिसमें वे काफी हद तक सफल भी रहे हैं। लेखक के इस कार्य को आने वाले समय में उनके द्वारा किए गए एक संयुक्त परिवार की अवधारणा के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य माना जाएगा। हम देखते हैं कि आज के समय में हम वह प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं जो बिकाऊ होता है। यहां पर हमारे द्वारा प्रस्तुत किए गए सामान की गुणवत्ता विशेष मानी जा सकती है। उसको देखते हुए हमें एक नए धारा का सृजन करते हुए हर उस व्यक्ति को अपने आलेखन में लेकर आना होता है, जो इस समाज की प्रमुख कड़ी के रूप में अपने आप को प्रदर्शित करता हुआ दिखाई देता है। हम जब कभी किसी को हाशिए पर छोड़ते हैं तो वहां एक परंपरा को हम उपेक्षित कर रहे होते हैं। रत्न कुमार सांभरिया की कहानियों में यह बातें सहज रूप से दिखाई पड़ती हैं। बीज शब्द : समाज, मान्यता, मूल्य, प्रतिबद्धता, समर्पण, उपेक्षा, अपेक्षा, युगधर्म, देशकाल, वातावरण, परिस्थितियां, अनुभव, अभिव्यक्ति, मुख्यधारा, विशिष्ट प्रयोजन, उपकार तथा दृष्टिगोचर।

कहानियां सदैव से अपने युग का प्रतिनिधित्व करती हैं। युग का प्रतिनिधित्व से मेरा मतलब है कि उस समय समाज में प्रचलित मूल्यों, मान्यताओं, आदर्शों एवं विश्वासों का प्रतिनिधित्व करना। अपने समय के देश, काल एवम वातावरण के प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने के कारण ऐसा कहा जाता है कि कहानियां समय विशेष के बहुत सारे महत्वपूर्ण घटनाओं के साथ–साथ नीति और समाज सम्मत विमर्शों को भी प्रचलन में रखती हैं। कहानियां ही वास्तव में इन उपांगों को बहुत समय तक दस्तावेज के रूप में रखने का यत्न करती हैं। और यह अपने आप में बेहद उपयोगी भी माना जाता है। कहानियों में मूलत उनका शिल्प और कथ्य दो चीजें प्रमुख होती हैं। जब हम कथ्य की ओर ध्यान देते हैं तो उसमें भाषा, विचार, संवाद, पृष्ठभूमि एवं किरदारों के परिवेश और देशकाल वातावरण आदि प्रमुख रूप से आते हैं। कहानियों का भी एक परंपरा और सातत्य होता है, जो उसे युगों युगों तक जनमानस में बनाए रखता है। इस तरह से पाठक, पाठक न रहकर स्वयं को एक किरदार समझता है। और कथानक में घटी हुई घटनाएं उसे अपने जीवन से जुड़ी हुई प्रतीत होती हैं।

इसे हम रत्न कुमार सांभरिया जी के कहानी फुलवा में देख सकते हैं, जहां वह अपनी कथा नायिका फुलवा के व्यक्तित्व का चित्रण करते हुए कहते हैं कि– उसके चेहरे का तेज दिपदिपा रहा था। वह अपने व्यक्तित्व में एक विलक्षण प्रतिभा से संपन्न दिख रही थी। वह अपने जीवन में घट रही घटनाओं को लेकर के सतर्क और सावधान रह रही थी।'1रत्न कुमार सांभरिया की चयनित कहानियां", चयन एवं संपादन–डा कामराज सिन्धु, प्रकाशक– इंडिया नेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड नोएडा, प्रकाशन वर्ष– 2022, पृष्ठ–1। यहां पर लेखक द्वारा अपनी कहानी में समाज के वरिष्ठ तम व्यक्तियों के लिए रचे गए ताने–बाने का बहुत ही सुंदर प्रतिमान प्रदर प्रदर्शित देखा जा सकता है रचनाकार ने अपने लेखन में समाज में सबसे महत्वपूर्ण किन दो हाशिए पर निरंतर अकेले जा रहे लोगों के बारे में अपने विचारों को प्रस्तुत करने में बेहद सतर्कता बरती है और इस तरह से उन्होंने एक जन चेतना को प्रेरित करने का शब्दों के माध्यम से महत्वपूर्ण कार्य भी किया है।

हम जानते हैं के समाज में इसके महत्वपूर्ण अंग इसकी सबसे आवश्यक इकाई के रूप में मानव को माना जाता है, जिसके जीवन के अनेक चरण और पक्ष होते हैं। मनुष्य जीवन के इन चरणों और पक्षों के आधार पर ही उसकी सक्रियता उपादेयता एवं सामाजिक योगदान को देखा जा सकता है। सहयोग की धारणाएं भी यहीं से सामने आती है। और यहीं से ही सहयोग और समर्थन की आवश्यकता भी व्यक्त की जाती है। रत्न कुमार सांभरिया अपने लेखन में तटस्थ होते हुए भी समाज के इस तबके के प्रति पूरी तरह से संवेदनशील हैं। उनकी संवेदनशीलता उनके रचना धर्मिता में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। कहानियों में वृद्ध विमर्श के अंतर्गत वह जहां अपनी कहानियों में वृद्धों को पर्याप्त स्पेस देते हैं, वहीं पर उनके द्वारा लिखी हुई कुछ कहानियां वृद्धों पर ही मुख्य रूप से केंद्रित है, जो बहुत ही महत्वपूर्ण ढंग से रचनाकार की प्रतिबद्धता को प्रस्तुत करती हैं।

उनकी कहानियां समाज में एक नए प्रयोग के रूप में है, जो यह बताती है कि हमें उस वटवृक्ष का पूरा ध्यान रखना चाहिए जिसकी छांव में हम बड़े हुए हैं, पले हैं तथा बड़े हुए हैं। जीवन के बहुत सारे गुणों को हमने यही से सीखा है। और हमने अपने आप को समाज में स्थापित करने के लिए प्रयत्न किए हैं। रत्न कुमार सांभरिया इस मामले में बेहद संजीदा हैं। उनकी रचनाएं बहुत ही परिष्कृत और संग्रहणीय है। मानवीय चेतना अपने साथ बहुत सारी सकारात्मकता को लेकर आती है। मानव आयु के साथ–साथ अपनी सक्रियता को बढ़ाता है, जिसमें उसके अनुभव का प्रमुख स्थान होता है। जीवन में हमें निरंतर कुछ करके हीहासिल होते हैं। कुछ करने में हमसे गलतियां भी होती हैं और उन गलतियों के परिणाम स्वरुप सबक भी मिलते हैं। यह सब मिलकर एक व्यक्ति को निरंतर सफलता की ओर आगे को ले जाते हैं। '2 रत्न कुमार संभरिया की चयनित कहानियां,चयन एवं संपादन–डा कामराज सिन्धु, प्रकाशक– इंडिया नेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड नोएडा, प्रकाशन वर्ष– 2022, पृष्ठ–8।

जब व्यक्ति कोई काम करता है, तो उसमें दो ही स्थितियां होती है। या तो वह सफल होता है अथवा असफल होता है। व्यक्ति की सफलता यह सुनिश्चित करती है कि उसने टारगेट को सरलता पूर्वक, सफलतापूर्वक हिट किया है। लेकिन जब कभी वह सफल नहीं होता है तो यह माना जाता है कि उसके द्वारा अपने कार्य करने की प्रक्रिया में कहीं न कहीं कुछ त्रुटियां रह गई है। जिससे सबक लेकर वह जीवन में उन त्रुटियों से बचते हुए फिर से अपने को संयत करके अपनी कार्य पद्धति में परिवर्तन करके अपनी प्रतिबद्धता को सुनिश्चित करके आगे को बढ़ता है। यहां पर हमें दो तरह से चीजों को नियंत्रित और निश्चित करने की अवधारणा पर बल मिलता है। यहां पर हमें एक अवसर मिलता है, जिससे हम स्वयं ही गलतियों को सुधारने अपने कार्यों के द्वारा स्वयं को स्थापित कर पाते हैं। दूसरा यह अवसर मिलता है कि हम अपने पूर्ववर्ती लोगों द्वारा किए गए कार्यों में उनकी गलतियों या अच्छाइयों को देख कर के अपनी आवश्यकता अनुसार उनका अपने लिए प्रयोग कर सकें। इन दोनों स्थितियों में ही हम अपनी सफलता को सुनिश्चित करने की ओर आगे बढ़ते हैं। और समाज को कुछ देने की प्रक्रिया में अपने योगदान को रेखांकित करते हैं। '3 रत्न कुमार संभरिया की चयनित कहानियां,चयन एवं संपादन–डा कामराज सिन्धु, प्रकाशक– इंडिया नेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड नोएडा, प्रकाशन वर्ष– 2022, पृष्ठ–41। मानव मात्र के साथ यह विशिष्टता जुड़ी हुई है। क्योंकि उसे विवेक से जुड़ा हुआ माना जाता है। और यह विवेक उसे नित नया नया करने की ओर प्रेरित करता है।

कहानीकार रत्न कुमार संभरिया अपने सृजन में बेहद सतर्क हैं। उनके अपने विश्लेषण वह वृद्धों को अलग स्थान पर प्रतिष्ठित करते हैं। उनकी कहानियों में हम यह देखते हैं कि उन्होंने अपनी बात रखते हुए वृद्धों को हाशिए से मुख्यधारा में ही लाने का कार्य नहीं किया है अपितु उनकी सर्वजन स्वीकार्यता को भी सुनिश्चित किया है।लेखक ने उनके योगदान को रेखांकित करने के साथ–साथ उनकी सक्रियता को भी बहुत ही महत्वपूर्ण माना है। और उसके लिए जन आवाहन भी किया है।भारतीय समाज में आदिकाल से ही संयुक्त परिवार की अवधारणा रही है। संयुक्त परिवार का तात्पर्य होता है एक ही जगह पर कई पीढ़ियों का एक साथ रहना। यहां दादा दादी भी होते हैं, माता–पिता भी होते हैं और होते हैं हमारे विस्तारित वह रिश्ते जिन्हें हम समय के साथ साथ निभाना और जीना सीख पाते हैं। वास्तव में यह अपने आपने बहुत ही महत्वपूर्ण बात है कि हम अपने जीवन में रिश्तो को किस प्रकार से निभा रहे हैं।'4 रत्न कुमार संभरिया की चयनित कहानियां,चयन एवं संपादन–डा कामराज सिन्धु, प्रकाशक– इंडिया नेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड नोएडा, प्रकाशन वर्ष– 2022, पृष्ठ–49। कहां अपने दायित्व का पालन कर पाते हैं और कहां हम वंचित रह जाते हैं। यही चीजें हमें हमारी प्रतिबद्धताओं से रूबरू करवाती हैं। हमारी प्रतिबद्धतायें हर उस समाज के प्रति है, उस समाज में क्रियाशील हर व्यक्ति और संस्था के प्रति है जिससे किसी न किसी रूप में हम जुड़े हुए हैं।हम उनसे उपकृत होते हैं और उपकृत करने की क्रिया में स्वयं को प्रस्तुत भी करते हैं। यह भारतीय समाज के ताने–बाने का प्रमुख रूप है, जिसका पालन करके हम एक मिसाल प्रस्तुत करते हैं। साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज में जो कुछ भी घटता है साहित्य में वह अंकित होता चला जाता है। यह एक साहित्यकार की सबसे बड़ी विजय होती है कि वह समाज के प्रत्येक अंग, उपांग और उपादान को अपने लेखन के मुख्यधारा में रखते हुए आगे बढ़े। जब बात वृद्धों की आती है तो ये समाज के वह वटवृक्ष है जिन के सहयोग से बहुत सारे पौधों को जीवनदान मिलता है। और यही पौधे बड़े होकर वृक्ष बन कर के समाज को नई दिशा देते हैं।

रत्न कुमार सांभरिया ने अपने समग्र लेखन में वृद्धों को उचित प्रतिनिधित्व मिले इसका पूरा ध्यान रखा है। जब बात कहानी संग्रह की आती है तो हम देखते हैं कि उन्होंने विभिन्न कहानियों के लेखन में वृद्धों को उचित स्थान देने के साथ–साथ

कुछ कहानियां पूरी तरह वृद्धों पर केंद्रित लिखी है। और इस तरह से अपने उस समाज के प्रति उन्होंने सच्ची निष्ठा प्रदर्शित की है जिसमें वह अपने आप को पा रहे हैं। हर उस व्यक्ति के लिए उनके मन में अपार श्रद्धा और जुड़ाव है, जो उनके लेखन के द्वारा हमारे सामने स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। वह जीवन की दौड़ में हाशिए पर रह गए लोगों के प्रति बेहद चिंतित हैं। और उनके लिए कुछ करना चाहते हैं, जो उनके साहित्य लेखन के द्वारा स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। यह एक बहुत बड़ी सोच को दिशा देती हुई परंपरा प्रतीत होती है, जहां पर एक रचनाकार जो समाज को नेतृत्व ही देने की क्षमता रखता है, समाज को उसके दायित्वों का बोध करा रहा होता है।कथाओं में वृद्धों को स्थान देने का कार्य साहित्यकारों द्वारा बहुत समय पहले से किया जाता रहा है क्योंकि यह हमारा भविष्य है, जो वर्तमान में हमारे सामने अपने आप को विशिष्ट परिस्थितियों में प्रस्तुत कर रहा है। जब हम उसकी और अपने भाव और अपने विचार को सहजता से क्रियात्मक रूप लेते हुए सकारात्मक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करते हैं तो निश्चित तौर पर हमारे द्वारा रखी गई एक एक बात अपने साथ निर्धारित परंपराओं को लेकर के चलती है और उन्हीं के आधार पर नए रास्तों का सृजन करती है। जिन रास्तों पर चलकर के मानव मात्र अपने लिए नए नए प्रतिमान गढता हुआ प्रतीत होता है, इन प्रतिमाओं के माध्यम से हम देख पाते हैं कि मनुष्य जीवन के विभिन्न पक्षों को जो कि वास्तव में उसके द्वारा महत्व दिए जाने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होते हैं, उन पर ध्यान देता है, उन्हें महत्व देता है और आने वाले पीढ़ियों को उसके लिए तैयार करता है। '5 <u>रत्न कुमार संभरिया की चयनित कहानियां,चयन एवं संपादन–डा कामराज सिन्धु, प्रकाशक– इंडिया नेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड नोएडा, प्रकाशन वर्ष– 2022, पृष्ठ–58।</u>

मानवीय संबंधों के ताने–बाने के बारे में विचार करते हुए हम कर सकते हैं कि यह वह विरासत है जो निश्चित तौर पर हम से अपने लिए ध्यान देने की अपेक्षा रखती है। वृद्ध विमर्श अपने आप में बहुत ही विस्तृत विषय है, जिसके अंतर्गत वक्त केंद्रित कहानी कथा से लेकर के उनके विषय में उनकी समस्याओं को लेकर उनके विचारों को लेकर उनके अनुभवों को लेकर हमारे द्वारा समय–समय पर संवाद करना आता है। यह संवाद हेतु मार्ग प्रशस्त करता है। जब हम संवाद करते हैं तो यहां पर उनकी समस्याओं के लिए समाधान के नए–नए रास्ते खुलते हैं। जब हम संवाद के लिए मार्ग प्रशस्त करते हैं तो वहां उनके लिए एक स्पेस मिलता है। यहां पर वह अपने आप को अच्छी तरह से प्रस्तुत कर दें और आने वाले समय में अपनी भूमिका को लेकर के सतर्क और सजग रहें। किसी भी व्यक्ति की उपादेयता समाज में जब तक होती है तब तक वह सक्रिय रहता है और अपनी उपादेयता के अनुसार नित्य निरंतर कुछ नया करने की और कटिबद्ध भी होता है। जब समाज में उसकी उपयोगिता और उसकी जरूरत खत्म होने लगती है तो धीरे–धीरे वह पर्दे के पीछे चला जाता है और अपनी भूमिका के समाप्त होने से कुंठा और हताशा का भाव लिए अपने जीवन को ही बोझ समझने लगता है। इस चीज से बचते हुए कहानीकार रत्न कुमार सांभरिया ने बड़े ही सहज भाव में अपनी बातों को प्रस्तुत किया है जो आने वाली पीढ़ियों के लिए एक मील का पत्थर भी साबित होगा।'6 <u>रत्न कुमार संभरिया की चयनित कहानियां,चयन एवं संपादन–डा कामराज सिन्धु, प्रकाशक– इंडिया नेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड नोएडा, प्रकाशन वर्ष– 2022, पृष्ठ–84।</u> यहां इस आधार पर हम देख पाते हैं कि लेखक ने अपनी रचनाओं में समय के साथ चलते हुए युग धर्म का पालन करके समाज के मुख्यधारा में जिन्हें होना चाहिए उनके बारे में उनके हाशिए पर जाने के समस्त कारणों का पड़ताल करते हुए एक नई दिशा का संचार किया है और इस तरह से उसने आने वाली पीढ़ियों को एक शब्द भी दिया है और साहित्यकारों हेतु एक स्पष्ट दिशा निर्देश का संचयन भी किया है कहानीकार अपने कहानियों में इन चीजों को लेते हुए बेहद सजग है वह जानता है कि उसके द्वारा लिखे हुए शब्द किसी के लिए संभल बन सकते हैं तो किसी के लिए मुसीबत भी बन सकते हैं इन दोनों चीजों का उसने बराबर ध्यान रखा है।

रत्न कुमार संभरिया की कहानियों में वृद्ध कथा नायक के रूप में भले ही नहाते हो लेकिन वह अपनी उपादेयता को लेकर के बेहद संजीदा और सफल रहे हैं। वह कथा नायक के महत्वपूर्ण समर्थक के रूप में हमारे सामने आते हैं। और कहीं–कहीं वैचारिक विमर्श नेता होने की स्थिति में वह विचार गत विभिन्न नेताओं के लिए आधार प्रस्तुत करते हुए नए सुधार की वकालत करते दिखाई देते हैं। इस तरह से समाज में जहां भी तोड़फोड़ की गुंजाइश होती है उसे सुधारने और संभालने का जज्बा गर्म देखें तो इन वृद्धों के द्वारा हमें दिखाई पड़ता है, जिनको समाज के मुख्यधारा में लेकर के लेखक ने अपनी बात कहने का साहस पूर्ण कार्य किया है।वास्तव में जब वह अपने लेखन में वृद्धों को केंद्र में लेकर चलते हैं तो लगता है कि संपूर्ण कथानक उन्हें के इर्द–गिर्द अपने भावों को लेकर के चल रहा है। यह मानवीय चेतना के साथ–साथ मानवीय पथ प्रदर्शन भी सामने आता है जो नई पीढ़ियों के लिए नए रास्ते खोलता है और उनके अनुभव ही

नेता को अनुभव सफलता में बदल देता है यह हमारे जीवन की आज की सबसे बड़ी मांग है कि हम संयुक्त परिवार की अवधारणा को बल में और अखबार सांवरिया जैसे लेखक इसमें काफी हद तक सफल होते दिखाई देते हैं उनके अपने कथन अनुसार देखें कि वृद्ध हमारे समाज के सफल स्तंभ है यह हमारे ऊपर बोझ नहीं है बल्कि हमारे समाज को दिशा देने वाले एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनके माध्यम से हम समाज में सकारात्मकता और सफलता को लेकर आ सकते हैं और इस तरह से समाज के दुर्गुण और अनीति को दूर करके एक स्वस्थ और सुसंस्कृत समाज की स्थापना कर सकते हैं।'7 रत्न कुमार संभरिया की चयनित कहानियां,चयन एवं संपादन–डा कामराज सिन्धु, प्रकाशक– इंडिया नेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड नोएडा, प्रकाशन वर्ष– 2022, पृष्ठ–94।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रत्न कुमार संभरिया अपने लेखन में पूरी तरह से सजग और सतर्क हैं उन्होंने जीवन के हर पक्षों के साथ–साथ समाज में क्रियाशील हर उपादान को ले करके अपनी साहित्य रचना की है विशेषकर वृद्धों को लेकर उनके द्वारा रचे गए कथानक अपने आप में बेमिसाल हैं जो समाज को आने वाले दिनों में भी दिशा देंगे और एक नई परंपरा की स्थापना की और हमें अग्रसर होने हेतु प्रेरणा और संबल प्रदान करेंगे। वृद्ध विमर्श यहीं पर समाप्त नहीं होता वरन यह शाश्वत है जो निरंतरता को मांगता है। समाज के प्रमुख अंग के रूप में वृद्धों को स्वीकार करने के साथ–साथ उन पर परिचर्चा एवं संवाद उन्हें मुख्यधारा में बनाए रखने के लिए बहुत ही आवश्यक है।साहित्य वृद्ध विमर्श पर जितना केंद्रित होगा समाज अपने आप को उतना ही उनके समीप पाएगा। उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि उनको मुख्यधारा में बनाए रखने के साथ–साथ उनकी समस्याओं पर विमर्श करके कुछ समाधान प्रस्तुत की और हमें आगे बढ़ाता है। जब हम ऐसा कर पाते हैं तो निश्चित तौर पर हम अपने स्वयं के साथ–साथ अपने पूर्वजों के ऋणों को उतार पाते हैं। यह आज के समाज में उनकी उपादेयता और उनकी स्वीकार्यता को रेखांकित करने का एक विशिष्ट कार्य माना जा सकता है। वृद्ध व्यक्तियों के पास जो अनुभव संचित है वह समाज की पूंजी है और इस पूंजी को समाज समय–समय पर आवश्यक जन सरोकारों के साथ लोगों के सामने प्रस्तुत करता है जिससे कि वह इससे सबक लेकर के अपने जीवन में उपलब्धियों की ओर आगे बढ़ सकते हैं और गलतियों से बच सकते हैं। गलतियों से बचना ही आज के समय में हमारी नई पीढ़ी के लिए बहुत आवश्यक हो गया है। जितना हम उससे बच पाते हैं उतना हम प्रगति के पथ पर आगे की ओर बढ़ते चले जाते हैं। जिसके लिए संयुक्त परिवार की अवधारणा और वृद्धों की स्वीकार्यता, उनकी उपादेयता अत्यंत आवश्यक है। रत्न कुमार सांभरिया के कथा साहित्य में वृद्धों पर प्रचुर मात्रा में चर्चा किया गया है। उनकी समस्याओं, उनकी जरूरतों तथा उनकी उपादेयता पर चर्चा साहित्य की विशिष्ट उपलब्धियों में से एक माना जा सकता है, जिसके लिए रत्न कुमार सांभरिया जी और उनका कथा साहित्य हमारे लिए विशेष अनुकरणीय है और हमारा समाज उनका चिर ऋणी रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची–(1)रत्न कुमार संभरिया की चयनित कहानियां,चयन एवं संपादन–डा कामराज सिन्धु, प्रकाशक– इंडिया नेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड नोएडा, प्रकाशन वर्ष– 2022, पृष्ठ–1।(2)रत्न कुमार संभरिया की चयनित कहानियां,चयन एवं संपादन–डा कामराज सिन्धु, प्रकाशक– इंडिया नेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड नोएडा, प्रकाशन वर्ष– 2022, पृष्ठ–8।(3)रत्न कुमार संभरिया की चयनित कहानियां,चयन एवं संपादन–डा कामराज सिन्धु, प्रकाशक– इंडिया नेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड नोएडा, प्रकाशन वर्ष– 2022, पृष्ठ–41।(4)रत्न कुमार संभरिया की चयनित कहानियां,चयन एवं संपादन–डा कामराज सिन्धु, प्रकाशक– इंडिया नेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड नोएडा, प्रकाशन वर्ष– 2022, पृष्ठ–49।(5)रत्न कुमार संभरिया की चयनित कहानियां,चयन एवं संपादन–डा कामराज सिन्धु, प्रकाशक– इंडिया नेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड नोएडा, प्रकाशन वर्ष– 2022, पृष्ठ–58।(6)रत्न कुमार संभरिया की चयनित कहानियां,चयन एवं संपादन–डा कामराज सिन्धु, प्रकाशक– इंडिया नेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड नोएडा, प्रकाशन वर्ष– 2022, पृष्ठ–84।(7)रत्न कुमार संभरिया की चयनित कहानियां,चयन एवं संपादन–डा कामराज सिन्धु, प्रकाशक– इंडिया नेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड नोएडा, प्रकाशन वर्ष– 2022, पृष्ठ–94।

11.बहिष्कृत समाज की मुक्ति की कहानियाँ

–प्रो.डॉ.किशोरी लाल 'पथिक'
कला, शिक्षा एवं समाज विज्ञान संकाय प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग व दर्शनशास्त्री विभाग,विश्वविद्यालय का सिण्डीकेट सदस्य, जयनारायण विश्वविद्यालय, जोधपुर, राज.

'हम भारत के लोग' भारतीय संविधान की प्रस्तावना का मूल तत्त्व है, जिसमें समता, समानता और बंधुत्व का सार्वभोम भाव निहित है। यह भाव व्यक्ति की गरिमा सुनिश्चित करने तथा बन्धुता बढ़ाने के साथ लोकतंत्रात्मक अवधारणा को सुनिश्चित करने का वचन देता है। इस दृष्टि से विचार करें तो भारत के सभी लोगों को आत्म–सम्मान से जीने का पूरा अधिकार है, बिना किसी भेदभाव और भय के। विपरीत इसके आज भी एक ऐसा समाज है, जिसे मूलभूत सुविधाओं से वंचित कर हाशिए पर धकेल दिया गया है। यह समाज मुख्यधारा के समाज से कटकर ऐसी बदरंग या वीरानी दुनिया जीने को विवश है, जिसे देखकर लगता है कि क्या धरती पर मनुष्य के नाम पर ऐसे जीव भी मौजूद हैं, जो पशुओं से भी बदतर जीने को विवश है। एक ऐसा समाज, जो सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक रूप से पूरी तरह से बहिष्कृत है।

यह समुदाय प्रत्याभूत अधिकारों तथा तमाम साधन–सुविधाओं से वंचित रहकर असुरक्षित जीवन जीने को बाध्य है। इनके जीवन में गर्दिश ही गर्दिश है। कुहासा है कि हटने का नाम ही नहीं लेता। ये वीराने लोग ''धरती बिछाते हैं, आसमां ओढ़ते हैं, अपने पसीने से नहा लेते हैं और भूख खाकर सो जाते हैं।'' परिणामतः ये लोग उपेक्षा, अपमान व घृणा के पात्र बने हुए हैं। इनके अन्तहीन दर्दों और जख्मों का सिलसिला सतत जारी है। गरीबी, फटेहाली, असुरक्षा, कुपोषण, भूख, बीमारी, तिरस्कार इनकी स्थाई पूंजी है, जो बढ़ती जाती है। आखिर क्यों? ये प्रश्न प्रत्येक संवेदनशील व्यक्ति के मन में उठने चाहिए।

अमेरिकन समाजशास्त्री रॉबर्ट ई. पार्क ने 1928 ई. में अपने एक शोधपत्र में अवधारणात्मक रूप से हाशिए के समाज पर सबसे पहले चर्चा की थी। उन्होंने 'सीमान्त आदमी' कह कर अपनी अवधारणा को स्पष्ट किया था–''प्रजातियों के परस्पर संघर्ष, स्थान परिवर्तन, लैंगिकता आदि के कारण भेदभाव उत्पन्न होता है, जिसके कारण कुछ लोग बेचैन, रुग्ण और कलांत अनुभव करते हुए मुख्यधारा से कट जाते हैं। एक ही धरती पर दो दुनियाएँ विकसित होने लगती है। अनेकोनेक संकट व बेचैनी के जीवन–चक्र से गुजरता हुआ यह वर्ग ड्यू ब्लॉयज के शब्दों में दोहरी चेतना का अनुभव करता है तथा अपने नैसर्गिक अधिकारों की चाहत रखता है, किन्तु ताकतवर समूह इन्हें किसी भी तरह मुख्यधारा से बहिष्कृत ही रखना चाहता है।'' फ्रेडरिक रेगार्ट एवं ईवी स्टॉनक्वीस्ट, अंतानियो ग्राम्शी ने होशिए के समाज की अवधारणा को ऐतिहासिक संदर्भों में स्पष्ट किया। ग्राम्शी ने 'सबाल्टर्न' के रूप में नया शब्द दिया, जिसमें दुनिया के सभी वंचित, दलित, उत्पीड़ित लोग सम्मिलित हो सकते हैं, जिनको किसी न किसी तरह सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, नस्लीय, लैंगिक, भाषाई, स्थानिक आदि रूपों में भेदभाव व वंचना का शिकार होना पड़ा है।

भारत दुनिया का सबसे बड़ा बहुलतावादी देश है, जहाँ एक साथ कई संस्कृतियाँ समान्तर रूप में पल रही हैं। भारत की स्वाधीनता के पचहत्तर वर्ष पश्चात भी मुट्ठी भर लोगों के हाथों में ही शासन–सत्ता व अर्थतंत्र की चाबी है। यह अभिजात्य वर्ग जैसा चाहे वैसे देश को चला रहा है। आश्चर्य इस बात का है कि वंचित समुदाय जो कि हाशिए पर धकेल दिया गया है, जिनकी जनसंख्या का एक बड़ा प्रतिशत है।

आधुनिक दौर में जब साहित्य और राजनीतिक धरातल पर विमर्शों के रूप में दलित, आदिवासी, स्त्री आदि ने अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाना प्रारम्भ किया तब सदियों से उपेक्षित हाशिए का यह समाज चर्चा में आया, जिन पर साहित्यकारों ने अपनी कलम दौड़ाना प्रारम्भ किया। फलस्वरूप सदियों से दबी हाशिए की आवाज आज अभिव्यक्ति के अनेकानेक खतरे उठाते हुए मुखरित हो रही है। विमर्शों के इस दौर में जब से अस्मितावादी साहित्य सृजन का सूत्रपात हुआ है, हाशिए के समाज की ओर भी लेखकों का ध्यान जाने लगा है। वैश्विक स्तर पर हाशिए के समाज पर लेखन कार्य हो रहा है। अमेरिका में अश्वेत समुदाय का साहित्य इसी श्रेणी में आता है।

भारतीय भाषाओं के दलित, आदिवासी, स्त्रीवादी लेखकों व अन्य विमर्शों के लेखकों ने हाशिए के समाज को ही तव्वजो दी है। ऐसे लेखकों में हिन्दी पट्टी के जनकथाकार रत्नकुमार सांभरिया का नाम आदर के साथ लिया जाता है। हरियाणा में जन्म लेकर राजस्थान को अपनी कर्मभूमि बनाने वाले सांभरिया जी ने अपने लेखन से नई लकीर खींची है, जिसे नजीर कहा जा सकता है।संग्रह के लिए कुल ग्यारह कहानियों का चयन किया गया है, जो समय–समय पर 'हंस', 'कथादेश', 'नया ज्ञानोदय', 'परिकथा', 'कथाक्रम', 'अन्यथा' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं।

'गूंज' बहुरूपिया मालू के त्रासद जीवन की मार्मिक कथा है। जिसमें उसका घर–परिवार ही उसका शोषक होता है और वह इस शोषण के खिलाफ संघर्ष का रास्ता अख्तियार करता है। जब उसके सगे चाचा उसका मकान बेचने पर आमादा हो जाते हैं, वह अपने चाचा कालू और सौदाई दद् को करारा जवाब देते हुए दाँतुन करते–करते पीक भरा मुँह थूक देता है। पीक तलवार की धार सी मारक होती है। कहानी दमन के खिलाफ एक तीखी 'गूँज' है।

'मैं जीती' कथित अवैध सम्बंधों से उत्पन्न नवजात बालिका की मार्मिक कथा है, जिसे उसकी माँ जन्म देते ही लोक–लाज के भय से जंगल में फेंकवा देती है। लेकिन वह किसी सहृदय के हाथों शिशुगृह पहुँच जाती है। उसकी दीनता देखकर डॉक्टर की भी आँखें भर आती हैं। अत्यंत मार्मिक होने के साथ–साथ यह कहानी समाज शास्त्रीय व जैविक लैंगिक व अवैध संबंधों के संबंध में कई प्रश्न खड़े करती है। कहानी पर समाज कल्याण विभाग द्वारा निर्मित टेलीफिल्म दूरदर्शन पर टेलीकास्ट हुई है। 1992 में अयोध्या में बाबरी मस्जिद के ढाँचे के विध्वंस के बाद कई मुस्लिम परिवारों में दहशत और असुरक्षा की ग्रंथि निर्मित हो गई थी। इसी को लेकर 'लाठी' कहानी सृजित है, जो सौहार्द की प्रतीक बनती है।

'बेस' यानी पहनावे के कारण अपनी इज्जत बचाने वाली आदिवासी नवयुवती अगनी की कहानी है। वह अपने कर्मस्थल से गाँव लौट रही है। बेस के कारण वह ट्रक ड्राइवर, खल्लासी, शिकारी सबसे बच जाती है। कहानीकार ने सिद्ध किया है कि लोगों की दृष्टि में पहनावा ही आपकी आबरू या प्रतिष्ठा है, जो आपके मान–सम्मान को बचाता है। अगनी राजपूती बेस के कारण ही दरिंदों का शिकार होते–होते बच जाती है।

'बंजारन' रूनाबाई के साहस की कहानी है। वह दो पतियों सादूराम व दादूराम के बीच पिस रही है। उसके पति पैसे लेकर उसकी बेटी का रिश्ता एक अधेड़ से करना चाहते हैं। जो कि अपनी अनपढ़ पूर्व पत्नी को मार चुका है। रूनाबाई अपने पतियों से स्पष्ट कह देती है–"नपूतों, चाहे ई कान सुन लो, चाहे ऊ कान। मैं असल बनजारण हूँ, अपनी नाड़ (गर्दन) कटवा लूँगी, पर बेटी से धोखो ना करूँगी।" 'हिरणी' एक मूक पशु की मार्मिक कहानी है, जो संदेश देती है कि पशु भी उपकार मानते हैं। कहानी एक ओर पशुओं के ममत्व व उनमें निहित कृतज्ञता के भाव को प्रकट करती है, तो दूसरी ओर खानाबदोश जिन्दगी के यथार्थ को भी दर्शाती है।

'भभूल्या' कहानी इस संग्रह की बहुत ही सशक्त कहानी है, जो हंस में प्रकाशित हुई थी। इसी शीर्षक से लेखक का चर्चित नाटक भी है। लेखक ने खानाबदोश कुचबन्दे जाति के घियानाराम के माध्यम से एक ओर पुलिस व्यवस्था का कच्चा–चिट्ठा खोला है कि पुलिस किस तरह से कमजोर को दबाती है तथा अपने वरिष्ठ अधिकारी से किस तरह डरती है। थानेदार, एस.पी. से, एस.पी. डी.आई. से डरता है और एक–दूसरे की इच्छापूर्ति के लिए कमजोर पर हाथ मारते हैं। घियानाराम शिक्षु के समान अपने बकरे की बजाय खुद की अँगुली काट हेडकांस्टेबल के मुँह में डाल देता है। घियानाराम के द्वारा टपकती अँगुली बंधी मुट्ठी को भाँजता दिखाकर लेखक अन्याय के विरुद्ध विद्रोह की ओर संकेत करता है।

'टोकरे में गाँठ' सपरानाथ व सरूपानाथ की परस्पर शत्रुता की कहानी है। जिसका कारण सरूपानाथ की घरवाली रमतीबाई है। रमतीबाई की सगाई पहले सपरानाथ से होती है, पर उसके शराबी व कामुक होने के कारण रमतीबाई से उसका रिश्ता टूट जाता है और बाद में वह सरूपानाथ से नाता जोड़ती है। कहानी सपेरों की खतरों से खेलती जिन्दगी के दर्द को बयां करने के साथ–साथ इनकी आपसी शत्रुता को भी प्रकट करती है कि शत्रुता की गाँठ किस तरह से टोकरे में होती है और जिन्दगी ले लेती है। 'गरीब की दौलत' मुफ़लिसी को झेलते एक मजदूर के संघर्ष कथा है, अर्थात "स्वाभिमान गरीब की सबसे बड़ी दौलत होती है। भूखों मर कर भी वह उसे खोना नहीं चाहता।"

'नट की बेटी' खेल–तमाशा दिखाने वाले कूपसिंह व उसकी बेटी की व्यथा कथा है। कूपसिंह के लिये बेटी कमाई का जरिया है, जो रस्सी पर चलकर करतब दिखाती है। एक दिन करतब दिखाते हुए वह रस्सी से गिर पड़ती है और उसका पाँव टूट जाता है। कूपसिँह बेटी को इलाज के लिये पहलवान कमरूद्दीन के पास ले जाता है। कमरू लड़की का इलाज मुफ़्त में करता है। वह नट को सीख देता है "बावरा नट! तेरी बेटी, मेरी बेटी। लड़की तमाशों ना दिखा पावैगी अब। मेनत–मजूरी कर। लड़की ने पढ़ा–लिखा।"

संग्रह की अन्तिम कहानी 'मदारिन' है। कहानी की नायिका मदारिन जीवट वाली स्त्री है। वह अपने पति के साथ डेरे में खानाबदोश जिन्दगी जीने को विवश है। हवस के प्यासे थानेदार की कुदृष्टि उस पर है और एक रात मदारिन के पति की अनुपस्थिति में थानेदार उसके झोंपड़े में घुस जाता है, पर मदारिन अपने जीवट से थानेदार की वासना से बच उसे अर्द्धनग्न

भागने को विवश करती है। इस घटनाक्रम में उसका कुत्ता मददगार होता है।

रत्नकुमार सांभरिया जी की ये कहानियाँ हाशिए के उस समाज की कहानियाँ है, जिन तक नीति–नियामकों का ध्यान नहीं गया है। यह तबका मुख्यधारा से काटा होने के साथ–साथ शोषण का शिकार है। हाशिए के समाज में दबी–कुचली ये जातियाँ है, जो आदिम तरीकों से अपने पेट की भूख शांत करती है। इन कहानियों में आदिम समाज पूरे संघर्ष के साथ हमारे सामने आया है। हाशिए का आदमी कभी पुलिस का शिकार है, तो कभी समाज के कथित सभ्य लोगों की संकीर्ण मानसिकता का, जिसके कारण उसे खुली सांस लेने में भी तकलीफ महसूस होती है।

सांभरिया जी की कहानियों के हाशिए के समाज में मदारी, बणजारे, सपेरे, कलन्दर, नट, कुचबन्दे, मजदूर, समाज से ठुकराये बच्चे आदि हैं, जो समाज में रहते हुए भी सम्मान से बहिष्कृत हैं। इन कहानियों में लेखक इस समाज की मुफ़लिसी के कारणों की न केवल पड़ताल करता है, अपितु उनमें चेतना का संचार कर मुक्ति का मार्ग भी प्रशस्त करता है। कहानियाँ एक ओर गहरे समाज शास्त्रीय शोध का रास्ता खोलती है, तो दूसरी ओर संवैधानिक दायित्वों के निर्वहन की मांग भी करती हैं, ताकि हाशिए के समाज के लोग 'हम भारत के लोग' की अवधारणा को आत्मसात करते हुए आत्म–सम्मान से जी सकें। कहानियाँ अस्मितामूलक विमर्श की सार्थक पहल तो हैं ही, मानवीय मूल्य और व्यहवहार का तकाजा भी पेश करती हैं। जिनमें एक ओर व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिरोध का स्वर है, तो दूसरी ओर इन कहानियों के नायक–नायिकाओं में आत्मसम्मान से जीने की उत्कट चाह भी है। यही प्रावधान भारत का संविधान करता है। बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर का चिंतन ऐसे ही भारत के लोगों की चिंता करता है, जो शोषण से मुक्त होकर मनुष्य कहला सकें। इन कहानियों के पात्र रिरियाने वाले नहीं है, वे बेहद दबंग है और विषम परिस्थितियों का सामना करने वाले हैं। यहाँ आवास, पुनर्वास और चेतना का आह्वान खूबसूरती से हुआ है।

कहानियाँ भावगत दृष्टि से ही नहीं, शैल्पिक दृष्टि से भी समृद्ध हैं। पात्रों की आम बोली के अनुकूल शब्दों का चयन किया गया है। जिसके कारण न केवल पात्रों का चरित्र–चित्रण स्वभाविक रूप से प्रकट होता है व कथानक रूचिकर भी बनता है। शब्दों की कृत्रिमता व कोरा पाण्डितयपन कथाकार को पसंद नहीं है। उन्हें तो बोल–चाल की, आम आदमी की, राह–गलियारे की, चौपाल पर बतियाती भाषा पसंद है। जिसके लिये वे ठेठ ग्रामीण शब्दों को ले आते हैं। जिनके कारण उनकी कलम का जादू और भी सम्मोहित करता है। यही स्वभाविकता पाठकों को, कहानियों को पूरी पढ़ने के लिये बाध्य करती है। स्थानीय परिवेश उतरा है। अतः प्रकृति और परिवेश के कारण कहानियाँ पढ़ते समय चित्रपटल पर चलती हुईं सी लगती हैं।

सांभरिया जी शब्दों के बाजीगर हैं। कम शब्दों में गहरी बात करते हैं। इसलिये उनके यहाँ सूक्ति शैली का अधिक प्रयोग है। बहुत सी बातें वे एक या दो शब्दों में पूर्ण कर लेते हैं। कहानी लिखते समय वे सरपट नहीं दौड़ते। प्रकृति, स्थानीय परिवेश व पात्र की मनःस्थिति के साथ पूरी शिद्दत के साथ सृजन करते हैं। इसलिये उनकी कहानियों का शिल्प अन्य कथाकारों से अलग है। परम्परागत मुहावरों के साथ उन्होंने अपने मुहावरे गढ़े हैं, जो उनकी मौलिक देन है। उन्होंने हाशिए के समाज की संस्कृति, उनके रीति–रिवाज, खान–पान, परम्पराओं और मान्यताओं, रूढ़ियों और कुरीतियों का भी बेबाकी से वर्णन किया है। ताकि यथार्थ पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत हों।

उनकी दलित विमर्श, स्त्री विमर्श और वृद्ध विमर्श पर चयनित कहानियों का सम्पादन कर अलग–अलग पुस्तकों में स्वनामधन्य विद्वानों ने प्रकाशित किया है। इसी श्रृंखला में अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली ने 'हाशिए का समाज : रत्नकुमार सांभरिया की चयनित कहानियाँ के सम्पादन कार्य का दायित्व मुझे सौंपा है। मैं प्रकाशक के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

सुधी और संवेदनशील पाठक चिंतन–मनन कर हाशिए के लोगों को मुख्यधारा से जोड़ने के लिये सतत प्रयास करेंगें, ऐसी मैं इन कहानियों के मद्देनजर अपेक्षा करता हूँ।

12.रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में विकलांग चेतना

–रीता आहूजा
व्याख्याता हिन्दी, बीकानेर, राजस्थान

विकलांग (दिव्यांग) शब्द सुनते ही मनःमस्तिष्क में अनेक छवियाँ उभरने लगती हैं। यथा–बधिर, पंगु, नेत्रहीन, काना, कूबड़धारी। एक समय विकलांगता के सीमित रूप में परिभाषित थी, परन्तु शनैः–शनैः विकलांगता के अन्तर्गत अनेक रूप सम्मिलित होने लगे, कुष्ठ रोगी, मानसिक विक्षिप्त आदि। मनुष्य पृथ्वी पर सृष्टि के आदिकाल से ही सकलांग और विकलांग रूप में जन्मता आया है। अगर सनातनी धर्म ग्रंथों की माने तो व्यक्ति प्रारब्ध के कर्मों का फल भोगना पड़ता है। विपरीत इसके विज्ञान कहता है कि स्वजन की लापरवाही या दुर्घटनावश भी व्यक्ति अपने बहुमूल्य अंग को खोकर अनहोनी का शिकार हो जाता है। अगर हम सरकारी आंकड़ों की बात करें, तो भारत में इसका विकलांगता छह प्रतिशत है, जो ग्रेट ब्रिटेन अथवा कनाड़ा की कुल जनसंख्या के बराबर है।

अपंगता शारीरिक दुर्बलता हो सकती है, मानसिक नहीं। अगर कुदरत ने अपनी ऐसी कोई मानवीय कृति रची है, तो उसमें अदम्य साहस और कौशल भी पैदा किया है। अगर यह कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि विकलांग समर्थ लोगों से कहीं विशेष गुण लिए होते हैं और उनकी अन्तस् चेतना बहुत सशक्त पाई गई है। ऐसा हम आम जीवन में देखते भी हैं और पढ़ते भी हैं। जो सनातनी पुराणों के अन्तर्गत उल्लेखित है, उन दिव्य विभूतियों का बस नाम मात्र का उदाहरण आपके समक्ष प्रस्तुत है। यथा अष्टावक्र, धृतराष्ट्र, मंथरा, शुक्राचार्य आदि। अगर मध्ययुग में इस प्रकार के व्यक्तित्व का उल्लेख हो, तो सूरदास सर्व विदित है। उन्होंने श्रीकृष्ण के प्रति जो पद रचे उन्हें पढ़ते हुए एकबारगी अन्तस् ठिठक–सा जाता है उनकी बाल लीलाओं का, उनके श्रृंगार का कितना सांगोपांग, कितना मनोरम, कितना अनुपम वर्णन अपने पदों में रचा है। यह भाव भी उभरता है कि अगर वे सामान्य होते, तो क्या इतने सजीव भाव उत्पन्न होते! यह सूरदास जी की अन्तस चेतना ही थी, जो उनके भीतर दृष्टांत थी। ऐसा हम मान सकते हैं।

विकलांगों के प्रति हिन्दी साहित्य में विपुल सृजन हुआ है। हिन्दी के अनेक साहित्यकारों ने अपने–अपने दृष्टिकोण से उनकी जिजीविषा, जीवट, जज़्बा, स्वाभिमान, आत्म सम्मान तथा मनोबल बढ़ाते हुए, समाज में जागरूकता पैदा की है। उन्हें हीन दृष्टि भाव से परे रख ऐसे योग्य, गुणी, हुनरमन्द अर्थात उनकी निःशक्तता को दरकिनार कर सक्षम पात्रों का निर्माण किया है, जो आमजन के बीच एक प्रेरक के रूप में विद्यमान हैं। शारीरिक दोष के कारण किसी को दया का पात्र समझना मानसिक दिवालियापन है। यानी आधुनिक युग, तकनीकी युग में पुरातन पद्धतियों का अनुसरण करना है। विकलांगों के प्रति जन चेतना, दशा–दिशा, उनके अधिकार, मान–सम्मान, स्वाभिमान हेतु साहित्यकारों ने गद्य एवं पद्य में सराहनीय और प्रेरणादायक सृजनात्मक कार्य किया है। उनकी पीड़ा से आत्मसात करते हुए उनके अधिकारों के प्रति अलख जगायी है। ऐसे ही लब्धप्रतिष्ठ जनकथाकार रत्नकुमार सांभरिया हैं, जिनकी कहानियाँ, नाटक, लघुकथाएँ, विकलांग–विमर्श, विकलांग–चेतना के प्रति अड़िग एवं सजग प्रतीत होते हैं। रत्नकुमार सांभरिया की बावन कहानियाँ हैं, जो एक रचनाकार की विशिष्टता का प्रतिपादन है। अपितु सांभरिया जी का रचनाकर्म प्रबन्ध शोध का विषय है, जिसे मात्र कुछ पृष्ठों में अथवा प्रतिनिधि कहानियों के माध्यम से समेटा नहीं जा सकता। सीमाओं को दृष्टिगत करते हुए विकलांग चेतना के अन्तर्गत उनकी मात्र तीन कहानियों का चयन किया गया है, यथा– 'हथौड़ा', 'बिपर सूदर एक कीने' एवं संवाँखें।

'हथौड़ा' कहानी रत्नकुमार सांभरिया जी की बेजोड़ कहानी है, जिसे विकलांग–विमर्श की नजीर कहा जा सकता है। कहानी की कथावस्तु इस प्रकार है कि छोटूराम नाम का मजदूर अपना एक हाथ खोने के बाद चार महीने बाद उसी घर में लौटता है, जहाँ वह मजदूरी करता था। जबकि उस घर की मालकिन को छोटूराम को दिए सौ रुपए और हथौड़े की चिन्ता है, जो हत्था टूटने पर सही करवाने के लिए उसे दिए थे। बावजूद इसके मकान बनते समय सीमेन्ट के बीसियों कट्टे खराब हो गए, सैकड़ों ईंटें मलबा बन गईं, कितना ही मसाला बेकार चला गया, एक दीवार को पुनः चुनवाना पड़ा, कारीगर के हाथों ग्रेनाइट की पट्टी टूट गई, गृह प्रवेश पर बीस हजार रुपए बर्बाद हो गये, परन्तु हथौड़ा ठीक करवाने के लिए छोटूराम को दिए सौ रुपए पूरे परिवार के मन में चुभते–करकते रहे। मगर खुद्दार, ईमानदार का हाथ तंग, मन मलंग। कड़ाके की ठण्ड में वह मकान मालिक के घर पहुँच जाता है। मकान मालकिन उसे कोसती है–''चार मीना पाछै आज आर मरो छै, अपनो हथौड़ो और बचयोड़ा पीसा लेर रवाना करो कलमुहाँ ने'', तो मालिक कहता है कि–''पैसे कहाँ होंगे इसके पास, बाहर पड़ा मलबा डलवा कर दिहाड़ी करवाऊँगा। बच्चू को नानी याद आ जाएगी, हाड़ निकलती सर्दी में।'' छोटूराम जब चार महीने बाद आने का कारण बताता है, तो उसके प्रति सहानुभूति उत्पन्न हो जाती है और मकान मालिक उसकी सहायता

के लिए रुपए, कपड़े–लत्ते लाने के लिए भीतर चला जाता है, जब वह रुपए और कपड़े–लत्ते लेकर लौटता है, तो छोटूराम जा चुका होता है और हथौड़े के नीचे नब्बे रुपए दबे होते हैं!

कहानी प्रथम पुरुष रूप में है। कहानी में कुल चार पात्र हैं, पति–पत्नी, बेटा और छोटूराम। हालाँकि बेटे की कथानक में मात्र उपस्थित भर है, कोई संवाद नहीं है, उसका। कथानक का वातावरण दिन और कोहरे में लिपटी सुबह की आठ बजे का है। कहानीकार सांभरिया ने छोटूराम का चारित्रिक चित्रण इस प्रकार किया है, 'तेईस–चौबीस का मोटियार। जैसा नाम वैसी कद् काठी। रंग सरसों के दानों जैसा सांवला, सूखी काप (चिकनी मिट्टी की सूख) की खोलो (दरारें) की तरह उसके पाँवों की बिवाइयों के मुँह खुले थे। वह पैंट की मोहरी तहाए और कमीज की बांहे संगवाए रहता। जंगल में उगे झाड़–झंखाड–सी बेतरतीब दाढ़ी, छप्पर के छोरो की तरह होंठों पर पड़ी मूँछें।' का जिस खूबसूरती से चित्रण किया है, उससे छोटूराम की छवि कल्पना में उभरने लगती है। परन्तु विषय इस चरित्र की स्वाभिमानता का है। उसकी विकलांगता सकलांगों के लिए भी एक प्रेरणा दायक संदेश बन जाती है। जिसकी एक बानगी देखिएगा–"दूसरे मजूर बैठे सुस्ताते, बीड़ी सुलगाते गपियाते, टाइम पास करते अपना। यूं का तिनका यूं ना धरते। छोटूराम के दो सूत्र मेनत–नेमत, मजूरी–मकसद। सच्चे अर्थों में पूरा मजूर। कर्मनिष्ठ और शिष्ट।विकलांग–विमर्श के अन्तर्गत विकलांग चेतना की बात छोटूराम के चरित्र के माध्यम से और प्रबल हो जाती है। सांभरिया जी विकलांग चेतना पात्र के माध्यम से इस प्रकार से अभिव्यक्त करते हैं कि व्यक्ति में आत्मगौरव की भावना जाग्रत हो जाती है।

सांभरिया जी ने कहानी के परिवेश में पात्रों के माध्यम से आंचलिकता का पुट प्रदान किया है, जो सुखद लगता है। कहानी का कथानक छोटा–सा है, लेकिन सधे हुए, सीधे, सरस सम्वादों के जरिए प्रभावशाली हो जाता है और पाठकों के हृदय पर छोटूराम पात्र की छाप रह जाती है। कहानी का अन्त छोटूराम के प्रति सहानुभूति नहीं, उसके स्वाभिमान, उसकी जीवटता है। कहानी में आये कतिपय सूक्त दृष्टव्य हैं–"छोटूराम जैसे सर्दी में भी तप रहा था, मन ही मन बुदबुदाया–"भीख के भाव आ जाएँगे मेरे बच्चों की नसों में।" 'जिन्दगी मुहाल हो गई है, बेचारे की।' 'इसके बड़बड़ाने से घर की बदहाली नहीं चली जाएगी।' 'निशक्तों के लिए संचालित योजनाओं का ख्याल कर, सहायता लाने मैं भीतर चला गया', 'नब्बे रुपए हथौड़े के नीचे दबे थे', 'रुपए और लत्ते–कपड़े मेरे हाथ में थे।' 'मैं लपक कर गेट पर गया।' 'छोटूराम कोहरे को चीरता हुआ तेज कदमों से बढ़ा जा रहा था, उस गली की ओर जो श्रम बेचने वालों के हाट बाजार जाती है।' इस प्रकार देखा जा सकता है कि "हथौड़ा" कहानी विकलांगों के प्रति आत्म चेतना प्रदान करती है, एक दिशा प्रदान करती है। सकलांगों की विकलांगों के प्रति एक सोच, सहानुभूति प्रस्तुत करती है, जिसे विकलांग रूप में छोटूराम स्वयं को ना हीनता महसूस करता है, ना दयनीय भाव की आस रखता है, बल्कि वह ऊर्जावान के समान मजदूरी के बिना मिले पैसों को भीख के समान मानता है। कहानीकार ने कहलवाया है–"वाह भाई छोटूराम वाह, आत्मसम्मान ही गरीब की पूँजी है।"

अपंग होना व्यक्ति का दोष नहीं है। मगर आत्मसम्मान, जीवटता, खुद्दारी ना हो, तो उस व्यक्ति का दोष है। कुदरत ऐसे व्यक्तियों में कोई शारीरिक त्रुटि भी रख देती है, तो उनमें प्रबल साहस भी प्रदान करती है। सांभरिया जी ने अपने इस प्रकार के पात्र को लाचार, परजीवी, आश्रित ना बना कर उनमें जिजीविषा, जीवटता पैदा की है। एक बानगी देखिएगा "अरे! उसे हस्तहीन देख, मेरी आँखों के सामने अन्धेरा हो गया। सर्दी की गलन में पसीना था, पेशानी पर, मजूर और हाथ। जीवन और साँस। अंग–भंग हो जाने के बावजूद छोटूराम आत्मशक्ति से लबरेज था।" "छोटूराम के नेत्र कोने में पड़े मलबे के ढेर पर टिके थे। किसी हादसे में अपने पर गवां चुके पंछी में उड़ान का हौसला बना रहता है। दुर्घटना में अपना दायां हाथ खो चुके छोटूराम का मजूर मन परिश्रम के लिए कुलांचें भर रहा था। कहने लगा–"बाबू साब, एक हाथ परात नहीं उठती, बाल्टी ला दो न।" हथौड़ा कहानी का निष्कर्ष निकलता है कि रत्नकुमार सांभरिया ने छोटूराम पात्र के माध्यम से एक सीख जाग्रत की है कि मैं मजूर हूँ, मगर अपने बच्चों को कलक्टर, एस.पी. बनाऊँगा, जो मजदूर के सपने को प्रकट करती है। "रविदास जन्म के कारनै, होत न कोई नीच'नर कूं नीच करि डारी है, ओछे करीम की कीच"यह दोहा जगतगुरू, सतगुरू सन्त रविदास रैदास द्वारा रचित है। जो भावार्थ प्रस्तुत करता है कि इन्सान जन्म से नहीं करम से ऊँच–नीच में नहीं होता, अपितु इन्सान कर्म ही उसे नीच बनाते हैं। उनका यह दोहा रत्नकुमार सांभरिया की **बिपर सूदर एक कीने** कहानी पर सटीक बैठता है।

"बिपर सूदर एक कीने" कहानी विकलांगता और सामाजिक भेदभाव को समावेशित करती हुई सामाजिक भेदभाव, विकलांगता के प्रति अति विचारणीय विमर्श रखती है, जो यक्षप्रश्न है। कहानी का संक्षिप्त कथासार इस प्रकार है कि श्यामूलाल और जीवणलाल दोनों माँ जाये भाई हैं। जब बिरादरी की पंचायत चौपाल पर बैठती है, तो बिरादरी का वृद्ध व्यक्ति सामाजिक

प्रतिष्ठा के लिए चर्मकारी का पैतृक धन्धा छोड़ अन्य काम को अपना कर गर्व से जीने के लिए आन्दोलित करता है। उसके क्रांतिकारी उद्घोष के बाद जिन्होंने गंगाजल की सौगन्ध खाते हुए अपना कर्म छोड़, तागा धारण कर लिया वह सूत्रकार कौम हो गया और जो तटस्थ रहे वे रांपावत कौम रहे गये। छोटा भाई जीवण सूत्रकार कौम और बड़ा भाई श्यामू रांपावत कौम। श्यामू का विरोधी मत था कि जात बदलने से व्यक्ति प्रतिष्ठित नहीं, आर्थिक रूप से और शिक्षा से समृद्ध होता है और उसका कथन चरितार्थ भी होता है। जब श्यामू का बेटा दीदारसिंह डी.वाय.एस.पी. नियुक्त हो अपने गाँव में आता है, तो सभी का दृष्टिकोण ही श्यामू के प्रति बदल जाता है। यहाँ तक की पुजारी की पत्नी अपनी नौकरी पेशा बहन के लिए श्यामू के बेटे से ब्याहने की मंत्रणा करने लगी है। जब श्यामू को भान होता है तो संत रैदास को नमन करते हुए नम आँखों से कह उठता है–''साहेब तूने, बिपर सूदर एक कीने।''हालाँकि मुख्य पात्रों में से जीवण सकलांग है और श्यामू का एक पाँव पोलियो ग्रस्त है। अपने जन्मजात कार्य के प्रति पुरुषार्थ भाव से समर्पित है, तो शिक्षा का महत्व भी समझता है। इसलिए अपने बेटे को पढ़ने हेतु शहर भेजा है। उसका बेटा काबिल बन जातिगत धारणा को परिवर्तित करने में सफल भी होता है।

विकलांग चेतना के अंतर्गत अगर विवेचना की जाए तो ''बिपर सूदर एक कीने'' की मुख्य कथा सामाजिक चेतना संदर्भित है। शिक्षा प्राप्त कर काबिल होने उपरान्त ही हम अपने समाज की रूढ़िवादी सोच को बदल सकते हैं। शिक्षा ही समाज को सम्पन्नता प्रदान करेगी और व्यक्ति को प्रतिष्ठित भी। श्यामू अपनी विकलांगता को अपनी दुर्बलता नहीं समझता, दुर्बलता मात्र अशिक्षा को मानता है। सांभरिया जी ने कथानक को बारिश का प्रतीक बना कर बहुत ही करीने से बुना है। छोटे–छोटे सम्वादों से भी और वर्णित भाव से भी। दोनों भाइयों का दो कौमों में विभक्त होने पर बंटवारे का गवाह होता है, उनके दादाजी के हाथ का लगाया हुआ नीम का पेड़, जो उनके आँगन में खड़ा और आधा–आधा बँट जाता है। आधा नीम सूत्रकार और आधा नीम रांपावत। एक ही परिसर मानो दो देश हो गए थे। जीवण बेशक चर्मकार को त्याग कर सूत्रकार बन गया, लेकिन श्यामू के मन में अब भी उसके प्रति अगाथ प्रेम था। जब वह जीवण के साथ बिताए पलों की स्मृति को दोहराता है, तो उसकी पत्नी जात का अन्तर बता उसे अहसास कराती है, श्यामू मात्र इतना कहता–''जात की फाँक थूक का पतासा है। एक कोख जाये हैं, हम दोनों।''भूमि और जाति का बंटवारा होने के बाद श्यामू के लिए जातिगत काम इतना बढ़ गया कि उसे फुर्सत ही नहीं मिलती थी। उसने अपना एक खेत भी ठेके पर दे दिया, तो धन अभाव नहीं रहा। जीवण धन्धा छोड़ कर बेरोजगार हो गया, तो उसकी यह दशा देख श्यामू ने कटाक्ष किया–''पहल्या पैसा से मजबूत हो जातो, फेर जात छोड़तो। बादलां ने देख, मटका को पानी ना फेंकनो चाहिए।''श्यामू के बेटे दीदारसिंह के डी.वाय.एस.पी. बनते ही श्यामू ने चर्मकार का काम छोड़ा ही, जात भी छोड़ दी और श्यामू जी कहलाने लग गया। मन्दिर का पुजारी भी हुक्का गुड़गुड़ा कर श्यामू की ओर हुक्के की नै कर के बोला–''खूब चतुर हो, श्यामूलाल, छोरे के डी.एस.पी. बनते ही जात से भी निजात पा ली।''रत्नकुमार सांभरिया की शब्दावली ठेठ ग्रामीण और आंचलिकता लिए है, जो कहानी को और अलंकृत कर देती है। जिस प्रकार से कथानक का विस्तार करते हैं, दृश्य साक्षात से होने लगते हैं। वे जिस प्रकार से ग्रामीण परिवेश को पूर्णतः रचते है, उसी प्रकार हस्त कुटीर कार्य को परिभाषित भी करते हैं। मानो उनमें रचे–बसे हो और यही बात विषय के अनुरूप उनकी विशेषता भी है। बानगी देखिएगा। ''श्यामू लाल अपनी बैठक में बैठे जूती सिल रहे थे, कुरूम का नया चमड़ा था। मजबूत चमड़े का तला।''''जीवण बनियान–पायजामा पहने खुरेड़ी खाट पर भीगी मूंज धरे जेवड़ी बांट रहा था।''''बिपर सूदर एक कीने'' कहानी के अन्तर्गत कहा जा सकता है कि श्यामू विकलांग होने के बावजूद अपने पुरुषार्थ के प्रति कर्मठ भाव रखता है। 'बिपर सूदर एक कीने' सन्त रैदास के दोहे का अनुसरण करती है–''जाति–जाति में जाति है, जो केलन में पात, रैदास मनुष ना जुड़ सके, जब तक जाति ना पात।'' श्यामूलाल भी अंत में हाथ जोड़ कर यही कहता है–''**साहिब तूने बिपर सूदर एक कीने।**''

संवाखें इसी क्रम में संवाखें जो अपने शीर्षक मात्र से ही पाठक के मन में जिज्ञासा पैदा करती है कि ''संवाखें'' का माने क्या है? 'संवाखें' समकालीन भारतीय साहित्य मई–जून 2006 के अंक में प्रकाशित लम्बी कहानी है। ''संवाखें'' का अवलोकन करें तो प्रतीत होता है कि ये कहानी प्रेम कहानी है। जमन वर्मा और वीमा दोनों नेत्रहीन है। जमन एक नेत्रहीन विद्यालय में शिक्षक। वीमा से उसकी मुलाकात एक घटना के माध्यम से हुई। जब नेत्रहीन वीमा से आततायी अभद्रता कर रहा था, तो जमन वीमा को उस दरिंदे से बचा कर अपने कमरे में ले आता है। वीमा अपने घर से भागी थी, क्योंकि उसके परिवार वाले उसका विवाह एक अधेड़ जो धनी है, के साथ करवाना चाहते थे। वीमा इसका विरोध कर, घर से भाग निकली। जमन अपने स्कूल के संचालक श्यामा जी से इसका जिक्र करता है, तो वो उसे वहीं रहने की अनुमति भी

प्रदान कर देते है और समवय, समभव होने के कारण उनकी कोर्ट मैरिज भी करवा देते है। परन्तु जब उनको पता चलता है कि वीमा उनकी रिश्तेदारी में ही है, तो वह तमतमा उठते हैं और वीमा का अपहरण करवा लेते हैं। जब जमन को इसका पता चलता है, तो वह अपने मित्र देवत सिंह, जो स्वयं अपाहिज है, के पास मदद के लिए जाता है। देवत सिंह सी.सी. झा नामक पत्रकार की मदद लेना चाहता है, लेकिन जातिवादी और लोभ का पूरा झा श्यामा जी से जा मिलता है। इन निःशक्तों की न तो निःशक्तजन आका मदद करते हैं और न ही थानेदार एफ.आई. आर दर्ज करता है। अन्तोगत्वा सब विकलांग मिल कर एक आंदोलन खड़ा करते हैं। जमन और देवत सिंह विकलांग साथियों को लेकर कोर्ट केस करने की तैयारी करते हैं और लामबन्द हो, श्यामा जी और आका के विरुद्ध मुर्दाबाद के नारे लगाने लगते हैं।

'संवाखें' कई घटनाक्रम में कथावस्तु को गतिशीलता हेतु 'फ्लैशबैक' में वर्णित होती है। कहानी का कथानक छोटा है, मगर उसे वृहद आकार में सभी पात्रों को घटनाओं को पूर्ण विस्तारित भाव से उकेरा है। जहाँ तक विकलांग चेतना की बात की जाए, कहानी में पात्र हैं, जमन वर्मा, वीमा, देवत सिंह और उसकी पत्नी, श्यामा जी, आका, पत्रकार और थानेदार। जमन नेत्रहीन शिक्षक है और अपना कार्य स्वयं करने मे सक्षम है, तो वीमा प्याऊ में पानी पिलाती है। देवत सिंह जो एक सड़क दुर्घटना में अपने दोनों पाँव घुटनों तक गवां चुका है, मगर एक कम्पनी में सुपरवाईजर है, सी.सी. झा पत्रकार है, तो देवत सिंह की पत्नी कुशल गृहिणी।सामाजिक चेतना के अन्तर्गत इस तथ्य को भी देखा जाए तो कहानीकार प्रज्ञाचक्षु वीमा पर दयाभाव रख अधेड़ धनी व्यक्ति से करवा सकता था, परन्तु ऐसे निःशक्त में हीनभाव अथवा कोई ग्लानि, अपंगताबोध प्रविष्ट ना हो जाए, इसलिए उसमें विद्रोह का भाव पैदा कर देते हैं। वीमा बिना किसी जात–पांत के जगन को सहर्ष स्वीकारती है, जो सुखद लगता है और एक अनुकरणीय पहल भी पाठक के समक्ष प्रस्तुत होती है। श्यामा जी रूप में एक ऐसे किरदार को प्रस्तुत किया है, जो विकलांग सेवा के नाम पर सब सुख, ठाठ–बाट, वैभव, सम्पदा प्राप्त करता है, परन्तु उनकी कथनी और करनी में जमीन–आसमान का अन्तर है। कहानी में जहाँ 'विकलांग चेतना को दर्शाया गया है, तो वहीं जातिगत असमानता भाव भी प्रकट हुआ है, जो कहानी के कथानक का केन्द्र बिन्दु है। सांभरिया जी ने इसी के अन्तर्गत पात्र 'सी.सी. झा' के जरिए प्रश्न भी किया है और तर्क भी–''लोग कितने हटबुद्धि हैं। आजादी के इतने साल बाद भी जाति के जाल में फंसे हुए हैं।''एक बानगी यह भी देखिए जो इंगित करता है कि विकलांग संस्थान के संचालक जितना कथनी और करनी में अन्तर रखते हैं, उतना ही हाथी के दाँत दिखाने में और खाने के और है। श्यामा जी के संवेदनशील भाव में कितना असंवेदनशील जहर विद्यमान है, वह पत्रकार को अपना व्यक्तव्य देते हैं–''बेटे नेत्रहीन होकर भी जमन वर्मा फरेबी है। नीची जात का होकर भी उसने ब्राह्मण लड़की से शादी करके धर्मघात किया है। जात पर चोट की है। जांत–पात ही हमरी साँसे हैं, जात मरी, हम मरे।'' जिस प्रकार श्यामा जी के रूप में संवेदनहीन पात्र दर्शाया तो रिक्शे चालक के रूप में संवेदनशील भी जो किराया पचास रुपए के स्थान पर पूरा दिन खर्च दस रुपए ही लेता है।

निष्कर्ष के रूप में अगर हम कहानी की बात करें, तो अनेक ऐसे तथ्य है, जिस पर विस्तारित रूप में व्याख्या की जा सकती है। कहानीकार सांभरिया जी भारतीय महीनों के नाम विक्रम संवत अनुसार लेख के पक्षधर हैं, उन्हें आयुर्वेद का ज्ञान है, कथानक को गतिशीलता को चित्रित काव्यात्मक रूप में करते हैं। जितनी सामाजिक विसंगतियों का विरोध करते हैं, उतना ही कुदरत प्रदत्त का वे अपनी लेखनी के माध्यम से दर्शाते हैं, तो दिशा भी प्रदान करते हैं। इन तीनों कहानियों का संक्षिप्त रूप, सामाजिक चेतना के रूप में विवेचना की जाए तो सार यही प्रकट होता है कि विकलांग, सकलांगों जितने धूर्त नहीं, भोले हैं। मन के निर्मल हैं। अपने कार्य के प्रति सजग, कत्राव्यपरायण हैं। इनकी छठी इन्द्री चेतन है, जो आभास भी कर लेती है और पहचान भी। यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि रत्नकुमार सांभरिया ने अपने पात्रों को निरीह नहीं, सशक्त प्रकट किया है। जो विषम परिस्थिति से सबक लेते हुए और ऊर्जावान होते हैं, अपनी अपंगता को अपनी ताकत महसूस करते हैं। ऐसे भाव विकलांग ही नहीं, सकलांग के लिए भी प्रेरणादायक है। कहना होगा कि रत्नकुमार सांभरिया की निःशक्तजन जीवन से जुड़ी कहानियाँ थोड़ी संक्षिप्त भी हो सकती थी। यदि 'संवाखें' को ही माने तो विस्तार सीमित होता तो कहानी और खूबसूरत लगती। एक बात यह भी कि प्रत्येक कहानीकार की अपनी शैली होती है, जिसमें वह अपनी सहजता पाता हैं, परन्तु सांभरिया जी ने अपने पात्रों का चारित्रिक चित्रण तथा उनकी वेशभूषा, उनकी कद–काठी, रंग–रूप का सजीव चिर्तण किया है। 'हथौड़ा', बिपर सूदर एक कीने', 'सवाँखें' सर्वकालिक रहेगी, प्रासंगिक रहेगी, समाज में चेतना का बोध कराती रहेगी। अन्त में मैं संत रविदास जी की बात से ही अपने इस लेख को विराम दूँगी–''ब्राह्मण मत पूजिए, जो होवै गुणहीन,पूजिए चरण चांडाल के, जो होवै गुण प्रवीन।''

13.सात्विक आक्रोश की आग है, रत्नकुमार सांभरिया की कहानियाँ

–माधव नागदा
लालमादड़ी, नाथ द्वारा, (राज)

'स्त्री विमर्श' वरिष्ठ कथाकार रत्नकुमार सांभरिया की चयनित कहानियों का संग्रह है, जिसका चयन डॉ.अनामिका ने किया है। संग्रह की सभी पंद्रह कहानियों की धुरी स्त्री है। 'स्त्री विमर्श' का क्या तात्पर्य है? इसका शाब्दिक अर्थ है स्त्री से संबन्धित विचार। व्यापक संदर्भों में बात करें तो स्त्री विमर्श ऐसी अवधारणा है जिसके अंतर्गत इस बात पर विचार किया जाता है कि स्त्री की स्वतन्त्रता और उसकी अस्मिता की पहचान के लिए क्या किया जा सकता है। कैसे स्त्री को पुरुष के समकक्ष अधिकार हासिल हो सकते हैं। कालांतर में इस विचार ने एक आंदोलन का रूप धरण कर लिया जिसमें महिलाओं का एक वर्ग सक्रिय रूप से जुड़ गया। पुरुषों ने भी इसका समर्थन किया किन्तु यहाँ भी वे अपनी पुरुषवर्चस्ववादी मानसिकता से उबर नहीं पाए।

कतिपय नारी विमर्शकारों ने, जिनमें मुख्यतः प्रतिष्ठित पत्रिकाओं के संपादक थे, स्त्री विमर्श को देह से जोड़ने का प्रयत्न किया और नारी को यौन स्वतन्त्रता की नसीहत देने लगे। नतीजा यह हुआ कि धड़ल्ले से यौन उन्मुक्तता की कहानियाँ आने लगीं। डॉ.नमिता सिंह ने इस प्रवृत्ति का विरोध करते हुए कहा कि नारी मुक्ति का अर्थ केवल स्त्री पुरुष के यौनिक सम्बन्धों तक सीमित कर देने का प्रयास हमारे आज के जो तथाकथित नारी विमर्शवादी संपादकों, आलोचकों ने किया है उसने नारी आंदोलन के अर्थपूर्ण उभार को नकारात्मक मोड दे दिया है'(सम्बोधन, स्त्री विमर्श अंक, 2005)। वीरेंद्र जैन तो और भी आगे बढ़ते हुए कहते हैं,'यह दृष्टि उनकी कुंठाओं और वासनाओं से नियंत्रित है। उनके पास नारी की स्वतन्त्रता का अर्थ उनके लिए भोग हेतु उसकी निर्बाध उपलब्धता से जुड़ा हुआ होता है और मात्र इसी कारण से वे उसकी स्वतन्त्रता के पक्षधर होते हैं' (वही)।रत्नकुमार सांभरिया ने संपादकों की इस मानसिकता के साथ कभी सम्झौता नहीं किया। उनकी कहानियों की स्त्री अपना मार्ग स्वयं तलाशती है जो देह की संकरी गलियों से होकर नहीं गुजरता इसका सबूत उनकी कहानियां हैं। 'स्त्री विमर्श' में संगृहीत अधिसंख्य कहानियों की स्त्रीदलित वर्ग से आती है। अतः यहाँ उसकी लड़ाई दोहरी है। एक; स्त्री होने के नाते और दूसरे; वंचित तबके की होने के नाते। वह इन दोनों मोर्चों पर साहस के साथ डटी दिखाई देती हैं और अंततः विजयी होती हैं तथा वे अपनी अस्मिता पर आंच नहीं आने देती हैं।

रत्नकुमार की बहुचर्चित कहानी 'फुलवा' की फुलवा जब जमींदार के कुएं पर पानी भरने जाती है तो रामेश्वर घड़े पर थूक देता है। इस पर फुलवा मटकी वहीं फोड़ देती है। इस घटना से उपजे तीव्र प्रतिरोध भाव के चलते विधवा फुलवा अपने बेटे राधामोहन के हाथ से किताब नहीं छूटने देती। उसे खूब पढा–लिखा कर इतना काबिल बना देती है कि आज वह शहर में बड़ा पुलिस अधिकारी है, उसके पास आलीशान कोठी है जिसमें फुलवा अपने परिवार के साथ बड़े ठाठ से रहती है। जब रामेश्वर अपने बेटे की नौकरी के सिलसिले में शहर आ बसे गए पंडित माताप्रसाद के घर का पता पूछता है तो मोहल्ले में उन्हें कोई नहीं जानता, परंतु राधामोहन को हर कोई जानता है। एक व्यक्ति रामेश्वर को ससम्मान राधामोहन की कोठी पहुंचा देता है। यहाँ फुलवा का ऐश्वर्य देखकर रामेश्वर ठगा सा रह जाता है। फुलवा भी मन ही मन चुटकी लेते हुए उसे एक–एक चीज दिखाती है। यह भी कि आज उसकी रसोई में नल लगा हुआ है जिसका कान मरोड़ते ही पानी आने लगता है। एक वह समय भी था जब, <u>'फुलवा के कच्चे घर की छान पर फूस नहीं होती थी। सूरज सारे दिन उसके घर में रहता था। बरसात बाहर भी होती थी और घर में भी होती थी। पानी निकालते उसके हाथ टूटने लगते थे।'</u> लेकिन आज फुलवा का ठाठ और ठसका देख–देख रामेश्वर का अहं क्रमशः धूल–धूसरित होता जाता है। फुलवा यही तो देखना चाहती है। मटके पर थूकने वाले जमींदार का यह हश्र देखकर वह मन ही मन मुदित होती है। यद्यपि कहानी में दलित फुलवा का जमींदार से कोई प्रत्यक्ष संघर्ष दृष्टिगत नहीं होता। परंतु यह कम बड़ी बात नहीं है कि युवावस्था में अपमान का जहर पीने के बाद उपजा दृढ़ संकल्प फुलवा को ऐसे मुकाम पर पहुँचा देता है जिसे देख जमींदार का दर्प चूर–चूर हो जाता है। इस प्रकार रत्नकुमार सवर्ण मानसिकता से सामना करने का सर्वथा नया मार्ग सुझाते हैं।।

संग्रह की एक कहानी 'बूढ़ी' शीर्षक से है। शीर्षक पढ़कर अवचेतन में अनायास ही 'काकी' शब्द जुड़ जाता है। परंतु रत्नकुमार सांभरिया ने बूढ़ी स्त्रियों को लाचार, बेबस और घिसटने वाली नहीं बताया है कि प्रेमचंद ने 'बूढ़ी काकी' कहानी की बुढिया को दिखाया है। सांभरिया की 'बूढ़ी' कहानी की बुढ़िया स्वाभिमान के साथ जीवन पथ पर आगे बढ़तीं हैं और ऐसे मोड़ पर पहुँचतीं हैं जहाँ उसे बेबस समझने वाला पुरुष स्वयं ही बेबस नजर आने लगता है। 'बूढ़ी' कहानी की बूढ़ी को अभावों में जीना स्वीकार है

परंतु बेटी के घर का कुछ भी स्वीकार नहीं। आज भी कई लोग बेटियों से कोई सहायता लेना तो दूर उनके घर भोजन तक नहीं करते। बूढ़ी उसी परंपरा की वाहक है। अपनी सम्पन्न बेटी के लिए स्टेशन तक तांगा लेकर जाती है। बड़े घर में ब्याही बेटी को माँ के घर की तंगी न खले इसलिए अपने ब्याह में आई कांसे की थाली बेच देती है। यहाँ बूढ़ी सिर्फ बूढ़ी नहीं बल्कि एक माँ है, देश की सभी माँओं की प्रतिनिधि के रूप में।

'इत्तफाक' ऐसी ही जीवटवाली बुढ़िया की कहानी है। कहानी का पात्र रामदयाल अपनी नवोढ़ा पत्नी को मारपीट कर फकत इसलिए निकाल देता है क्योंकि वह साँवली है। इस बात का भी लिहाज नहीं करता कि वह पेट से है। बुढ़िया अर्थात साँवली अपने पीहर में पुत्र खेतसिंह को जन्म देती है। फुलवा की तरह बेटे को पढ़ाती–लिखाती है। वह पहले बाबू की नौकरी करता है और बाद में नौकरी छोडकर ठेकेदारी करने लगता है। इस बीच साँवली राजनीति में पकड़ मजबूत करती है। वह गाँव की पंच है। आज उसकी पोती की शादी है जिसमें मंत्रीजी आने वाले हैं। आज ही पैंतालीस वर्ष बाद साँवली की मुलाक़ात एक बस में रामदयाल से होती है। प्रारम्भिक परिचय के पश्चात वह पहचान लेती है कि यही उसका पति है। बूढ़ा अपनी कहानी सुनाता है कि किस प्रकार उसने अपनी भाभी के कहने पर निर्दोष साँवली को पीटकर घर से निकाल दिया था। पछतावा उसकी आँखों से अविरल बहने लगता है। बुढ़िया पिघल जाती है। वह उसे अपने घर ले जाती है। बूढ़ा चकित है कि बुढ़िया उसकी इतनी खातिरदारी क्यों कर रही है। बेटा खेतसिंह और बहू भी इस पर एतराज जताते हैं। समाज में बदनामी का भय दिखाते हैं। बुढ़िया को किसी बात की परवाह नहीं है। वह सामाजिक स्वीकृति का नायाब तरीका निकाल लेती है। मंडप में बूढ़े को लगभग खींचते हुए ले जाती है, सबके सामने उसका हाथ उठाती है और कहती है,'ये एक सौ एक रुपये कन्या के दादा रामदयाल के नाम के।' यह कहानी साँवली के जीवट की व्यथा–कथा है। यहाँ देखने वाली बात यह है कि साँवली का संघर्ष भी सीधे–सीधे पति रामदयाल के साथ न होकर जीवन की कठिनाइयों के साथ है जिसमें वह खरी उतरती है। इस कहानी में स्त्री के साथ अन्याय करने वाला व्यक्ति बलाई है अर्थात दलित वर्ग से आता है। सांभरिया यह बताना चाहते हैं कि पुरुष चाहे सवर्ण हो या दलित, स्त्री के प्रति उसका रवैया दंभ भरा ही होता है। समान्यतः स्त्रियाँ पुरुष के इस दंभ के आगे परास्त हो जातीं हैं, परंतु सांभरिया की स्त्रियाँ अडिग आगे बढ़तीं हैं और सेवट में स्वयं को साबित कर दिखातीं हैं। एक सवाल जरूर मन में उठ सकता है कि ऊपर विवेचित दोनों कहानियों में एक तीसरा पात्र भी है, वह है संयोग। यदि रामेश्वर बेटे की नौकरी के सिलसिले में शहर नहीं आता तो वह फुलवा के ऐश्वर्य के दर्शन कैसे करता? इसी प्रकार यदि साँवली को रामदयाल अनायास ही बस में नहीं मिलता तो? खैर. ..यदि ये संयोग घटित न भी होते तो भी इन स्त्रियों की खुद्दारी कुछ कम नहीं हो जाती।

'बात' और 'चपड़ासन' लगभग एक ही स्वर की कहानियाँ हैं। 'बात' की सुरती और 'चपड़ासन' की मीता के संघर्ष कमोबेश समान हैं। दोनों ही अपना स्वाभिमान, अपनी देह और अस्मिता को बचाने के लिए अपने–अपने ढंग से आगे बढ़तीं हैं ।लेखक ने धींग और धनपाल की देहयष्टि और चाल–चरित्र का जो चित्रण किया है वह दोनों को एक ही मानसिक धरातल पर खड़ा करता है। फर्क यह कि धींग अनपढ़, आवारा, गंवई है जबकि धनपाल पढ़ा–लिखा 'तहसीलदार एवं कार्यपालक मजिस्ट्रेट' की कुर्सी पर बैठने वाला सम्मानित व्यक्ति है। हैं दोनों नारी देह के लोलुप। सुरती तो फिर भी धींग से जरा दूर रहती है परंतु मीता को तो दिनभर धनपाल की ललचाई आँखों के सम्मुख उसकी चाकरी में रहना पड़ता है। उस धनपाल की जो कभी उसके पति मुनीन्द्र का मातहत हुआ करता था। आज जब मुनीन्द्र इस दुनिया में नहीं है और मीता को मजबूरन उसी तहसील में चपरासी की नौकरी करनी पड़ रही है तो सब कुछ बदला हुआ है। सबने गिरगिट की तरह रंग बदल लिया है। धनपाल मीता के रूप पर आँखें गढ़ाए हुए है और 'बात' का धींग सुरती पर। अंततः सुरती धींग पर बाज की तरह टूट पड़ती है और मीता धनपाल के खिलाफ रपट लिखवाने थाने चल देती है। इधर 'खबर' कहानी में एक खबरनवीस लड़की का तो 'राइट टाइम' में एक गरीब, बेसहारा, अकेली स्त्री का स्वाभिमान और नैतिक साहस जिस प्रकार सामने आता है वह बेहद सराहनीय है और स्त्री जाति की सामर्थ्य पर आस्था जगाने वाला है। यह खुद्दारी लगभग हर कहानी में नजर आती है चाहे 'पुरस्कार' की नीना हो या 'बेस' की अगनि, अथवा 'बंजारन' की सना हो या फिर 'मदारिन' की सरकीबाई। 'मैं जीती' कहानी का शिल्प और कथ्य संग्रह की अन्य कहानियों से हटकर है। यह कहानी तथाकथित नाजायज फेंकी हुई नवजात बच्ची के बहाने स्त्री की मजबूरी का मर्मस्पर्शी बयान है जो बच्ची के द्वारा ही कहलाया गया है।

रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों की कहानी यहीं समाप्त नहीं हो जाती। स्त्री विमर्श की कहानियाँ तो और भी कई लेखक लिख रहे हैं, विशेष कर लेखिकाएँ। उल्लेखनीय बात यह है कि रत्नकुमार ने दूर–दराज की अपढ़, निम्न वर्ग की ऐसी महिलाएँ

चुनीं हैं जिनके अंतस में आत्मविश्वास की लौ जगमगा रही है। कोई उम्मीद नहीं कर सकता कि वर्षों से दबी–कुचली ये गंवई अशिक्षित महिलाएँ भी प्रतिरोध कर सकतीं हैं। सांभरिया की कहानियों में यह प्रतिरोध विश्वसनीय तरीके से रेखांकित किया गया है। सबसे बड़ी बात इन कहानियों की बुनावट और भाषा–शैली है। यहाँ भाषा किसी खूबसूरत आविष्कार की तरह लगती है। यद्यपि हमें आलमशाह खान की कहानियों में निम्न शोषित वर्ग की भाषा का नया रूप देखने को मिला था, किन्तु रत्नकुमार के यहाँ भाषा का ठाठ निराला ही है जिसके बारे में अनामिका लिखतीं हैं,'रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों से गुजरते हुए मुझे कुछ ऐसे चरित्र मिले, कुछ ऐसे प्रसंग, बातचीत के कुछ ऐसे नायाब टुकड़े कि मन के अज्ञात कोनों से बरबस ही आवाज़ आई–'यूरेका'। बहुत दिनों से एक ऐसे दलित बंधु की तलाश थी जिसकी विनोद वृत्ति प्रखर हो और जो भाषा में अभिधा–लक्षणा–व्यंजना तीनों साध सकता हो, यानी कि एकलव्य जैसे धनुर्धारी हो। आसान नहीं होता तीनों तरकशों से तीर चला पाना और तीरों से बंजर से बंजर धरती की छाती बींध देना कि उसके मर्मस्थल से पानी के सोते फूट पड़ें।'

यहाँ कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं जो हमें सांभरिया की भाषा के ठाठ से रूबरू कराते हैं– –टंकर(घाव) वाला ऊँट थोड़ा सा भिड़ते ही डकरा उठता है। अपनी उम्र की महिला से घर–गिरस्ती का सवाल सुनते ही उसके भीतर के घाव बलबलाने लगे।' (पृष्ठ 39)–'जंगल में लगी आग की फरफराती लपटों से घिरी हिरनी सी सुरती को एक रास्ता सूझा।...आदमी का शरीर कितना दीन हो जाए, मन मरद बना रहता है। बाबूजी के पैर कब्र की ओर बढ़ रहे हैं, नीत धींग जैसी हरामन है।' (पृष्ठ 59)–'दोनों घुटनों में सिर खोंसकर बैठ गए थे, जवान मौत–सा स्यापा लिए। मौन विलाप। दोनों एक–दूसरे के सवाल थे। दोनों एक–दूसरे के जवाब थे। दोनों के मस्तिष्क में घर का एक्सरे था। चिंता की ताप। बर्फानी हवाओं से दोनों बेखबर थे।' (पृष्ठ 61)–'बयार और बादलों की कसमस के बीच सूरज ऊपर उठता आया था। (पृष्ठ 73)–'मैंने आँखों के आँसू रूमाल में ले लिए।'(पृष्ठ 73)–'मैलखोर साड़ी पर फटा–पुराना मुड़ा–तुड़ा–सा शाल ओढ़े थी जैसे हंस एक पंख बिछाकर दूसरा ओढ़ लिया करता है, जाड़े में।' पृष्ठ(95)

ऐसे ही भाषाई नमूने सर्वत्र बिखरे हुए हैं जो रत्नकुमार को अपने समकालीन कहानीकारों से अलग पहचान देते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि रत्नकुमार भाषा को आतंकित करने या कि महज आनंद के लिए नहीं बल्कि पात्रों के अंतर्द्वंद्व, उनकी मनोव्यथा, संघर्ष चेतना और दुःख को सार्थक अभिव्यक्ति देने के लिए करते हैं। इसके अलावा एक और बात गौर करने लायक है। यहाँ प्रेमचंद की कहानियों की तरह सूक्ति वाक्य देखने को मिल जाएंगे जो सांभरिया के अनुभवजन्य चिंतन के प्रतीक हैं, यथाः––चरित्र जीना अभिनय होता है, जीवन जीना ज़िंदगी की लय। (पृष्ठ 85)–चोट से देह घायल होती है, दगा से आत्म आहत होता है। (पृष्ठ 93)–चित्र उसी का लगाना चाहिए जिसका चरित्र हो। (पृष्ठ 92)–पुरुष सेक्स पाने के लिए प्यार करता है। औरत प्यार पाने के लिए सेक्स करती है। (पृष्ठ 138)

यह सब साधने के लिए सांभरिया ने किन–किन गांवों, बस्तियों, डेरों में आसन लगाए होंगे यह सहज ही समझा जा सकता है। अपने पात्रों की बोली–बानी, आचार–व्यवहार, उनका भाषाई मुहावरा पा लेना एक लेखक के लिए सबसे बड़ी उपलब्धि होती है। रांगेय राघव ने अपने उपन्यास 'घर घर घूमा' में इंगित किया है कि यदि भारत की आत्मा को समझना है तो कुछ दिन संन्यासी की तरह घर घर घूमना चाहिए। कहना न होगा कि रत्नकुमार सांभरिया किसी निस्पृह संन्यासी की तरह दलित वर्ग के घर घर घूमे हैं। यहाँ उच्च वर्ग को नीचा दिखाने की कोशिश नहीं, बल्कि दलित महिलाओं के भीतर दबे जीवट और स्वाभिमान को बाहर लाकर उन्हें बड़ा दिखाने की सार्थक प्रयास परिलक्षित होती है। सांभरिया, बक़ौल अनामिका पीड़ा के अतिरेक में दूसरों की रेखा छोटी करने की बजाय अपने स्मितरेख से अपनी ही रेखा बड़ी करते दिखाई देते हैं। जरूर ये कहानियाँ पढ़ते हुए 'बंजर से बंजर धरती' के सीने से भी पानी के सोते फूटने लगेंगे।

14.'स्त्री विमर्श' : आधी दुनिया का अध्ययन

–डॉ.अमल सिंह भिक्षुक
133/20, मु0–भारती गंज,
पो0–सासाराम–जिला–रोहतास (बिहार)

"स्त्री–विमर्श : रत्नकुमार सांभरिया की चयनित कहानियाँ " सद्यः प्रकाशित पुस्तक है, जिसका संपादन विदूषि कवयित्री डॉ. अनामिका द्वारा किया गया है। उन्होंने प्रख्यात कहानीकार रत्नकुमार सांभरिया की कुल बावन कहानियों में से स्त्री विषयक पंद्रह कहानियाँ चयनित कर संग्रह का सम्पादन किया है। यह कहानियाँ, न केवल दलित–आदिवासी, शोषित नारी ही नहीं, आम नारी की ज्वलंत समस्याओं से टकराती हैं। बाकलम संपादक "बहुत दिनों से एक ऐसे दलित लेखक – बंधु की तलाश थी, जिसकी विनोद वृत्ति प्रखर हो सांभरिया जी की कहानियाँ एक सुखद अहसास है।" सांभरिया जी भले ही 'दलित लेखक–बंधु' किन्तु वह केवल दलित साहित्यकार नहीं है। यहीं नहीं वह 'विनोद–वृत्ति' वाले कथाकार भी नहीं हैं और उनकी कहानियाँ एक सुखद अहसास भी नहीं हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि अधिकतर कहानियाँ एक नये ढंग से शुरुआत करती हैं।

संग्रह की प्रथम कहानी 'फुलवा' बहुचर्चित–बहुपठित कहानी है। इसमें स्वातंत्र् योत्तर भारतीय समय और समाज में संविधान के प्रभाव से हो रहे विस्मयकारी सामाजिक–आर्थिक बदलाव को विशिष्ट भाव–प्रवणता के ध्वन्यात्मक स्वरूप द्वारा रेखांकित करने का भरसक प्रयास किया गया है। सच तो यह है कि कहानी शालीन– मर्यादित ढंग से सदियों से जकड़ी– जमीं सामंतवादी ब्राह्मणवादी मानसिकता के दंभ–अहंकार की बर्फीली जकड़न को आधुनिकतावादी–उत्तर आधुनिकतावादी हथियार की चोट से तोड़ती है। यहाँ बदले हुए तेवरों की ठीक–ठीक पहचान कराना और नये मुहावरे द्वारा न्यायोचित समाधान करना कहानी संग्रह का मूल प्रयोजन है। इसमें बार–बार 'रामेश्वर जी!' 'रामेश्वर जी।' फुलवा द्वारा कहलवाना – भले खटकता हो, तथापि नई कहानी के तत्वों पर खरी उतरने वाली यह कहानी विश्व कथा साहित्य में अपना स्थान सुरक्षित करती है। 'बूढ़ी' कहानी अपनी बेजोड़ भावुकता, संप्रेषणीयता, मर्मस्पर्शीयता के कारण पाठकों के मन को झकझोरने में सफल रही है। कहानी में समझ की एक नई जमीन तलाशी गयी है। अभाव के प्रभाव में भी गर्विता बूढ़ी चुन्नी के स्वाभिमान का मनोविज्ञान – कहानी को विस्तार देता है, जबकि कथा– सूत्र अति संक्षिप्त है। यह रचना जिस जमीन पर जनमती है, उस जमीनी यथार्थ से जुड़ाव कहानी की विशेषता है। इसमें यथार्थ के अन्तर्मन की गहरी पकड़ है, चाहे वह मानव हो या पशु।

रंग–भेद आज की प्रमुख समस्या है। इसके कारण आज लड़की की शादी में कितनी अड़चनें आ रही हैं, यह तो लड़की का पिता ही जानता है। रंग–भेद की आड़ में पति–पत्नी के बनते–बिगड़ते रिश्ते के रिसते भावुक पल 'इत्तफाक' कहानी में उभरकर सामने आए हैं। कहानी पारिवारिक – सामाजिक संबंधों को गहराई से कुरेदती हुई केवल उलटती–पुलटती ही नहीं है, बल्कि सरेआम उन्हें चैलेंज भी करती है। 'मैं जीती' कहानी मैं शैली में लिखी गई है, जो अपनी अंतर्पीड़ा को मनोवैज्ञानिक धरातल पर स्वयं बोलने लगती है कथा नायिका। यहाँ कहानीकार परकाया – प्रवेश योग में निष्णात नजर आता है। मेरी दृष्टि में यह कहानी अपने समय से काफी आगे निकल गई है, क्योंकि इसमें कथ्य और शिल्प के नये प्रयोग हुए हैं। यहाँ घर–परिवार के आत्मीय रिश्तेदारों से बने कुँवारेपन के नाजायज संबंध से उत्पन्न नाजायज पुत्री के अर्द्ध रात्रि में परित्याग और असहनीय मर्मांतक पीड़ा झेलती नवजात शिशु की हृदय विदारक मर्मांतक तस्वीर मानवता को शर्मसार करती है। 'बात' कहानी की बात नारी अस्मिता के संघर्ष की द्योतक है, जिसमें मानवीय संवेदनशील ऊष्मा के सूखते स्रोत को ग्राम्य–जीवन के परिवेश में उकेरने का बेजोड़ नवीनतम पक्ष है। इसमें शोषण से मुक्ति की गहरी कसमसाहट है, विरोध है और प्रतिकार है। यह सच है कि आज विलासी प्रतिगामी शक्तियाँ पटखनी खाती जा रही हैं। सुरति एक ऐसी कथा–नायिका है जो 'बात' की रक्षा, आत्मसम्मान, अस्मिता खोकर नहीं बल्कि दिवा–रात्रि कठिन परिश्रम करके करती है। छल और धोखे के प्रतिरोध में उसका निर्भीक हो 'सिंहनी–सी' धींग के घर में घुस जाना और उस पर 'बिजली की तरह टूट' पड़ना, एक नया समाधान तो है ही, एक तरह से नई शुरुआत भी है।

'चपड़ासन' स्त्री के अस्मिताबोध पर आधारित कहानी है जिसकी कथा नायिका मीता के सुखी–संपन्न जीवन में पति के निधन के बाद की बदलती स्थितियों–परिस्थितियों को विशेष अंदाज में रूपायित किया गया है। कहानी अन्य कामकाजी महिलाओं को भी एक नई ऊर्जा के साथ–संघर्षशील चेतना प्रदान करती है। कार्य स्थलों पर महिलाओं के यौन शोषण का मुद्दा – आज विशेष प्रासंगिक है। आज प्रिंट मीडिया – इलेक्ट्रॉनिक मीडिया चाँदी की जूती की मार, सच्चे संवाद् दाताओं से दगा और शासन व्यवस्था के गहरे दबाव की चपेट में आ गयी है। बड़े–बड़े अपराधियों–भ्रष्टाचारियों की खबरें, जो हेडलाइन या मुख्य

पृष्ठ पर होनी चाहिए, वह न्यूज बॉस की टेबल पर ही दब जाती है। जहाँ इतना गोल–माल घुटन–दबाव हो, वहाँ कथा–नायिका प्रजीता जैसे संवाददाता या तो निकाल दिए जाते हैं या स्वयं ही 'शहीदाना कदम' उठाने को मजबूर कर दिये जाते हैं। पत्रकारिता के क्षेत्र में फैले इसी आकंठ भ्रष्टाचार को रत्नकुमार सांभरिया 'ख़बर' कहानी में बेनकाब करते हैं। 'राइट टाइम' बिना टिकट रेल– यात्रा करती एक दुखित 'अबोली' सहमी–सिकुड़ी महिला की कहानी है, जिसमें पनपे अपराधबोध के कारण दब्बूपन है। ज्योंही वह दौड़कर 'राइट टाइम' पर टिकट ले आती हैं, उसकी वेश–भूषा और उसके तेवर अचानक बदल जाते हैं। डरा धमकाकर उसकी सीट पर जो व्यक्ति बैठा था, उसे ललकारते हुए वह कहती है – "लो उठो, टिकट ले आई हूँ न मैं।" वह अपनी सीट से ऐसे उठा, मानों जड़ें जमीन छोड़ रही हों। महिला इत्मीनान से बैठ गई थी। (पृ. 102)

आजादी के इतने वर्षों बाद भी अनुसूचित जातियों का कितना विकास हुआ और कितनी सरकारी, गैर सरकारी सुविधाएँ उन तक पहुँची है? इसका नग्न यथार्थ पटकथा "मेरा घर" में देखने को मिलता है। यहाँ कहानीकार उनके अभावों, कष्टों और दुःखों को अपनी सधी हुई कलम से अत्यंत ही मर्मस्पर्शी व्यंग्य के रूप में चित्रित करते हैं। दरअसल आज किसी भी पुरस्कार का किसी भी तरह के सृजन से कोई सरोकार नहीं रह गया है, क्योंकि अब तो यह समीकरणों, आपसी सहमतियों की शीरणी भर है, किंतु "पुरस्कार" अपवाद है। कहानी साहित्यिक अकादमियों के उन आकाओं के गंदे मंसूबे पर पानी फेर देती है, जो पुरस्कार अनुदान तथा अन्य सम्मान पर कुंडली मारे बैठे हैं। इस कहानी में मुक्ति के केवल मार्ग की तलाश ही नहीं है, बल्कि उनके द्वारा किए जा रहे लेखिकाओं के यौन शोषण से मुक्ति की भी गहरी कसमसाहट है। "बेस" कहानी में यौन शोषण के लिए आदिवासी स्त्रियों को रात–बिरात सुनसान जंगलों से उठा लिए जाने की समस्या की व्यथा–कथा संकेतित है, किंतु अब ऐसा संभव नहीं है, क्योंकि वह अपने परंपरागत रहन–सहन और पहनावे में बदलाव करके स्वभाव में अभिजातपन लाकर अपनी अस्मिता की खुद रक्षा करने लगी है। इसमें पात्रों के चरित्र की गहन पकड़ भी है।

"बिल्लो का ब्याह" में पत्नी के निधन के बाद ससुराल वालों के तिड़कमी हथकंडे और दबाव में अपनी बेटी समतुल्य साली से विवाह करने वाले एक नौकरी–पेशा सुखी–संपन्न अधेड़ आयु के व्यक्ति की मनोव्यथा है। इसमें विवाहोपरांत उपजी स्थिति और लिजलिजेपन से उत्पन्न मौन प्रतिरोधात्मक विरोध में बल खाते हुए तेवर और लड़की होने की कसमसाहट, चुभन और आक्रोश अभिव्यंजित हैं। धीरे–धीरे ही सही, अब हाशिए का समाज भी शिक्षा के महत्त्व को भली–भाँति समझने लगा है। भले ही वह अनपढ़–अशिक्षित हो, किंतु आने वाली अपनी अगली पीढ़ी के भविष्य के लिए वह चिंतित– सचेत – प्रतिबद्ध है। कुछ इसी थीम के आधार पर रची गई "बंजारन" कहानी है। इसमें बंजारन अपनी पढ़ी–लिखी नाबालिग लड़की के बेमेल विवाह का प्रतिकार जबरदस्त ढंग से करती है। यहाँ जीवन का एक नया रूप दृष्टिगोचर होता है। यह कहानी अपने क्रांतिकारी विचारों से मर्दवादी सोच को खुली चुनौती देती है।

प्रस्तुत संग्रह में एकांकी और नुक्कड़ नाटक जैसी प्रस्तुति भी है। "नट की बेटी" में। अपना और अपने परिवार के भरण–पोषण के लिए जान जोखिम में डालकर ऊँचे बाँसों पर बंधी हुई रस्सी के ऊपर खेल–तमाशे दिखाती आठ वर्षीय लड़की की व्यथा है। ऊँचें बाँसों पर बंधी रस्सी पर चलती लड़की सांड के उधर भाग खड़ा होने पर नीचे गिरकर चोटिल हो जाती है। कहानी का अंत सुख–दुखात्मक है – "एक धार बेटी का दुःख, दूसरी धार कमरू के व्यवहार का सुख था।" यह अंतिम वाक्य दिशा दिग्दर्शक है– बावरा नट! मेनत मजूरी कर! तेरी बेटी, मेरी बेटी। लड़की तमाशों ना दिखा पावैगी अब ! लड़की ने पढ़ा–लिखा। आगे बढ़ा।" (पृ. 159) हिन्दी कथा साहित्य में "मदारिन" अपने कथा – विन्यास की ताजगी, अपनी तीखी, सटीक प्रवाह युक्त भाषा–शैली और यथार्थवादी दृष्टिकोण के पैनेपन के लिए जानी जानी जाएगी। इसमें एक तरफ प्रशासनिक अधिकारियों के चारित्रिक पतन का और दूसरी ओर मदारिन के चारित्रिक वैशिष्ट्य का चित्र खींचा गया है।

अंत में, जहाँ तक भाषा में अभिधा– लक्षणा– व्यंजना को साध सकने वाली बात है, तो वह यत्र–तत्र – सर्वत्र है। शब्द–शक्ति की अंतर्वस्तु को एक साथ भाव और परिवेशानुसार अंचल विशेष की ग्राम्य–गिरा तथा शुद्ध साहित्यिक भाषा में साध लेना एक अद् भुत साहित्यिक प्रतिभा को दर्शाता है। सच्चाई यह है कि सांभरिया जी की भाषा आलंकारिक है, जिसमें उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, अनुप्रास, वक्रोक्ति और दृश्य अलंकारों की अद् भुत छटा देखते ही बनती है। छोटे–छोटे वाक्य, उसमें साइलेंट शब्द, संरचना के महत्व को बढ़ा देते हैं। अंग्रेजी के सुगठित वाक्यों की तरह हिंदी वाक्य–प्रयोग, तत्सम तद् भव, देशज, विदेशज शब्दों की मिलावट कहानियों के भाषिक सौंदर्य को उद्दीप्त करते हैं, देशी कहावतों, मुहावरों , सूक्तियों और यदा–कदा ऐतिहासिक पौराणिक मिथकीय शब्द बिम्बों के तड़का से आस्वादन के भिन्न रंग प्राप्त होते हैं। कई ऐसे स्थल उपलब्ध

हैं, जिन्हें पढ़ते समय ऐसा लगता है कि हम कहानी नहीं, गद्य कविता पढ़ रहे हैं। इनमें एक लय है, एक प्रवाह है और कहीं–कहीं तुक भी हैं। वातावरण और परिवेश निर्माण की कला विलक्षण है।

समग्रतः ''स्त्री विमर्श'' की इन कहानियों में आज की युगीन दलित शोषित आदिवासी महिलाओं की ज्वलंत समस्याओं को सर्वाधिक महत्व देते हुए सहज संवादों के उतार–चढ़ाव से कथानक की बुनावट इस विशिष्ट अंदाज में की गई है कि उनकी गहन पीड़ा, उनका शोषण, उनका संघर्ष, उनकी अवमानना और नई शुरुआत करने की उत्कट अभिलाषा है। माहौल के अनुसार वातावरण की सृष्टि और चरित्र–चित्रण का अंकन विश्वसनीयता की उपज है। भाषा में प्रवाहमयी स्थानीयता को भी नजर अंदाज नहीं करते हुए रेतीले, उबड़–खाबड़ जीवन संघर्ष को उभारा गया है। कहना न होगा कि हिंदी कथा जगत् में स्त्री की भिन्न–भिन्न समस्याओं और उसकी अस्मिता पर असरदार और सहज कहानियाँ लिखने में कहानीकार श्री सांभरिया ने महारत हासिल की है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस संग्रह की कहानियाँ अपने पाठकों – आलोचकों के मन पर अवश्य ही अपनी गंभीर और विशिष्ट छाप छोड़ने में सफल होंगी।

15.रत्न कुमार सांभरिया की कहानियों का अवलोकन एक दृष्टिमें

–डॉ.नवीन अग्रवाल
सहायक प्रोफ़ेसर,
वाणिज्य संकाय (लेखा और विधि)किशोरी रमण (पी.जी.)कॉलेज मथुरा

रत्नकुमार सांभरिया हमारे दौर के एक महत्वपूर्ण कथाकार हैं। इनकी कहानियाँ दलित समाज से जुड़ी हुई कहानियाँ हैं, जिनमें दलित जीवन के तमाम शेड्स मौजूद हैं। इनकी कहानियाँ इस अर्थ में थोड़ी अलग हैं कि इनमें केवल दलितों का शोषण–उत्पीड़न ही चित्रित नहीं हुआ है, बल्कि ज़्यादातर ये कहानियाँ दलित समाज के बदलते यथार्थ और दलितों की बदलती सामाजिक हैसियत को विषय बनाती हैं। आज़ाद हिंदुस्तान में और खासकर अस्सी–नब्बे के दशक के बाद समाज के जातिवादी वर्चस्व की संरचना में आने वाले परिवर्तन से पारंपरिक वर्चस्वशाली जातियाँ किस तरह से अपना समायोजन करती हैं– यह भी सांभरिया जी की कहानियों में दिखाई पड़ता है। सांभरिया जी की कहानियों के जरिए भारतीय समाज के जातिवादी चरित्र के तमाम पेंचोखम को समझा जा सकता है। प्रस्तुत लेख में सांभरिया जी की कहानियों का इसी संदर्भ में विवेचन–विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

हिंदी के लेखकों में दलित लेखक रत्न कुमार सांभरिया भी एक प्रमुख है इनकी कहानियां बहुत ही रोचक हैं। आज भी उनकी कहानियां एक पायदान आगे हैं।संभरिया के सभी पात्रों को ना तो अस्तित्व का संकट है और ना ही अधिकारों की लड़ाई मैं कोई मनमुटाव। उनके सभी पात्र अपनी अस्मिता और सम्मान के लिए संघर्षरत हैं। उनका स्पष्ट मानना है कि दलितों की पीड़ाओं पहाड़ खड़ा कर देना दलित कहानी नहीं है। दलित कहानी से आशय एक ऐसी अनूठी रचना से है, जो दलित में नए जीवन का संचार करती हो।कथाकार दलित हो या गैर दलित,जिस कहानी के सभी पात्र सकारात्मक दृष्टिकोण के हो उस की कहानियां भी एक पायदान आगे रहती है। सूरजपाल चौहान की "घाटे का सौदा"कहानी का मुख्य पात्र डोरीलाल वाल्मीक शहर में आकर डी लाल बन जाता है और वह एक अच्छी कॉलोनी में बंगला खरीद कर बड़े ठाठ बाट से रहने लगता है।पर एक दिन सबके सामने उसकी जाति खुल जाती है।बस यही से उसको आत्मग्लानि होने लगती है और आनन–फानन में वह अपनी 10 –15 लाख की कोठी को मात्र ₹600000 में बेच कर उस कॉलोनी से भाग जाता है लेकिन सांभरिया की कहानियों का एक भी पात्र ऐसा दब्बू और लड़खड़ाते व्यक्तित्व का नहीं मिलेगा। यदि हम "मुक्ति" कहानी

को ले तो यह धर्म के नाम पर भावनाओं के शोषण की कहानी है। गांव में रथ यात्रा निकल रही थी घर पर मंदिर का महंत बैठा था।अचानक रास्ते में एक बिग डॉल सांड आ जाता है।सारागांव डर जाता है।लोग छुप छुप कर तमाशा देखने लगते हैं। कोई भी साड़ का सामना करने नहीं आता।अंत में घिघीयाता महंत गांव के ही एक दलित व्यक्ति नानकराम मेहतर से धर्म की दुहाई देते हुए कहता है की नानकराम इस समय धर्म की मर्यादा है। महाराज की सवारी पीछे नहीं मुड़ती है। मैं रथ को छोड़ नहीं सकता। सांड को भगाओ, रास्ता बनाओ और धर्म को बचाओ। धर्मार्थ नानकराम तुरंत भावावेश में आ जाता है। और अपने बेटे चंदू की ओर देखता है। बेटा चंदू तुरंत ही सांड का मुकाबला करने आ जाता है। सांड उसे मारता है और उठाकर पटक देता है ।चंदू गंभीर रूप से जख्मी हो जाता है। नानक धर्म के नशे में इतना गाफिल है कि महंत द्वारा उकसाने पर अपने बेटे तक को उसकी रक्षा करने के लिए आगे कर देता है और यहां तक सोचता है कि उसका चंदू पूरे गांव में शूरवीर निकला। उसने खुद की जान की परवाह किए बिना धर्म की रक्षा की। बेटा चंदू मर गया और वह शहीद कहलाया। धर्म के लिए अपने बेटे की जान न्योछावर करने के बाद भी जब नानकराम सवारी के साथ मंदिर में पहुंचकर रथ की मूर्ति उतारने के लिए आगे बढ़ता है तो वही महंत जो कुछ देर पहले मृत्यु के डर से नानकराम के आगे घिघीया रहा था, घृड़ा से कांपने लगता है। अरे नानकराम तो मेहतर है, तू झाड़ू वाले हाथों से मूर्ति नहीं छू सकता।इस धोखे से नानकराम को धर्म और जाति की असलियत समझ में आ जाती है और उसका स्वाभिमान जाग उठता है। वह हाथ में पकड़ी हुई तलवार लेकर महंत का वध करने के लिए उसके पीछे दौड़ता है। दलित रचनाकारो के यहां दलित पीड़ा और उत्पीड़न की कहानियां तो बहुत हैं ।पर उनमें प्राय विपक्षी शोषणकारी सत्ता से उतना कड़ा और सीधा प्रतिरोध नहीं मिलता, सांभरिया के यहां इसे विशेष रूप से देखा जा सकता है। यहां महंत का रुख सही नहीं था। महंत को नानकराम के बारे में ऐसा नहीं सोचना चाहिए था। इंसान को इंसान समझना चाहिए जाति, धर्म यह सभी इंसान के बनाए हुए हैं भगवान के नहीं। दलितों का उत्पीड़न की कहानियां बहुत सारी हैं उन्हीं में से एक कहानी "आखेट"एक गांव में सोमा और रेवती किसान मजदूर दंपत्ति रहते हैं। आर्थिक रूप से तंगी के कारण सोमा मजदूरी का काम करता है। एक दिन रेवती सास के साथ अपने खेत में घास छिलाई कर रही थी तभी गांव का जमीदार नानक सिंह उधर से निकलता है वह रेवती की सास को अपने खेतों में चढ़ते जानवरों को भगाने के बहाने दूर भेज देता है। और गलत नियत से रेवती को दबोच लेता है लेकिन रेवती के हाथों में खुरपी मौजूद थी। रेवती अपना बचाव करने के लिए उस खुरपी से उसकी नाक काट देती है। और उस जमीदार की चुंगल से छुटकर भाग जाती है। इस गंभीर परिस्थिति में रेवती और सोमा उसी रात गांव छोड़कर शहर आ जाते हैं। पीछे से नानक सिंह के करिंदे सोमा के घर पर हमला कर देते हैं और उसकी मां को घर से पीट–पीटकर निकाल देते हैं।वह पैर पटक पटक कर वही रास्ते में दम तोड़ देती है। सोमा के घर और खेत पर नानक सिंह का कब्जा हो जाता है ।शहर आकर सोमा और रेवती एक खाली जगह पर झुग्गी बनाकर रहने लगते हैं। झुग्गी सुख प्रसाद नाम के लाला की हवेली से सटी हुई है। यहां भी लाला की रेवती पर बुरी नजर है। वह अक्सर अपनी छत से रेवती को पैसे और आभूषणों का लालच देता रहता है। एक दिन उसने 100–100 के नोटों का बटुआ झुग्गी की ओर गिराया। रेवती ने बटुआ उठाया उस पर थूका और वापस लाला की ओर फेंक दिया। इससे लाला जल भुन उठता है और पिस्तौल निकालकर उसे डराने लगता है। इसी क्रम में उसे ठोकर लगती है और पिस्तौल छूटकर नीचे गिरती है। रेवती उसे खिलौना समझ कर बच्चे को खेलने को दे देती है। रात को जब बुखार में तपते हुए सोमा के लिए मैं चाय बनाने उठी तो उस दिन की घटना याद आई और उसने वह बंदूक सोमा को दिखाती है।असली पिस्तौल और उसमें एक गोली देखते ही शोभा बुखार में दीदी को लेकर अपने गांव के लिए निकल पड़ती है। नानक से पत्नी की इज्जत की ,मां की मौत का बदला लेने, घर और खेत का बदला लेने के लिए वह गांव पहुंचती है।

ऐसा ही सक्रिय प्रतिरोध "मांडी" में देखा जा सकता है सब जानते हैं कि हिंदुओं में गुरु, गंगा, गीता, गाय,गायत्री,पंचगकार माने गए हैं। इन पंचगकारों में गाय को धार्मिक,पारिवारिक एवं आर्थिक हर जरूरत में बड़ा महत्त्व है। गर्भाधान से लेकर मृत्यु तक हर एक अवसर पर गाय का दूध भी पवित्र माना जाता है। उनके बछड़ों से बैल बनते थे। बैल किसानों के लिए खेती का काम संभालने में काम आते थे। गाय का गोबर खाद के काम आता था। यथा अवसरों पर गायों को दान तक किया जाता था। वह इज्जत मर्यादा की निशानी थी। प्रेमचंद का "गोदान" इसका सर्वोत्तम उदाहरण है ।एक समय घर–घर गायें बधी होती थी। उनके बछड़े कूद कूद कर पलटी मारा करते मारा करते थे। सभी गाय का दूध पीते थे। दही, छाछ, घी निकालते थे। यह बछड़े जब बैल बन जाते थे तो इन बैलों के गलों में घुंगरू बांध दिये जाते थे ।जब यह बैल खेती के लिए खेतों में चलते थे तो

इनसे एक विशेष प्रकार की ध्वनि प्राप्त होती।अब स्थिति बदल गई है पूंजीवाद और आधुनिक मशीनीकरण ने खेती किसानी का तरीका ही बदल दिया है। बैलों की जगह ट्रैक्टर ने ले लिया है। गाय की जगह भैंस से आ गई है।क्योंकि उसने मिलने वाला दूध की गाय की तुलना में काफी ज्यादा होता है। गोबर की जगह रसायनिक खाद आ गया है। खेती का जो स्वाभाविक प्राकृतिक तरीका था वह सब इस आधुनिकरण में पूरी तरह से बदल चुका है। वर्तमान में यह सभी मशीनों के माध्यम से होने लगा है। इससे उत्पादन में बढ़ोतरी हुई है। खेती करना आसान हुआ है। धार्मिक स्तर के अलावा अब पारिवारिक एवं आर्थिक स्तर पर गाय की जरूरत बदल गई है। मांडी के दानी दास के लिए अमावस्या ऐसा ही एक धार्मिक मौका है। मांडी अमावस्या के दिन गाय को दी जाने वाली पहली रोटी और उस पर खीर चावल रखकर गाय को खिलाता है। इससे पितरों का तर्पण और पुण्य माना जाता है। परंपरा अनुसार मंडी के आने के बाद ही घर के लोग भोजन कर सकते हैं।दान सिंह मांडी लेकर निकलता है ।असल में पहले दानीदास स्वयं गाय पालता था। पर उसकी उपयोगितावादी आंखों में भी अब गाय किसी काम की नहीं रही। एक दिन गाय उसने बेच डाली। थोड़ी देर पहले ही गली में बधी एक गाय देख कर गया था।जिस सुबे सिंह मेहतर की थी।पर इस समय गाय नहीं थी। सुबे सिंह की पत्नी कुमुद उसे भीतर अपनी चौक में दूध निकालने के लिए ले गई थी। दानी दास का मानना है कि मेहतर के चौक खूटे बधी गाय मेहतर थी। इसलिए वह चौक में नहीं जाता मांडी देने। धर्म की दीवार दरक जाएगी। पितर नुकर जाएंगे । एक मेहतर के घर गाय बधे देख दानी दास का जात्याभिमान जाग उठता है। उसे पुराना समय याद आ जाता है। एक समय यही सुबे सिंह की मां उसके घर लंबी झाड़ू लिए झाड़ू लगाने जाती थी। झोली आगे बढ़ा कर झूठन ओटती थी। कोई निकलता, घूंघट काढ़कर खड़ी हो जाती थी। आज तो परिस्थितियां ही बदल गई हैं। उपरोक्त पंक्तियों में अनीता जैसे लोगों की हकीकत के सारे उजागर हो गए हैं ।उन्हें समाज के तथाकथित सबसे निचले पायदान पर माना जाता है। झूठन लेना और गंदगी साफ करना , जिनके घर सूअर पलते आए हो आज उनके घर गायब हो गए हैं। माता और हिंदू धर्म को स्तंभ माना जाता है।

रत्नकुमार सांभरिया की बावन कहानियाँ अब तक प्रकाशित हैं। इनकी अधिकांश कहानियों में दलित समाज का बदलता हुआ यथार्थ अभिव्यक्त हुआ है। इनकी पहली कहानी 'फुलवा' 1997 में हंस पत्रिका में प्रकाशित हुई। इस पहली कहानी से ही सांभरिया जी की कथा–दृष्टि की स्पष्टता दिखाई पड़ने लगती है। आजाद हिंदुस्तान की सामाजिक संरचना में आज़ादी के तकरीबन 30–35 वर्षों के बाद 1980–90 के आसपास परिवर्तन आना शुरू होता है। पिछड़ी और दलित जातियाँ सक्रिय और प्रभावी तौर पर भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप करती हैं और उसके बाद दलितों–पिछड़ों की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक हैसियत पहले की तुलना में थोड़ी बेहतर होती है। अस्सी के दशक में कांशीराम का उभार दलित राजनीति में नया तेवर लेकर आता है। प्रसिद्ध दलित चिंतक कँवल भारती दलित राजनीति की इस करवट को रेखांकित करते हैं– "दलित राजनीति को अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाने का एक अवसर अस्सी के दशक में मिला। दलित राजनीति के लिए यह दशक अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। वास्तव में समकालीन दलित विमर्श का उदय उसी काल में हुआ। 1980 में कांशीराम बामसेफ के माध्यम से भारतीय समाज में एक नया दलित विमर्श लेकर अवतरित हुए।" दलितों–पिछड़ों के राजनीतिक चेतना–सम्पन्न होने और सक्रिय राजनीति में उनकी भागीदारी से समाज में जातियों का शक्ति–समीकरण थोड़ा बदलता है। इसका परिणाम एक तरफ पिछड़ों–दलितों के सामाजिक–राजनीतिक उत्थान के रूप में सामने आता है तो दूसरी तरफ ऊँची जातियों के बीच एक किस्म का 'फ्रस्ट्रेशन' भी दिखाई पड़ता है। सवर्ण ब्राह्मणवादी मानसिकता इन बदलती सामाजिक–राजनीतिक परिस्थितियों से तालमेल बिठाने के लिए संघर्ष करती हुई दिखाई पड़ती है।

ऐसी स्थिति में तथाकथित ऊँची जातियों के लोगों में एक किस्म का जातिवादी समायोजन दिखाई पड़ना शुरू होता है। दलित पिछड़ी जातियों के प्रभावशाली व्यक्तियों के साथ जाति की मर्यादा को तोड़ने में अगड़ी जाति के 'समझदार' लोगों को कोई खास परेशानी नहीं होती। यह हवा का रुख देखकर दलितों–पिछड़ों के साथ मधुर संबंध बनाने में हिचकते नहीं हैं। ऊँचे पदों पर बैठे दलित अधिकारियों से अपना काम निकालने के लिए या उनके पद के डर और दबाव में ही सही, ऊँची जातियों के व्यवहार में एक किस्म का बदलाव दिखाई पड़ता है। जाहिर है ऊँची जातियों के द्वारा यह जो जातिवादी समायोजन होता है वह एक रणनीतिक समायोजन ही है। अवसर के अनुकूल जाति की मर्यादा और श्रेष्ठता–बोध को कुछ समय के लिए छोड़ा जा सकता है! यही रणनीतिक समझदारी इस जातिवादी समायोजन के पीछे काम करती है। लेकिन जातिवादी समायोजन की इस प्रक्रिया में ऊँची जातियों के भीतर एक अलग ढंग की चिढ़ और नफरत पैदा होती है, जो वक्त आने पर पूरी घृणा और निर्ममता के साथ अभिव्यक्त होती है। सांभरिया जी की तमाम कहानियों में

नब्बे के बाद का यह बदलता हुआ सामाजिक यथार्थ अभिव्यक्त हुआ है। 'फुलवा', 'डंक', 'बदन–दबना', 'बूढ़ी', 'बाढ़ में वोट' आदि कहानियों में इस रणनीतिक जातिवादी समायोजन और इससे पैदा हुई चिढ़ को देखा जा सकता है।

रत्नकुमार सांभरिया की कहानी 'फुलवा' ऐसी ही कहानी है, जो नब्बे के बाद के भारतीय लोकतंत्र में दलितों की बदलती हुई स्थिति और उससे तालमेल नबिठा पाने वाली प्रतिगामी सवर्ण मानसिकता को अभिव्यक्त करतीहै। किसी समय गाँव में जमींदार की टहलुआई करने वाली फुलवा का बेटा पढ़लिख कर एस.पी. बन जाता है और फुलवा अपने बेटेबहू के साथ शहर के भव्य सरकारमकान में रहने लगती है। गाँव के जमींदार का लड़का रामेश्वर अपने बेपढ़ेलिखे बेटे को नौकरी में लगवाने के लिए सिफारिश करने शहर आता है। पंडित माताप्रसाद का मकान ढूंढ पाने में असफल रामेश्वर फुलवा के घर चला जाता है। गाँव की दलित फुलवा जो उसकी हवेली में बेगार खटती थी, यहाँ रानी की तरह रहती है! फुलवा की हैसियत देखकर रामेश्वर जल–भुन जाता है। जातिवादी संस्कारों से बंधा रामेश्वर भूखा होने पर भी फुलवा के घर पानी तक नहीं पीता। जाति के झूठे अभिमान से भरा रामेश्वरसिंह फुलवा के आतथ्य और सत्कार को तोठुकरा देता है, लेकिन अंततः बदली हुई परिस्थिति और अपनी गरज के आगे लाचार वहफुलवा के पास मददकेलिएजानेकोमजबूरहोजाताहै। रत्नकुमार सांभरिया कीयह कहानी दलितों की बदलती सामाजिक स्थिति के साथसाथ जातिवादी समाज के बदलते रवैये को पाठकों के सामने रखती है। जातिवादी समाज के रवैये में परिवर्तन कुछ तो स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप में घटित होता है और ज़्यादातरलाभ और गरज के दबाव में। कहानीमेंपंडित माताप्रसाद की विधवा और फुलवा का परस्पर व्यवहार और संबंध स्वाभाविक तौर पर जाति की सीमा को तोड़ता है, जबकि रामेश्वर अपनी गरज से जाति की मर्यादा तोड़ने पर मजबूर होता है। यह कहानी गाँव और शहर में जातिवाद के बदलते समीकरण को भी प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करती है।

डंक' कहानी जातिवादी समायोजन और इस प्रक्रिया में तथाकथित ऊँची जातियों के फ्रस्ट्रेशन को और बारीकी से पकड़ती है। संवैधानिक मूल्यों पर आधारित समाज में बदले हुए सामाजिक समीकरण के बीच दलित खेरा भी अपनी मेहनत और बुद्धि से थोड़े पैसे कमा कर समाज में अपनी स्थिति थोड़ी मजबूत कर लेता है। इतनी मजबूत कि उसका जाति से चमार होना गौण हो जाता है। सांभरिया जी रेखांकित करते हैं– "हाथ में दाम हो। जात दब जाती है।"आर्थिक संपन्नता खेरा को सामाजिक सम्मान भी दिलाती है। खेरा की इसी आर्थिक संपन्नता के कारण सतना पंडित को अपनी बेटी की शादी के लिए कर्ज माँगने खेरा के पास आना पड़ता है। अब कहानी के इस पूरे प्रकरण में वर्णाश्रमी पंडित सतना के मन के उधेड़बुन, खेरा के रोबदार व्यवहार के प्रति उसका मानसिक रोष और उसके भीतर के जातिवादी अहं को देखा जा सकता है। उसका जातिवादी अहंकार जोर मारता है और वह बदले हुए वक्त को और अपने को कोसता है– "वक्त की डोर छूट गई, वरना कुपात्र का सारा पैसा हड़प, कानों में सीसा भर के गाँव से खदेड़ देते।" सतना खेरा की कमर तोड़ कर (जिससे अंततः उसकी मौत हो जाती है।) और उससे उधार लिए पैसे हड़प कर आखिर अपने मन की मुराद पूरी कर लेता है। सतना जैसा वर्णाश्रमी पंडित बदलते सामाजिक यथार्थ से तालमेल नहीं बिठा पाता। एक दलित का बराबरी में आना उसे डंक की तरह चुभता है। यह कहानी दलित समाज के बदलते यथार्थ के साथ–साथ भारतीय समाज की जातिवादी संरचना में पैदा हो रहे तनाव को भी अभिव्यक्त करती है।

इस कहानी का एक और महत्त्वपूर्ण पक्ष है। आर्थिक समृद्धि ने खेरा के भीतर के जातिवाद को उभार दिया और वह अपनी ही जाति के दूसरे व्यक्ति से जातिवादी व्यवहार करने लगा। सांभरिया जी लिखते हैं– <u>"पैसा आदमी में सामंती भाव उगा देता है। टोटा निरीह बना देता है। दोनों की जात एक थी। पांत एक थी। गरज दीवार थी। खेरा अपने जातिभाई को हुक्का नहीं दे रहा था। हाकिम और हरकारे–सा कुछ उनदोनों के बीच था।"</u> भारतीय समाज की जातिवादी संरचना की सांभरिया जी की समझ एकांगी नहीं है। जातिवाद की परतों को सांभरिया समझते हैं। इसलिए दलित खेरा के भीतर का जातिवाद भी उनकी नजर से चुकता नहीं है। विश्वनाथ त्रिपाठी दलित कहानियों पर विचार करते हुए इस बात को ठीक रेखांकित करते हैं कि "वर्णाश्रम व्यवस्था या ब्राह्मणवाद सिर्फ सवर्णों में नहीं– वह वर्णाश्रम व्यवस्था से पीड़ित दलित समुदायों में भी है। वर्णाश्रम व्यवस्था के विरोधी दलित–चेतना का उत्तरदायित्व है कि वह इसकी भी खोज करके इसका विरोध करे।...इसकी अनदेखी का मतलब है दलित–चेतना के पेट में ही दलित–विरोधी चेतना का पालन–पोषण।"ज़ाहिर है सांभरिया दलित लेखन की इस ज़िम्मेदारी को महसूस भी करते हैं और निभाते भी हैं।

यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में कोई जातिवादी आग्रह दिखाई नहीं पड़ता। जातिवाद और ब्राह्मणवाद की आलोचना करते हुए सांभरिया स्वयं जातिवाद का शिकार नहीं होते। इनकी कहानियों में किसी जाति

विशेष के लिए कोई पूर्वाग्रह या द्वेष दिखाई नहीं पड़ता। यह अकारण नहीं है कि लेखक जातिवादी शोषण का चित्रण करते हुए भी शोषक की जाति का उल्लेख करने से बचता है। लेखक की चिंता और आलोचना के केंद्र में जातिवाद और ब्राह्मणवाद है, कोई जाति विशेष नहीं। यही कारण है कि सांभरिया जी की कहानियों में दलित प्रतिरोध तो खूब है, मगर दलितों की ओर से किसी प्रतिशोधात्मक कार्रवाई का संभवतः एक भी प्रसंग नहीं है। चूँकि लेखक किसी जाति–विशेष के प्रति पूर्वाग्रहग्रस्त नहीं है, इसलिए इनकी कहानियों में सवर्ण और दलित जातियाँ अनिवार्यतः ब्लैक एंड व्हाइट में चित्रित नहीं हुई हैं। दलितों के भीतर का जातिवाद भी इनकी कई कहानियों में दिखाई पड़ता है। जातिवादी तंत्र में शोषित जातियों की भूमिका को सांभरिया रेखांकित करते हैं। 'शर्त' कहानी का पानाराम इसी प्रवृत्ति की पहचान करता है– 'अपने हाथ ही कुल्हाड़े के हत्थे बन गए है।' इसी तरह कई सवर्ण और ब्राह्मण पात्र अत्यंत सहृदय और मानवीय दिखाई पड़ते हैं। 'गूँज' कहानी की माई जी ऐसी ही एक पात्र है, जो 'जात की बाभनी जरूर थी, लेकिन उसमें जात का जहर कतई नहीं था'। बहरहाल जातिवादी समाज के जिस रणनीतिक समायोजन की बात हम कर रहे हैं, वह 'बदन–दबना' कहानी में भी दिखाई पड़ता है। घोर जातिवादी और दलितों का खानदानी शोषक हलकासिंह गरीब दलित रेमाराम को उसकी बेटी की शादी के लिए दस हजार रुपए देता है, जिसके बदले रेमाराम के तेरह साल के बेटे पूछाराम को अगले पाँच साल तक हलकासिंह की हवेली में बेगार खटना है। यहाँ उच्चजातीय हलकासिंह द्वारा पूछाराम के शोषण आदि की बात को छोड़ देते हैं। यह नई बात नहीं है। जिस जातिवादी समायोजन की बात की जा रही है, उसे देखिए। हलकासिंह को गाँव में बाजे–गाजे के साथ बारात की आवाज सुनाई देती है। उसका जातिवादी अहंकार फुफकार मारने लगता है। दलित की बारात और बाजे–गाजे के साथ! वह क्रोध से भन्नाया हुआ हवेली के दरवाजे तक आता है। आगे की जो कहानी सांभरिया लिखते हैं, उससे जातिवाद के रणनीतिक समायोजन को आप समझ सकते हैं– "बारात देख, हलका का चढ़ा गुस्सा उतर गया था। बारात रेमा की बेटी की नहीं थी। आज गाँव में दो ब्याह हैं। बारात जंगूराम मेहतर की बेटी की है। बाप–बेटी दोनों बड़े ओहदे पर हैं। पैसा और पद, वे दिन लद गए वरना...। उसने दाँत पर दाँत घिसे। दाँत की घिस उसने हवेली की किवाड़ पर फुचक दी थी, जात छोटी, पैसा बड़ा।" यह बारात अगर रेमाराम की बेटी की होती तो हलकासिंह का जातिवादी अहंकार नंगई के साथ जाग जाता! लेकिन पद और पैसे के आगे वह अपना जातिगत दंभ ज़ाहिर नहीं कर पाता है।

रत्नकुमार सांभरिया की कहानियाँ अतीत के गड़े मुर्दे नहीं उखाड़तीं, फिर भी इनके पात्रों में अतीत के भीतर से तोड़ देने वाले शोषण का तगड़ा एहसास मौजूद है। पर जो बात सांभरिया जी की कहानियों को खास बनाती है, वह है प्रतिरोध और बदलाव का अत्यंत दृढ़ प्रण, जिसके आगे शोषण का पूरा इतिहास बौना साबित हो जाता है। सांभरिया जी की कहानियाँ उम्मीद और विश्वास की कहानियाँ है। 'बकरी के दो बच्चे' ऐसी ही कहानी है। दलपत अपनी बकरी के दो बच्चों के हत्यारे धर्मपाल और उसके बाप दानसिंह को उनके अपराध की सजा दिलाने का प्रण करता है। यह प्रण दरअसल केवल बकरी के बच्चे की हत्या के अपराध की सजा दिलाने का प्रण नहीं है, बल्कि शोषण और उत्पीड़न की पूरी शृंखला को तोड़ देने और भारतीय जातिवादी सामाजिक संरचना में ऊँची जातियों को मिले विशेषाधिकारों को चुनौती देने का प्रण है। दानसिंह ने दलपत से कहा था– "ढेड़ और भेड़ को हम जीव नहीं मानते। समझे।" दलपत का संकल्प स्वयं को मनुष्य साबित करने का भी संकल्प है! कहानी के अंत में दानसिंह को हथकड़ी लगना केवल दलपत के संकल्प का पूरा होना नहीं है, बल्कि भारतीय लोकतंत्र में दलितों की बदलती सामाजिक राजनीतिक हैसियत का संकेत भी है। रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों की विशिष्टता यह है कि यह दलित समाज को नियतिवाद से बाहर निकालकर सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया में उसकी आस्था को दृढ़ करती भारतीय समाज की जाति व्यवस्था की एक अजीब–सी खासियत यह है कि इस व्यवस्था की प्रत्येक इकाई जातिवाद को 'इंजॉय' करती है। जो जातियाँ इस व्यवस्था में स्वयं शोषित हैं, वे भी अपने से नीची जातियों के साथ वैसा ही जातिवादी व्यवहार करती हैं। स्वयं को इस जातिवादी व्यवस्था में किसी प्रकार अपग्रेड कर लेना तमाम जातियों की कोशिश होती है। जातिवादी व्यवस्था में सर्वाधिक शोषित दलित जातियों के भीतर भी यह अंतर्विरोध मौजूद है। रत्नकुमार सांभरिया की एक अत्यंत ही सशक्त और मार्मिक कहानी है 'चमरवा'। यह कहानी 'चमरवा बाभन' जाति के एक व्यक्ति दरपन की कहानी है। चमरवा बाभन जाति के लोग प्रायः राजस्थान के पूर्वी और हरियाणा के पश्चिमी छोर पर बसे हैं, जो केवल चमारों के ही कर्मकांड संपन्न कराकर अपना बसर करते हैं। दरपन के जातिवादी मनोविज्ञान के सहारे जाति की फाँस को बहुत मार्मिक तरीके से सांभरिया जी ने अभिव्यक्त किया है। दरपन स्वयं को ब्राह्मण मानता है, लेकिन ब्राह्मण या बाकी का पूरा समाज

उसे चमार ही मानता है। दर्पण और उसकी पत्नी का मानना है कि 'बाभन के आगे चमरवा लगाने से कोई चमार थोड़े ना बन जाता है।" जबकि बाकी के समाज की सोच यह है कि 'चमरवा के साथ बाभन लगाने से कोई बाभन नहीं हो जाता है।" सामाजिक रुप से चमार के रूप में स्वीकृत दरपन स्वयं को बाभन के रूप में समाज द्वारा स्वीकृत करवाना चाहता है और वह स्वयं को न केवल बाभन मानता है, बल्कि ब्राह्मणवाद और वर्णाश्रम के अनुकूल ही आचरण भी करता है। अपने जजमान चमारों के साथ वह छुआछूत का व्यवहार करता है। दरपन की स्थिति इस कहानी में विचित्र है। वह स्वयं को ब्राह्मण मानता है, जबकि ब्राह्मण उसे चमार मानते हैं। चमार उसे अपना मानते हैं, लेकिन वह चमारों को अछूत मानता है। मतलब यह कि वह जो है, उसे वह स्वीकार नहीं करता या उसका वर्णाश्रमी जातिवादी आग्रह उसे उसकी वास्तविक स्थिति को स्वीकार नहीं करने देता और जो वह होना चाहता है, वह इस जातिवादी सामाजिक व्यवस्था में वह हो नहीं सकता! अपने ब्राह्मण होने की इच्छा और इस सामाजिक व्यवस्था में चमार बने रहने के यथार्थ के बीच झूलते रहना चमरवा बाभन की नियति बन जाती है। जातीय श्रेष्ठता की मिथ्या चेतना में उलझे दरपन के मनोविज्ञान को बहुत ही सशक्त और मार्मिक कथानक के माध्यम से सांभरिया जी ने पेश किया है। निश्चित रूप से यह रत्नकुमार सांभरिया की सबसे अच्छी कहानियों में से एक है। सांभरिया जी की अधिकांश कहानियाँ आक्रोश और प्रतिरोध की कहानियाँ है।

'मुक्ति', 'बात', 'झंझा', 'भैंस', 'शर्त', 'आखेट' आदि तमाम कहानियों में दलितों के शोषण के अलग–अलग रूप और उसके प्रति दलित आक्रोश और प्रतिरोध को देखा जा सकता है। हालाँकि दलित आक्रोश और प्रतिरोध हिन्दी साहित्य में कोई एकदम से नई चीज नहीं है। इसकी पूरी परंपरा है। दलित आक्रोश और प्रतिरोध की इस परंपरा को हम प्रेमचंद के साहित्य में भी देख सकते हैं। लेकिन जैसे हर परंपरा लगातार आगे बढ़ती है, समय के साथ बदलती भौतिक परिस्थितियों के अनुरूप अपने को परिवर्तित करती है, उसी तरह आक्रोश और प्रतिरोध की इस परंपरा में भी समय के साथ परिवर्तन होते रहे हैं। प्रेमचंद के दलित पात्रों का प्रतिरोध (यद्यपि कई प्रसंगों में यह प्रतिरोध काफी सशक्त है।) भवितव्य की ओर संकेत करता है, तात्कालिक सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त नहीं करता। लेकिन प्रेमचंद के बाद तकरीबन 65–70 वर्षों के अंतराल में भारतीय समाज की भौतिक परिस्थितियों में जो परिवर्तन आए हैं, उसमें दलित समाज का प्रतिरोध कोई भविष्य में होने वाली बात नहीं रह गई है। इसलिए सांभरिया जी की कहानियों में जो दलित आक्रोश और प्रतिरोध दिखाई पड़ता है, वह ज्यादा विश्वसनीय मालूम पड़ता है। बहरहाल! दलितों का शोषण केवल जातिवादी व्यवस्था ही नहीं करती, बल्कि पूँजीवाद भी अपने ढंग से दलितों का शोषण करता रहा है। 'खेत' कहानी पूँजीवादी तंत्र में दलितों के शोषण और उसके सामने दलित प्रतिरोध की कहानी है। इस कहानी के मूल पात्र बूढ़े केरसिंह सैनी के पास कुल जमा दो सौ वर्ग गज जमीन है, जिस पर बिल्डरों और कॉरपोरेट घरानों की निगाह है। बूढ़े केरसिंह के पास उस जमीन को बेचने की कोई वजह नहीं है। वह उसे बेचना नहीं चाहता, लेकिन पूँजीवाद के एजेंट किसी भी तरह से उससे वह जमीन हासिल कर लेना चाहते हैं। इस कहानी का बूढ़ा केरसिंह प्रेमचंद के सूरदास की याद दिला देता है। 'रंगभूमि' का सूरदास भी पूँजीवादी एजेंटों से अपनी जमीन और झोपड़ी को बचाने की लड़ाई लड़ता है। लेकिन 'खेत' कहानी के बूढ़े केरसिंह का प्रतिरोध 'रंगभूमि' के सूरदास की तुलना में ज्यादा सशक्त है। उसका प्रतिरोध सूरदास की तुलना में ज्यादा आगे बढ़ा हुआ प्रतिरोध है। 'रंगभूमि' का सूरदास कहता है– "अपना घर है, नहीं देते। जबरजस्ती जो चाहे ले ले।" सूरदास की जमीन छिन जाती है। झोपड़ी मलबे में बदल जाती है। सूरदास सत्याग्रह करता हुआ मर जाता है। व्यवस्था जीत जाती है। लेकिन 'खेत' कहानी में बूढ़ा केरसिंह लाठी उठाए हुए जीवित है। छल से तैयार किया गया स्टांप पेपर चिंदी–चिंदी होकर बिखर जाता है। बूढ़ा अपनी जमीन किसी को जबरदस्ती हड़पने नहीं देता। यह सूरदास के प्रतिरोध से आगे बढ़ा हुआ प्रतिरोध है। यह जो फर्क पैदा हुआ है, दलित प्रतिरोध में जो आक्रोश और दृढ़ता आई है, वह दरअसल अस्सी वर्षों के फासले का नतीजा है। इन अस्सी वर्षों में दलितों की सामाजिक हैसियत बदली है। बूढ़े केरसिंह की स्थिति भी सूरदास से भिन्न है। केरसिंह का बेटा बड़ा अफसर है। पुलिस–प्रशासन के लोगों पर इस बात का दबाव है। दलित के बेटे का बड़ा अफसर होना बदले हुए सामाजिक यथार्थ का संकेत है, जो सांभरिया जी की कहानियों में बार–बार अभिव्यक्त हुआ है। इस बदले हुए सामाजिक यथार्थ ने दलित आक्रोश और प्रतिरोध के स्वरूप को भी बदला है। रत्नकुमार सांभरिया की कहानियाँ इस बात का साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं।

रत्नकुमार सांभरिया अपनी कहानियों के माध्यम से दलित समाज के भीतर परिवर्तन की प्रक्रिया को दर्ज करने का काम करते हैं। सांभरिया जी की अधिकांश कहानियाँ दलित समाज की प्रगति और उसकी बदलती सामाजिक हैसियत की साक्षी हैं। इन कहानियों से दलित समाज की प्रगति के संबंध में सांभरिया

जी की दृष्टि को समझा जा सकता है। सांभरिया जी ने अपनी तमाम कहानियों में शिक्षा और इसके जरिए आर्थिक उन्नति के माध्यम से सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने और जाति से मुक्ति (एक हद तक) की प्रक्रिया को अलग–अलग कथानकों के द्वारा प्रस्तुत किया है। अपनी पहली कहानी 'फुलवा' में ही दलित समाज के उत्थान के लिए शिक्षा के महत्त्व को लेखक रेखांकित करता है– "फुलवा चालाक निकली। इसने सौ पापड़ बेल लिए, लेकिन राधा मोहन के हाथ से किताब नहीं छूटने दी...।"लेखक दलित–मुक्ति के गाँधीवादी–सुधारवादी आदर्शों से इत्तेफाक नहीं रखता। वह इसकी सीमा को खूब बेहतर ढंग से समझता है। सांभरिया जी की कहानी 'बिपर सूदर एक कीने' दलित समाज की उन्नति के गाँधीवादी–सुधारवादी सिद्धांतों के छद्म को उद्घाटित करती है और शिक्षा से दलित समाज के उद्धार के अंबेडकरवादी सिद्धांत की व्यावहारिकता को रेखांकित करती है।

संदर्भ–सूची–

(1) रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियाँ (कहानी संग्रह), अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, 2011 **(2)**कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, इतिहासबोध प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007 **(3)**रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियाँ (कहानी संग्रह) **(4)**विश्वनाथ त्रिपाठी, कहानी के साथ–साथ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, **(5)**रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियाँ (कहानी संग्रह), **(6)** प्रेमचंद, रंगभूमि, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2011, **(7)**रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियाँ (कहानी संग्रह) **(8)**निर्मला जैन, हंस (सत्ता–विमर्श और दलित विशेषांक), अगस्त, 2004, **(9)**बजरंग बिहारी तिवारी, दलित साहित्यः एक अन्तर्यात्रा, नवारुण प्रकाशन, गाजियाबाद, 2015 **(10)**मांडी शुक्रवार पत्रिका दिल्ली संपादक – विष्णु नगर साहित्य वार्षिकी विशेषांक में संकलित – 2012 **(11)** रत्नकुमार सांभरिया (मोनोग्राफ) राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर, 2011

16.अनुभूत सत्य की अभिव्यक्ति है : सांभरिया के नाटक

–डॉ.अनिल कुमार बारिया
सहायक आचार्य–हिंदी,
राजकीय डूंगरमहाविद्यालय, बीकानेर, राजस्थान।

भारतीय नाट्य साहित्य की खोज की जाए तो वैदिक और पूर्व वैदिक युग में यज्ञ आदि के मध्य प्रहसन के द्वारा मनोरंजन आदि की व्यवस्था थी। पुरुरवा– उर्वशी ,इंद्र –वामदेव आदि प्रहसन खेले जाते थे। प्रमाणिक रूप से नाट्य साहित्य का प्रारंभ भरतमुनि से ही माना जाता है। भरतमुनि रंगमंच के अध्येता एवं पूर्ण ज्ञानी थे। नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में नाटक की उत्पत्ति के संबंध में संकेत किये है की –"इंद्र तथा दूसरे देवताओं ने ब्रह्मा जी से प्रार्थना कि, की आप मनोविनोद का कोई ऐसा साधन उत्पन्न कीजिए। जिसके द्वारा सब का चित्त प्रसन्न हो सके। इस पर ब्रह्मा जी ने चारों वेदों को बुलाया और उन चारों की सहायता से उन्होंने पंचम वेद नाट्य शास्त्र की रचना की। इस पंचम वेद के लिए ऋग्वेद से संवाद, सामवेद से गान, यजुर्वेद से नाट्य और अथर्ववेद से रस लिया गया। विश्वकर्मा ने रंगमंच का निर्माण किया, शंकर ने तांडव तथा पार्वती ने लास्य नृत्य दिए और विष्णु ने चार नाट्य शैलिया प्रदान की।"[1] नाट्यशास्त्र में भी लिखा है– सर्व शास्त्रार्थ संपन्नम् सर्व शिल्प प्रदर्शकम् । नाट्याख्यां पंचमवेदं सेतिहासं करोभ्यहम्।।"[2]

इस प्रकार पंचम वेद चतुर्वर्णों के लिए ,विशेषकर शूद्रों के लिए रचा गया। "शूद्र जाति के लिए वेद का व्यवहार उपयोगी नहीं है, इसलिए नवीन पंचम सर्वजातीय वेद का सृजन हुआ।"[3] वास्तव में नाट्य शास्त्र की रचना शूद्रों के लिए हुई। यह उनके ज्ञान, शिक्षा, मनोरंजन आदि के अभाव की पूर्ति करता था। इसलिए नाट्य क्रम को प्रारंभिक तौर पर स्वच्छ दृष्टि से नहीं देखा जाता था। डॉ. हरी नारायण ठाकुर के षब्दों में कहे–" नाटक विधा और नाटक कर्म से जुड़े हुए लोग शुद्र माने गए थे। उनका जीवन और नाटक क्रम उपेक्षित ही रहे। इस विधा के पुरोधा कवि – साहित्यकार भी समाज के श्रेष्ठ वर्गों से नहीं आए. ..।"[4] दलित चिंतन और सनातन चिंतन में नाट्य उत्पत्ति को लेकर मत विभिन्नता हो सकती है पर, भरतमुनि के रंगमंच अध्येता एवं पूर्ण ज्ञानी होने पर कोई दो राय नहीं है। रंग शीर्ष, रंग पीठ,वाद्य यंत्र, वेशकर, चित्रज्ञ, आंगिक अभिनय आदि शब्दों नवसृजन का रूपायित करने वाले भरतमुनि ही थे। संस्कृत काल में पतंजलि, भाष्य, कालिदास, शुद्रक, मुद्राराक्षस आदि नाटककारों के इस के

युग में भी दृश्यात्मक विधान कम था ,अतः रंगमंच योग अल्प ही रहा ।

सीधे–सीधे हम हिंदी नाट्य परंपरा की बात करते हैं, हिंदी नाट्य परंपरा ने लोकनाट्य से बहुत कुछ ग्रहण किया है। हिंदी नाट्य सीधा–सीधा भारतेंदु युग से ही प्रारंभ माना जा सकता है। भारतेंदु ने ही सर्वप्रथम 'नाटक' लेख के द्वारा हिंदी में नाट्य समीक्षा की नींव डाली। यह युग नाटक और रंगमंच की दृष्टि से महत्वपूर्ण था। पारसी रंगमंच की स्थापना व रंगकर्मियों द्वारा नाटक का व्यवसायीकरण से भारतीय संस्कृति के भद्दे प्रदर्शन पर नामी–गिरामी साहित्यकारों और नाटककारों ने विरोध जताया और जमकर विरोध किया। जयशंकर प्रसाद ने इनकी प्रस्तुतियों को 'एक असंबंध फूहड़ भड़ैती' कहकर भर्त्सना की। यथोपचार भारतेंदु व उनकी मंडली के प्रयासों से पारसी कंपनियों का लगभग अंत आ गया था। सन 1857 के आसपास हिंदी रंगमंच अपनी जड़ें जमाना शुरू करता है। तत्पश्चात साहित्यकारों के कठिन परिश्रम द्वारा, दर्शकों की रुचि परिवर्तित होकर साहित्यिक बनी। अब नाटक को साहित्यिक एवं प्रेरणा युक्त बनाकर ही प्रदर्शित किया जाने लगा जो युगान्तकारी कार्य था। इस युग में मंगलाचरण, संगीतपूर्ण वाणी, नेपथ्य, संवाद, गीत, प्रकाश, ध्वनिया आदि से रंगमंच की साज–सज्जा और अभिनय का विशेष ध्यान रखकर मंचन किया जाने लगा।

आधुनिकयुगीन नाटकों में गीत, गजलों का प्रयोग अत्यधिक होने लगा, जिसकी पृष्ठभूमि में द्विवेदी युगीन नाट्य साहित्य था। नाटक विधा में प्रसाद युग महत्वपूर्ण माना जाता है, परंतु प्रसाद के नाटकों में घटना प्रधानता, भव्य साज सज्जा ,दीर्घ संवाद, बहूउद्देश्यता , बार–बार दृश्य परिवर्तन आदि को देखा जा सकता है, जो मंच के लिए उपयुक्त नहीं थे। प्रसाद युग में नेपथ्य से गान कोलाहल, रण वाद्य आदि रंगमंच के कुछ नए रूप सामने आए। प्रसादोत्तर युग नाटक के क्षेत्र में अनेक प्रयोगों और परीक्षणों का काल रहा है। पृथ्वीराज कपूर इस युग की महान विभूति थी। प्रकाश उपकरणों का प्रयोग इस काल की देन है। युग अनुरूप, अब नाट्य लेखन सरकारी और गैर सरकारी स्तर पर प्रशिक्षण प्रारंभ हो गया था। जिससे अच्छे दर्शक, परिष्कृत आलोचक और समीक्षा के विभिन्न रूप स्पष्ट नजर आने लगे। पत्र–पत्रिकाओं में स्वतंत्र रूप से नाटक की आलोचना होने लगी। अब हिंदी रंग आंदोलन का पहिया प्रगति पथ की ओर अग्रसर हो गया। नाट्य विधा में अब अनेक विधाओं को अपनाया जाने लगा। मोहन राकेश युग का प्रारंभ और एब्सर्ड नाटकों की शुरुआत हो गई थी । अतः बिंबवादी, अमूर्त वस्तु वर्णन, संकेतात्मक और दृश्यों की रोक –टोक आदि हटकर, नाटकों का मंचन होने लगा। समय के साथ विश्ववांग्मय की परिवर्तन की लहर हिंदुस्तान के साहित्य में भी लहराने लगी। उत्तर आधुनिकता का दौर शुरू हुआ, केंद्रीयकरण की प्रवृत्ति समाप्त होकर, विकेंद्रीकरण का दौर आरंभ हुआ। परदे के पीछे के कलाकार नायक के रूप में उभर कर सामने आने लगे। स्त्री, दलित, आदिवासी, झाड़ू लगाने,पर्दा उठाने,मंच सज्जा सजाने या पंखा हिलाने के लिए नहीं बल्कि युग परिवर्तन के साथ ताल में ताल मिलाकर ,कलम के द्वारा युगीन परिस्थितियों को, ऐतिहासिक अत्याचारों को ,धर्म और कर्म को तर्क की कसौटी पर कस कर, अपने शोषकों को साहित्य के माध्यम से मूर्त और अमूर्त दोनों स्वरूप में प्रत्युत्तर देने को तैयार हो गये। बदलते परिवेष और परिवर्तन के कारण स्वानुभूति साहित्य का श्रीगणेश हुआ। नाटककार अब अपने अनुभूत सत्य को साहित्य के माध्यम से उकेरकर भारतीय साहित्य की रिक्त भंडार की पूर्ति करने में लग गया।

इसी अनुभूत सत्य के अनुभवी नाटककार, दलित साहित्य के पुरोधा रचनाकार रत्न कुमार सांभरिया समकालीन साहित्य के युगांतकारी लेखक हैं। नाट्य साहित्य के क्षेत्र में उनकी साहित्यिक देन को देखकर वर्तमान युग को 'सांभरिया युग 'के नाम से संबोधित करें तो यह अतिशयोक्ति ना होकर, भारतीय नाट्य साहित्य के गौरव पथ का सृजन होगा। सांभरिया जी ने वीमा ,भभूल्या और उजास नाटक लिखकर युगीन राजनीतिक अवस्थाओं, दलित अत्याचारों, स्त्री शोषण, विकलांग संघर्ष आदि का सूक्ष्म विष्लेषण कर समाज के असाध्य रोगों की पहचान ही नहीं करते वरन नब्ज टटोलकर, समय के साथ कथा नायकों के द्वारा समाज के मन और मस्तिष्क का उचित विरेचन भी करते हैं। सांभरिया जी ने पुरानी शैली को छोड़ ,सर्वथा नवीन शैली, नया कथानक ,नए नायक, नया शिल्प, नया परिवेश, नया रंगमंच ,नई रंग शैली आदि से संबंधित ऊर्जावान, तार्किक ,सार्थक विचार नाटकों के माध्यम से भारतीय नाट्य साहित्य को समर्पित किये है, जो समय की मांग भी है। भारतीय दलित नाट्य साहित्य में अब तक अनेक नाटक को सृजन किया जा चुका है। सर्वेश कुमार की टिप्पणी भारतीय दलित नाट्य साहित्य के संदर्भ में सर्वथा उपयुक्त है–''1926 से लेकर आज तक लगातार दलित नाटक लिखे जा रहे हैं। करीब 60 दलित लेखकों ने 200 से अधिक दलित नाटकों का सृजन किया है। इनकी अंतर्वस्तु में सामाजिक विसंगतियां और क्रांति की सोच है। मुख्यधारा के जो आरोप दलित साहित्य पर लगाए जाते रहे हैं, उनका शमन भी दलित नाटकों के अध्ययन से होता है।''[5]

आज दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, और निःशक्त विमर्श साहित्य के केंद्र में है। **'वीमा' नाटक** की यह खूबी है, इसमें तीनों ही विमर्श समावेशित है। विकलांग विमर्श के तहत उन समस्त दिव्यांग जन को साहस और संघर्ष की मजबूत डोर थमाता है। वास्तव में नेत्र हीनता का दोष संगठनात्मक शक्ति के समक्ष निस्तेज हो जाता है। स्त्री विमर्श की बात करें तो वीमा का फ्लैशबैक में ही परिवार से अपने अधिकारों के निमित्त टकराहट, फिर गुंडों–बदमाशों से दो–दो हाथ तथा जात– पांत की विषमता से परे होकर जमन वर्मा से कोर्ट मैरिज करना, क्रांतिकारी कदम का द्योतक है। नायिका वीमा यहां केवल एक चरित्र नहीं है, वरन एक प्रतीकात्मक चरित्र बनकर उभरी है। स्त्री विमर्श के लिए आदर्श बन जाती है। दलित विमर्श की धरातल पर लिखा यह नाटक जाति– पांति की जाजम के एक–एक रेशे को उघाड़ता है। नाटक कद्दावर लोगों की हैसियत और हैवानियत की ठीक से खबर लेता हुआ शोषकों की जनविरोधी क्रियाकलापों की चूलें हिला देता है। कहे के नाटककार ने नाटक के बहाने सदियों की पीड़ा को उजागर कर, जाति के तथाकथित ठेकेदारों को झकझोरा है। यथार्थ के धरातल का एहसास कराते हुए काल्पनिक पात्रों से सुसज्जित वीमा नाटक, निशक्तजन आका, श्यामा जी जैसे सरकारी संस्थापक, एस.एच. ओ थानाधिकारी तथा झा जैसे मीडियाकर्मी की स्वार्थी प्रवृत्तियों और व्यवस्था के निकम्मेपन का प्रमाणिक दस्तावेज है।

नाटक का प्रमुख पात्र जमन वर्मा नेत्रहीन संस्थान में संगीत का अध्यापक है। एक दिन संध्या के समय बाहर निकलता है ,गुंडे –बदमाशों के मध्य फसी स्त्री का करुण क्रंदन सुनाई देता है। जमन वर्मा अपने सामर्थ्य अनुसार गुंडों पर पत्थरों का प्रहार कर ज्योति हीन नारी को उनके चंगुल से मुक्त करवाता है और अपने संस्थान में, साथ ले आता है। जमन वर्मा और वीमा पति–पत्नी की यह गाथा सामान्य मिलन से लेकर संघर्ष तक फलीभूत होती है। नाटक के प्रथम दो दृश्यों तक तो सब कुछ सामान्य था। जल्द ही सामान्य परिस्थितियां असामान्य हो जाती है। श्यामा जी को यह पता चल जाता है कि वीमा उच्च जाति की ही नहीं, बल्कि उसकी रिश्तेदार भी है। नेत्रहीन संस्था के संस्थापक श्यामा जी अभी तक देव रूप आदि उपाधियों से विभूषित किया जा रहा था। श्यामा जी द्वारा जमन वर्मा की गर्भवती पत्नी वीमा का षड्यंत्र के तहत अपहरण कर लिया जाता है। यहीं पर उनकी जात्याभिमान से बजाती कुटिलता परिलक्षित होती है । यहीं से नाटक का बीज रूप में निरूपण होता है। नेत्रहीन संस्था के संस्थापक श्यामा जी, जमन वर्मा से कहते हैं कि–''निशक्तों के सामूहिक विवाह के लिए हमने आवेदन आमंत्रित किए हैं, तुम अपनी अर्जी लगा दो, हां जाति के कॉलम में अपनी जाति जरुर लिख देना साफ–साफ।''[6]. दृष्टिहीन जमन वर्मा अपनी नौकरी की चिंता किए बगैर श्यामा जी को दो टूक जवाब देता है–''मुझे अंधा अछूत और नीच बात कह कर आपने अपनी जात बता दी है, श्यामा जी ! हर कोई रग–रग जानता है , आपकी। श्यामा जी, कान खोल कर सुन ले आप। वीमा को चौथा महीना है। अगर मेरी बीवी और होने वाले बच्चे को कुछ हो गया, कठघरे में होंगे आप।''[7]

नेत्रहीन गर्भवती पत्नी वीमा के अपहरण से आहत अमन वर्मा अनेक प्रलोभनों को ठुकरा कर सहधर्मिणी की प्राप्ति की आशा में शक्तिशाली लोगों से लोहा लेता है। प्रथम नेत्रहीन संस्था के संस्थापक श्यामा जी से उसके संघर्ष का सूत्रपात होता है परिणाम स्वरूप जमन को नौकरी से बर्खास्त होना पड़ता है तथा आश्रय से महरूम भी। उम्मीद की डोर लिए जमन वर्मा ने निशक्तों के धनी दौरा आका के चेंबर में जाकर गुहार करता है। जब आका भी अन्यों की तरह जात की जाजम पर बैठे प्रतीत होते हैं ,तो अपनी छड़ी ठक ठका कर लौट आता है। वह अपने निशक्त मित्र देवत सिंह की मदद से एफ आई आर दर्ज कराने हेतु थाने में जाता है और थाना अधिकारी को लिखित में शिकायत करता है। परंतु वहां भी निराशा हाथ लगती है। एस .एच. ओ द्वारा श्यामा जी के विरुद्ध कार्रवाई करना तो दूर, उसका प्रार्थना पत्र भी रिमार्क नहीं करता है। लोकतंत्र के चौथे मजबूत स्तंभ मीडिया से कुछ आशा बनती है। मीडिया को परिभाषित करते हुए देव सिंह का मानना है कि –'' प्रेस लोकतंत्र का चौथा स्तंभ है। यह स्तंभ आमजन का आसरा है। प्रेस नहीं हो तो राजनीति लोकतंत्र का गला घोट दे। संकट और संत्रास के वक्त प्रेस हमारा संबल है।''[8] मित्र देवत सिंह की सलाह पर जमन वर्मा दैनिक समाचार पत्र के संवाददाता सीसी झा को आप बीती सुना कर न्याय की अपेक्षा रखता है ,परंतु सब के सब जात की उसी मजबूत कड़ी से बंधे हुए थे । संवाददाता झा के द्वारा श्यामा जी के पक्ष में खबर लिखकर जमन वर्मा को दोषी ठहरा दिया जाता है ।जाति के मचान पर विराजे संस्थापक आका,थानाधिकारी ,संवाददाता आदि सब एक ही विचारधारा के हैं। जाति की जड़े भारतीय समाज में बहुत गहरी पेठी है, जिसकी श्रृंखला तोड़ने का कोई मजबूत हथोड़ा नहीं है। सफेदपोश में बेठे काले लोगों का जाति के संदर्भ में क्या विचार है ,आका के माध्यम से सुना जा सकता है–''हम सालों– साल उम्र भर बिना धर्म जी सकते हैं,बिना जात एक पल भी नहीं रह सकते।''[9]

नाटककार ने देवत के माध्यम से संविधान की शक्ति को दर्शाते हुए एस.सी. एस–टी एक्ट और निरूशक्तजन के अधिकारों की स्पष्ट व्याख्या कर शोषण करने वालों को चेताया है। लेखक देवत के माध्यम से कहता भी है–अगर निरूशक्त अपनी पर उतर आएं, लोहे की गेंद हैं । लोहे की गेंद को ना किक मारी जा सकती है, न उसे उछाला जा सकता है।[10] अंत में जब सबकुछ खत्म होने के कगार पर होता है तब ,नाटककार सांभरिया जी एक राह निकालते हैं और वह है ,निशक्तों का एकजुट आंदोलन। एक,दो, तीन,चार करते–करते निशक्तों का एक बड़ा समूह इस आंदोलन में भागीदारी निभाता है। अभी तक जो मीडिया निशक्तों की खबर से बच रहा था। इस आंदोलन में सहभागी हो जाता है ,परिणाम स्वरूप नेत्रहीन जमन वर्मा को हृदय की आंखों से देखने वाली समदर्शी पत्नी वीमा एक लंबे संघर्ष के पश्चात प्राप्त हो जाती है। सांभरियाजी ने एससी, एसटी एक्ट अधिनियम और आंदोलन की शक्ति से परिचित करा कर नाट्य कृति के रूप में डॉ. भीमराव अंबेडकर को धन्यवाद ज्ञापित किया और लेखन के माध्यम से यह साबित किया है की, जन्म–जन्मों तक हम उस महामानव के ऋणी रहेंगे। आज उन्हीं के दिए अधिकारों के कारण दलित शिक्षा ग्रहण कर रहा है। संघर्ष कर रहा है और आंदोलन की राह भी चल पड़ा है। आज उच्च पदों पर विराजमान होकर तथा स्वतंत्र लेखन कर्म करके, दलितों को जागृत करने का पुण्य कार्य भी कर रहा है।

मंदिर, मत और मेहत्तर तथा अंबेडकर के शिक्षा, संघर्ष और संगठित त्रि–सूत्रीय प्रगति मंत्र के ताने–बाने से रचा **'उजास' नाटक** दलितों के जीवन में क्रांति का भास्कर बनकर आता है। नाटक में दो अंक,सात दृश्य व छःप्रमुख पात्र है। नाटककार ने संती द्वारा वाल्मीकि समाज की यथा स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है, वही कालिया को शिक्षित युवा के रूप में दलित चेतना का संवाहक बनाकर मंदिर, मत और मेहतर को बेहतर बनाने के लिए सृजन किया है। पंडित रामानंद को अवसरवादी के रूप में उपस्थित कर दूषित राजनीति की मंशा का पर्दाफाश किया है। सिवानंद द्वारा कट्टर जातीयता के पृष्ठ चस्पा किए। शेर सिंह गांव का पूर्व सरपंच है, द्वारा राजनीति की दांव पेंच वर्णन किया है।नाटक का प्रारंभ मंदिर में मूरत की प्रार्थना से शुरु होता है ,तुम करुणा के सागर....... ओमजी जगदीश हरे। इसी आरती को गुनगुनाती सती मंदिर के बाहर झाड़ू लगा रही है। मंदिर में जाने की इच्छा सजोए, फिर भी मंदिर नहीं जाती क्योंकि उसे ज्ञात है कि करुणा के सागर के द्वार पर करुणा के भक्त कितनी करुणा बरसाएंगे या बरपाएंगे, पीढ़ियों से इस करुणा का अनुभव है। अवसरवादी रामानंद संती को मंदिर में आने के लिए कहता है, पर संती जानती है और कहती है– ''हम छोटी जाते हैं महाराज। मंदिर बड़ी जात का है महाराज। भगवान भ्रष्ट हो जाएंगे महाराज।''[11]

नाटककार ने पंडित रामानंद के द्वारा ही मंदिर, मूरत और मानव के खुराफात का वर्णन बड़ी चतुराई से करवाया है–'' यह तो आदमी की खुराफात है, सरासर। हवा, पानी की तरह भगवान सब में व्याप्त है। सबके हैं ,वे सर्वव्यापी कहा गया है, उनको''?[11] रचनाकार ने वाल्मीकि समाज की संती के द्वारा अंबेडकर दर्शन को चरितार्थ कर ईश्वर के अस्तित्व पर प्रश्नचिंह लगाया है। ईश्वर को कटघरे में खड़ा करती हुई संती, आरती के समय अपनी पीड़ा द्वारा बाल्मीकि समाज की सर्व व्याप्त बेबसी को प्रकट करती है। –'' पिरभु! तुमने आदमी– आदमी में फर्क कर दिया! तुमने हमको वो बनाया ही नहीं, जो दर्शन कर सके, तुम्हारे ।[12] पंडित रामानंद और संती की बातचीत निरंतर चलती है। पं.रामानंद वाल्मिकी समाज के वोट बैंक में सेंध लगाकर सरपंची का चुनाव जीतना चाहता है। इसलिए वह अपने आप को गांव का परम हितेषी साबित कर मंदिर का राग अलापता है। –''मैं तो सालों साल शहर में रह रहा हूं, ऐसा अंधेर नहीं देखा । आजादी के समय जब मेरा जन्म हुआ था तब भी यही हाल था यहां और इतनी वर्षों बाद भी वही हाल है परिवर्तन की आहट तक नहीं है गांव में।''[13] पंडित रामानंद ने भले ही स्वार्थ के वशीभूत होकर , गांवों की तस्वीर को स्पष्ट किया है। यह सच है,कि गांव जातीयता के गढ़ है और दलितों के लिए तो वह कारागार है। डॉ. अंबेडकर के स्वानुभूत कथन ऐतिहासिक साक्ष्यों के रूप में अभी भी मौजूद है। रामानंद की इस पाखंड पूर्ण चिंता का प्रमुख कारण दलितों को वोट प्राप्त करना ही है। मंदिर प्रवेश नीति और कार्य योजना को नाटक का शिक्षित और युवा पात्र कालिया भाप लेता है और वह सीधे–सीधे रामानंद से टकराकर षिक्षा, संघर्ष और संगठन के प्रगतिशील मंत्र को चरितार्थ करता है। कालिया कहता है–''रामानंद जी मंदिर प्रवेश कराने में कौन सा भला हो जाएगा हमारा? कुछ करना चाहते हो, हमारे बच्चों को शिक्षा दिलाओ। हमारे लिए स्कूल मंदिर है , शिक्षा मूर्ति है। शिक्षा के मंदिर में भेदभाव होता है, हमारे साथ मास्टर हमारे बच्चों को स्कूल से भगा देते है।''[14]

सत्य है की भोले – भाले अशिक्षित मनुष्यों को आसानी से भगवान का भय दिखाकर बरगलाया जा सकता है। मकड़जाल में फसाया जा सकता है। पाप पुण्य के द्वारा ठगा जा सकता है और तो और स्वयं की बुद्धि भी गिरवी रख कर ,शोषण का हथियार

शोषकों के हाथ सुपुर्द कर देता है। नाटक का प्रयोजन यहीं से सिद्ध होना शुरू होता है जब कालिया मंदिर और मूरत की समीक्षा कर अपने समाज को जागृत करने का पूर्ण प्रयास करता है। क्रांति के सूर्य का उजाला करने वाला नाटक का प्रमुख पात्र कालिया दलित भाइयो को मंदिर प्रवेश निषेध और दलित दुर्गति के कारणों को समझाता हुआ कहता है जब तक हम गंदगी उठाते रहेंगे, सूअर जैसे गंदे जानवर का मांस खाते रहेंगे, चलता फिरता नर्क बने रहेंगे ,घृणा का पात्र, सम्मान का हकदार हुआ है।"[15] कालिया बाबा साहब अंबेडकर के कथन को उद्धृत कर कहता है कि यदि अपनी दुर्दशा से पार पाना चाहते हो तो, तुम्हें गंदे काम छोड़ने होंगे। इसलिए कालिया समझाता है कि हम शिक्षित बनकर ही मेहनत मजदूरी करके ही और पढ़कर ही मान –सम्मान, शिक्षा, पद, प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकते हैं। नाटककार स्वयं कालिया के माध्यम से स्वाअनुभूत सत्य को प्रकट करते हुए दलितों में चेतना लाने का क्रांतिकारी आह्वान करता है –"आज मैं कहता हूं जिसके हाथ में कलम होगी वह नजदीक बैठेगा ही । अब हमारे बच्चों के हाथ में कलम होगी। सिर्फ कलम।... और हमारे यह हाथ मेहनत –मजदूरी करेंगे। मंदिर में हमें जाने नहीं दिया जाता... मंदिरों में खुद नहीं जाएंगे, हम यह मंदिर ,भगवान, देवी –देवता, पंडित–पुजारी गरीबों के शोषक और अमीरों के पोषक है।"[16]

बाबा साहब ने शिक्षा की अलख के साथ राजनीति में दलितों की भागीदारी को महत्वपूर्ण माना है। उन्होंने कहा भी था –'राजनीति हर ताले की चाबी है'। कथन को ब्रह्मास्त्र की तरह प्रयोग करके नाटककार ने बाबा साहब के मिशन को पूरा करने का पुरजोर प्रयास किया है। फलस्वरूप वाल्मीकि समाज एकजुट होकर सत्ता की चाबी हथियाने के लिए कृत संकल्प होता है। कालिया गांव बस्ती वालों के द्वारा गंदे में घृणित कार्यों के समान को स्वाहा कर, राजनीति में ताल ठोककर गांव के सामने नारे लगवाता है–"धंधा फूंक दिया, बंधन तोड़ दिया, नया सूरज आएगा।"[17] गांव वालों की तरफ से आवाज आती है कि भूखे मरोगे? कालिया जवाब देता है कि मेहनत मजदूरी करेंगे, झाड़ू छोड़कर कलम उठाएंगे , वोटों में खड़े होंगे, अपनी किस्मत का फैसला हम खुद करेंगे। हम खुद चुनाव लड़ेंगे। वाल्मीकियों की तरफ से एक नारा लगता है –"हमारा नेता कैसा हो ? उत्तर में आवाज गूंजती है– कालू सिंह जैसा हो।'गांव का सरपंच कैसा हो ?–"कालू सिंह जैसा हो।"[18] यथा स्व सुधार की कृत संकल्प लेकर नाटक स्वर्णिम राजनीतिक भविष्य की ओर दलितों को अग्रसर करता है।

'भभूल्या' नाटक बकरी के बच्चे के बहाने मानवीय संवेदना के समस्त स्तरों को स्पर्श कर पुलिस महकमे द्वारा राष्ट्रीय पर्व पर मनाई जाने वाली अनैतिक पार्टियों का कच्चा चिट्ठा खोलता है ,वही नाटककार ने सड़ांध मारती जातीय व्यवस्थाओं के अवसरानुकूल भाव बोध को रेखांकित किया है। नाटक में दृश्य देखा जा सकता है की, जाति के नाम पर जहां शोषण होता है, वही स्वार्थी प्रवृत्ति व अवसरानुसार हांडी के चट्टे बट्टे के निमित्त कुछ काल के लिए जातीयता का अदृश्य शोषणकारी विलोपन भी अभिव्यंजित हैं। समकालीन परिवेश में आधुनिक कथा नायक धियानाराम ने मतलब की जाति व्यवस्था की छाल उतारी है–"यह ऊंची जात का लोग है न, छोटी जात की हांडी पको मीट खा लेगा, पर उकां मटका को पानी ना पिवेगा, वाह री जात वाह री छुआछूत, बड़ो रहने को स्वांग है सब।"[19] नाटक में तथाकथित घुमंतू जातियों के प्रति नफ़रत और घृणा का व्यवहार की स्थाई स्थापना पुलिसिया तंत्र द्वारा की गई है। हेड कांस्टेबल के कथन इसकी प्रमाणिकता के लिए काफी है–" ये झुग्गी –झोपड़ी में रहने वाले लोग हैं न, खेल तमाशा दिखाते, सामान बेचते इधर–उधर घूमते, सुने घरों के थाह ले आते हैं। या तो चोर सरगना को इसकी इत्तला दे देते हैं या मौका देख खुद सेंध लगा लेते हैं।"[20]

कुल मिलाकर इस नाटक का मूल प्रयोजन सिद्ध करने में सफल हुए हैं क्योंकि केवल यथास्थिति का वर्णन करना ही लेखक का उद्देश्य नहीं था। यथा मूल नायक द्वारा बकरी के बच्चे को बचाने हेतु, अंगुली काटने का प्रसंग शोषण के विरुद्ध क्रांति का आह्वान है। समाज में नाटक द्वारा यह संदेश प्रेषित किया गया है की जब –जब शोषण कर्ता, शोषण की चरम सीमा को पार करेगा, तो दलित या घुमंतू अपनी रक्त की परवाह ना कर मानवता के हितार्थ, चाहे बकरी का बच्चा ही क्यों ना हो, विरोध करने में अपने कदम पीछे नहीं हटाएगा। नाटक में यह प्रसंग नाटक की रीड की हड्डी है, यही कारण है कि बकरे की जान बचाने के लिए धियानाराम ने खुद की अंगुली की पौर काटकर हेड कांस्टेबल के मुंह में डाल देता है–"धियानाराम ने झटका कर अपनी उंगली काटी और लहू टपकना और नीचे पड़े हेड कांस्टेबल के मुंह में डाल दिया था कहता है –' गोश्तखोर, ले खा।"[21] नाटक में पुलिस महकमे की अमानवीयता को रूपायित कर घुमंतू जातियों की बेबसी का यथार्थ चित्रण किया है पर साथ ही सांभरिया जी ने पात्रों को झुकने नहीं दिया वरन जीवटता, जिजीविषा ,जज्बे, तथा जोश के मिश्रण से कथा नायकों की सृजना की है ,जो बेबस हो सकता है,टूट सकता है, पर समय आने पर रक्त स्नान कर, चेतना का संवाहक भी बन सकता है।

समस्त के अनंतर नाटक की सफलता रंगमंच पर मंचन द्वारा आंकी जाती है। कहने की आवश्यकता नहीं की वीमा, उजास,भभूल्या नाटक इस दृष्टि से सफल नाटक है। इसमें पात्रों की संख्या कम है। संवाद भी लघु और तीक्ष्ण है। भाषा पात्रानुकूल होकर भी देश काल और वातावरण को अभिव्यंजिक करती है, यथा प्रसंग के अनुसार ही नाटककार ने भाषिक शब्दों का प्रयोग किया है, जिसमें आंचलिकता का पुट अधिक रुपायित हुआ है। मुहावरे और लोकोक्तियां द्वारा सांभरिया जी ने भाषा को ओर जीवंत बना दिया है। नाटक मंचन के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं। यथा स्थान सांभरिया जी ने रंग निर्देशन ,रंगकर्मी, रंगशाला के साथ ही ध्वनि परिवर्तन, वातावरण सृजन, आदि का यथा प्रसंग संकेत किया है। जहां कहीं भी ऐसे दृश्य है जो मंचन में अवरोध पैदा करते हैं वहां पर फ्लैशबैक पद्धति का भी प्रयोग कर कथावस्तु को शीर्ष तक ले जाते हैं। पात्रानुकूल वेशभूषा चरित्र का उन्नायक होता है, इसलिए पात्रों की वेशभूषा द्वारा वातावरणीय मनः स्थिति का चित्रण भी किया है। देश काल और वातावरण से संबंधित किसी प्रकार की बाधा मंचन में ना आए इसलिए नाटककार ने साधारण सा परिवेश लेकर असाधारण कथानक की बुनावट की है। इसमें मंच, दृश्य रचना, वेशभूषा आदि पर अत्यधिक श्रम की आवश्यकता नहीं है। नाटककार श्रेष्ठ रंग रंगकर्मी है क्योंकि नाटक के मंचन में किसी भी प्रकार की आने वाली बाधाओं को बड़ी सूझबूझ से दूर किया है। किसी भी प्रकार की तकनीकि की मांग नाटक नहीं करता। अतः नाटक मंचन में किसी भी प्रकार की अतिरिक्त बुद्धि की आवश्यकता महसूस नहीं कराता, क्योंकि सांभरिया जी ने रंगमंच से जुड़े समस्त दृष्टिकोणों से अध्ययन, मनन और चिंतन करके ही नाट्य सृजना की है।

अतः अब समय आ गया है की सांवरिया जी के तीनों नाटक भारत के प्रत्येक विश्वविद्यालय में पाठ्यक्रम के तौर पर लगाकर, कक्षा कक्ष में विद्यार्थियों द्वारा तथा राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय मंचों पर अभिमंचित किया जाए। जिससे समाज में चेतना आए और एक समरस समाज की संकल्पना साकार रूप ग्रहण करें।

संदर्भ :**1.**जयकिशन खंडेलवाल, हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियां, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृष्ठ615 **2.**नाट्यशास्त्र,अ01, श्लोक15 **3.**जयकिशन खंडेलवाल, हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियां, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृष्ठ616 **4.**डॉ. हरी नारायण ठाकुर ,दलित साहित्य का समाजशास्त्र, पृष्ठ507 **5.**जनविकल्प ,अंक –3, जनवरी 2013,पृष्ठ100 **6.**रत्न कुमार सांभरिया, वीमा,नटराजन प्रकाषन,नई दिल्ली, पृष्ठ 16 **7.**वही, पृष्ठ29 **8.**वही, पृष्ठ68 **9.**वही, पृष्ठ39 **10.**वही, पृष्ठ88 **11.**रत्न कुमार सांभरिया, उजास, नटराजन प्रकाषन,नई दिल्ली, पृष्ठ **12.**वही, पृष्ठ165 **13.**वही, पृष्ठ71 **14.** वही, पृष्ठ77 **15.**वही, पृष्ठ88 **16.**वही, पृष्ठ197 **17.**वही, वही197 **18.**वही, पृष्ठ198 **19.**रत्न कुमार सांभरिया, भभूल्या, हंस ,दिल्ली, अक्टूबर 2016 ,पृष्ठ 21 **20.** वही,पृष्ठ19 **21.**वही,पृष्ठ22

17.रत्नकुमार सांभरिया के नाटकों की अंतर्वस्तु वाया 'वीमा'

–प्रोमिला
असिस्टेंट प्रोफेसर,हिन्दी विभाग,
अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय,हैदराबाद

सच्चा नाटक जीवन की वास्तविक प्रतिछवि होने के साथ सजीव प्रतिलिपि होता है और समस्त जड़ संस्कारों को तोड़ता है। वह जागतिक संस्कृति का सबसे प्रबल कलारूप है। भाव, युगबोध और मानवीय जीवन की सतत संघर्षशीलता तथा उसके शुभ का फलित रूप। कदाचित इसीलिए सच्चा नाटक अपने रचयिता की स्थितिगत विशेषताओं और सीमाओं का ही निदर्शन नहीं करता, उन सीमाओं को तोड़ व्यापक भूमि पर पहुंच नया जगत भी प्रस्तावित करता है। हिंदी में दलित नाटक इसी भूमिका में है जो व्यापक साहित्य–समाज में बहुचर्चित ना होते हुए भी नाटक की इस कसौटी की विश्वसनीयता को स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' कृत 'रामराज्य' (1926) से लेकर आज तक लगातार प्रमाणित करने में लगा है और इसी नाट्य प्रयास में एक नाम रत्नकुमार सांभरिया का भी है।

फ्रांसीसी दार्शनिक देकार्त ने कहा था, 'मैं सोचता हूं अतः मैं हूं।' जो व्यक्ति सोचता नहीं, चिंतन नहीं करता, संदेह नहीं करता– वस्तुतः वह अपने 'होने' के एहसास, अपनी अस्मिता को भी प्रतिष्ठित नहीं कर सकता। समकालीन दलित साहित्य में रत्नकुमार सांभरिया का लेखन इसी सोचने और होने के भीतर से मानवतावादी सरोकारों के आयतन का पता देता है। मूलतः कथाकार सांभरिया की कहानियों के केंद्र में जहां संघर्ष और संघर्षजनित त्रासदियों की अनुगूंज जीवन–दृष्टि को अधिक धारदार बनाती हैं, वहीं इनके तीनों नाटक 'वीमा', 'उजास', 'भभूल्या' साधारण मनुष्य की जिंदगी, दशा तथा दिशा का यथार्थपरक और सजीव रूपक बनते हैं। यथार्थपरकता से उनका आशय 'साहित्य समाज का दर्पण है' में फलीभूत नहीं होता बल्कि वाचक या दर्शक को सीख देते हुए उनके स्वयं के कथनानुसार 'साहित्य समाज का दीपक है' में समीचीनता पाता है। सांभरिया की ठोस समझ है कि 'नाटक की थीम (कथावस्तु) दलित अस्मिता और दलित चिंतन से जुड़े मुद्दों– जातिभेद, छुआछूत, शोषण, अत्याचार, दलन, उत्पीड़न, आरक्षण, वास और पुनर्वास पर केंद्रित होगी तभी वह नाटक "दलित नाटक" कहलाने का अधिकारी होगा। सामाजिक मूल्यों के अंतर्द्वंद, दलित–वंचित समाज और आमजन में जागृति पैदा करने का मूल ध्येय हो तथा इन वर्गों के पात्रों में जीवट, जज्बा और जिजीविषा पैदा करने का उन्मेषीभाव

होना चाहिए।'[1] तथा दलित नाटक किस उद्देश्य के साथ रचा जाए इस पर सांभरिया का स्पष्ट स्वीकार है, 'दलित नाटक की पहली शर्त उसका मिशनोन्मुख होना है। मिशन के अनुकूल ही नाटककार का विजन हो क्योंकि बिना विजन मिशन सर्वव्यापी नहीं होता। दलितों–शोषित एवं वंचितों के अंधेरे पक्ष की हू–ब–हू अभिव्यक्ति मात्र दलित नाटक का लक्ष्य नहीं है। यह महज परिस्थितिजन्य फोटोग्राफी होगी, सृजनात्मकता नहीं। फोटोग्राफी में दर्पण का बिंबीय भाव परिलक्षित है, जागृति का मार्ग प्रशस्त नहीं होता।'[2] यानि अस्मिता, संघर्ष और चेतना की त्रिवेणी से ओतप्रोत नाटक मुक्ति का प्रमाण बनते हैं। सांवरिया के नाटक अन्य विषयों के साथ राजनीति, धर्म, लिंग को भी उठाते हैं। यह बात इसलिए और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि दलित साहित्य के विषय में कुछ लोगों की शिकायत रही है कि वह अपनी परिधि में बंधा दलित परिवेश से इतर सामाजिक मुद्दों और यथार्थ के प्रति उदासीन रहता है।

भारत के ग्रामांचलों का प्रतिनिधित्व करते सलपुर गांव के परिवेश में चुनावी राजनीति का मोहरा बने वाल्मीकि समाज की अस्मिता को लेकर लिखा गया 'उजास' जहां सवर्ण समाज की सत्ता प्राप्ति के खेल का खुलासा करता है। 'झाड़ू पकड़ने की बेबसी से मुक्ति और कलम की अभिव्यक्ति, घृणा के धब्बों को धोना, सम्मान और स्वाभिमान से जिंदगी जीना उसका केंद्रीय कथानक है। आशय संकल्प की खोज लेता है।' (वीमा, भभूल्या, उजास : तीन नाटक, रत्नकुमार सांभरिया, पृ.11–12) वहीं घुमंतू कुचबंदा जाति के धियानाराम की कथा में पुलिसिया दुष्चक्र की संवेदनहीनता और क्रूरता का बयान 'भभूल्या' बनता है। 'हंस' में छपी इसी कहानी को आधार बनाकर रचे नाटक में 15 अगस्त के स्वाधीनता दिवस की द्विअर्थी फाड़ का उद्घाटन होता है। कुर्सी पर बैठे अधिकारियों के बरक्स एक मामूली आदमी के लिए आजादी का वास्तविक अर्थ कितना भिन्न है। कैसे सत्तासीनों की आजादी का दिन उसके मातम का सबब बनता है, यह धियानाराम पर अपने जिगर के टुकड़े बकरे का मीट पकाने के दबाव में अर्थवत्ता पाता है। दोनों नाटक अलग–अलग स्तर पर सामाजिक विषमता, उत्पीड़न के दुष्चक्र और दुःस्वप्न के बीच दलित समाज की बेबसी और संघर्षशीलता को उकेरते हैं। जीवन की मौलिक समस्याओं, जिन्होंने भारतीयों के जीवन को खोखला कर दिया है, जड़ से जानने–पहचानने के साथ नवीन जीवन–दृष्टियों में विश्वास का भाव पैदा करते हैं और 'वीमा' इसी विचार की अगली कड़ी बनता है पर उसका फलक अधिक व्यापक है।

'वीमा' (2012) नाटक सामाजिक, सांस्कृतिक व्यवस्था का सटीक चित्रण है। एक स्तर पर इसमें निशक्त लोगों की जीवन–कथा और दूसरे स्तर पर जातिगत व्यवस्था की विसंगतियों का नाट्य–दर्शन है। विकलांगता (दिव्यांगता) विमर्श के साथ–साथ दलित और स्त्री विमर्श की भी अनुगूंज है। दिव्यांग और दलित दोनों मुख्यधारा से दूर पर अलग–अलग जीवन जीने को विवश हैं और स्त्री कहने भर को मुख्यधारा के साथ है। हाशिया यानि वह जगह जो अतिविशिष्ट नहीं है, जिसे लोग अनावश्यक समझ अनदेखा कर देते हैं। 'हाशिए पर होने का मूल अर्थ है– व्यक्तिगत, अंतर्वैयक्तिक व सामाजिक स्तरों पर पूर्ण सामाजिक जीवन तथा अन्य आवश्यकताओं से वंचित रखा जाना। जाहिर है– सामाजिक संरचना में किसी व्यक्ति या समाज के हाशिए पर होने के कई आधार हैं। विकलांगता के कारण एकाधिक नुकसान को झेलने वाले इन समूहों की समस्याओं को लैंगिक अंतर की कसौटी पर जाति, नस्ल, धर्म, स्थान, क्षेत्र आदि और अन्य सामाजिक कारकों के सापेक्ष समझा जा सकता है। विकलांगता और लैंगिक वर्ग दोनों ही पूर्व निर्धारित होते हैं लेकिन इनके आधार पर खास वर्ग की उपेक्षा की जाती है। पुरुषों के मध्य विकलांग उसे समझा जाता है जो सामान्य व्यक्ति की परिभाषा के अनुरूप शक्ति, शारीरिक क्षमता और स्वायत्तता को पूरा करने में विफल रहा है। इसी तरह ऐसी धारणा बनी हुई है कि एक विकलांग महिला गृहणी, पत्नी, मां की भूमिका को पूरा करने में असमर्थ है और शारीरिक उपस्थिति के संदर्भ में सौंदर्य और नारीत्व की स्थापित मान्यताओं के अनुरूप नहीं है। ये ही सबसे अधिक हाशिए पर हैं और शारीरिक, मानसिक व सामाजिक रूप से सबसे अधिक प्रताड़ित हैं और सदियों के लिए उपेक्षा, मौखिक– शारीरिक उत्पीड़न और यौन उत्पीड़न का शिकार बने हुए हैं।'[3] नाटक वीमा और जमन वर्मा की निशक्ता के सहारे परिवार से समाज तक पसरी सोच, रवैये, दोहरे चरित्र पर तो तीखी टिप्पणी करता ही है साथ–साथ नेत्रहीनों की कथा में उनके हौसले, स्वाभिमान, विश्वास, संवेदना, सजगता और चेतना के प्रकाश का रूपक रच वास्तव में 'अंधे कौन' का उत्तर भी प्रस्तावित करता है।

स्वयं की 'सवांखे' कहानी के आधार पर लिखे इस नाटक में नाटककार सांभरिया दलित और स्त्री का भेद ना करके दोनों को उत्पीड़ित के समपटल पर उकेरते हैं। सवर्ण, संपन्न जमीदार परिवार की लड़की स्त्री के साथ दिव्यांग होने के कारण अलग स्तर की उपेक्षा सहती है–**वीमा :** हमारा खाता–पीता नामी–गिरामी घर है। जमीन है। माँ नहीं है तो क्या! बाप है। दो भाई हैं। दोनों सर्विस में हैं। दो भावजें हैं। एक टीचर है।

घर–परिवार में दो रोटियों के लिए हाथी का पेट बन गई मैं। आँखें नहीं तो क्या? जितना बनता था, करती थी। बर्तन भांडे धोना, बच्चों को नहलाना–धुलाना स्कूल भेजना। (पृ. 49–50) "मेरी शादी एक अधेड़ से करना चाहते थे ।" (पृ.50)परिवार का यह स्वरूप सदियों से सामाजिक व्यवस्था का आधार है जिस पर पितृसत्ता का स्थानिक तंत्र काबिज है। यह व्यवस्था इस बात की सटीक पहचान करके चलती है कि स्त्री–संगत निर्धारित व्यवहारों का उल्लंघन करना समाज और पूर्व प्रदत पहचानों के स्थापन में भागीदारी से इनकार करना होता है और यदि स्त्री देह में उन नयनों की रोशनी का प्रश्न भी जुड़ जाए जो उसकी दृष्टि क्षमता के साथ उसके दैहिक सौंदर्य का अपरिहार्य अंश स्वीकृत हैं तो वीमा की भांति ऐसी स्त्री के जीवन की बेबसी, निरूपायता, अभाव, उपेक्षा, संत्रास तथा पीड़ा का कोई ओर–छोर नहीं है। परंतु वीमा समझौते के बरक्स संघर्ष का चुनाव कर शहर पहुंच जाती है। परिवार की देहरी से आगे यहां बेसहारा, जवान, अकेली नेत्रहीन स्त्री के प्रति बाहरी दुनिया का हिंसात्मक व्यवहार प्रकट होता है। एक गुंडा उसे गड्ढे में ले जाकर अवसर का लाभ उठाने का प्रयत्न करता है कि तभी सही समय पर पहुंचकर नेत्रहीन जमन वर्मा अपनी साहसिकता से न केवल उसे बचा लेता है बल्कि नेत्रहीन संस्था के चालक श्यामा जी के कहने पर आसरा भी देता है पर जब विवाह की बात उठती है तो साफ कहता है–जमन : तुम ऊँची जात। मैं नीची जात। तुम सवर्ण हो मैं दलित हूँ। मन में ऊँच–नीच का भेद रहते गृहस्थी की गाड़ी नहीं चलती। (पृ.45)वीमा : छोड़ो भी जमन! इतने पढ़े–लिखे होकर भी जात की काप में पाँव मार रहे हो। तुम मर्द हो, मैं औरत हूँ – दो जात। तुम नेत्रहीन, मैं नेत्रहीन – एक जात। (पृ.45) और यही 'एक जात' के केंद्रीय विचार का रूपीकरण है जो पूरी रचना में गुँथा–बिंधा है और जिसका विरोध सवर्ण जाति अभिमान को, विषम व्यवस्था को कायम रखने, मनुष्य को विभाजित करने वाले उन कृत्यों, नीतियों से है, जिनका विस्तार चार माह की गर्भवती वीमा का उसके मायके वालों द्वारा अपहरण कर लेने में प्रकट होता है। जो जमन को स्कूल से बर्खास्त करने, उसका सामान कमरे से बाहर फेंकवा दरवाजे पर ताला जड़ने वाले श्यामा जी के संवादों का प्रतिपक्ष रचता है। श्यामा जी : (अंगुली से नाक खोरकर) नीची जाति का होकर उसने बड़ी जाति की लड़की को मोहपाश में ले लिया। यह धर्मघात है। जात को मात है। बेटे झा, यह जात–पाँत, छुआछूत ही हमारी साँसें हैं। जात मरी, हम बदर हुए। (पृ.78) श्यामा जी : बेटे आपकी शिराओं में भी उसी जाति का रक्त है जो हमारी शिराओं में बह रहा है। झा बेटे दुर्योग रहा लड़की हमारी रिश्तेदार निकल आई। नीची जाति का जमन वर्मा मेरे स्कूल में टीचर। उसकी पत्नी मेरी रिश्तेदार। (नफरत और नाराजगी से) बेटे, आंखों देखे मक्खी नहीं निगली जाती। (पृ. 79)

यहां तक कि निशक्तजनों का धनीधोरा भी इसी को दोहराता है–आका : बिना जात एक पल भी नहीं रह सकते। पक्षी भी अपनी हैसियत के मुताबिक ही पंख फड़फड़ाता है। उड़ता है। तुमने अपनी औकात का अतिक्रमण किया है वर्मा। (पृ. 29)ये संवाद वर्णाश्रम, अधिकार भेद, जाति व्यवस्था के माध्यम से वर्ण, वर्ग और लिंगपरक उत्पीड़न के एक तंत्र का पता बनते हैं। स्पष्ट करते हैं कि किस प्रकार जाति व्यवस्था दंड शक्ति के साथ सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक वर्चस्व पर भी निर्भर करती है। संस्कार निर्माण की पूरी प्रक्रिया से जहां शिकारी अमानवीय व्यवहार के तर्क गढ़ लेता है वही शिकार पर कर्मों के लिए पछताने का दबाव बनाता है। उसके क्रोध को संगठित प्रतिकार का रूप लेने से रोकता है। किंतु जनम वर्मा हार नहीं मानता। वह अपनी पत्नी को वापस लाने के लिए निशक्ता की सीमाओं से परे सवर्णों द्वारा उच्चता, निम्नता को न्यायोचित बतलाने के सारे ऐतिहासिक आख्यानों को तर्क की धार से अन्याय संगत ठहराते हुए वर्णाश्रम और जाति व्यवस्था के शक्ति–विमर्श तथा सत्ता–तंत्र को चुनौती दे उसे ध्वस्त करने की ठान लेता है। 'जमन वर्मा : मैं नेत्रहीन हूं। कायर नहीं। वीमा की खातिर मरने से भी नहीं डरूँगा मैं।' और इस संघर्ष में उसका साथ उसका मित्र विकलांग संघ का अध्यक्ष देवतसिंह चौहान, जिसके दोनों पैर घुटने तक ही हैं, देता है। 'देवतसिंह : अगर निशक्त अपनी पर उतर आए, तो वह लोहे की गेंदें है और लोहे की गेंद को न किक मारी जा सकती है, ना उसे उछाला जा सकता है।' (पृ.88) संगठन शक्ति की यह चेतना ही नाटककार की भविष्य दृष्टि तथा एक यूटोपिया है और सभी मनुष्य विशेषकर लेखकों को अपने यूटोपिया यानी कल्पना जगत को रचने का अधिकार है। यह उनके वर्तमान जगत के प्रति असंतोष की प्रतिक्रिया रूप में भी रचा जाता है क्योंकि जीवन की छोटी–बड़ी त्रासदियां और परेशानियां उसे असहाय बना देती हैं। यह जगत उसका आदर्श जगत होता है।

जाति व्यवस्था का सवाल राजनीतिक व्यवस्था विमर्श तथा व्यवहार से भी जुड़ा होता है। इसमें प्रशासन, पुलिस और मीडिया की भूमिका का भी एक अंतरसंबंधित आयाम है। जातिवादी प्रवृत्तियों और धन लोभ में डूबे मीडिया का दोहरा चरित्र यहां अभिव्यक्ति पाता है। 'बाज' दैनिक समाचार पत्र का पत्रकार झा खबर को तोड़–मरोड़कर छाप देता है–

"नेत्रहीन ने जात छुपा कर ब्याह रचाया, पत्नी को तलाक चाहिए। वीमा नाम की भोली–भाली एक ग्रामीण लड़की घर से रूठ कर शहर आ गई। संयोग से रेलवे स्टेशन पर उसे नेत्रहीन संस्थान का एक नेत्रहीन अध्यापक जमन वर्मा मिल गया। वर्मा उस बेचारी को बहला–फुसला कर अपने कमरे पर ले आया। कई दिनों तक अवैध रूप से उसे अपने कमरे पर रखा और उस के साथ ज्यादती करता रहा। जब लड़की को जमन वर्मा के नीची जाति का होने का पता लगा तो उसे मूर्च्छा आ गई। लड़की की हालत बिगड़ती रही, लेकिन जमन उससे ज्यादती करता रहा। एक दिन मौका पाकर लड़की नेत्रहीन संस्थान के संस्थापक श्यामाजी के चैम्बर में गई और आपबीती सुनाई। जमन के चंगुल से छुड़ाने के लिए वह खूब रोई, गिड़गिड़ाई। सहृदय श्यामजी ने उसको ढाढस बंधाया। उन्होंने ही वीमा के गाँव खबर की। वीमा के पिता और उसका भाई आए, उसे अपने साथ गाँव ले गए। नेत्रहीन संस्थान के संस्थापक श्यामाजी ने जमन वर्मा के इस कुकृत्य पर कठोर कारवाई करते हुए उसे अध्यापक की नौकरी से बर्खास्त कर दिया।(जमन का झूठा बयान)–मुझे नहीं मालूम लड़की किस जात की है। अगर वह तलाक लेना चाहती है तो मुझे कोई एतराज नहीं है –जमन वर्मा, नेत्रहीन संस्थान का पूर्व अध्यापक।" (पृ. 83–83)

छपी खबर का असर होना स्वाभाविक है। 'बाज' अपने नामानुरूप शक्ति और तीव्र दृष्टि के प्रतीक को सार्थक करने की बजाय 'शिकारी' वाली भूमिका को अपना झा की हित सिद्धि करता है। यह सवर्ण सोच से ग्रस्त पत्रकारिता की निष्पक्षता पर प्रश्न चिन्ह है और इसी झूठे समाचार को आधार बना थानेदार जर्मन वर्मा और देवत सिंह पर बरस पड़ता है–थानेदार : स्साले, अंधे, लंगड़े–लूले भी बड़े घरों की लड़कियों को धोखा देकर उसने शादी रचाने लगे हैं। ज्यादती करने लगे हैं। गुंडे कहीं के। (पृ. 83)थानेदार : ले ये तेरी अर्जी पकड़ और भाग जा यहाँ से। विकलांग हो दोनों। और होते, तो सीधा अंदर कर देता। आइंदा ऐसी झूठी शिकायत लेकर थाने मत चले आना।" (पृ.86)

जिस पुलिस से नागरिक सुरक्षा और संरक्षण की अवधारणा के अंतर्गत न्याय संगत, तर्कसंगत होने की अपेक्षा की जाती है, निष्पक्ष भूमिका की आकांक्षा रखी जाती है, नैतिक मूल्यों के प्रभाव की कमी और अपनी संकीर्ण मानसिकता में घिरी वह कितनी अमानवीय है, सामान्य व्यक्ति पर हो रहे अत्याचारों में नियमों के उल्लंघन को छिपाने में कितनी सिद्धस्त है, नाटक इस बहस को जन्म देता है। मीडिया जगत अपने जनपक्षीय के साथ जिस जनविरोधी चेहरे को ओढ़े रहा है उस असंगति पर नाटककार उंगली रखता है। सत्य है, मीडिया माध्यम यदि सही दिशा में चलते हैं तो व्यक्ति, समाज मानवता की दिशा में काम करते हैं किंतु यदि ये दिशाहीन हो जाते हैं तो जगत सिंह जैसे निशक्त व्यक्ति उसका शिकार बनते हैं।

रचनाकार के रूप में रत्नकुमार सांवरिया की विलक्षणता इस बात में है कि वह तमाम अराजकताओं के मध्य भी मानवीय पुनर्जीवन की संभावना में विश्वास नहीं खोते। इसी कारण वीमा नाटक मानव–संघर्ष की विजय पर पूरा होता है। जमन वर्मा सवर्णों के शिकंजे से अपनी पत्नी को छुड़ाने के लिए देवत सिंह और अन्य विकलांगों के साथ संगठित धरना देता है और संगठित संघर्ष सदैव ही अधिक प्रभावी होता है तथा शीघ्र फलप्रसू भी। अतः सामूहिक दबाव से अंततः वीमा जमन के पास लौट आती है। सचेतना, संपर्क, सहयोग तथा एकजुटता पर टिका संघर्ष कामयाब होता है। सामाजिक परिवर्तन की नींव में नये जातिविहीन समाज के साथ जियो और जीने दो की व्यंजना पूर्ण होती है और इस प्रकार डॉ. बी. आर. अंबेडकर के सूत्र– शिक्षा, संगठन और संघर्ष से 'अप्प दीपो भवः' को 'वीमा' में सफल प्रतिपादन मिलता है।

संदर्भः–

(1)रत्नकुमार सांभरिया, वीमा, भभूल्या, उजास : तीन नाटक, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2020, पृ. 5(2)वही, पृ.7(3)संध्या लिमये, लेख–विकलांग जनों का सामाजिक समावेशन : मुद्दे और रणनीतियां, योजना पत्रिका, मई 2016, पृ. 25–26

18.रत्नकुमार सांभरिया द्वारा रचित वीमा इस नाटक की प्रासंगिकता

–डॉ.व्यंकट अमृतराव खंदकुरे
सहाय्यक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, देगलूर महाविद्यालय देगलूर

आज हमारे देश में और समाज में नेत्रहींनो की स्थिती कैसी है इसका वर्णन वीमा इस नाटक में रत्नकुमार सांभरिया जी बहुत ही अच्छे ढंग से व्यक्त की है। नेत्रहीनों की तो बात छोंडो आज एक आम आदमी को अपना अधिकार पाने के लिए झुझना पडता है। ऐसे हालात आज हमारे देश में हुऐ है। आज हमारे सामने से को ही नेत्रहीन गुजरता है या हमारे साथ बैठता है तो हम उसे एक तुच्छ नजरों से देखते है। या उसके साथ नफरत ढंगो से पेश आते है। पहले से ही आज हमारे देश में और समाज नेत्रहीनों के प्रति दूषित दृष्टीकोन रखता है। यह हमारे जैसे नहीं है। समझकर उसके साथ कभी अच्छे ढंग बात करते है ना उसके साथ कभी अच्छे आचरण के साथ पेश आते है। ऐसे आज हमारे समाज में नेत्रहीनों को प्रताडीत करने का काम करते है। ऐसा सामाजिक भेदभाव का अन्याय का गलत व्यवहार हम हमारे समाज में जो नेत्रहीन है, उसके साथ करते है। ऐसा रत्नकुमार सांभरिया जीने अपने वीमा इस नाटक से आज हम नेत्रहींनो के बारे में कैसे सोचते है। यह प्रासंगिकता यहाँ इस नाटक से व्यक्त् की है। "जमन (वीमा से) वीमा ये गाँव नही शहर है। शहर चॅट होता है। हम दोंनो नेत्रहीन है। किसी की नीयत खोटी होते देर नही लगती। बस तुम तो एक बात गांढ बांध लो। होंढ तक मत खोलना। "1

आज कितना आदमी मुल्यहीन, तत्वहीन नैतिकताहीन होते जा रहा है। इसका नतीजा आज समाज को भोगतना पड रहा है। आदमी को झूठ बोलने की आवश्यकता नही है, पर भी वह बेजवह अपने दोस्तों को मॉ–बाप को झूठ बोलता जा रहा है। कहाँ तो उसे अपने दोस्तों के साथ जाना है, तो दोस्त उसे पुछंते है, अरे भाई कहाँ है तो अभी नहीं आया, वह अभी घर में ही रहता है पर दोस्तों कहता है अभी आ रहा हु रास्ते में हु। इस तरह बेवजह आदमी झूठ बोलता जा रहा है। ऐसा झूठापन आदमी में बढता जा रहा है। "जमन– अरे – अरे कोई अबला गुहार कर रही है। गुंडा पीछे पडा लगता है। उसको गुंडा – अरे चुप रह पगली कोई सुन लेगा। कोई आ निकलेगा इधर। नारी स्वर – अरे छोंड। अरे छोड।। छोड दे दुष्ठ। छोड मुझे। अरे बचाओ। बचाओ कोई है ? " 2वीमा घर से अकेली भागकर गाँव से शहर आती है और रेल्वे पठरी के पास खडी है। वहाँ कुछ गुंडे आते है और उसके साथ मैं भी अंधा हू कहकर उसके साथ छेडछानी करने का प्रयास करते है। कोई अकेली लडकी दिखी तो किस प्रकार से उसके साथ् पेश आते है। आज हमारे देश में रोज कई लडकियों के साथ अन्याय–अत्याचार होता है, हर दिन हम अखबार और समाचारों सुनते है। आज हमारे देश की हमारी माता – बहनों सुरक्षित नहीं है। अकेला कहॉ घूमना खतरनाक साबीत हो रहा है। इस तरह से आज हमारी नैतिकता, मुल्यहिनता कमजोर हुई है। यह इस नाटक से रत्नकुमार सांभरिया यह प्रासंगिकता कहना चाहते है।

आज हमारे समाज में बढे पैमाने पर जातीयता बढती जा रही है। जातीयता बढने की वजह से सही मायने में हमारे देश की तरक्की नही हो रही है। जातीयता के नाम पर अलग – अलग धर्मो में जगडे हो रहे है। दंगे, फसाद होते जाते है। सरकारी दप्तर , गाडीयाँ जलाई जाती है। इससे लोगों के मन नफरत में बदलते जा रहे है। कोई हमारे समाज में अंतरजातीय शादी करता है तो उसे मार दिया जाता है, या समाज से अलग कर दिया जाता है उसे डर – डर कर जींदगी गुजारनी पडती है । ऐसे हालात आज हमारे देश में जातीयता को लेकर पैदा हुऐ है।"जमन – तुम ऊँची जात। मैं नीची जात। तुम सवर्ण में दलित। मन मे उँच–नीच का भेद रहते गृहस्थी की गाडी नहीं चलती।"3 इस तरह से रत्नकुमार सांभरिया जी ने जातीयता और अंतरजातीय शादी को लेकर हमारे समाज की प्रासंगिकता व्यक्त की है।आज हमारे देश में शिक्षा व्यवस्था में बढे पैमाने पर घोटाले होते जा रहे है। आज गरीबों को बच्चों को पढाना मुश्कील होते जा रहा है। सरकारी स्कूल बंद होते जा रहे है, और नीजी स्कूलों की फी महँगी होती जा रही है। गरीब बच्चों की शिष्यवृत्ती के पैसे नहीं दिऐ जाते है। सरकार ने शिक्षा व्यवस्था को निजीकरण करके बढे–बढे घोटाले करने का काम किया है। किसी स्कुल या महाविद्यालय में अध्यापक को नौकरी पर लेने के लिए पैसे लिए जाते है। यह इस नाटक में शिक्षा व्यवस्था में प्रासंगिकता है"जमन – किसी के सामने मूँह मत खोलना कि तनखा कितनी मिलती है। सुनों, दीवारों के भी कान होते है। वीमा किसी को बता दोगी, जान आफत आएगी। वीमा – हूँ। जमन – वी यह संस्था है न सरकार के अनुदान से चलती है। अब मुझे तो दिखता नहीं है। पेन पकडकर साइन करा लेते हैं मेंरे। वीमा – रोकड ? जमन – रोकड। साइन तो ज्यादा पर ही कराते बताए। मेरी हथेली पर एक हजार रख देते हैं, बस !"4

आज हमारे देश में सरकारी दप्तरों काम चार महिने तक थांब ! ऐसी हालत है। इसके लिए हमारे सरकारी बाबू जिम्मेदार है। किसी भी आम आदमी का काम एक झटके में नहीं करते है। उस आदमी बार–बार आपना काम करने के लिए आना पडता है और कुछ रिश्वत देने पडती है। तब जाकर सरकारी दप्तरों में काम आम–आदमी होता है। ऐसी स्थिती आज सरकारी दप्तरों की है। यह प्रासंगिकता इस नाटक के माध्यम से रत्नकुमार सांभरियाजी दिखाना चाहते है।"जमन – सर मैं आपको हाथ जोडता हूँ। वीमा के लिए मेरी मदद करें।आका – (धमका कर) मदत –इमदाद ? तुम्हें शर्म आई, दंन्द – फन्द करते। ऐसा तो चोर उचक्के भी नहीं करते। मदत करों, इधर–उधर की छोडो। विवाह के लिए अर्जी दे जाओ, अपनी। जमन–सर, प्रेम के पौधे पर जात की कुल्हाडी, मार रहे है, आप। जो श्यामाजी कह रहे थे, वही आप कह रहे है।अर्जी नहीं दुँगा में।आका – आँखो के ही नहीं, अकल के भी अँधे हो तुम, चले जाओ यहॉ से। मेरे पास जो लोग बैठे है, बहुत खतरनाक है।"5इस तरह से आज हमारे सरकारी अफसर काम करते है। जो नेत्रहीन और गरीब आम–आदमी उम्मीद से अपना काम करने के लिए सरकारी दप्तर चला जाता है। तो उसे एक गुंडे की तरह सरकारी अफसर उसे धमकाते है। जो बढा राजनेता है (श्यामाजी) जैसा उसके पीछे धूम हिलाते चापलुसी करते घूमते है। आम आदमी का काम करने के लिए इनको तनखा दी जाती है और यह इस प्रकार लोगों के साथ पेश आते है। ऐसी स्थिती आज हमारे देश में कुछ अफसरों की है। यह प्रासंगिकता इस वीमा नाटक से लेखक दिखाना चाहते है।

आज हमारे देश में पोलीस प्रशासन की व्यवस्था कैसी है, इसका जीता – जागता उदाहरण इस नाटक में रत्नकुमार सांभरिया जी ने दिया है। आज पोलीस का जो धाक है, सिर्फ आम–लोगों के लिए ही है। पोलीस प्रशासन का कायदा कानून सिर्फ आम–आदमी के लिए है। बढे – बढे लोग इस पोलीस प्रशासन के कायदा कानून से बचकर बाहर आते है। आज की पोलीस भी जमन जैसे नेत्रहीन (आम–आदमी) का काम नहीं करती है। और बढे लोगों ने सिर्फ एक फोन करने के बाद उनके काम जल्दी–जल्दी करने लगती है। यहाँ आज आम–आदमी का FIR भी दर्ज करके लेते नही है। बढे लोगों के उपर केस भी दर्ज करके लेते नहीं है। आज आदमी देखकर हमारा पोलीस प्रशासन काम करता है। ऐसी वास्तविकता हमारे देश में है।"थानेदार – अर्जी दो।देवत – जेब से कागज निकाल कर यह रही सर। तुरन्त कार्रवाई करे सर। बंधा–बंधाया घर उजाड दिया, बेचारे का।थानेदार – अर्जी लेकर ठीक है, ठीक है। कार्रवाई हो जाएगी। जाओ–जाओ। देवत – थाने का एक कॉंस्टेबल मेरा परिचित है। उससे मोबाईल करे पुछा था, मैने आज। कह रहा था – तुम्हारी वह अर्जी जैसी दी थी, वैसी थानेदार की टेबल पर ही रखी हुई है, रिमार्क तक नही।"6 ऐसी यथार्थता आज हमारे देश में पोलीस प्रशासन में है। कई जमन से आम–आदमी है, वह आज भी न्याय के इंतजार में बैठे है। यह इस वीमा नाटक में हमे प्रासंगिकता नजर आती है।आज हमारे देश में मीडिया की हालात बहुत ही कमजोर हुई है। जो समाज को सच्चाई, यथार्थता, वास्तविकता दिखाना आज कोसों दूर है। कुछ भी लोंगों को दिखाकर उन्हे गुमराह करने का काम आज के लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कर रहा है। आज पत्रकारिता मीडीया समाजसापेक्ष् नहीं रहा है। वह व्यक्ति सापेक्ष बन गया है। बेरोजगारी , महँगाई, हमारा विकास कितना हुआ है। यह न दिखाकर कुछ अलग ही दिखाकर लोगों को भ्रमित करने का काम आज की पत्रकारिता कर रही है।

अमीर लोगों का छुपाकर रखना और गरीब लोगों का खोल–खोलकर देखना ऐसी परिस्थिती आज हमारे समाज में देखने को मिलती है। आज लोकतंत्र चौथा स्तंभ अपनी जिम्मेदारी सही ढंग से नही निभा रहा है। इसलिए वह आज खतरों में है। आज पत्रकार तो दवाब तंत्र के हिसाब से पत्रकारिता करते नजर आते है। ऐसा परिवेश आज पत्रकारिता करते नजर आता है। ऐसा परिवेश आज पत्रकारिता के दुनिया में नजर आने लगा है। इस वीमा नाटक में झा साहब जैसे पत्रकार कैसे है। वैसी ही आज हमे पत्रकार दिखाई देते है।"जमन – कहते थे, खबर हैं। नवें पृष्ठ पर छपी है। अब कहते है। खबर है ही नहीं।देवत – सच, खबर है ही नही, जमन।जमन – क्या है फिर ?देवत – निःशक्तों के विश्वास पर कुल्हाडी।जमन – है ! क्या कहा ? निःशक्तों के विश्वास पर कुल्हाडी ? प्रेस लोकतंत्र का चौथा स्तंभ है ?दैवत – हाँ ! शातिर, शुतूर, धोखेबाजों ने स्तंभ में दरार ला दी है। घबराओ मत। बिलकुल मत घबराओ। हम निःशक्त है। न हमारी जात है, न हमारी पाँत है। वीमा आएगी, जरुर आएगी। हिम्मत नहीं हारनी है, हमें।"7इस प्रकार झा साहब पत्रकार जमन वर्मा और देवत सिंह को धोका देकर चले जाते है। ऐसा हमारा लोकतंत्र चौथा स्तंभ हमे धोका देते जा रहा है।

इस तरह से रत्नकुमार सांभरिया जी के वीमा नाटक से आज की प्रासंगिकता नजर आती है।

संदर्भ सूचि – **(1)**वीमा–रत्नकुमार सांभरिया, पृष्ठ कृ.35 **(2)**वीमा–रत्नकुमार सांभरिया, पृष्ठ कृ.32 **(3)**वीमा–रत्नकुमार सांभरिया, पृष्ठ कृ.46 **(4)**वीमा–रत्नकुमार सांभरिया, पृष्ठ कृ.38 **(5)**वीमा–रत्नकुमार सांभरिया, पृष्ठ कृ.30–31 **(6)**वीमा–रत्नकुमार सांभरिया, पृष्ठ कृ.55–56 **(7)**वीमा–रत्नकुमार सांभरिया, पृष्ठ कृ.64

19.रत्न कुमार सांभरिया की कहानियां और दलित विमर्श

–डॉ. अनिता गोयल
राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर

साहित्य क्या है इस प्रश्न पर अनेक विचारकों, मनीषियों, विद्वानों ने गहन विवेचन विश्लेषण किया और इस विश्लेषण का परिणाम इस भाव पर पहुंचता है कि साहित्य वह है जिसमें हित का भाव सन्निहित हो। हित किसका? संपूर्ण मानव जाति का। पर्यावरण, प्रकृति, जीव जंतु का हित भी अंततः मानव जाति के हित का ही वृहत रूप है। मानव जाति के हित की बात कही जाए तो यह किसी विशेष जाति, धर्म, लिंग, अर्थ के भेदभाव के बिना सर्व मानव समुदाय पर लागू होती है। आधुनिक युग में इस वृहद विचार का अनुशरण अनेक विमर्शों के रूप में उपस्थित होता है। इन विभिन्न विमर्शों का उद्देश्य समतामूलक और सम्मानजनक मानव समाज की स्थापना है। हिंदी साहित्य में दलित साहित्य की धारा का आरंभ कविता के रूप में होता है। हिंदी कहानी के आरंभ होने के दशकों तक भी दलित अस्मिता व संघर्ष को साहित्य में आवाज नहीं मिल पा रही थी। 70 के दशक से वंचित शोषित वर्ग की वाणी साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त होने लगी परंतु इस तरफ अधिक ध्यान नहीं दिया गया। 90 के दशक के बाद दलित कहानी लेखन उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होता रहा ।वंचित वर्ग की कहानी की विकास यात्रा में ओमप्रकाश वाल्मीकि, रजत रानी मीनू ,मोहनदास नैमिशराय प्रेम कपाड़िया ,सुशीला टाक भोरे, जयप्रकाश कर्दम ,शिवराज सिंह बेचैन, कुसुम मेघवाल, अनीता भारती, रत्न कुमार संभरिया, सूरज बड़ात्या,राजेंद्र बडगूजर आदि प्रमुख है, जिन्होंने दलित समाज की पीड़ा और संवेदनाओं को गहराई से अभिव्यक्त किया है। डॉ रामचंद्र लिखते हैं 'हिंसा और घृणा आधारित हिंदू व्यवस्था की जगह समता व करुणा की आकांक्षा दलित वैचारिकी का आधार स्तंभ है जो बुद्ध से डॉ. अंबेडकर तक के लंबे इतिहास की देन है अंबेडकरवादी विचारधारा की मौजूदगी दलित कहानी की मूल संवेदना है जिससे दलित चेतना की निर्मिती हुई है अस्मिता बौद्ध दलित कहानियों का मूल है।' कहानी विधा के रूप में भी दलित वैचारिकी अभिव्यक्त होती रही परंतु उसे अधिक महत्व प्राप्त नहीं हुआ ।स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भी दलित मुख्यधारा में शामिल नहीं हो पाए संविधान के द्वारा प्रदत्त अधिकार और मंडल कमीशन के पश्चात दलित वर्ग के आर्थिक और सामाजिक स्थिति में आए बदलाव ने इस वर्ग की सोच को समाज के समक्ष एक चिंतन के रूप में प्रकट किया। हिंदी साहित्य में दलित साहित्य की उपस्थिति को सन 70 के दशक से पहचान मिलना प्रारंभ होता है और 90 के दशक तक आते–आते यह विचार धारा एक समृद्ध सोच के रूप में साहित्य पर अपना प्रभाव डालती है ।दलित शब्द का अभिप्राय है दबाया हुआ, कुचला गया ,रौंदा गया ।अधिकांश दलित साहित्य के समर्थक लेखक दलित के अंतर्गत केवल जाति विशेष को शामिल न करते हुए समाज के प्रत्येक दबाए हुए वर्ग को शामिल करते हैं। जिसके अंतर्गत स्त्री, निम्न जाति ,विकलांग, वंचित वर्ग भी शामिल है।

रतन कुमार सांभरिया हिंदी साहित्य के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं ।इनकी रचनाओं में वंचित दलित वर्ग सक्रिय रूप से उपस्थित मिलता है ।केवल सिद्धांत या केवल काल्पनिक समाधान या यूटोपिया समाज की रचना के बजाए लेखक समस्या की समझ व समाधान ढूंढने का प्रयत्न करते दिखाई देतें है। दलित चेतना आंदोलन की ओर मुड़ती है उसके पीछे दलित वर्ग का सामाजिक आर्थिक उत्थान महत्वपूर्ण घटना है। डॉ. अंबेडकर द्वारा प्रदत संवैधानिक व्यवस्था में इस वर्ग को शिक्षा और रोजगार का अवसर प्रदान किया। सांभरिया जी की कहानियां परिवर्तित परिवेश की कहानियां है। जहां दलित रोते, टूटते, गिड़गिड़ाते, घुटने टेकते दृष्टिगत नहीं होते। अपितु वे शिक्षित हैं आत्मनिर्भर हैं अच्छे पदों पर आसीन हैं। परिवर्तित परिवेश उनमें स्वाभिमान, समानता,सम्मान उत्पन्न करता है। स्वाभिमान स्वयं के मानवीय मूल्यों का, स्वाभिमान उच्च जाति के साथ बराबरी और कभी–कभी उसकी मदद करने का। सांभरियजी की कहानियां वंचितवर्ग की कहानियां है। स्त्री वर्ग, निम्न जाति वर्ग ,विकलांग वर्ग या मूक जीव अनेका अनेक रूप में दलित वंचित दृष्टिगत होते है।

'रत्न कुमार सांभरिया की प्रतिनिधि कहानियां' संग्रह में कुल 11 कहानियां संग्रहित है प्रत्येक कहानी अपने में विशिष्ट है ।यह सांभरिया जी की सोच को हमारे सामने घटित करती हैं ।'रत्न कुमार सांभरिया जी लिखते हैं "दलितों की पीड़ाओं का पहाड़ खड़ा कर देना दलित कहानी नहीं है ।...दलित कहानी से अभिप्राय एक ऐसी अनूठी रचना से है जो दलितों में नए जीवन का संचार करती हो ।कथाकार दलित हो या गैर दलित जिस कहानी के पात्र रुआंसे से, गिड़गिड़ाते से, समझौता परस्त, पलायनवादी से, हारकर बैठने वाले से तथा यथास्थिति को प्रारब्ध मानने वाले से हो उनसे दलित कहानी वैभव नहीं पाती।"सांभरिया जी की यह सोच आज की दलित कहानी की वैचारिकी को स्पष्ट करती है ।प्रेमचंद और प्रेमचंद के काल की कुछ कहानियां जैसे दूध का दाम, सद्‌गति ,ठाकुर का कुआं ये कहानियां जिस रूप में इस वंचित वर्ग को अभिव्यक्त करती है वह सांभरिया जी की

कसौटी पर दलित कहानी की श्रेणी में नहीं आ सकती। सांभरिया जी की दलित या वंचित वर्ग की कहानियों के पात्र इतने डरे सहमे, रोते, पांव में गिरते पड़ते नहीं है। यथास्थिति को पिछले जन्मों का कर्म मानकर स्वीकार करने वाले भी नहीं है ।अपने कर्म, अपनी शिक्षा अपने अनुभव और अपने संगठन को पहचानने वाले यह पात्र आज के युग की स्पर्धा में पूर्ण क्षमता व जिजीविषा के साथ खड़े होकर अपना स्थान स्वयं बनाते हैं।

अंबेडकरवादी विचारधारा जो शिक्षित संगठित और संघर्ष करने का आह्वान करती है, सांभरिया जी की कहानियां इस विचार को प्रत्यक्ष रूप में घटित करती हैं। रत्न कुमार सांभरिया की कहानियां केवल दलित चेतना की कहानियां ना होकर परिवर्तित परिवेश का आख्यान है। स्वार्थ की अपेक्षा मानवीय अर्थवत्ता व मूल्यों की कहानियां है। जिजीविषा की कहानियां है, प्रेम सहानुभूति दया जैसे श्रेष्ठ मूल्यों की कहानियां है, गर्व की कहानियां है। आज की दलित कहानी एक पक्षीय या एक स्वरीय नहीं है। कहानी अनेकानेक मोड़ो और कोणो की तरफ बढ़ती है। रत्न कुमार सांभरिया की कहानियां इसका प्रमाण है ।इनकी कहानियों का कथ्य विस्तृत है ।वह केवल दलित शोषण या आक्रोश तक सीमित न होकर समतामूलक समाज की स्थापना के उद्देश्य की ओर बढ़ती हैं। प्रस्तुत संग्रह की पहली कहानी है फुलवा जिसे परिवर्तित परिवेश और वंचित वर्ग की बदलती हैसियत की कहानी कहा जा सकता है। इस परिवर्तन का आधार शिक्षा है।जिसकी तरफ डॉ. अंबेडकर ने ध्यान आकर्षित करते हुए कहा था। "प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षित किया जाना चाहिए। हर एक व्यक्ति में अपनी रक्षा की क्षमता होनी चाहिए। अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए, प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह बहुत जरुरी भी है।" इसी विचारणा को सांभरिया जी की कहानी फुलवा अभिव्यक्त करती है जमींदार के घर टहुलवई करने वाली फुलवा बड़ी चालाक निकली सौ पापड़ बेल लिए लेकिन अपने बेटे राधामोहन के हाथ से किताब नहीं छूटने दी। यह चालाकी कितनी कर्मशील है जिसमें अस्तित्व की तलाश व्याप्त है। जिसमें निश्चय की दृढ़ता मौजूद है। अथक परिश्रम निहित है। उसी का परिणाम था कि राधामोहन आज एस.पी. था और फुलवा फुलवंती। कोठी की शान शौकत रामेश्वर को दिखाते फुलवा के भीतर शिक्षा की ताकत का स्वाभिमान है वही रामेश्वर के भीतर जो जाति का दम्भ है उसका घृणित ईर्ष्यालु स्वरूप द्वेष के रूप में, कुंठा के रूप में चित्रित है। अपने बेटे की नौकरी के लिए रामेश्वर अपनी परिस्थितियों से हार कर फुलवा से सिफारिश की भीख लेने को घुटनों पर आ जाता है ।'समय बड़ा सौदागर है 'कहानी समय की ताकत को ,शिक्षा की ताकत को इंगित करती है वहीं दलित, वंचित वर्ग को अंबेडकर की विचारणा का स्मरण कराती है शिक्षित बनो शिक्षा ही तुम्हारी दासता की मुक्ति का मार्ग है।

'बिपर सुदर एक कीने' कहानी भी शिक्षा की जीत की कहानी है। जीवन लाल और श्याम लाल दोनों भाई एक ही जाति के हैं, परंतु जीवन लाल पुश्तैनी काम छोड़ सूत्रकार बन गया ।सूत्रकार यानी जिसने चमड़े का काम छोड़ दिया और शूत्र धारण कर लिया और ऊंची जाति का बन गया परंतु श्याम लाल रांपावत ही बना रहा।जूते सीलकर अपने बेटे को पढ़ाता रहा। बेटा पढ़कर डीएसपी बन जाता है। सरस्वती के आशीर्वाद से मंदिर के द्वार भी रांपावत श्यामलाल के लिए खुल जाते हैं। जिस श्यामलाल से स्वयं उसी की जाति के लोग रोटी बेटी का व्यवहार तोड़ चुके थे, उसी श्यामलाल के बेटे को गांव का पुजारी अपने परिवार का पांवणा बनाने को आतुर है। शिक्षा ही वह ताकत है जो विप्र शूद्र को एक बना सकती हैं। यह कहानी शिक्षा के साथ–साथ कर्मशीलता की महत्ता स्थापित करती हैं। श्यामलाल एक से एक बढ़िया जूते बनाता, मेहनत करता पर अपने बेटे दीदार सिंह को गांव से बाहर भेजकर पढ़ाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। सांभरिया जी ने इस कहानी में जाति के भीतर जाति की परतों को दिखाया है। जो दलित वर्ग को तोड़ने का ,उनके संगठन को छिन्न –भिन्न करने का कार्य करती है ।इसी सोची समझी चाल का पीड़ित बनता है श्यामलाल जो अपने ही भाई से हीन जाति का बनजाता है। जाति के भीतर उपजाति बनाकर किस प्रकार से ब्राह्मण और उच्च जातियां , दलित वंचित वर्ग को बांट रही है और वह संगठित हो कर उस विरोध का उस संगठन का उस वर्ग का विरोध नहीं कर पा रहे जो उनके शोषण का माध्यम हैं। इसी बात को उजागर करते हुए महात्मा ज्योतिबा फुले 'गुलामगिरी' में लिखते हैं– "जब से ब्राह्मणों ने शूद्रादि–अतिशूद्रों में जातिभेद की भावना को पैदा किया, बढ़ावा दिया, तब से उन सभी के मन–मस्तिष्क आपस में उलझ गए और घृणा से अलग–अलग हो गए। ब्राह्मण–पुरोहित अपने षडयंत्र में कामयाब हुए। उनको अपना मनचाहे व्यवहार करने की पूरी स्वतंत्रता मिल गयी। इस बारे में एक कहावत प्रसिद्ध है कि 'दोनों का झगड़ा और तीसरे का लाभ'। मतलब यह कि ब्राह्मण–पंडा–पुरोहित ने शूद्रादि–अतिशूद्रों के आपस में नफरत के बीज जहर की तरह बो दिए और खुद उन सभी की मेहनत पर ऐशों–आराम कर रहे हैं।"

सांभरिया जी की कहानियों में जो परिवर्तन दृष्टिगत होता है वह सामाजिक प्रतिष्ठा की प्राप्ति के बाद का परिवर्तन है। यह सामाजिक प्रतिष्ठा जाति आधारित न होकर के पद और

कर्म आधारित प्रतिष्ठा है। एक वृहद समाज जब स्वीकार करता है आप का वजूद, आपका स्तर, आपका ओहदा तो आसपास का तथाकथित उच्च जाति वर्ग भी नतमस्तक हो जाता है क्योंकि वह निरूपाय है जैसे फुलवा कहानी में रामेश्वर। यह तथ्य दर्शाता है कि आज जीवन पुनः जाति की अपेक्षा कर्म की तरफ सम्मानजनक दृष्टि से मुड़ रहा है परंतु कर्म भी वह जो समाज में आज अधिक सम्माननीय है। जाति के आधार पर भेदभाव को एक अलग एंगल से दिखाती है कहानी चमरवा। राजस्थान और हरियाणा के आसपास चमार जाति के धार्मिक क्रियाकलाप को संपन्न कराने वाला एक वर्ग है जिसे चमरवा कहा जाता है। ब्राह्मण वर्ग अस्पृश्य वर्ग के धार्मिक अनुष्ठानों को करने में जिस प्रकार से आनाकानी करते रहे उसी का परिणाम था चमरवा जैसे ब्राह्मण वर्ग। जो जन्मना तो चमार है परंतु एक विशिष्ट वर्ग के धार्मिक क्रियाकलाप संपन्न कराने के कारण अपने आप को ब्राह्मण मानने लगा। इस कहानी के प्रमुख पात्र दरपन के माध्यम से लेखक ने इस वर्ग की स्थिति को उजागर किया है। दरपन अपनी पत्नी नोना के अंतिम क्रिया कर्म को संपन्न कराने के लिए चार सवर्ण कंधों को ढूंढता रहता है परंतु उसे दुत्कार ही मिलती है दूसरी तरफ चमार जाति के लोग बिना कहे ही उसके पत्नी की अंतिम यात्रा को संपन्न करवाते हैं। दरपन के माध्यम से लेखक अभिव्यक्त करता है कि केवल पुरोहित का कर्मकांड करवाने वाले को सवर्ण कभी भी अपने वर्ग में शामिल नहीं करेगा। इसके विपरीत दरपन स्वयं ही अपने वर्ग से अस्पृश्यता का व्यवहार करने लगा था। लेखक यहां संकेत देता है कि संगठन से दूर जाकर व्यक्ति अकेला ही रहेगा उसका वर्ग ही उसका संगठन है।

इस संग्रह की कहानी मांडी उस विडंबना और विसंगति को प्रत्यक्ष करती है जो बदली परिस्थिति से उपजा है ।मांडी एक ग्रामीण परंपरा है जिसमें अमावस्या के दिन रोटी पर खीर रखकर गाय को खिलाने की प्रथा है । मान्यता है कि इससे पितरों का तर्पण होता है। सवर्ण दानी दास पूरे गांव में ढूंढता फिरा परंतु सवा सौ घरों के गांव में उसे गाय नहीं मिली ।गाय मिली तो नीची जात के सुबेसिंह के घर पर ।सुबेसिंह का घर अछूत का घर, मेहतर का घर सवर्ण दानी दास कैसे अपना धर्म छोड़ दे ?कैसे अछूत की गाय को मांडी दे और अपने पितरों का तर्पण कराएं ?पंडित दानी दास खेत में घूमती सुबेसिंह की गाय को ही मांडी खिलाने के लिए मन को समझा लेता है।"अपनी समझ बढ़ाई मेहतर के चौक खूंटी बंधी गाय मेहतर थी। बहता पानी और चरता पशु निरपेक्ष होते हैं। ना जात ना धर्म। मांडी दे। धर्म निभा ,दानी ।जल्द कर तू। पोते –पोती भूख से बिलखते उधम मचा रहे हैं।" परंतु जैसे ही मांडी गाय के मुंह तक पहुंचती है सुबेसिंह की पत्नी कुमुद रस्सी खींच लेती है और मांडी गाय की जीभ के गोल से नीचे गिर पड़ती है ।सरल से कथानक के बीच विचारों का प्रस्फुटन प्रत्यक्ष होता है। ईश्वर की श्रेष्ठ कृति मनुष्य का स्थान क्या पशु से निचले स्तर पर है? क्यों? उसके जन्म की मेहतर जाति तो कभी ना बदले परंतु मेहतर के घर में पशु की जाति मेहतर और घर से बाहर निकलते ही वह पशु मेहतर नहीं, स्वीकार्य हो जाए ?क्या अस्पृश्यता भी सुविधा अनुरूप है? मनुष्य और पशु के बीच चुनाव में श्रेष्ठ चुनाव पशु है ,मानव नहीं? कुमुद द्वारा गाय को मांडी खिलाने का प्रतिरोध भी कई प्रश्न उपस्थित करता है। मेहतर के घर की गाय को मांडी मेहतर के घर ही क्यों न मिले?

दलित साहित्य का अभिप्राय केवल शोषित जातियों के शोषण और संघर्ष से ही नहीं है अपितु दलित के अंतर्गत प्रत्येक दबाया हुआ, कुचला हुआ ,रौंदा हुआ, हर वर्ग शामिल है भारतीय सामाजिक व्यवस्था में स्त्री भी दलित के अंतर्गत ही है। स्त्री होना अपने आप में संघर्षपूर्ण है। यह संघर्ष कई गुना बढ़ जाता है जब उसके पति की मृत्यु हो जाए। चपड़ासन कहानी में स्त्री के इसी दोहरे संघर्ष को लेखक ने चित्रित किया है ।इस कहानी की नायिका मीता अपने तहसीलदार पति मुनीन्द्र की मृत्यु के पश्चात उसी कार्यालय में ड्यूटी जॉइन करती है । मुनीन्द्र के रहने तक जो कार्यालय उसे तहसीलदार की पत्नी के रूप में सम्मान देता था वही तहसील कार्यालय आज उसके साथ अबे और तू की भाषा का प्रयोग कर रहा है। मीता अपमानित होती है परंतु वस्तु स्थिति को स्वीकारती है ।जानती है कि वह अब इस कार्यालय की चपड़ासन है ।इस कार्यालय के अधिकारी तहसीलदार की पत्नी नहीं। चपड़ासन के रूप में दिए हर काम को मीता पूरा करती है। यह काम औरत का है या नहीं है। इस बात की परवाह किए बिना मजबूती से हर कार्य को हर आदेश को निभाती है परंतु जब सवाल स्त्री अस्मिता का आता है तब मीता एक सशक्त स्त्री के रूप में खड़ी होती है ।तहसीलदार द्वारा दिए गए लुभावने प्रस्ताव को वह सख्त विरोध के साथ ठुकरा देती है। तहसीलदार की धृष्टता फिर भी समाप्त नहीं होती ।मीता की स्थिति समाज में एक जवान, सुंदर, विधवा स्त्री की पीड़ा को अभिव्यक्त करती है लगता है कि जैसे पति के बिना स्त्री समाज की संपत्ति है। परंतु मीता हार मानने वाली नहीं है व एफ आई आर कराने का निर्णय लेती है। यह निर्णय स्त्री अस्मिता की रक्षा का निर्णय है ।स्व की रक्षा का निर्णय है ।जब दुर्जन अपनी सीमाएं लांघे तो उसे उसकी मर्यादा का एहसास कराने के लिए कानून का सहारा

लेने की बात लेखक उठाते हैं। उत्पीड़न का प्रतिकार अधिकारों के उपयोग से ही संभव है।

इसी क्रम में इत्तेफाक कहानी भी स्त्री की सशक्त भूमिका को प्रस्तुत करती हैं। स्त्री, अस्मिता की रक्षा के साथ–साथ निर्णय की ताकत से पूर्ण होती है। सांवली जिसे विवाह के पश्चात सांवले रंग के कारण घर से मारपीट कर निकाल दिया गया। उसका पति सांवली के रूप से संतुष्ट नहीं था।सांवली निरीह गाय के सामान रोती रही। वही सांवली आज 40–45 वर्ष के पश्चात वैभवशाली घर की मालकिन है। गांव की पंच है। सम्भ्रातता उसके चेहरे से टपक रही है ।यह सब सांवली ने अपने परिश्रम से अपनी जिजीविषा से हासिल किया है। वर्षों बाद इत्तेफाक से बस में उसे उसका पति रामदयाल मिलता है। रामदयाल सांवली को बिना पहचाने अपनी गलती, अपना पश्चाताप आंसू से सने शब्दों में सांवली के समक्ष प्रकट करता है। सांवली के भीतर का समस्त आक्रोश उसके आंसुओं से धूल जाता है ।सम्मान के साथ वह रामदयाल को अपने घर लाती है। पोती कलावती के विवाह की तैयारियों से अवगत कराती है।गहने दिखाती है ।अपने बेटे और बहू को भी बताती है रामदयाल के बारे में, परंतु बेटा बहू विवाह तक शांत रहने का निर्णय लेते हैं। यहां लेखक ने सांवली को जिसने अपना जीवन , वैभव, इज्जत अपने बलबूते पर हासिल किया है। वह संतुष्ट नहीं होती अपने बेटे के निर्णय से ।पोती कलावती के विवाह के बीच शामली कन्यादान के समय स्पष्ट घोषणा करती है 'यह एक सौ एक कन्या के दादा रामदयाल के नाम के ' सांवली का यह निर्णय स्त्री के निर्णय क्षमता उसकी अस्मिता का उदाहरण है।

इत्तेफाक कहानी इस दृष्टि से और भी मूल्यवान हो जाती है कि एक परित्यक्ता स्त्री जिसे उसके पति ने छोड़ दिया उसके शारीरिक रूप के कारण। वह स्त्री आज इतनी सक्षम बन चुकी है कि वह स्वयं उसका वरण कर रही है जिसने उसे छोड़ा ।सांवली को छोड़ा गया उसमें उसकी मर्जी नहीं थी लेकिन आज जब वह पुनः रामदयाल का वरण कर रही है उसे अपने पति का स्थान प्रदान कर रही है तो वहां स्त्री के अधिकार का उसके वरण के अधिकार का प्रतीक बनकर उभर रहा है । दूसरी तरफ भारतीय मूल्यों की छाया भी इस निर्णय में दृष्टिगत होती है जहां पश्चाताप पाप को धो देता है जहां बदले की भावना की अपेक्षा बदलने की भावना अधिक महत्वपूर्ण है इसका प्रतीक भी इत्तेफाक कहानी बनती है।सांभरिया जी प्रस्तुत कहानियां जिन चरित्रों का वर्णन करती है वह जन्म से तो अवश्य दलित है परंतु प्रारंभिक दलित कहानियों के समान इन कहानियों के पात्र दबे हुए रोने वाले और कमजोर नहीं है। यह पात्र सशक्त है।क्योंकि सांवरिया जी मानते हैं की 'दलितों की पीड़ाओं का पहाड़ खड़ा कर देना दलित कहानी नहीं है दलित कहानी से अभिप्राय एक ऐसी अनूठी रचना से है जो दलितों में नए जीवन का संचार करती हो। कथाकार दलित हो या गैर दलित जिस कहानी के पात्र रुआंसे से ,गिड़गिड़ाते से, समझौतापरस्त,पलायनवादी से, हार कर बैठने वाले से तथा यथा स्थिति को प्रारब्ध मानने वाले से हैं उनसे दलित कहानी वैभव नहीं पाती।" सांभरिया जी की कहानियां अंबेडकर के मानवतावादी विचारों का जीवंत दस्तावेज है। लेखक मानवीय मूल्यों जैसे समता,समानता, अस्तित्व स्वाभिमान की पुरजोर पैरवी अपने पात्रों के माध्यम से करते हैं। लेखक ना सिर्फ दुख को देखता है अपितु दुख देने वाले को भी वह देख रहा है ।राजनीतिक, प्रशासनिक संरक्षण को वह देख रहा है ।इन सब का प्रत्युत्तर वह संगठित विरोध में पाता है।

संवाखें कहानी में इसी संगठन को उजागर किया गया हैं। जमन वर्मा नेत्रहीन होने के साथ–साथ तथाकथित निम्न जाति से संबंधित है ।नेत्रहीन जमन नेत्रहीन बीमा की रक्षा करता है। जमन और बीमा की सहमति से दोनो विवाह भी संपन्न होता है। नेत्रहीन बीमा , सवर्ण परिवार की विकलांग अर्थात नेत्रहीन लड़की है , जिसे परिवार वाले बोझ समझते हैं । उसका विवाह उसकी उम्र से दुगने व्यक्ति के साथ करना चाहता है। बीमा इस कारण घर छोड़ देती है। नेत्रहीन सुंदर और उस पर स्त्री होने के कारण असहाय बीमा गुंडों से घिर जाती है जमन उसकी सहायता करता है। गुंडों से उसकी रक्षा करता है। बीमा कीअसहाय स्थिति में जमन उसका रक्षक बनता है। परंतु जैसे ही बीमा के सवर्ण समाज को इस घटना की भनक मिलती है जबरदस्ती बीमा और जमन को अलग कर दिया जाता है । तथाकथित विकलांगों के आका श्याम जी में जाति की ओछी सोच में जाति को ही महत्व देते हैं। और कहते हैं, श्यामा जी का कथन द्रष्टव्य है, "हम सालों–साल उम्र भर बिना धर्म के जी सकते हैं। बिना जात साँस भी नहीं ले सकते हैं। साँप भी अपनी हैसियत के मुताबिक ही कुंडली मार कर बैठती है। तुमने अपनी औकात का अतिक्रमण किया है वर्मा।" कानूनी रजिस्टर्ड शादी भी उनकी नजर में कोई मायने नहीं रखती अखबार ,प्रशासन, पुलिस कोई जमन का साथ नहीं देता। ऐसी विकट स्थिति में संपूर्ण विकलांग समुदाय जमन के साथ धरने पर बैठता है और उसका साथ देता है। संघर्ष और प्रतिरोध के माध्यम से लेखक दिखाता है कि अकेली लकड़ी कमजोर हो सकती है परंतु लकड़ियों का संगठित रूप गट्ठर की ताकत बन सकता है

। जिसे तोड़ना संभव नहीं।इसी का अनुभव संवाखे कहानी में होता है।

सांभरिया की कहानियां केवल दलित विमर्श या दलित संघर्ष की कहानियां ही नहीं है अपितु मानवीय धरातल के स्पर्श की कहानियां है। मानवीय सह्रयता सहजात मानव समुदाय तक सीमित ना होकर प्रकृति के प्रत्येक जीव तक स्थित है। कहानी मानवीय संवेदना की प्रवृत्ति का साक्षात्कार कराती है। लक्षीनाथ और हिरणी के बीच का मौन संवाद इस कहानी का प्राण है। हिरणी का शावक लक्षीनाथ की गिरफ्त में है। रुई के फाहे सा शावक लक्षीनाथ का भवितव्य भोजन। हिरनी अश्रुपूर्ण नेत्रों से उस शावक को ,अपने जिगर के टुकड़े को देख रही है ।मौत के मुंह में फंसा उसका नन्हा सा बालक और इस दृश्य से कातर उसके नेत्र। लक्षीनाथ जैसे ही हिरणी की आंखों को देखता है उन नयनों की कातरता,दुख, ममता को देखकर लक्षीनाथ को आज स्मरण होता है कि कैसे 3 महीने की उसकी स्वयं की बच्ची को लोमड़ उठा कर ले जाता है और जब बच्ची मृत लहूलूहान मिली ।वही अनुभव लक्षीनाथ हिरणी आंखों में देख रहा है। लक्षीनाथ शावक को हिरणी के पास छोड़ देता है ।सियारों के झुंड से उसकी रक्षा भी करता है। प्रस्तुत कहानी मानवीय संवेदना के विस्तार को अभिव्यक्त करती है।लेखक जो बात यहां अभिव्यक्त करना चाह रहा है वह दलित विमर्श का प्रमुख प्रश्न भी हो सकता है जो सहानुभूति और स्वानुभूति से संबंधित है। जब तक स्वानुभूति ना हो तब तक उस दर्द का अनुभव सत्य नहीं हो सकता। लक्षीनाथ शब्दों की उपस्थिति के बिना भी हिरणी का दुख अनुभव कर लेता है क्योंकि उसने स्वयं संतान का बिछोह अनुभूत किया है।हिरनी की आंखों में जैसे उसका स्वयं का ममत्व अनूभूत होता है।

मियांजान की मुर्गी कहानी के द्वारा जीवन के प्रति जिजीविषा की अभिव्यक्ति की गई है इसके साथ ही परिवर्तित समय का बखान भी कहानी का कथ्य है। मियां एक बूढ़ा पहलवान जो कभी मल्ल युद्ध के अजय योद्धा थे आज जर्जर शरीर है। बुढ़ापे के कारण कांपते हाथ धूंधली आंखें बता रही है'अरे देह और धन किसी का रहा है जो एक घर का बोझ नहीं उठा सकता वह खुद का बोझ खुद बन जाता है एक दिन।'

मियां जान भूख से बेहाल मसाला बांटकर मुर्गी को हलाल करने के लिए दड़बे में हाथ डालता है। मियां जान का हाथ मुर्गी के लिए जैसे मौत ।जीव जीव का बैरी ,जिंदगी और मौत का दांव,एक जीव जीव से जान बचाने के लिए बचने का उपक्रम करता है और दूसरा जीव जीव के लिए यमदूत बना है ।मुर्गी आगे आगे भागती में या पीछे पीछे जीवन के लिए संघर्ष करती मुर्गी अपनी जान बचाने के कई उपक्रम करते हैं और अंततः मुर्गियों के समूह में शामिल हो जाती हैं प्रस्तुत कहानी का कथ्य जिन चीजों को उभारता है उसमें तीन चीजें महत्वपूर्ण है समय, संघर्ष और संगठन। परिवर्तित समय मियां के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। एक समय पहलवानी का मजबूत शरीर और आज भूख से बेहाल वृद्धावस्था का जर्जर शरीर। मुर्गी के माध्यम से जीवन के लिए संघर्ष का कथन है ।वहीं मुर्गी जब समूह में शामिल हो जाती है तो संगठन की ताकत का संकेत लेखक ने दिया है। छोटे–छोटे गतिशील वाक्यों के माध्यम से मियां जान की मुर्गी कहानी बहुत कुछ कहती हैं। साहित्य में करुणा का स्वर सदैव रहा है।' बकरी के दो बच्चे' कहानी का मूल भी करुणा है। जीव मात्र के प्रति करुणा। एक मानव जो रचयिता की सबसे सुंदर कृ ति है। क्या वह किसी दूसरे मानव से इतना द्वेष भी रख सकता है कि द्वेष के वशीभूत 2 दिन के मासूम बकरी के बच्चों को पीट पीट कर मार डाले। या फिर इतना अधिक जातीय अभिमान कि घृणित कार्य करने के पश्चात भी गर्व करना कि यह जमींदाराना काम है। कहानी में बकरी के बच्चे, बच्चे शब्द का प्रयोग किया गया है जो गहरी संवेदना से जुड़ा हुआ है। बकरी के बच्चे को मेमना कहा जाता है। यहां पर बच्चे शब्द का प्रयोग किया जाता तो उससे वह निकटता महसूस होती जो बच्चे से होती है। दलपत और उसकी पत्नी के लिए मेमने बच्चे ही थे। लेखक सांकेतिक रूप से कई स्थानों पर आदमी–आदमी और जानवर–जानवर की तुलना करता है। ताकतवर आदमी ताकतवर जानवर, कमजोर आदमी कमजोर जानवर और जैसे छोटी जात का आदमी तो निरीह है, बेचारा, कमजोर प्राणी, जो तो भीड़ के ही समान है। जैसे दान सिंह कहता है डेढ़ और भीड़ को हम जीव ही नहीं मानते। आदमी और जानवर की तुलना करते हुए कहानी में कहा गया है 'घर से शेर बनकर चला था बकरी का बच्चा बन गया , यहां आकर।' कहानी की कथा के अनुसार दान सिंह जैसे बहुत बड़ा ताकतवर जानवर और यह ताकत शारीरिक नहीं झूठे जाति अभिमान की ताकत है। और दलपत जैसे छोटी जाति का जैसे भेड़। लेखकसंकेत करता है कि राम दुलारे के पास संगठन की ताकत है जिसके आगे हाथी के समान ताकतवर दान सिंह का बल भी पिद्दी सा बन गया।

प्रस्तुत कहानी संग्रह के कहानियों के अवलोकन के पश्चात जो निष्कर्ष रूप में तथ्य उभरकर आता है वह हैमनुष्य की अस्मिता और उसका सम्मान। सांवरिया जी की संवेदना शीलता,विचार शीलता और शिल्प कला का उदाहरण प्रस्तुत करती है। कथानक की दृष्टि से प्रस्तुत कहानियों की अंतर्वस्तु सधे हुए

शिल्प के माध्यम से जिज्ञासा और उत्सुकता के साथ साथ नाटकीयता से परिपूर्ण है। कथानक के माध्यम से लेखक अनवरत उद्देश्य की ओर उन्मुख होता प्रतीत होता है परंतु कथा रस का ह्रास कहीं पर भी नहीं होता। दलित चेतना की शुरुआत से कुछ कदम आगे बढ़कर इन कहानियों में परिवेश के परिवर्तन को इंगित किया गया है जो सकारात्मक है। पात्र संयोजन की दृष्टि से सांभरिया जी की कहानियां विशिष्ट है इन कहानियों के पात्र दलित, शोषित, वंचित वर्ग से हैं परंतु वर्गीय पात्र नहीं है विशिष्ट है। उनमें जिजीविषा है, निर्णय की क्षमता है, मजबूती है मानवीयता है। जो कथ्य के साथ न्याय करते हैं। सांभरिया जी की कहानियां अंत की दृष्टि से विशिष्ट है। लेखक कथ्य के माध्यम से जो विचार प्रेषित करना चाहता है वह है मनुष्य के अस्मिता और गरिमा की रक्षा ।कहानी के अंत इस और उन्मुख दिखाई देता है। रोहिणी अग्रवाल ने एक स्थान पर लिखा है कि' एक सांगठनिक ताकत के बल पर ही दुराग्रही बहुसंख्यक समाज के पशु बल से टकराकर समय की धारा में मनवांछित मोड़ लाया जा सकता है।" सांभरिया जी की कहानियों में यह संगठन का बल कई स्थानों पर दृष्टिगत होता है। सधे हुए शिल्प में संवेदना को व्यक्त करती कहानियां भाषा और शैली की दृष्टि से भी विशिष्ट है। लेखक किसी एक शैली का अनुसरण नहीं करता अपितु आत्मकथा शैली ,वर्णनात्मक शैली, संवाद शैली, फ्लैशबैक शैली इत्यादि का संयोजन कहानियों में करते हैं। भाषा में ग्रामीण शब्दों का प्रयोग जैसे डिढ़ाण, मोतबर, आंकल, मांडी जैसे शब्द परिवेश की अभिव्यक्ति में विश्वसनीयता को शामिल करते हैं। लेखक सूत्र शैली के माध्यम से ज्ञान को प्रस्तुत करके भाषा को गागर में सागर भरने का माध्यम बनाता है। जैसे–समय सौदागर है। आदमी संघर्ष पर उतारू हो जाए तो लक्ष्मी कदमों पर आती है आदि।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि दलित कहानियों पर शिल्प की दृष्टि से जो आरोप लगते आए हैं सांभरिया जी की कहानियों पर वह आरोपण नहीं किया जा सकता। इनकी कहानियां विशिष्ट शिल्प में कहन की एक विशेष शैली में गुथी हुई है और इनकी कहानियों का सौंदर्यशास्त्र एक अलग समीक्षा की मांग भी करता है परंतु फिर भी विमर्श के रूप में सौंदर्य की अपेक्षा विचार और कथ्य अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है ।दलित विमर्श के विचार को सहजता व ईमानदारी के साथ सांभरिया जी की कहानियां अभिव्यक्त करती हैं ।दलित अस्मिता ,सम्मान और गौरव की अभिव्यक्ति जिस रूप में इनकी कहानियां प्रस्तुत करती है वह अतुलनीय है।

संदर्भ ग्रंथ–(1)संपादक डॉ.लोकेश कुमार गुप्ता–रत्न कुमार सांभरिया प्रतिनिधि कहानियां (2)रत्न कुमार सांभरिया–दलित समाज की कहानियां(3)बजरंग बिहारी–दलित साहित्य एक अंतर्यात्रा (4)रोहिणी अग्रवाल–सांप्रदायिकता से लड़ना एक रचनात्मक संघर्ष (5)रामचंद्र तिवारी–पक्षधर(त्रैमासिक) जनवरी–मार्च 2012

20.रत्नकुमार सांभरिया के नाटकों में सामाजिक यथार्थ

–डॉ. रत्ना कुशवाह
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी),
जवाहरलाल नेहरू राजकीय महा. पोर्ट ब्लेयर

साहित्य समाज का यथार्थ होता है। साहित्य में साहित्यकार के विचार सन्निहित होते हैं। डॉ. आम्बेडकर ने कहा है कि विचार ही है जो समाज में परिवर्तन लाते हैं। विचारों से ही समाज में क्रांति होती है। समाज में विचारों की ताकत सबसे बड़ी ताकत होती है, जिस समाज के पास परिवर्तनशील विचार होते हैं उसके बदलाव को कोई नहीं रोक सकता। रत्नकुमार सांभरिया के नाटक ऐसे ही क्रांतिकारी विचारों की उपज है। इक्कीसवीं सदी में जहाँ आज मनुष्य चाँद पर पहुँच रहा वहाँ दलित समाज का व्यक्ति शिक्षा से कोसो दूर है उसके पास जीवन व्यतीत करने के लिए जमीन का टुकड़ा तक नहीं है। सांभरिया जी ने अपने नाटकों में अतीत का वर्तमान पर पड़ने वाला प्रभाव दिखाने का प्रयास किया है। यह भोगा हुआ यथार्थ है जिसमें एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को हीन भावना से देखता है क्योंकि वह दलित समाज का है। कठोर और गन्दे काम करने के लिए उसे बाध्य किया जाता है। शिक्षा ग्रहण करने एवं स्वतंत्र व्यवसाय हेतु वह उपेक्षणीय माना जाता है। नाटककार ने 'वीमा', 'भभूल्या' और 'उजास' नामक तीन नाटक लिखे। उनके नाटकों में शोषण का भयावह यथार्थ और दलितों की पीड़ा को व्यक्त किया। वे एक प्रतिष्ठित साहित्यकार है। उनके नाटक की विषय–वस्तु नये युग का आवाहन करती है। सामंती व्यवस्था के द्वारा दलितों एवं उनकी स्त्रियों का शोषण कभी शारीरिक रूप से किया जाता है तो कभी मानसिक रूप से। उजास नाटक में 'संती' ईश्वर में आस्था और विश्वास रखती है। पर दलित होने के कारण मंदिर के बाहर से ही ईश्वर के हाथ जोड़ती है। वह मंदिर में प्रवेश नहीं कर सकती, क्योंकि हमारे आदर्शवादी विचार उसे मन्दिर में प्रवेश की अनुमति नहीं देते जिसे लेखक ने व्यंग्य के साथ प्रस्तुत किया है। संती रामानन्द से कहती है कि "मंदर बड़ी जात का है, महाराज ! भगवान भरस्ट हो जाएंगे, महाराज ! मंदर में नही जा सकते हैं, महाराज।"[1]

हिन्दू धर्म व्यवस्था ने दलितों की छाया और वाणी को अस्पृश्य माना है। वह मन्दिर के बाहर सफाई अवश्य कर सकता है पर अन्दर नहीं जा सकता। लोग जहाँ जूते–चप्पल उतार कर जाते हैं वहीं खड़ा होकर वह भगवान के दर्शन करे ये उसके लिए बाध्यता बना दी गई है। रामानन्द मंदिर के पुजारी सेवानन्द का

भाई है जिसे दलितों के प्रति सम्वेदना राजनीति में अपनी पैठ बनाने के लिए जाग्रत हो जाती है। वह संती के द्वारा दलितों को मंदिर के अन्दर जाने के लिए प्रोत्साहित करता है, पर सफल नहीं हो पाता। रामानन्द बाबा साहेब का नाम लेकर अपनी राजनीति दलितों के बीच सिद्ध करने के लिए उनके साथ उनकी बस्ती में सभा करता है पर उनका पानी तक हाथ नहीं लगाता जिसे हम इन पंक्तियों में देख सकते हैं "रामानन्द और उनके दोनों साथी मंच के चारों और पैनी निगाह निहारते हैं। साफ–सुथरे कपड़े पहने एक लड़का ट्रे में काँच के तीन गिलास रखे प्रवेश करता है। एक–एक की ओर ट्रे बढ़ाता है। रामानन्द और उनके दोनों साथी गर्दन मार कर पानी पीने से मना कर देते हैं।"[2] रामानन्द और उसके साथियों का जल ग्रहण न करना सामाजिक असमानता की ओर इंगित करता है। लेखक यहाँ स्वार्थी राजनीति का खुलासा करते हुए दिग्दर्शित करता है कि दलितों का जल ग्रहण नहीं होगा पर उनका रूपया–पैसा, महिलाओं के गहने सब हजम हो जाते हैं। उजास नाटक की राजनीति शोषण करने वाली है। जाति, धर्म, कुल सभी के नाम पर हमेशा दलितों का शोषण होता रहता है। रामानन्द का भाई सेवानन्द दलितों के प्रति अपने विचार व्यक्त करता हुआ कहता है कि "मैं पुजारी हूँ मंदिर का। यहाँ धर्म जेय है, जाति बड़ी है। धर्म की आड़ हमारा मान सम्मान है।"[3] वह मानता है कि छोटी जात में जमीर नहीं होता। वर्तमान में सामाजिक परिवर्तन होते हुए भी मनुवादिता की तुच्छ विचारधारा अपने स्थान पर बनी हुई है, जिसे हम नाटक के पात्र सेवानन्द के विचारों में देख सकते हैं "आप ही बताएँ जो लोग गंदगी साफ करते हैं। सिर पर मैला ढोते हैं। सुअर जैसा गंदा जानवर, जिसे गंदगी का कीड़ा कहते हैं, उसे पालते और खाते हैं, वे लोग मंदिर आएँ ? जिसके हाथ में झाड़ू होगी, वह दूर बैठेगा ही।"[4] इन पंक्तियों में धार्मिक अंधविश्वास और जातिवाद झलकता है। इस जातिवाद से मुक्ति के लिए नाटककार शिक्षा का महत्व बताता है, जिसका प्रतिनिधित्व दलित समाज का युवक 'कालिया' करता है। वह अपने लोगों को स्वर्ण वर्ग की राजनीति से बार–बार सचेत में करता है। अपने लोगों को समझाता है और उनके जीवन में 'उजाला' लाने का प्रयास करता है। वह अपने भाईयों से कहता है कि "घृणा का पात्र सम्मान का हकदार हुआ है कभी ? हम जी रहे है या नरक भोग रहे ? जिन लोगों ने गन्दे धन्धे छोड़े हैं क्या वे भूख से मर रहे हैं ? सबको रोजगार मिलेगा। वह सभी में आम्बेडकर के विचारों को फूंकता है।"[5] रामानन्द मन्दिर – प्रवेश के सपने दिखाकर वाल्मीकियों को सवर्णों से पिटवाता है पर स्वयं भागने का प्रयास करता है इसी बीच कालूसिंह उसकी पिटाई करता है। कालिया सभी में अम्बेडकर के विचारों को फूंकता है। निराशा में आशा की किरण दिखाई देती है। कालिया सभी को झाड़ू, पंजा, परात लाने को कहता है और अन्त में इन सभी का बहिष्कार करते हुए उसे जलाने के लिए प्रेरित करता है। चारों ओर होलिका दहन का दृश्य उपस्थित होता है। कालिया उन सभी का हितैषी नेता बन कर उभरता है वह राजनीति के बारे में सभी को समझाते हुए कहता है "सुनों राजनीति किसी की बपौती नहीं है। ना किसी जाति की ठेकेदारी है। बाबा साहब ने कहा है, राजनीति वह चाबी है जो विकास के सब ताले खोल देती है।"[6] सामंतवादी व्यवस्था के लोग सुनते हैं पर प्रत्युत्तर में बोलने वाला कोई नहीं है। दलितों के परिवर्तन की वाणी चारों ओर गूंजती है। इस नाटक में सामाजिक मूल्यों और राजनीति में बदलाव दृष्टिगत होता है। रत्नकुमार सांभरिया का नाटक 'वीमा' भी प्रबल इच्छाशक्ति वाले ज्योतिहीन दलित जमन वर्मा की कथा हमारे सामने प्रस्तुत करता है। 'वीमा' का घर से गायब हो जाना, जमन का उसे ढूंढना प्रबल इच्छाशक्ति का घोतक है। दिव्यांग जमन और वीमा का अलग–अलग जाति के होने के पश्चात भी वे दोनों प्रेम विवाह करते हैं। दोनों अपने अंधकारमय जीवन में प्रेम के उजास के साथ अपना परिवार चलाते हैं। पर वीमा का एक दिन अचानक घर पर नहीं मिलती है और जमन के घर का सामान भी घर से बाहर पड़ा हुआ है वह आश्चर्यचकित होकर रह जाता है "उसके चेहरे पर चिंता बढ़ जाती है। कलेजा उथल–पुथल होने लगता हैं।"[7] नेत्रहीन जमन, श्यामाजी के दोहरे चरित्र को उजागर करता है। वह श्यामाजी के बारे में कहता है कि "श्यामाजी का अँगोछा। यहाँ कैसे ? श्यामाजी बड़े ऊँचे खिलाड़ी हैं। सामान बाहर। दरवाजे पर दूसरा ताला अँगोछा यहाँ और वीमा गायब। ऐसा किया क्यों उन्होंने।"[8] जनम श्यामाजी, आका का चरित्र जान जाता है। जमन वीमा को खोजने का पूरा प्रयास करता है। जमन वीमा को वापस लाने के लिए सत्ता, पुलिस, मीडिया और सामाजिक संस्थाओं से टकराता है। पर देवत की समझदारी और जमन के दृढ़ संकल्प से सबका वास्तविक चेहरा खुल जाता है अंत में उन्हें हार माननी पडती है। वीमा और जमन का प्रेम विशुद्ध मानवीय धरातल पर टिका हैं। दोनों एक दूसरे में संवेदना के गहरे स्तर पर जुड़े हुए हैं। जहाँ "जाति, धर्म, ऊँच–नीच आदि की दीवार अपना अस्तित्व नहीं रखती।"[9] इन सभी घटनाओं की वजह 'वीमा' का उच्चकुल है। वह जातिवाद का शिकार होते है। नाटककार ने जमन की पीड़ा में इस जातिवाद, भेदभाव को बड़ी शिद्दत से अभिव्क्त किया है। देवत द्वारा आका की दुर्दशा जातिवाद पर प्रहार है जिसे वह जमन से कहता है "कमीज फट गई, उनकी।

धोती खुल गई, उनकी। धोती यहीं छोड़ भागे। यह रही तुम्हारे पैर के नीचे श्यामाजी के अँगोछे के पास।"[10] इस नाटक में लेखक ने जातिवाद से उत्पन्न विषमता तथा अन्यास को नकारा है। सामान्य परिस्थिति हो या विशिष्ट, अमीर हो या गरीब, ऊँच–नीच का भेदभाव नहीं सहेंगे। सामाजिक अव्यवस्थाओं का विरोध करेंगे जैसे जमन और देवत ने किया। जमन के विरोध में उसकी शारीरिक अक्षमता भी रूकावट नहीं बन पाई। वह नेत्रहीन होने के बाद भी अपने संघर्ष को पूर्णता की ओर ले जाता हैं।

रत्नकुमार सांभरिया का नाटक 'भभूल्या' में कुचबंदा समाज के धियानाराम के जीवन यथार्थ को प्रस्तुत किया गया है। वह खानाबदोश जाति कुचबंदा का है जो जीने के लिए निरंतर घूमते–फिरते रहते हैं, एक स्थान पर उनका बसेरा नहीं होता है, उन्हें कई बार चोर–अपराधी के रूप में संदेह से भी देखा जाता है। जिसे हम धियानाराम के व्यक्तव्य में देख सकते है "अरे भभूल्या, बदनसीब गरीब लोग है हम। कड़की और भूख साथ रहती हैं, हमारे। धूप में छाया की तरह और छाया में काया की तरह। हम धरती के लोग हैं, धरती के। दु:खों में डूबे, सुखों से दूर। हमारा घर–संसार कंधों पर चलता है, जहाँ रख दिया, बस जाता है। उठा लिया, चल देता है। हम धरती बिछाते हैं आकाश ओढ़ते हैं।एक देश में दो देश है, यहाँ। अपने ही देश में हम बेगाने हैं। वीराने हैं।"[11] इस प्रकार नाटक का आरंभ मानवीय संवेदना के साथ होता है। धियानाराम अपने एक रेबारी दोस्त मेवा के निश्छल प्रेम की निशानी बकरे को बचाने के लिए पुलिस के आतंक से जूझता रहता है। वह बकरा उसके लिए केवल पशु नहीं, वरन उसके एकाकी जीवन का संबल भी था। पर पुलिस की नजर में वह बकरा तरक्की का एक बड़ा कारक साबित हो सकता था। इसे विडम्बना कहा जाएगा की पंडित लोग दोनों पहर ईश्वर का ध्यान, करने पूजा–पाठ का ढोंग करते हैं और इन घूमन्तू जातियों से घृणा करते है लेकिन इनके हाथ का बना माँस (मीट) खाने में परहेज नहीं करते। धियानाराम इनकी आलोचना करते हुए कहता है कि "बड़ा लोग है न, बनावटी है पूरा। दोगला है एकदम। दो मुँहा। मुफ्तरवोर, हद दर्जा। नीयत देखो। छोटी जात की हाण्डी पका मीट खा लेगा, मटके का पानी काम में नहीं लेगा। वाह री जात। वाह री छुआछात ! बड़ा रहने का स्वाँग है, सब।"[12] दलित–समाज का व्यक्ति छोटी जाति का ही क्यों न हो फिर भी उसमें संवेदना होती है। पर ऊँची जात और सरकारी महकमे में काम करने वाला हेडकॉस्टेबल, एस.पी., एस.एच.ओ. सभी अपने कार्यक्षेत्रों में भ्रष्ट नजर आ रहे हैं। धियानाराम इन सभी की मानसिकता से संघर्ष करता हुआ अपने बकरे की जान बचाता है। पर उसके बदले में उसे अपनी उंगली काटनी पड़ती है। यह प्रसंग मन में घृणा का भाव उत्पन्न करता है। एक ओर प्रशासन 15 अगस्त को सूखा दिवस घोषित करता है तो दूसरी ओर वहीं के कर्मचारी शराब और मीट के प्रबंध में जूटे रहते हैं। वह सभी पात्र कानून व्यवस्था का उपहास उड़ाते नजर आते हैं। वही धियानाराम का कथन यथार्थ की अभिव्यक्ति करता है कि "अरे कुचबँदा हुआ तो क्या हुआ? छोटी जात हुआ तो क्या हुआ? गद्दार थोड़े हूँ मैं लोभ में आ जाऊँगा। अरे मैंने तो बेइमानी और नाइंसाफी को अपने ताई फटकने नहीं दिया है।"[13] इस तरह नाटक के अंत में पुलिस–व्यवस्था की दहशत और आतंक की खोज खबर लेने के साथ ही घुमन्तू समाज की जिजीविषा एवं जज्बे को देखा जा सकता है।

रत्नकुमार सांभरिया के तीनों नाटक की कथावस्तु अलग–अलग परिवेश को रूपायित करती है। समाज में असमानता शोषण, अत्याचार के विरूद्ध उनके पात्र आवाज उठाते हैं। असमानता के प्रति उनमें विद्रोह है, वहीं सम्मान की चेतना भी है। उनके नाटक दलित साहित्य के चिंतन की अमूल्य विरासत है। उनके हर पात्र सवर्णो की जाति विषयक मानसिकता को झकझोरते हुए दलित उद्धारक बाबा आम्बेडकर के विचारों को प्रस्तुत करते हैं। उनके नाटक दतिलों में जातीय स्वाभिमान को जाग्रत करने वाले हैं, तो दूसरी ओर अम्बेडकर का भारतीय समाज का निर्माण करने विषयक दृष्टिकोण को समृद्ध करते हैं। सांभरिया संवेदना में समर्थ तथा सशक्त चरित्रों का सृजन करते हैं। उजास का 'कालिया', भभूल्या का 'धियानाराम' और 'वीमा' का जमन जातिगत व्यवस्था के विरोधी है। साहस, मेहनत और संघर्ष का स्वर गुजांयमान है वे समाज की दशा और व्यवस्था में बदलाव लाने का प्रयास कर रहे हैं। ब्राह्मणवाद के चक्कर में फंसा हुआ दलित समाज अम्बेडकर के विचारों के साथ अग्रसर है। वह गुलामी की जंजीर से अपने आपको मुक्त करना चाहता है। असमानता उत्पन्न करने वाले धर्म को वह नकारता है। जिस कार्य के लिए समाज उन्हें उपेक्षा के भाव से देखता है वह कार्य उन्होंने त्याग दिया है। यह नाटक अन्याय और अत्याचार के विरोध में सामाजिक चेतना का प्रसार करते हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :– (1)वीमा, भभूल्या, उजास तीन नाटक–रत्नकुमार सांभरिया, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली–110053, सं.2020, पृ.167 (2)वहीं, पृ.176(3)वहीं, पृ.187(4)वहीं, पृ. 190(5)समाजद्रष्टा साहित्यकार रत्नकुमार सांभरिया भाग–2, डॉ.विवेक शंकर, दृष्टि प्रकाशन, प्रताप नगर, जयपुर–302033, सं.2020, पृ. सं.267(6)वीमा, भभूल्या, उजास तीन नाटक–रत्नकुमार सांभरिया, पृ.198(7)वहीं, पृ.21(8)वहीं, पृ.21(9)समाजद्रष्टा साहित्यकार रत्नकुमार सांभरिया भाग–, सं. डॉ. विवेक शंकर, पृ.228(10)वीमा, भभूल्या, उजास तीन नाटक – रत्नकुमार सांभरिया, पृ.88(11)वहीं, पृ.97(12)वहीं, पृ.158(13)वहीं, पृ.127

21.रत्नकुमार सांभरिया के नाटक 'वीमा' की समीक्षा

–डॉ. सुधा राजपूत
एसो.प्रोफेसर–शिक्षक–शिक्षा विभाग,
श्री वार्ष्णेय कॉलेज, अलीगढ़

सांभरिया जी ने दलित विमर्श की अनेक रचनाओं को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। उनकी अनेक रचनाओं में से एक 'वीमा' नाटक चर्चित और नवीन दृष्टिकोण के साथ निः शक्त जनों पर हो रहे जातिवाद को उजागर करता है। तथा निः शक्त होने के बावजूद सांभरिया जी के पात्र कहीं भी टूटते, निराश होते नहीं नजर आते हैं। इस संकल्पना को सत्यत्ता नि : शक्त पात्र जमन द्वारा प्राप्त होती है। जातिवाद के कारण संघर्ष और सफलता की नि : शक्त जमन अद्‌भुत मिसाल है, जो शायद ही कहीं और देखने को मिले।रत्नकुमार सांभरिया जी का नाटक 'विमा' दलित विमर्श के साथ–साथ विकलांग विमर्श की कसौटी पर खरा उतरता नज़र आता है। इस नाटक में रत्नकुमार सांभरिया जी के निः शक्त पात्र जमन को अपनी दलित जाति के कारण अनेक प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ता है। इसी प्रकार हमारे देश में भी जाति–पाँति और ऊँच–नीच के संस्कारों के विरोध में संघर्ष के बिना दलित वर्ग समाज में अपने लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर पाता है। भारत में जातिवाद के संदर्भ में जयप्रकाश कर्दम ने अपनी अनुभूति को प्रकट किया है – "जातिवाद रहेगा। समाज में विघटन और विध्देष रहेगा। समाज को प्रगतिशील बनाना है। जाति के जहर को मिटाना है, तो इन तथाकथित/धर्म ग्रंथों को आग लगानी होगी और/नकरना होगा। वर्णित उस ईश्वर को जो कर्मनुसार/फल देता है।" कहते हैं कि, मनुष्य की प्रबल इच्छा शक्ति किसी भी चीज की संभावना को पूरी कर सकने का सामर्थ्य रखती है। वीमा नाटक के माध्यम से रत्नकुमार सांभरिया जी एक प्रबल और दृढ़ व्यक्तित्व वाले ज्योतिहीन दलित जमन वर्मा की कथा को प्रकाश में लाए हैं। इस कथा में रत्नकुमार सांभरिया जी ने विकलांगों का संघर्ष, हौसला, स्वाभिमान, विश्वास, संवेदना और यथार्थ की आग में तप कर कुंदन हुए प्रेम को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है।रत्नकुमार सांभरिया जी का रचना संसार भी हृदय और बुद्धि के मेल से अपने समय के विभिन्न पक्षों का मूल्यांकन करने का प्रयास है। इनका साहित्य पाखंड, पीड़ा, विसंगति, उपेक्षा, प्रताड़ना, जातिभेद, धर्मभेद, दिखावा आदि के विरोध में संघर्ष करते हर दबे, कुचले, शोषित, पीड़ित के अंदर आत्मबल जगाने वाला है। वीमा नाटक लेखक की चर्चित कहानी 'सवांखे' पर आधारित है।इस कहानी की कथा निशक्त मुख्य पात्र जमन वर्मा द्वारा शुरू होती है। जमन वर्मा एक पढ़ा–लिखा नेत्रहीन अध्यापक है। और वीमा उच्च कुल की नेत्रहीन कन्या है। जिसे उसके परिवार वाले एक बोझ से अधिक कुछ नहीं समझते है। वीमा के घर वाले वीमा का विवाह एक निसंतान अधेड़ से करवाना चाहते हैं, जो वीमा को मंजूर नहीं होता है और वह घर से भाग जाती है। तभी एक मनचला युवक वीमा के साथ दुर्व्यवहार करना चाहता है। उसी समय जमन आकर उसकी रक्षा करता है और यह जानकर कि वह भी उसकी तरह निः शक्त हैजमन वीमा को अपने साथ ले जाता हैं और नेत्रहीन संस्था के चालक श्यामाजी से मुलाक़ात करवाता हैं। श्यामाजी ने ही जमन को नौकरी और रहने के लिए अपने ही स्कूल के ऊपर कमरा दिया हैं। जमन के अनुसार श्यामाजी उसे अपने बेटे की तरह देखता हैं। इसीलिए वह वीमा को श्यामाजी से मिलवाना चाहता हैं। श्यामाजी वीमा को देखकर उसे जमन को अपने साथ रखने के लिए कहता हैं। जमन उसे अपने घर ले आता है। जमन के घर आकर वीमा स्वंय को सुरक्षित महसूस करती है, और अपने विषय में जमन को बताती है – "हमारा खाता–पीता नामी–गिरामी घर है। जमीन है। माँ नहीं है तो क्या! बात है। दो भाई हैं। दोनों सर्विस में है। दो भावजें हैं। एक टीचर है। घर–परिवार में दो रोटियों के लिए हाथी का पेट बन गई मैं। आँखें नहीं तो क्या? जितना बनता था, करती थी। बर्तन भांडे धोना, बच्चों को नहलाना – धुलाना स्कूल भेजना।मेरी शादी एक अधेड़ से करना चाहते थे। वीमा की आपबीती सुन जमन उसे सांत्वना देता है। और वीमा जमन के व्यवहार से अत्याधिक प्रभावित हो जाती है।और वीमा जमन के व्यवहार से अत्याधिक प्रभावित हो जाती है। दलित जमन के व्यवहार और चरित्र को देखते हुए वीमा जमन से विवाह का निर्णय लेती है। विवाह से पहले वह अपनी दलित होने की सच्चाई को उसके सामने व्यक्त करता हैं। वीमा तो जात–पाँत से ऊपर हैं। **जमन**, "तुम ऊँची जात। मैं नीची जात। तुम सवर्ण होम मैं दलित हूँ। मन में ऊँच–नीच का भेद रहते गृहस्थी की गाड़ी नहीं चलती।" **वीमा**, "छोडो भी जमन! इतने पढ़े–लिखे होकर भी जात की काप में पाँव मार रहे हो। तुम मर्द हो, मैं औरत हूँ – दो जात। तुम नेत्रहीन, मैं नेत्रहीन – एक जात।" विवाह होने के बाद वीमा चार माह के पेट से हैं। एक दिन जमन वर्मा को पता चलता हैं कि घर पर ताला लगा हुआ है और वीमा घर पर नहीं है। वह अंदाजा लगाता हैं कि वह पेट से होने के कारण मइके गयी होगी। किन्तु बिन बतायें जाना उसे यह बात खलती है

वह श्यामाजी के पास जाता है और वीमा की बात कहता है किन्तु श्यामाजी उसे सामूहिक विवाह में किसी दूसरी लड़की से विवाह और पाँच सौ रूपये वेतन बढ़ाने की बात कहता है वह तलाक के कागजात पर हस्ताक्षर करने के लिए कहता है। जब जमन नहीं मानता तो श्यामाजी उसे जाति छुपाने का आरोप लगाता हैं। इस वक्त जमींदार और उसका लड़का वहीं पर बैठे हैं। श्यामाजी उसे स्कूल से निकाल देता हैं। लेकिन जमन वर्मा उनसे डरता नहीं। वह निडर होकर स्पष्ट कहता हैं, "मैं नेत्रहीन हूँ। कायर नहीं। विमा की खातिर मरने से भी नहीं डरूंगा मैं। ––वीमा को चौथा महीना है। अगर मेरी बीवी और होने वाले बच्चे के साथ कुछ हो गया तो कटघरे में होंगे आप।"जमन समझ जाता हैं कि श्यामाजी, जमींदार और उसका लड़का पहले से ही

वहाँ बैठे हुए हैं। जमन किसी से डरता नहीं हैं। वह किसी भी हालत में अपनी पत्नी वीमा को पाना चाहता हैं। वह वहाँ से हताश होकर निकल जाता हैं। वह ऑटोरिक्शा में सवार हो विकलांग संघ के अध्यक्ष एवं अपने मित्र देवतसिंह की ओर निकल पड़ता हैं। देवतसिंह को पत्नी वीमा के अपहरण, श्यामाजी एवं निशक्तजनों के आका, वीमा के ज़मींदार पिता एवं भाई का व्यवहार बताता हैं। देवतसिंह उसके साहस एवं विश्वास को बढ़ाते हुए पुलिस थाने में शिकायत दर्ज करने की बात करता हैं। देवतसिंह चौहान के दोनों पैर घुटने तक ही हैं। वह जमन वर्मा के साथ पुलिस थाने जाता हैं। थाने में शिकायत दर्ज की जाती हैं। किन्तु बाद में पता चलता हैं कि थानेदार ने एफ. आई.आर. दर्ज करवाकर ली ही नहीं वह तो वैसे ही टेबल पर पड़ी हुई हैं। जमन के पास यह एक ही मौका था। जिस कारण वह वीमा को प्राप्त कर सकता था। वह श्यामाजी, निशक्तजनों के आँका, थानेदार, पत्रकार, विकलांग संघ के अध्यक्ष देवतसिंह चौहान के पास जाता हैं। लेकिन चहुँ ओर से वह अपने आपको असफल पाता हैं। वीमा को पुनः पाने की जिद्द, उसका सपना सबकुछ उसके सामने धरा का धरा–सा लगता हैं। किन्तु उसका मित्र विकलांग संघ के अध्यक्ष देवतसिंह चौहान उसमें साहस, आशा, विश्वास को जगाता हैं। वह कहता हैं, "निःशक्त अपनी पर उतर आएँ तो लोहे की गेंद हैं। लोहे की गेंद को न किक मारी जा सकती है, न उसे उछाला जा सकता है।"

जमन वर्मा, देवतसिंह और अन्य विकलांगों के साथ निशक्तों के आका के कार्यालय के सामने धरना देता है। वह एक पैर पर खड़ा हो जाता है। पैर के नीचे श्यामाजी का गमछा दबाया हुआ है। निशक्तों के आका को कार्यालय में जाने से रोका जाता। इस खींचातानी में उसकी धोती निकल जाती है और वह धोती जमन के पैर के नीचे रखा जाता है। यह खबर शहर के सभी अख़बारों में सुर्खियाँ बनती हैं। यह समाचार सुनकर सभी विकलांग धरने में शामिल हो जाते हैं। इस का प्रभाव ऐसा पड़ता है कि डर के मारे वीमा को जमन को लौटा दी जाती है। इस नाट्य कथा के माध्यम से रत्नकुमार सांभरिया जी ने केवल निः शक्त का संघर्ष ही नहीं दिखाया है, वह इस कथा के माध्यम से समाज में फैली जाति व्यवस्था तथा सरकारी योजनाओं की धांधली, मीडिया का दोहरा चरित्र, पुलिस का रवैया इत्यादि से पाठकों को अवगत कराते हैं। जमन का संघर्ष किसी एक व्यक्ति से नहीं है पूरी सामाजिक व्यवस्था से है। उसके सम्मुख सभी शक्तिशाली है परंतु जमन कहीं भी हार मानता हुआ नहीं नजर आता है। इसे हम समाज की रूढ़िवादी सत्ता में दलित का बदलता स्वरूप कह सकते हैं इन सवादों के माध्यम से लेखक ने निशक्तो की विशेषता को उजागर किया है।इस नाट्य कथा के माध्यम से लेखक ने जातिवाद पर कड़ा प्रहार किया है। नाट्य कथा का नायक जमन अपने कर्तव्यों तथा सामाजिक सुधार को लेकर जागरूक नजर आता है। वह अपनी पत्नी के लिए अपनी सरकारी नौकरी तथा घर छोड़कर अपने कर्तव्य को पूर्ण करने का संकल्प लेता है। और जातिवाद पर इन शब्दों द्वारा प्रहार करता है और वीमा के विचार को समाज के सामने प्रस्तुत करता है – "वीमा ने कहा था, जाति नहीं, आदमी को इंसान होना चाहिए।जमन जातिवाद के विरोध में अपनी आवाज को हमेशा बुलंद रखता है।वीमा नाटक में रत्नकुमार सांभरिया जी ने समाज के पीड़ित वर्गों को जुबान प्रदान की है।

निष्कर्षत:रत्नकुमार सांभरिया जी ने वीमा नाटक के माध्यम से ज्योतिहीन दलित पात्र जमन का अपनी जाति को लेकर समाज में संघर्ष को उजागर किया है। और जमन निः शक्त है, परंतु वह अपने दृढ़ निश्चय के आगे शोषक वर्ग को अपने घुटने टेकने को मजबूर कर देता है। और समाज में दलित जाति के प्रति भेदभाव का डटकर सामना करता है और जमन अपने विचारों सोच और संघर्ष द्वारा जाति व्यवस्था तथा समाज की रूढ़िवादी नीतियों पर विजय प्राप्त कर वीमा को वापस पाता है। सांभरिया जीने यह नाटक निः शक्तों पर जातिवाद जैसे विषय को पाठकों के सम्मुख सफल कृति के रूप में प्रस्तुत किया है।सांभरिया जी ने वीमा नाटक को संघर्ष और बदलाव की नवीन दृष्टि से प्रस्तुत किया है, जिसके द्वारा पाठकों में एक नवीन दृष्टिकोण का प्रवाह होता है।

सांभरिया जी की कहानियाँ इस रूढ़ि और एकरसता को भी तोड़ती हैं। इनकी अधिकांश कहानियाँ दलित समाज की वर्तमान तस्वीर प्रस्तुत करती हैं। इसमें दलितों के शोषण के दृश्य तो हैं, लेकिन उससे कहीं ज़्यादा दलित प्रतिरोध और सामाजिक परिवर्तन में दलित समाज की आस्था के दृश्य हैं। इसलिए इनकी कहानियाँ पाठकों में दलितों के प्रति दया या सहानुभूति नहीं जगातीं, बल्कि उनके संघर्षों और उनकी सफलताओं का साझीदार बनाती हैं। सांभरिया जी की कहानियाँ दरअसल दलित समाज की आकांक्षाओं के यथार्थ में रूपान्तरण को चित्रित करने वाली कहानियाँ हैं।

सन्दर्भ–1, रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियाँ (कहानी संग्रह), अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, 2011,(2)https://www.setumag.com
(3) https:/www.exoticindiart.com

22.रत्नकुमार सांभरिया जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विश्लेषणात्मक अध्ययन

–डॉ0 शशिबाला त्रिवेदी
(एसोसिएट प्रोफेसर)
शिक्षक–शिक्षा विभाग श्री **वार्ष्णेय** महाविद्यालय, अलीगढ़

इक्कीसवीं सदी के जाने माने साहित्यकारों में प्रमुख स्थान प्राप्त करने वाले रत्नकुमार सांभरिया जी के जीवन का लक्ष्य एवं साधना मानवीय समाज में नवचेतना का संचार करना है, जिसकी पूर्ति हेतु उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन साहित्य लेखन की त्रिवेणी में ही समर्पित कर दिया है। सांभरिया जी के व्यक्तिगत जीवन को उनके कृतित्व जीवन से अलग नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उनके जीवन की वास्तविकता ही उनके साहित्यिक जीवन का आधार है। रत्नकुमार सांभरिया जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का बोध करने के लिए हमें उनके सांसारिक जीवन के प्रत्येक पहलू, रचनात्मक प्रवृत्ति व कौशल तथा प्रकाशित साहित्य जैसे प्रमुख बिन्दुओं पर विचार करना होगा।

रत्नकुमार सांभरिया जी का जीवन परिचयः

प्रारंभिक जीवनः हिंदी दलित कहानी के प्रबल पक्षधर रत्नकुमार सांभरिया जी का जन्म हरियाणा रेवाड़ी तहसील के भाड़ावास गाँव में 6 जनवरी, 1956 को हुआ था। दो बहनों के बाद इनके जन्म पर परिवार में अपार खुशी का माहौल था। कहानीकार रत्नकुमार सांभरिया का शैशव, बचपन और किशोरावस्था अपनी जन्म स्थली गाँव भाड़ावास में ही व्यतीत हुये। चंचल व चपल स्वभाव के कारण ये परिवार के सभी सदस्यों के बहुत दुलारे थे। माता जुगरी देवी प्यार से इनको 'रत्न' कहकर पुकारती थी।कथाकार सांभरिया का प्रारम्भिक जीवन अनेक विरोधाभासों से भरा हुआ था। जिसकी छाप इनकी आत्मकथा **'शब्द बदलते युग'** में देखने को मिलती है। **लेखक भावुक हो कर लिखते है कि** "अभावों के दिन आज भी आंखों में आँसू ले आते हैं। वे दो साल फाका में ही गुजरे। जैसे–तैसे मैंने दसवीं पास कर ली थी।" किन्तु इन विपरीत परिस्थितियों में भी उन्होंने जीवन में कभी हार नहीं मानी। मानवता का सर्वोच्च मूल्य सहानुभूति को साहित्य की आत्मा मानते हुए उन्होंने अपने पूर्व व समकालीन साहित्यकारों का तर्कसंगत रूप में खुलकर विरोध किया, जो हमें उनकी कृति **'मुंशी प्रेमचन्द और दलित समाज'** में बखूबी देखने को मिलता है। आपके साहित्य रचनाओं का समय, समाज और मानवीयता के साथ जुड़े होने के कारण आम आदमी को पढ़ कर सुकून मिलता है। बाल मनोविज्ञान पर आधारित **मुन्सी प्रेमचन्द** की **'ईदगाह'** कहानी ने भी आपके बालमन पर गहरा प्रभाव डाला है। **सांभरिया जी के शब्दों में** "ईदगाह कहानी ने जहाँ मेरे भीतर श्रेष्ठ, आदर्श और कर्तव्यपरायणता की पौध लगाई थी वहीं **'एकलव्य'** नाटक ने नफरत, अश्रद्धा और अविश्वास के बीज डाल दिये।" कथाकार की दृष्टि में बालक हामिद का अपनी बूढ़ी दादी अमीना के प्रति अति श्रद्धा भाव अतुलनीय है।अंबेडकरवादी विचारधारा से प्रभावित सांभरिया जी साहित्य में तटस्थ रहकर पूर्वाग्रहों को स्वीकार न करते हुए अपनी मान्यताओं एवं सत्य–असत्य का चित्रण पूरी ईमानदारी के साथ अभिव्यक्त करते हैं। वह अपनी स्पष्टवादिता से सत्य को उद्घाटित करते हुए नजर आते हैं। सरलता, सहजता, विनम्रता एवं सहयोग की भावना आदि स्वभावगत गुणों के साथ–साथ स्वाभिमान, संघर्षशीलता, जीवटता, विद्रोह एवं क्रांति के भाव उनके व्यक्तित्व को एक अलग पहचान देते हैं।

पारिवारिक पृष्ठभूमिः सांभरिया जी के पिताजी श्री सिंहराम सांभरिया गरीब खेतिहर मजदूर थे। यही कारण है कि आपका लालन–पालन समृद्ध एवं सुखद पारिवारिक परिवेश में न होकर गरीब परिवार में हुआ। गरीबी से जूझते हुए भी आपके पिता जी ने कभी अपने स्वाभिमान और खुद्दारी से समझौता नहीं किया। श्रमशीलता, ईमानदारी, कर्तव्यपरायणता, सहजता तथा सजगता के भाव उनके हृदय में कूट–कूटकर भरे हुए थे। आपकी माताजी श्रीमती जुगरी देवी धर्मपरायण एवं कुशल गृहिणी व भारतीय संस्कृति की परिचायक हस्तकला **"मांडना"** में निपुण थी। लेखक अपनी माँ की इस हस्तकला से काफी प्रभावित एवं अभिभूत रहे हैं। माँ आपको बचपन से ही प्यार में **'रत्न'** कहकर पुकारती थी। वही 'रत्न' आज रत्नकुमार सांभरिया के नाम से हिन्दी साहित्य जगत के प्रतिष्ठित साहित्यकार के रूप में जाने जाते हैं। इन्होंने अपना कहानी संग्रह **'हुकम की दुग्गी'** पिताजी को समर्पित किया है तथा माता श्रीमती जुगरी देवी को **'बांग तथा अन्य लघुकथा'** पुस्तक अर्पित की है।

शैक्षिक पृष्ठभूमिः कथाकार रत्नकुमार सांभरिया की प्रारंभिक शिक्षा की शुरुआत सन् 1961 में अपने गाँव से ही हुई। आर्थिक तंगी के कारण लेखक की औपचारिक शिक्षा दीक्षा बहुत अच्छी नहीं रही। प्राथमिक शिक्षा पूर्ण होने के उपरान्त आपका नौवीं कक्षा में अहीर हायर सैकेण्डरी स्कूल रेवाड़ी में दाखिला कराया गया। सन् 1976 में इन्होंने अहीर महाविद्यालय रेवाड़ी से बी.ए. की डिग्री प्राप्त की। कालेज शिक्षा के दौरान ही आपकी मुलाकात डॉ. रामपत यादव जी से हुई। लेखक के प्रेरणास्रोत रहे **डॉ. रामपत यादव** जी जो गृह–पत्रिका में संपादक थे, उन्होंने

कहा **"आप में प्रतिभा है आपकी हिन्दी अच्छी है। वर्तनी की अशुद्धियाँ नहीं हैं। कहानी लिखकर देखो।"** इस प्रकार वहीं से इन्हें लिखने की प्रेरणा मिली। अपनी सृजनात्मक सोच और प्रतिभा के कारण ही आपको कालेज की साहित्य–समिति के एक सदस्य के रूप में चुना गया। यादव जी के दिशानिर्देशन में ही आपकी साहित्यिक सृजनात्मकता को पंख लगे साथ ही कालेज पत्रिका **'फॅनिक्स'** ने आपको और ऊर्जा प्रदान की। **सांभरिया जी** ने स्वयं इस विषय में स्पष्ट किया है कि "फॅनिक्स' के एक चौथाई पन्नों पर मैं ही छाया रहता था। कुछ रचनाएं मेरे नाम से छपती थी और कुछ रचनाएं मेरे एक साथी के नाम से प्रकाशित होती थी। 'फॅनिक्स' के माध्यम से मैं कालेज भर में एक छात्र लेखक के रूप में जाना जाने लगा था।" लेखक की उक्त पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि प्रारम्भ से ही आपकी साहित्य में गहरी रुचि रही है। सन् 1978 ई. में आपने सतीश पब्लिक कालेज रेवाड़ी से बी.एड. की परीक्षा उत्तीर्ण की। 1986 में आप ने राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से बी.जे.एम.सी पत्रकारिता में डिप्लोमा कोर्स किया। गरीबी से दो–दो हाथ करते हुए आपने कभी भी हार नहीं मानी और अपने अध्ययन को अनवरत निर्बाध रूप से जारी रखा। जिन विपरीत परिस्थितियों को आपने अपने बौद्धिक–कौशल एवं शिक्षा के द्वारा अनुकूल बनाया है वह भावी पीढ़ी के लिए अनुकरणीय एवं प्रेरणा स्रोत के रूप में हैं।

वैवाहिक जीवनः 31 मई, 1974 को लेखक का विवाह ग्रामीण परिवेश के अनुसार श्रीमती रामरती देवी के साथ सम्पन्न हुआ। वे स्वभाव से विनम्र, कर्तव्यपरायण और धार्मिक विचारधारा वाली कुशल गृहिणी हैं। रामरती देवी अशिक्षित थी, किन्तु आपके व बच्चों के प्रयासों तथा खुद की लगन के कारण आज वे अच्छा पढ़ना जानती हैं। रामरती देवी के साथ सांभरिया जी का दाम्पत्य जीवन सफल रहा। उन्होंने घर का सारा प्रबन्धन स्वयं अपने ऊपर लेते हुए आप पर कभी भी घरेलू चिन्ताओं का भार नहीं डाला। आपके साहित्य साधना के मार्ग में वे कभी रूकावट नहीं बनी। आपको दो पुत्र और एक पुत्री संतान रूप में प्राप्त हुये जिनका विवाह हो चुका है। बच्चों में भी आपके व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक देखने को मिलती है। यद्यपि आपका जन्म हरियाणा में हुआ, किन्तु पिछले कई दशकों से आप राजस्थान में निवास कर रहे हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि आप का गृहस्थ एवं वैवाहिक जीवन सुखमय व्यतीत हो रहा है।

आजीविकाः कहानीकार सांभरिया जी की आजीविका के विषय में न लिखने पर उनके जीवन का एक अंश अछूता रह जायेगा। सन् 1980 के शुरूआत में इनकी नियुक्ति प्राइमरी शिक्षक के रूप में उदयपुर की धरियावद पंचायत समिति की राजकीय प्राथमिक पाठशाला, गदवास में हुई। सालों से बंद पड़ी उस पाठशाला को इन्होंने ही पुनर्जीवित किया। यही रहते हुए आपने शिक्षा विभाग की **'शिविरा'** पत्रिका में कई लेख लिखे। जिनमें से एक लेख **'आदिवासी क्षेत्र की एक अध्यापकीय शाला'** ने इनकी अस्थायी नौकरी छीन ली। जिसमें आपका दोष सिर्फ इतना ही था कि आपने लेख में आदिवासी क्षेत्र की पाठशालाओं का यथार्थ चित्र उकेर कर वहाँ के शैक्षणिक स्तर की वास्तविकता को सभी के समक्ष प्रकट कर दिया था। वहाँ के वर्चस्ववादी लोग आदिवासियों की यथास्थिति के पक्षधर थे। वह इस घटना के बाद **अपने मनोभावों को व्यक्त करते हुए कहते** हैं **'आ बैल मुझे मार' की कहावत मुझे रह–रहकर याद आती। वह लेख मुझे बैरी सा चुभता रहा।"** सन् 1984 में कनिष्ठ लेखाकार के रूप में जयपुर में इनकी नियुक्ति हुई। सन् 1990 तक इस पद पर कार्यरत रहने के पश्चात आकाशवाणी के जोधपुर और जयपुर केन्द्रों पर हिन्दी अनुवादक रहे। जुलाई 1996 को राजस्थान सरकार में जनसम्पर्क अधिकारी बने। वर्तमान में सांभरिया जी राजस्थान सूचना एवं जनसम्पर्क सेवा के वरिष्ठ अधिकारी के पद से सेवानिवृत्त हो चुके हैं।

व्यक्तित्वः किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व के अन्तर्गत शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और भावात्मक पक्षों को सम्मिलित किया जाता है। यहाँ आंचलिक **उपन्यासकार फणीश्वरनाथ रेणु का कथन उल्लेखनीय** है "साहित्य का आडम्बर और उसका प्रदर्शन चाहे हमें जितना भी आकृष्ट कर लेता हो, लेकिन निखालिस व्यक्तित्व से ज्यादा आकर्षक कोई भी दूसरी चीज नहीं हो सकती। सुगमता और सरलता का भी एक पृथक आनन्द होता है, एक पृथक–सी तन्मयता जिसमें व्यक्ति को बाह्य आघातों–व्याघातों की कभी भी कोई चिंता नहीं सताती है।" यह सही है कि रचनाकार का व्यक्तित्व अपनी रचना के माध्यम से साकार होकर बोलता है, लेकिन उसके व्यक्तित्व के बहुत से ऐसे पक्ष होते हैं, जिनका प्रकाशन कृतियों द्वारा नहीं हो पाता है, अतः रचनाकार के जीवनक्रम और विशिष्ट घटनाओं पर दृष्टिपात करना आवश्यक हो जाता है।

कहानीकार रत्नकुमार सांभरिया के व्यक्तित्व के विषय में यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि उनके विषय में जितना कहा जाए उतना कम है। आपका ऐसा व्यक्तित्व हैं, जिसने कबीर की लाठी को अपने हाथ में थामकर संघर्ष के कांटों भरे मार्ग का राही बनना स्वीकार किया। आपका साहित्य भी स्वयं इस बात का साक्षी है, जो अपने सृजन रूपी दीपक से समाज को प्रकाशित

करता है। लेकिन इतना सब होने पर भी आपने अपनी पीड़ा का कभी भी प्रदर्शन नहीं किया और न ही दूसरों पर उसे कभी आरोपित करने की चेष्टा की। **'चैखव' ने कहा था**– "कुछ लोग जीवन में बहुत भोगते सहते हैं– ऐसे आदमी ऊपर से बहुत हल्के और हँसमुख दिखाई देते हैं। वे अपनी पीड़ा दूसरों पर नहीं थोपते, क्योंकि उनकी शालीनता उन्हें अपनी पीड़ा का प्रदर्शन करने से रोकती है।" आप **शालीन** व्यक्ति हैं। **जीवन की चेतना** और **धरती की करुणा** जिसके हृदय में होगी वही सही मायने में समाज का प्रतिनिधित्व कर सकता है। ये दोनों गुण आपके जीवन के अभिन्न अंग हैं। कहानीकार रत्नकुमार सांभरिया आकर्षक व्यक्तित्व के धनी है। आपका बाह्य स्वरूप सजीवता उपस्थित करने वाला है।

अतः कहा जा सकता है कि विचारों की सरल एवं सहज अभिव्यक्ति आप को 'रत्न' के समान बनाती है। आपका व्यक्तित्व **समन्वयकारी** है, जिसमें नगर और ग्रामीण जीवन का, बुद्धिजीवी लेखक और श्रमजीवी कृषक का, क्रान्तिकारी योद्धा और भावुक संत हृदय का, पुरूषोचित वीरता और नारीजन्य सहजता का तथा भोगी और त्यागी कर्मठ पुरुष का अद्भुत समन्वय है। लेखक ऊपर से तो एक साधारण इंसान हैं, परन्तु उनके अंतर्मन में महामानव विराजमान हैं। जिन्होंने लोभ और लाभ की राजनीति से मुक्त होकर हृदय की वेदना और कसक से पीड़ित हो सृजन हेतु लेखनी उठाई, जो सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की स्थापना के लिए संघर्षरत है। लेखक के व्यक्तित्व को परखने, समझने के लिए हमें अग्रांकित बिन्दुओं पर विचार करना होगा।

जहाँ तक रत्नकुमार सांभरिया के **स्वभाव** की बात है वे स्वभाव से शांत, चित्त से प्रसन्न, शरीर से सक्रिय, सोच से सकारात्मक, मन से स्वाभिमानी, व्यवहार से सहयोगी और भावना से आत्मीय व्यक्तित्व के धनी है। जिस प्रकार उनका व्यक्तित्व सरल व सहज है वैसे ही उनका रहन–सहन व खान–पान भी सरल–साधारण है। खान–पान के मामले में परिवार की पसन्द उनकी पसन्द है। खाने में वे सात्विक भोजन को महत्व देते है, लेकिन जब मित्रों के साथ बैठते हैं तो किसी पार्टी से परहेज भी नहीं करते। इस प्रकार खान–पान, रहन–सहन और वेशभूषा के मामले में आप सादगी में विश्वास रखते हैं।

आत्मीयता और सहयोगात्मकता की भावना आपके व्यक्तित्व में चार चाँद लगाती हैं। आपका यही व्यक्तित्व आपके साहित्य में भी अभिव्यक्त हुआ है। किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में समाज एवं परिवार की अहम भूमिका होती है। प्रायः यह देखा जाता है कि प्रतिकूल परिस्थितियों में पलने वाला व्यक्तित्व संघर्षशील होता है। यही **संघर्षशीलता** का गुण आपके व्यक्तित्व में प्रारंभिक जीवन से ही देखने को मिलता है। आपके द्वारा भोगी हुई पीड़ा ने ही आपको आमजन का सहयोगी तथा सामान्य जन का हितैषी बना दिया है। जिसकी वकालत आप अपने लेखन में करते हैं।

आप के व्यक्तित्व की एक अन्यतम विशेषता है– **आत्मीयता की भावना**। आपसे मिलने पर ऐसा लगता है कि किसी परिचित या अपने परिवार के सदस्य से मिल रहें है। वरिष्ठ अधिकारी होते हुये अपनी व्यस्तता में भी समय निकाल कर नवागन्तुक से सहर्ष मिलते हैं जिसे वह व्यक्ति अपना सौभाग्य समझता है। शोधार्थियों के प्रति आपकी विशेष कृपा रहती है। उनको आप न केवल मानसिक तौर पर प्रेरित करते हैं, बल्कि अपनी सृजन–सामग्री का पूरा संकलन मुफ्त में उपलब्ध करवाते हैं। जो आपके **सहयोगात्मक व्यक्तित्व एवं आत्मीयता की भावना** को दर्शाता है।

कर्मठता, जीवटता, भावुकता, निरभिमानिता, निश्चलता, बुद्धि और कौशल–साहसिकता इत्यादि अनेक ऐसे गुण हैं जो आपके व्यक्तित्व को अलग पहचान देते हैं। आप अपने इन्हीं गुणों के कारण राष्ट्र व समाज के प्रति दायित्व बोध और मानवोत्थान से जुड़े कार्यों की वजह से सदा ही याद किए जायेंगे। आपके जीवन का प्रत्येक पल साहित्यमय है। उनके सृजन का उद्देश्य सामाजिक विकृतियों और विषमताओं से जन–सामान्य को अवगत करा कर सामाजिक चेतना जाग्रत करना है। उनके लिए साहित्य, कला के लिए नहीं, बल्कि मनुष्य के लिए है, चेतना के लिए है। उनका समस्त साहित्य चेतना का पर्याय है। आप भाग्यवाद में विश्वास न कर कर्म क्षेत्र में विश्वास करते हैं।

कथा–साहित्य के क्षेत्र में आप एक ऐसे हस्ताक्षर हैं, जिन्होंने अपने कथा साहित्य के माध्यम से हमेशा मानव जीवन की बुनियादी समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित किया। आप में कबीर पंथ, मार्क्सवादी सोच और अम्बेडकरवादी विचारधाराओं की त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है। छात्र जीवन से ही आप पर भारत रत्न डॉ. अम्बेडकर के जीवन व सिद्धांतों का अमिट प्रभाव पड़ा। डॉ. भीमराव अम्बेडकर के प्रति आप की अगाध श्रद्धा रही है। आपके अनुसार आस्था और विश्वास दोनों ही बातें धर्म से जुड़ी हैं। आप धर्म में अन्धविश्वास व आडम्बर को बिल्कुल नहीं मानते है। धार्मिक आडम्बरों की अपेक्षा आपकी श्रद्धा महापुरुषों में है। क्योंकि इन्होंने देश और समाज को आगे बढ़ाने के लिए अपना योगदान दिया। अछूतोद्धार के लिए आन्दोलन चलाया समाज के वंचित वर्ग को मुख्य धारा में लाने के लिए अपना जीवन लगा

दिया। आप सभी धर्मों में निहित मानवतावादी मूल्यों का समर्थ करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आपका व्यक्तित्व एक खुली किताब की तरह है। आपके व्यक्तित्व की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि वह किसी एक छोर से बँधा हुआ नहीं है, वरन् गंगा की तरह निर्मल प्रवाहमान और तमाम कमजोरियों को समेटे सागर की भाँति विशाल है, जिसमें मानवीय जीवन के नाना रंगों की छवि देखी जा सकती है। चेहरे पर उत्साह और पीड़ित वर्ग की व्यथा के प्रति सचेत ग्रामीण तथा शहरी संस्कृति का मिलाजुला रूप युक्त व्यक्तित्व का नाम ही दलित साहित्यकार रत्नकुमार सांभरिया है।

रत्नकुमार सांभरिया जी का रचनात्मक व्यक्तित्वःलोक जीवन से प्रेरणा लेकर सामाजिक संघर्ष की नवीन चेतना देने वाले कथाकार के रूप में रत्नकुमार सांभरिया जी विख्यात हुए। किसी भी रचनाकार की तत्कालीन परिस्थितियों का उसके साहित्य पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार**, ''जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।'' आप साहित्य क्षेत्र में ज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र से न आकर सीधे जीवन व अनुभव से आये हैं और इसमें कोई सन्देह नहीं कि सीधे जीवन से आये लेखक अधिक सशक्त होते हैं। प्रायः संसार के उच्चकोटि के लेखकों ने और साहित्यकारों ने अपना लेखन जीवन के दौर से ही प्रारम्भ किया है। गोर्की और टालस्टाय, शरत् और प्रेमचन्द आदि महान सभी साहित्यकारों ने जीवन पहले प्रारम्भ किया, उसकी तमाम कठिनाइयों को झेलते हुए उसी विषय में लिखना प्रारम्भ किया और जीवन से जुड़ा हुआ उच्चकोटि का साहित्य दिया। इनका लेखन भी आत्मानुभूति एवं सामान्यजन की पीड़ा की अभिव्यक्ति है। संवेदना ही सृजन का मूल आधार होती है। बिना संवेदना के सृजन कार्य संभव नहीं होता, कोई भी सजग सहृदय साहित्यकार परिवेश, वातावरण व देशकाल से हटकर सृजन कर्म नहीं कर पाता है।'' आपको साहित्यिक सृजन की प्रेरणा डॉ. रामपत यादव जी से मिली, जिनको आपने अपना कहानी संग्रह **"काल तथा अन्य कहानियाँ"** अर्पित करते हुए श्रद्धांजलि अर्पित की। इन्होंने कालेज की पत्रिका 'फॅनिक्स' के मुख्य छात्र–लेखक के रूप में पहचान बनाने से लेकर आज तक सृजन का यह झरना लघुकथा, कहानी, एकांकी, नाटक, समीक्षा आदि रूपों में अनवरत बह रहा है।

आपका साहित्यिक चिन्तन मार्क्सवाद और अम्बेडकरवाद की विचारधाराओं से प्रेरित है। आपके साहित्यिक केन्द्र में 'ग्रामीण अंचल' हैं। लेखक बदलते हुए सामाजिक सन्दर्भों के प्रति भी पूर्णरूपेण जागरूक है। रत्नकुमार सांभरिया जैसे कथाकार की साहित्य–साधना का प्रारम्भ लघु–कथाओं से हुआ। जो आज विविध रूपों में विभक्त हो गया है। आप हिन्दी के उन रचनाकारों की श्रेणी में आते हैं जिन्होंने परिमाण की दृष्टि से कम लिखा, लेकिन इनका प्रत्येक शब्द अनुभूति की तराजू से तौलकर निकला है। इनका साहित्य पाखंड, पीड़ा, विसंगति, उपेक्षा, प्रताड़ना, जातिभेद, धर्मभेद, दिखावा आदि के विरोध में संघर्ष करते हर दबे, कुचले, शोषित, पीड़ित के अंदर आत्मबल जगाने वाला है। हिन्दी कथा–साहित्य में आपका आगमन ज्वालामुखी की तरह हुआ और आपने अनेक शिखरों का स्पर्श किया। इस प्रकार आपके सम्पूर्ण कृतित्व का विवेचन समग्र रूप में आगे किया जा रहा है।

रत्नकुमार सांभरिया जी की प्रकाशित पुस्तकें: भारतीय जाति प्रथा के अस्तित्व ने सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक आदि जीवन पक्षों को जिस तरह प्रभावित किया है वह किसी से छिपा नहीं है। साहित्य भी इससे अछूता नहीं है। इसी कड़ी में सांभरिया जी ने दलित विमर्श की अनेक रचनाओं को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। ग्रामीण जीवन के चितेरे कथाकार एवं कई भाषाओं के जानकार सांभरिया जी ने करीब 250 कहानियों सहित लघु कथाएं, पुस्तक समीक्षाएं और कई आलेख लिखे, जो कई पत्र पत्रिकाओं में समय–समय पर प्रकाशित होते रहे हैं। इनकी पुस्तकों का अंग्रेजी में भी अनुवाद हो चुका है। आपके प्रसिद्ध कहानी संग्रहों में **'हुक्म की दुग्गी'** एवं **'एयर गन का घोड़ा'** आदि काफी प्रसिद्ध रही। आपकी कई लघु कथा संग्रह भी प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी एकांकी संग्रह समाज की नाक, नाटक विमा, उजास व अलोचात्मक कृति सहित मुंशी प्रेमचंद व दलित समाज आदि भी चर्चित रही। 'मैं जीती' कहानी पर टेलीफिल्म बनने के साथ–साथ इनकी कहानियों एवं लघुकथाओं का रेडियों नाटक रुपांतरण भी समय–समय पर प्रसारित होता रहा हैं। कई विश्वविद्यालयों के पाठयक्रम में भी आपकी कहानियां पढाई जाती है। इसी कड़ी में प्रकाशित पुस्तकों का विवरण निम्नांकित है–

कहानियाँ: हिन्दी साहित्य में जिन कथाकारों ने अपने चिन्तन और अनुभवों को कहानी के रूप में पिरोया है, उनमें कथाकार रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों की मूल संवेदना साधारण जन को समर्पित हैं। आपकी कहानियों में ग्रामीण परिवेश की समस्याएँ, दुख–दर्द, लाचारी, अभाव, विवशता भले ही समाहित हो, किंतु पात्र जीवंत व संघर्ष करने वाले हैं। **'हुकम की दुग्गी'** आपका

प्रथम कहानी संग्रह है। जिसमें समाज में व्याप्त अशिक्षा के कारण उनके सामाजिक, राजनीतिक और शारीरिक शोषण से जुड़ी पन्द्रह कहानियाँ संगृहीत है। इनमें सामन्तवाद विरोधी विचारधारा के साथ–साथ वर्ण–व्यवस्था पर करारा प्रहार किया गया है।**'काल तथा अन्य कहानियाँ'** बारह कहानियों का संग्रह है। इस संग्रह का प्रकाशन राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर के आर्थिक सहयोग से हुआ है। अग्रज साहित्यकार भगवान अटलानी ने सृजन कार्य में सदैव आपका मार्गदर्शन कर प्रोत्साहित किया है। इस बात को सांभरिया जी ने स्वयं **'कहानी का रूपबन्ध'** में स्वीकारा हैं। **'खेत तथा अन्य कहानियाँ'** उनका अन्य कहानी संग्रह है। इस कहानी–संग्रह में संकलित अधिकांश कहानियों की पृष्ठभूमि ग्रामीण है। सभी कहानियों के पात्र अपने अधिकारों एवं अस्मिता के प्रति अत्यन्त सचेत व जागरूक हैं। भाषा आँचलिक शब्दावली युक्त मुहावरेदार है। छोटे–छोटे कथन भाषा पर आपकी पकड़ को दर्शाते हैं। संवाद चुटीले व सटीक हैं। भाषा का पैनापन कहानियों को अत्यन्त प्रभावशाली बनाता है। संवाद इतने सहज व सरल रूप में आये हैं, जो अन्तर्मन को स्पर्श करते हैं। **'दलित समाज की कहानियाँ'** आपका अन्य कहानी संग्रह है। यद्यपि रचनाकार की मातृभूमि हरियाणा है, किन्तु विगत पैंतीस वर्षों से आप राजस्थान में निवास कर रहे हैं। जिसके कारण हरियाणा तथा राजस्थान की सामाजिक–सांस्कृतिक रूपों का मिला–जुला रूप उनकी दलित कही जाने वाली जातियों के जीवन के अनुभव, समस्याएँ, दैनिक संघर्ष व घटनाएँ भी उनकी लेखनी का माध्यम बनती हैं। इन कहानियों के पाठक को सहज ही इस बात का अंदाजा हो जाता है कि लेखक ने अपने आस–पास घटने वाली सामाजिक घटनाओं का सूक्ष्म निरीक्षण–परीक्षण किया है। ये कहानियाँ अलग–अलग विषयों पर होते हुये भी हमारे समक्ष एक परिचित रचना संसार को प्रस्तुत करती हैं।

लघुकथायें: आज साहित्य के क्षेत्र में 'लघुकथा' महत्त्वपूर्ण विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है। अपने संक्षिप्त कलेवर तथा भावों की गहराई के कारण इस विधा ने गत दो दशकों में ही पाठकों के हृदय में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। सांभरिया जी के दो लघुकथा संग्रह **'बांग और अन्य लघुकथाएँ'** तथा **'प्रतिनिधि लघुकथा शतक'** प्रकाशित हो चुके हैं। 'बांग तथा अन्य लघुकथाएँ' संग्रह का प्रकाशन भी राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर के आर्थिक सहयोग से हुआ है। प्रथम संस्करण सन् 1996 में निकला। साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं में भी आपकी लघुकथाएँ प्रकाशित होती रहती हैं। आपकी अनुभूति मार्मिक और अन्तर्मन को छूने वाली है, जो विविधात्मकता के साथ आपकी लघुकथाओं में व्यक्त हुई है। दोनों संग्रहों में संकलित लघुकथाओं को अध्ययन की सुविधा और कथन को ठीक प्रकार समझने के लिए अग्र भागों में बाँटा जा सकता है। यथा आमजन से जुड़ी लघुकथाएँ, प्रतीकात्मक लघुकथाएँ, आर्थिक विषमता को व्यक्त करती लघुकथाएँ, भ्रष्ट राजनीति से जुड़ी लघुकथाएँ, पशु–पक्षियों के माध्यम से प्रस्तुत मानवेत्तर लघुकथाएँ आदि।

एकांकी संग्रहः 'समाज की नाक' सांभरिया जी के कृतित्व का प्रथम तथा बहुचर्चित एकांकी संग्रह है। जिसे केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा विदेशों में तथा अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में राजभाषा हिन्दी का प्रचार–प्रसार करने हेतु चुना गया है। इसका विमोचन राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री शिवचरण माथुर के करकमलों द्वारा हुआ।

नाटकः कथा साहित्य के अतिरिक्त आपने नाट्य लेखन में भी अपनी रुचि दिखाई है। आपने **'वीमा'** और **'उजास'** नामक दो नाटक लिखे हैं। आपके द्वारा सदियों से दलित, पीड़ित, शोषित, वंचित समाज में तुच्छ व अछूत समझे जाने वाले पात्रों की समस्याओं को आधार बनाकर लेखन कार्य किया गया। **'वीमा'** नाटक का विस्तार बारह दृश्यों में फैला है। नाटक के प्रमुख पात्र जमन वर्मा, वीमा, श्यामा जी, आका, देवतसिंह व पत्रकार हैं। जो फ्लैश बैक पद्धति पर रचा गया है। इस नाट्य कथा के माध्यम से रत्नकुमार सांभरिया जी ने केवल निःशक्त का संघर्ष ही नहीं दिखाया है, बल्कि उन्होंने इस कथा के माध्यम से समाज में फैली जाति व्यवस्था तथा सरकारी योजनाओं की धांधली, मीडिया का दोहरा चरित्र, पुलिस का रवैया इत्यादि से पाठकों को अवगत कराने का प्रयास किया हैं। जमन का संघर्ष किसी एक व्यक्ति से नहीं है बल्कि पूरी सामाजिक व्यवस्था से है। **'उजास'** दो अंकों का नाटक है, जिसमें आठ दृश्य हैं। नाटक के मुख्य पात्र संती, रामानन्द, कालिया, भोलू, शेरसिंह तथा मन्दिर का पुजारी सेवानन्द है, जो रामानन्द का छोटा भाई है। उक्त नाटक में उस कड़वे सच पर तीखा व्यंग्य किया गया है, जिसमें जातीय भेदभाव से एक मनुष्य दूसरे को दोयम दर्जे का प्राणी मानता है। मनुष्य–मनुष्य में भेद किया जाता है। शोषित वर्ग अपने अज्ञानता के कारण सरसब्ज लोगों के हाथों कि कठपुतली बनकर रह जाता है। लेकिन सही दिशा, संघर्ष व संगठन का भाव उसमें नए उत्साह का संचार कर देता है। उसमें ज्ञान का **'उजास'** फैला देता है। यही नाटक का उद्देश्य है।

अन्य रचनाएँ: कथाकार सांभरिया की अन्य रचनाओं में समीक्षा, संपादन और अनुवाद को सम्मिलित किया जा सकता है। **'मुंशी प्रेमचन्द और दलित समाज'** आपकी समीक्षात्मक

पुस्तक है। जिसमें आपने अम्बेडकरवादी आलोचना और सौन्दर्यशास्त्र दोनों के मद्देनजर प्रेमचन्द की दलित कहानियों की समीक्षा की है। समीक्षा पढ़ने से ज्ञात होता है कि जो आपकी दृष्टि में सही है उसे स्वीकार करते हैं तथा प्रतिकूल होने पर बड़ी निर्दयता से प्रहार करते हैं।

डॉ. अम्बेडकर; एक प्रेरक जीवन' डॉ. अम्बेडकर के जीवन के प्रेरक प्रसंगों पर आधारित इस ग्रंथ का एक कुशल शिल्पी की भाँति सफल संपादन किया। जिसका अनुवाद सिन्धी, अरबी आदि भाषाओं में भी हुआ। जिसे केन्द्रीय साहित्य अकादमी के द्वारा वर्ष 2014 का अनुवाद पुरस्कार प्राप्त हुआ। डॉ. अम्बेडकर पर इस भाषा में प्रकाशित होने वाली विश्व की यह प्रथम पुस्तक है।उपर्युक्त साहित्य के अतिरिक्त आपकी लघुकथाओं का पंजाबी, मराठी, उर्दू व सिन्धी भाषाओं में अनुवाद हुआ है। आकाशवाणी जयपुर व जोधपुर केन्द्रों से आपकी 100 से अधिक लघुकथाएँ प्रसारित हो चुकी हैं। आपने आकाशवाणी जयपुर की पत्रिका **'सरंगिणी'** का भी संपादन किया। **'मैं जीती'** कहानी पर टेलीफिल्म बनाई गई। आपकी अनेक कहानियों एवं लघुकथाओं के नाट्य रूपान्तर प्रसारित हो चुके हैं। रत्नकुमार सांभरिया जी के संदर्भ में **डॉ. एन. सिंह** ने ठीक ही कहा है–"रत्नकुमार सांभरिया में एक अच्छे कथाकार की सारी संभावनाएँ हैं, क्योंकि वह अच्छी तरह जानते हैं कि, उन्हें क्या कहना है और किस तरह कहना है। शब्द, चयन और प्रभावान्विति के दृष्टिकोण में ये उनकी रचनाएँ अप्रतिम है।"

रत्नकुमार सांभरिया जी को प्राप्त पुरस्कारः साहित्य ही नहीं, बल्कि जीवन के किसी भी क्षेत्र में पुरस्कार एवं मान–सम्मान का मिलना उस क्षेत्र में उसके कर्म को स्वीकृति मिलना है। यही बात कथाकार सांभरिया जी पर भी लागू होती है। उनके लेखन का सम्मान उनके लिए अपने लेखन को स्वीकृति मिलना है। सांभरिया जी के शब्दों में "सम्मान या पुरस्कार मिलना लेखक के सृजन को मान्यता मिलना है। मेरे इस सम्मान का श्रेय पाठकों को जाता है। उन्हीं के उत्साहवर्धक पत्रों से मुझे ऊर्जा मिलती है।"38 साहित्यकार सांभरिया के पास पुरस्कार एवं मान–सम्मान की एक लम्बी फेहरिस्त है। **नवज्योति कथा सम्मान**, उनको **'आखेट'** कहानी पर प्राप्त हुआ। **'चपड़ासन'** कहानी के लिए **सहारा समय कथा चयन प्रतियोगिता–2005** उप–राष्ट्रपति द्वारा उन्हें सम्मानित किया गया। कथा देश **अखिल भारतीय हिन्दी कहानी प्रतियोगिता का प्रथम पुरस्कार 'बिपर सूदर एक कीने'** कहानी पर प्राप्त हुआ। **राजस्थान पत्रिका सृजनात्मक पुरस्कार–2007 'खेत'** कहानी पर प्राप्त हुआ। इसके साथ–साथ **अनुराग सेवा संस्थान, दौसा** द्वारा उनके कहानी संग्रह **'खेत तथा अन्य कहानियाँ'** पर उन्हें पुरस्कृत किया गया। इसी कहानी संग्रह पर चूरू की **साहित्यिक संस्था प्रयास द्वारा डॉ. घासीराम वर्मा पुरस्कार** देने की घोषणा की गई। इसके अतिरिक्त देश–विदेश की प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में आपकी कहानी, लघुकथा, समीक्षा तथा लेखों का प्रकाशित होना लेखन में विचारों की गहराई और व्यापकता को दर्शाता है।

निष्कर्षः उपर्युक्त वर्णित साहित्य के माध्यम से कथाकार रत्नकुमार सांभरिया जी ने हिन्दी साहित्य की महत्ती श्रीवृद्धि की है। आज भी उनकी लेखनी अनवरत् रूप से सृजनरत् है। उन्होंने कथाकार, नाटककार एवं समीक्षक के रूप में जो कृतियाँ सरस्वती के भण्डार में समर्पित की हैं, वे उनकी कीर्ति की ज्वलन्त उदाहरण हैं। उनके समस्त साहित्य का अनुशीलन–परिशीलन करने पर वह अनेक स्तरीय सन्दर्भ सत्यों को कुरेदते दिखाई देते है। समाज, धर्म, ईश्वर, परिवार, स्त्री–पुरूष संदर्भ, व्यक्तिगत कुण्ठा, आज की भीड़भाड़ में अकेलापन एवं अजनबीपन आदि कुछ ऐसे स्तर हैं जिन्हें स्पर्श कर साहित्य ने परम्परा से अपने को अलग खड़ा कर लिया। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कहानीकार सांभरिया जी को जीवन का लम्बा व कटु अनुभव है। रत्नकुमार सांभरिया कल्पनाजीवी न होकर यथार्थ भोगी व्यक्तित्व का नाम हैं। जो आमजन को संघर्षों से जूझने की प्रेरणा तो देते ही हैं साथ ही अवसर आने पर संघर्ष की आग में स्वयं भी कूद सकते है। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि रत्नकुमार सांभरिया जी व्यक्तित्व से कवि, कृतित्व से कथाकार और करनी से संघर्षशील हैं।

सन्दर्भ ग्रंथः – **1.**कँवल भारती, (2007): "दलित विमर्श की भूमिका", इतिहास बोध, प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ–87–88. **2.**डॉ. मोहम्मद अबीर उद्दीन, (2011): "दलित चेतना और भारतीय समाज", अंकित पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ–234 **3.**डॉ. विवेक शंकर, डॉ. अनीता वर्मा,(2020): "रत्नकुमार सांभरिया; समाजद्रष्टा साहित्यकार", दृष्टी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ– 227. **4.**डॉ. अमिष वर्मा (2021): "दलित समाज का बदलता सामाजिक यथार्थ और रत्नकुमार सांभरिया की कहानियाँ", शोध आलेख,अपनी माटी, अंक–37, पृष्ठ–37. **5.**बजरंग बिहारी तिवारी, (2015): "दलित साहित्य; एक अंतर्यात्रा", नवारुण प्रकाशन, गाजियाबाद, पृष्ठ–98. **6.**मनोज सामा पाडवी, (2018): "सांभरिया जी की कहानियों पर डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर जी के जीवन दर्शन का प्रभाव", शोध आलेख, अंक–6/30,पृष्ठ–8305–8311. **7.**ममता चैहान, (2011): "रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों का आलोचनात्मक अध्ययन", संकल्प प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृष्ठ–119. **8.**रत्नकुमार सांभरिया, (2011), मोनोग्राफ, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, पृष्ठ–69. **9.**रत्नकुमार सांभरिया, (2020) "वीमा, भभूल्या, उजास, तीन नाटक, श्री नटराज प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ– 49–80. **10.**रत्नकुमार सांभरिया, (2011): "दलित समाज की कहानियाँ (कहानी संग्रह)", अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली,पृष्ठ–12,140,265. **11.**विद्याभूषण, डी. आर. सचदेव (2013): "समाजशास्त्र के सिद्धांत",किताब महल, दिल्ली, पृ. 759.

12-https://www.sahityasamvad.com

13-http://m.sahitykunj.net

23.रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में दलित चेतना

–डॉ. जाधव ज्ञानेश्वर भाऊसाहेब
हिंदी विभाग, शिवनेरी महाविद्यालय, शिरूर अनंतपाळ, जि.लातूर

हिंदी में दलित साहित्य का प्रारम्भ सन् 1914 में सरस्वती पत्रिका में छपी हीरा डोम की 'एक अछूत की शिकायत' कविता से माना जाता है। अस्सी के दशक में हिंदी क्षेत्र में दलित साहित्य व्यापक रूप में लिखा जाने लगा। दलित साहित्य का उद्गम ही संघर्ष और आंदोलन से हुआ है। जब बाबासाहब आम्बेडकर जी ने सामाजिक समानता का हक माँगते हुए, मंदिरों में दलितों द्वारा पूजा अर्चना करना, पीने के पानी पर बराबर का हक की बात उठाई तो सवर्ण हिंदुओं द्वारा भारी विरोध का सामना करना पड़ा तब उन्होंने इस बात को महसूस किया कि दलित समाज को सबसे बड़ी जरूरत है कि उन्हें उनके खोए हुए स्वाभिमान एवं आत्मसम्मान का एहसास करवाना। वे मनुष्य हैं यह समझाना। इसका परिणाम यह हुआ है दलित समाज के पढ़े–लिखे लोग साहित्य लिखने लगे। यह धीरे–धीरे आंदोलन का उग्र रूप लिया गया। इन लेखकों द्वारा लिखे गए साहित्य को दलित साहित्य कहा जाने लगा।

दलित साहित्य से तात्पर्य, वह साहित्य जो दलितों द्वारा तथा दलितों के उद्धार के हेतु लिखा गया हो। श्री प्रेमकुमार मणि ने दलित साहित्य की परिभाषा करते हुए लिखा है कि– "दलितों के लिए, दलितों के द्वारा लिखा जा रहा साहित्य दलित साहित्य है, यह विलास का नहीं आवश्यकता का साहित्य है। सम्पूर्ण विज्ञान उसकी दृष्टि है और पीड़ित मानवता का उद्धार इसका इष्ट है। दलित साहित्य वह प्रकाश पुंज है, जो अँधेरे में उतरा है।"[1] डॉ.एन.सिंह द्वारा दलित साहित्य की दी गई परिभाषा इस प्रकार है– "दलित का अर्थ जिसका दलन, शोषण और उत्पीड़न किया गया हो– सामाजिक, आर्थिक और मानसिक धरातल पर। सम्पूर्ण साहित्य ऐसे ही उत्पीड़ित और शोषित लोगों की बेहतरी के लिए दलित लेखकों द्वारा लिखा गया साहित्य है।"[2]

डॉ.दयानंद बटोही के अनुसार–"दलित साहित्य दलितों की चेतना को अभिव्यक्ति देता है। इसमें दलित मानवता का स्वर है। एक नकार है। एक विद्रोह है। यह विद्रोह उस व्यवस्था के प्रति है जो सदियों से दलितों का शोषण कर लाभ की स्थिति में है।"[3] दलित साहित्य के प्रेरणास्त्रोत डॉ. बाबासाहब आंबेडकर हैं, जिन्होंने सदियों से पीड़ित, उपेक्षित, शोषित वर्ग में स्वाभिमान एवं आत्मसम्मान की भावना को प्रेरित किया। उन्होंने भारतीय दलित समाज को 'शिक्षित बनो, संघटित रहो और संघर्ष करो' का प्रेरक मूल मंत्र दिया। इसी विचार की सार्थक परिणति दलित साहित्य का सृजन रहा है। आधुनिक काल में सर्वप्रथम श्री कमलेश्वर जी ने 'सारिका' पत्रिका के दो दलित विशेषांक 1975 में निकाल कर हिंदी साहित्यकारों को दलित साहित्य से परिचित करवाया। डॉ. महीप सिंह ने 1980 में 'संचेतना' का एक अंक 'दलित साहित्य' नाम से प्रकाशित करवाया, इस समय तक हिंदी की अन्य पत्र–पत्रिकाओं में भी दलित साहित्य छप रहा है। 1980 के आसपास हिंदी में एक प्रकार से दलित साहित्य आंदोलन की शुरुआत हुई। बीसवीं सदी के अंतिम दशक तक तो दलित साहित्य ने एक विधागत विस्तार किया था। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, आत्मकथा तथा शोध में भी पर्याप्त लेखन हुआ है। वर्तमान समय में भारत की सभी भाषाओं में दलित साहित्य लिखा जा रहा है। दलित साहित्य प्रतिरोध का साहित्य है, लेकिन कहानी विधा के रूप में विरोध–प्रतिरोध का तेवर अपेक्षाकृत ज्यादा मुखर और प्रबल होता है। दलित कहानी ने अनेक समस्याओं का सामना किया तथा अपने सर्जनात्मक आक्रोश को स्वर देकर बदलाव के आयाम स्थापित किए। दलित कहानी का आशय दलित की व्यथा, दु:ख, पीड़ा या शोषण का वर्णन करना नहीं अपितु इसके माध्यम से दलितों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक भूमिका की छवि को तोड़ना रहा है। दलित चेतना को लेकर उभरे सशक्त दलित लेखककार रत्नकुमार सांभरिया के द्वारा लिखी गई कहानियों के माध्यम से दलित जीवन के विविध पहलुओं का हम अध्ययन करेंगे।

हिंदी में जिन दलित लेखकों का नाम गंभीरता से लिया जाता है उनमें रत्नकुमार सांभरिया एक हैं। उनकी कहानियाँ एक पायदान आगे की कही जा सकती हैं। सांभरिया के कहानियों के पात्रों को न तो अस्तित्व का संकट है और न ही अधिकारों की लड़ाई की पहले जैसी जरूरत है। उनके पात्र अपनी अस्मिता और सम्मान के लिए संघर्षरत हैं। उनका स्पष्ट मानना है कि– 'दलितों की पीड़ाओं का पहाड़ खड़ा कर देना दलित कहानी नहीं है, दलित कहानी से अभिप्राय एक ऐसी अनूठी रचना से है, जो दलित में नए जीवन का संचार करती हो। कथाकार दलित हो या गैर दलित... जिस कहानी के पात्र रूआँ से, गिड़गिड़ाते से, समझौता परस्त, पलायनवादी से, हारकर बैठनेवालों से तथा यथास्थिति को प्रारब्ध माननेवाले हो, उनसे दलित कहानी वैभव नहीं पाती।' रत्नकुमार सांभरिया केवल सामाजिक रूप से अस्पृश्य लोगों को अपनी कहानी का पात्र नहीं बनाते, वरन इनकी दलित संवेदना का आयतन काफी विस्तृत है। इनका कहना है–"दलित चरित्र की पहचान के दो आयाम हैं। पहला जाति, दूसरा पैसा। जाति से दलित। पैसे से दलित। जो जाति से दलित है लेकिन

धन–दौलत से संपन्न है और शोहरत पा गए है, वे दलित कहानी के पात्र नहीं होंगे। जो जाति से दलित हैं, जिनका न जातीय सम्मान है और न ही समाज–परिवेश में उन्हें बराबरी का हक है अर्थात् अनुसूचित जाती, अनुसूचित जनजाति के गरीब किसान, श्रमिक, बंधुआ मज़दूर, पैतृक पेशा करनेवाले सफाईकर्मी, चर्मशोधन करनेवाले परिवार तथा घुमंतु और खानाबदोश लोग, जिनका धरती बिछावन है और आकाश ओढ़न, दलित कहानी का पात्र होने का अधिकार पाते हैं। दलित कहानी का मुख्य ध्येय इन्हीं उपेक्षित वर्ग को दलित्व से उबारकर उन्हें शिक्षा और पुनर्वास की ओर उन्मुख करना है।''[4]

रत्नकुमार सांभरिया का मानना है कि–''पद और पैसे के आगे जात जूती है।'' यानी अगर आप उच्चपदस्थ और पैसेवाले हो तो जाति का प्रभाव कम हो जाता है। 'हुकुम की दुग्गी' कहानी संग्रह की 'फुलवा' कहानी में कहानीकार ने इसी बात को रेखांकित किया है। गाँव में फुलवा नामक एक दलित स्त्री अपने पति के साथ रहती है। गाँव का जमींदार रामेश्वर पंडित के घर 'फुलवा' काम करती है। जो एक दलित महिला है। पति के निधन के बावजूद फुलवा ने अपने बेटे को खूब पढ़ाकर एस.पी. बनाया। एक दिन जमींदार रामेश्वर पंडित शहर में रहनेवाले पं. माताप्रसाद को मिलने जाता है ताकि अपने बेरोज़गार बेटे दीपसिंह के लिए नौकरी का प्रबंध कर सके। उसी शहर में फुलवा भी अपने बेटे के साथ रहती है। रामेश्वर पंडित पता पूछने के कम में उसे फुलवा का ही घर मिल जाता है। फुलवा उनका आदरातिथ्य करना चाहती है लेकिन शहर में फुलवा के ठाट–बाट और व्यवहार देखकर रामेश्वर की जातीय भावना को बड़ी ठेंस लगती है। वह जल्दी से माताप्रसाद के घर पहुँचना चाहता है। माताप्रसाद के घर पहुँचकर उसके मुँह से जातीय अहं फूट ही पड़ता है। वह कहता है फुलवा कितनी ही बड़ी हो जाए रहेगी उसी जात की। मैंने तो उसके घर का पानी तक नहीं पिया। धर्मभ्रष्ट होने से मर जाना अच्छा समझता हूँ। यह सुनने के बाद पं. माताप्रसाद रामेश्वर को फटकारते हुए कहता है–''तू तो कुएँ का मेंढ़क ही रहा रामेसरिया। अब तो पद और पैसे का जमाना है, जात–पाँत का नहीं। फुलवंती का राधामोहन कोई छोटा–मोटा अफसर नहीं है– एस.पी. है। रामेसरिया एक बात बताऊँ तू जाकर मेंम साहेब के पाँव पकड़ ले और तब तक मत छोड़ो जब तक वह हाँ न कह दे।''[5] इसी क्रम में 'बिपर सुदर एक कीने' कहानी को लिया जा सकता है। इस कहानी में गाँव की चमार बस्ती के सारे लोग मिलकर पंचायत में गंगाजली उठाकर चमड़े का पैतृक पेशा छोड़ने का प्रण लेते हैं, बस एक श्यामू है जो चार वर्ष की मोहलत माँगता है। क्योंकि वह बेटे की पढ़ाई पूरी होते ही वह इस धंधे को त्याग देगा। उनके इस फैसले से सारी पंचायत में थू–थू होती है। यहाँ तक कि उसका छोटा भाई जीवन उसे जली–कटी सुनाता है। यहाँ तक की घर–परिवार, पशु–खेत सबका बँटवारा किया जाता है। लेकिन वह संघर्ष करते हुए अपने बेटे को पढ़ाते हैं, बेटे का राज्य पुलिस सेवा में चयन हो जाता है। बस सारे गाँव का रवैया बदल जाता है। सारे गाँववाले उसके साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार करते हैं यहाँ तक की पुजारी परिवार भी श्यामू के घर आने–जाने लगता है। पुजारी की साली का भी दीदार के बैच में चयन होता है। पुजारी परिवार मिल जुलकर जाति को भुलाकर दलित दीदार और ब्राह्मण लड़की का रिश्ता कर देता है। यानी पद और पैसे ने जाति को दरकिनार कर दिया। कहानीकार ने इस कहानी में दलित–सवर्ण के बीच रोटी–बेटी का संबंध बनाकर अपनी व्यापक भविष्य दृष्टि का परिचय दिया है।

रत्नकुमार सांभरिया के द्वारा लिखी गई 'सवाखे' कहानी जो विकलांगों का प्रतिनिधित्व करती है। यह विकलांगता पर जाति के जीत की कहानी है। कहानी में जमन वर्मा एक दलित पात्र है। वह शिक्षित एवं नेत्रहीन है। वह स्कूल में शिक्षक के पद पर कार्यरत है। एक अन्य नेत्रहीन पात्र विभा शर्मा है। वह ब्राह्मण युवती है। उसे घरवाले सताते हैं इसलिए वह घर से भाग जाती है और बदमाशों के हाथ पड़ जाती है। वह बदमाश विभा शर्मा की इज्जत लूटना चाहता है, वहाँ से गुजर रहा एक नेत्रहीन अध्यापक जमन वर्मा उसे बचाता है। जमन विभा को श्यामा जी शर्मा के यहाँ ले जाता है जहाँ स्कूल में वह पढ़ाता था, दोनों श्यामा द्वारा दिए गए मकान में रहते हैं। जब तक विभा की जाति का किसा को पता नहीं था तब तक किसी को कोई परेशानी नहीं थी, पर एक दिन विभा के पिता और भाई उसे ढूँढते यहाँ आ जाते हैं, श्यामा को जब विभा ब्राह्मण है पता चलता है तब वह उसे उसके घर भिजवा देता है और जमन पर जातिगत आरोप लगाकर उसे स्कूल से निकाल देता है। जमन और विभा शर्मा ने श्यामा की मदद से ही कोर्ट मैरेज किया था लेकिन जमन पर अपनी जाति छुपाने का आरोप लगाकर उनके तलाक की प्रक्रिया में लग जाता है। जमन अपनी शिकायत लेकर विकलांगों के देवता आका के पास जाता है, तो वह श्यामजी के खिलाफ़ कोई भी बात सुनने को तैयार नहीं होते। उसके बाद विकलांगों की संस्था के अध्यक्ष देवतसिंह के पास गया। देवतसिंह जमन को आश्वस्त करते हुए कहते हैं– ''मैं संघ को शक्ति मानता हूँ। आका, खुद विभा को लेकर नहीं आए तो मेरा नाम देवतसिंह नहीं।''[6] देवतसिंह जमन को लेकर एफ.आई.आर. लिखवाते हैं लेकिन उस पर

कार्यवाही न होती देख तो उसने एक पत्र के संवाददात की शरण ली। संवाददता कल ही घटना को अखबार में छपवाने की बात करता है लेकिन दूसरे दिन वह उल्टा ही छपवाता है। वह नौवें पृष्ठ पर खबर थी– "नेत्रहीन ने जात छुपाकर विवाह रचना। पत्नी मैके गई"

अखबारवाला भी श्यामजी से रिश्वत लेकर बिक गया। थानेदार भी बिक चुका था। थानेदार की डाँट सुनकर जमन वर्मा बेहोश हो जाता है। जब उसे होश आता है तो आसमान विकलांगों के नारों से गूँज उठता है। नारे आकाजी और श्यामाजी के विरोध में गूँज रहे थे। सभी प्रकार के विकलांग एकत्रित होकर जमन वर्मा के साथ अन्याय का प्रतिकार करते हैं। जमन वर्मा ने अपनी पत्नी विभा शर्मा को प्राप्त करने के लिए 'विकलांग असोसिएशन' के अध्यक्ष देवतसिंह के माध्यम से धरना पर बैठ गये और अपने अधिकार को प्राप्त करने के लिए संघर्ष करने लगा। पुलिस प्रशासन की चूल हिल गयी। "साहस और उत्साह से पैराशूट हो गये जमन ने दस्तखत करके हाथ उठाकर नारा लगाया। "विकलांगों के आगा" आवाजें गूँजी–"मुर्दाबाद, मुर्दाबाद" "श्यामा जी" "मुर्दाबाद, मुर्दाबाद।"[7] यह कहानी जातीय 'उच्चता–निम्नता' से ग्रसित श्यामा जी के ओछेपन को दर्शाती है। सांभरिया की 'शर्त' कहानी में जमींदार के बेटे द्वारा दलित जाति के पानाराम की लड़की के साथ बलात्कार किया जाता है, जिसमें पानाराम द्वारा अपनी बेटी की इज्जत लूट जाने पर प्रतिक्रियास्वरूप बदला लेने के लिए वह नया हल ही सुझाता है। वह जसबीर से कहता है– "मुखिया साब, इज्जत का सवाल है यह। आपकी इज्जत सो मेरी इज्जत। आपकी लड़की मेरे लड़के के साथ रात रहेगी।"[8] प्रस्तुत कहानी में दलितों द्वारा शोषण के विरोध में आक्रोश और बदला लेने की भावना बलवती होती दिखाई देती है। 'डंक' कहानी जातिगता एकता का श्रेष्ठ उदाहरण है। गाँव का पुजारी सतना गाँव के एक दलित खेरा से अपनी बेटी की शादी के लिए बीस हजार रूपये उधार लेता है। रूपये न चुकाने का कपट उसके मन में आता है तो अपने लढैत द्वारा खेत में बैठे खेरा को पीछे से वार करके उसकी कमर तोड़ देता है। खेरा की दवाइयों का खर्चा बढ़ता है तो उसकी पत्नी पुजारी को पैसे माँगने जाती है तो पुजारी सतना को कहता है– राह देख अपनी। गुस्से से मांगी का ध्यान जूती की ओर जाता है। जब मांगी क्रोधित हो पुजारी से पैसे माँगती है तो पुजारी कहता है तेरे पति की हालत उसने ही की है। तो वह और गुस्सा होती है और पैर से जूती निकालती है। माँगी घर आकर खेरा को सारी बातें बताती है तो खेरा के मन में प्रतिहिंसा का भाव उमड़ता है। सांभरिया की आखेट शर्त, गाडिया आदि बहुत सारी कहानियों में सवर्ण पुरुष द्वारा दलित स्त्री के शोषण को चित्रित करते हुए दलितों द्वारा एकजूट होकर स्त्री शोषण का विरोध ही नहीं किया बल्कि प्रतिरोध करते हुए इज्जत का बदला इज्जत से ही पूरा किया जा सकता है। इस अनूठी शर्त का जिक्र भी किया है। दलित पात्र इसका विरोध करते हुए केस, थाना, कचहरी तक के मार्ग को अपनाते हुए शोषणकारियों को सजा तक दिलवाने में सफल होते हैं। 'गाड़िया' कहानी में तो लुहार की लड़की पर जमींदार के बेटा बलात्कार करता है तो लड़की का पिता हाथ में कुल्हाड़ी लेकर अपराधी के पीछे–पीछे उसे मारने के लिए दौड़ता है। सब लुहार मिलकर कसम खाते हैं कि आज के बाद गाँव में कोई लुहार डेरा नहीं डालेगा। यहाँ घुमंतु जाति की एकता, उनकी जागरुकता और अन्याय के प्रति विद्रोह का कड़ा स्वर देखने को मिलता है।

उपरोक्त कहानियों के अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि रत्नकुमार सांभरिया की कहानियाँ अन्य दलित रचनाकारों की कहानियों से अलग हैं, उनकी कहानियों में विरोध का स्वर प्रखर दिखाई देता है। उनके पात्र अपनी अस्मिता एवं सम्मान के लिए संघर्षरत दिखाई देते हैं। उनके कहानी के पात्र समाज की बेड़ियों को तोड़ते हुए स्वाभिमानपूर्वक और सम्मानजनक जीवन जीने के संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं उन पर लगाए गए सारे बंधनों को तोड़कर अपनी सामाजिक छवि को बदलने का प्रयास करनेवाले पात्रों का वर्णन करते हुए दलितों में आ रही जागरुकता, दलितों के बदलते हुए तेवर को कहानीकार ने अपनी कहानियों में यथार्थ रूप् में चित्रित किया है।

संदर्भ ग्रंथः–

1.समकालीन परिदृश्य में दलित साहित्य की अभिव्यक्ति (2001 के बाद), पीएच.डी. (शोधप्रबंध)– मोहर सिंह बैरवा–पृ.सं.3 **2.**हिंदी साहित्य का बासीपन दूर कर रहा है दलित साहित्य (साक्षात्कार)– डॉ. एन. सिंह, सुमनलिपि, मासिक, बम्बई, अक्तूबर–नवम्बर, 1993, पृ.सं.35 **3.**साहित्य में दलित चेतना (लेख)–डॉ. दयानंद बटोही, पश्यन्ती, त्रैमासिक, अप्रैल–जून, 1998, पृ.सं.129 **4.**दलित समाज की कहानियाँ–रत्नकुमार सांभरिया–पृ. सं.10–11 **5.**हुकुम की दुग्गी, फुलवा–रत्नकुमार सांभरिया–पृ.सं.10 **6.**समकालीन भारतीय साहित्य–मई–जून 2006, सवाँखे–रत्नकुमार सांभरिया– पृ.सं.166 **7.**खेत तथा अन्य कहानियाँ–सवाँखे–रत्नकुमार सांभरिया–पृ.सं.41 **8.**काल तथा अन्य कहानियाँ– शर्त–रत्नकुमार सांभरिया– पृ.सं.112

24.स्त्री–विमर्श की दस्तावेजी कहानिया

– डॉ.पद्मजा शर्मा
15–बी,पंचवटी कॉलोनी, सेनापति भवन के पास, जोधपुर (राज.)

साहित्य की एक सामाजिक भूमिका होती है। कोई भी साहित्यकार अपने समय और समाज को अनदेखा नहीं कर सकता। वह अपने समय की हलचलों, चिंताओं से दूर नहीं जा सकता है। उसके साहित्य में वे अभिव्यक्ति पाते हैं। समाज में दलितों, गरीबों और स्त्रियों की स्थिति की बात करना आज की जरूरत है और साहित्यकार का दायित्व है। वही बोलता है उस आदमी की तरफ से जिसके साथ नाइंसाफी होती है। समाज में अर्थ का बंटवारा असमान है। आश्चर्य तो तब होता है जब आए दिन धनिकों की सूची अखबारों के मुख्य पृष्ठ पर जगह पाती है, गरीब की कोई बात नहीं करता। स्त्री को ऑब्जेक्ट की तरह देखा जाता है, चाहे वह स्त्री अनपढ़–पढ़ी लिखी है। चाहे वह गाँव की है, चाहे शहर की।और चाहे वह नौकरीपेशा है।सुंदर स्त्री का मरण तो दुगुना हो जाता है तब जब वह विधवा हो जाती है। पुरुषों को लगता है अब इसका कोई धणी –धोरी नहीं है। इसे हासिल करना आसान है। रत्नकुमार सांभरिया इन सचाइयों की तरफ अपने रचनाकर्म में इशारा ही नहीं करते आँखों में अंगुली डालकर बताते हैं कि इंसान का इंसान के प्रति यह दुर्व्यवहार अमानवीय है, अस्वीकार्य है।

देश को आजाद हुए 75 वर्ष हो गए मगर छुआछूत का दंश देश से गया नहीं।आजादी की लड़ाई के समय गांधी जी इस बीमारी से भी लड़ रहे थे। हम आजाद हो गए मगर क्या सचमुच? स्त्री का शारीरिक और मानसिक शोषण कई स्तरों पर किया जाता है। जिस दिन स्त्री भी इंसान के तौर पर समाज में स्वतंत्रतापूर्वक विचरण करेगी ,जीवन जिएगी उस दिन हम समझेंगे कि असल आजादी मिल गई। इसके लिए जरूरी है समाज की मानसिकता में बदलाव आए। शिक्षा का चारों दिशाओं में प्रचार हो।इंसान इंसान को इंसान समझे। उसे जाति में रखकर न देखे।लड़कियां अपने पैरों पर खड़ी हों।स्वावलंबी हों।और अपने साथ हो रहे शोषण पर चुप न रहें। उसे सहन न करें।चुप रहना भी सामने वाले को उकसाता है।वे पुलिस थाने जाएँ।और ऐसे लोगों और संस्थाओं की दया को, पुरस्कार ,सम्मानों को ठुकराने की हिम्मत रखें जो उन्हें बुरी नजर से देखते हैं। वैसा करें जैसा रत्नकुमार सांभरिया की कहानी 'पुरस्कार' की नीना करती है।जब नीना अकादमी अध्यक्ष धौज जी की बदनीयत भाँप लेती है तब उन्हें यह पत्र लिखती है –"धौज जी कथा पुरस्कार के लिए प्रेषित मैं अपनी प्रविष्टि वापस लेती हूँ।आप मेरी कहानी को भी अकादमी की पत्रिका में प्रकाशित न करें। " यह पढ़कर धौज जी के सारे सपने बिखर जाते हैं।कहने का तात्पर्य यह कि स्त्रियों को इस साहस के साथ आगे बढ़ना होगा।छपने और पुरस्कार पाने के लालच के जाल में फँसकर अपने व्यक्तित्व की गरिमा को नष्ट नहीं करना है।

मेरे सामने जाने माने कथाकार रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों की किताब 'स्त्री –विमर्श : रत्न कुमार सांभरिया की चयनित कहानियाँ ' है।इसमें कुल 15 कहानियाँ हैं।और किताब 'अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्राइवेट लिमिटेड' ,नई दिल्ली से 2021 में आई है। संपादक हैं डॉ अनामिका। अनामिका जी बहुमुखी प्रतिभा की धनी आलोचक , अनुवादक ,कहानीकार विमर्शकार, कवयित्री ,संस्मरणकार और संपादक हैं।आप इन कहानियों के विषय में लिखती हैं –" रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों से गुजरते हुए मुझे कुछ ऐसे चरित्र मिले ,कुछ ऐसे प्रसंग , बातचीत के कुछ ऐसे नायाब टुकड़े कि मन के अज्ञात कोनों से बरबस ही आवाज आई –'यूरेका' ! बहुत दिनों से एक ऐसे दलित –बंधु की तलाश थी जिसकी विनोद –वृत्ति प्रखर हो और जो भाषा में अभिधा –लक्षणा – व्यंजना तीनों साध सकता हो,यानी कि एकलव्य जैसा धनुर्धारी हो जो।आसान नहीं होता तीनों तरकशों से तीर चला पाना और उन तीरों से बंजर से बंजर धरती की छाती इस तरह बीध देना कि उसके मर्म स्थल से पानी के सोते फूट पड़ें ! सांभरिया जी की कहानियाँ पढ़कर मेरी वह तलाश मुकाम पा गई। " अनामिका जी का संपादकीय पढ़ा तो कहानियाँ पढ़ने से खुद को रोक नहीं पाई।अनामिका जी तो रत्नकुमार सांभरिया जी की कहानियों पर शोध कार्य भी करवा रही हैं।सांभरिया जी के कथा संग्रह की कहानियों में सम्मोहन की शक्ति है।कोई एक बार पढ़ना शुरू कर दे तो सारा संग्रह पढ़े बिना छोड़ नहीं सकता।स्त्री का जो सशक्त रूप इन कहानियों में व्यक्त हुआ है वह उल्लेखनीय है।अनेक कहानियाँ तो विश्व स्तरीय कहानियों की श्रेणी में रखी जाने वाली कहानियाँ हैं।

कथा संग्रह का शीर्षक ही है स्त्री –विमर्श। जिससे ज्ञात हो जाता है कि ये कहानियाँ स्त्री प्रधान कहानियाँ हैं और इनमें उनकी अनेक मनोव्यथाएँ ,उनकी ताकत, उनका साहस ,उनकी जिजीविषा ,उनके जीवन संघर्ष अंकित हैं। कहानियों को पढ़ने के बाद कह सकती हूँ कि रत्नकुमार सांभरिया के दलित स्त्री चरित्र हों चाहे सवर्ण,वे स्वाभिमानी हैं।स्त्रियाँ भूखी रह लेंगी,कष्टों में जीवन बिता लेंगी।एक हद तक सहन भी कर लेंगी।मेहनत मजूरी कर लेंगी मगर अपनी मान –मर्यादा पर आंच नहीं आने

देंगी।उनके लिए इज्जत से बड़ा न कुल, न कुलदीपक। सब की सब उदात्त ,निष्कलुष चरित्र वाली निर्भीक स्त्रियाँ यहां देखने को मिलती हैं। अपना सम्मान उनके लिए पैसे से बड़ा है।यहाँ तक कि जीवन से भी। उसे बचाने के लिए वे हर संभव प्रयास करती हैं और अंततः सफल होती हैं।खुद अपने स्तर पर जवाब देना भी जानती हैं तो पुलिस स्टेशन जाने में भी नहीं कतराती हैं। जब बात उनकी आत्मा को रौंदने की आती है तब वे औचक भूखी बाघिन ,भूखी शेरनी हो जाती हैं।

'बात' की सुरती को ही लें।धींग की बुरी नजर उस पर है। सुरती की गरीबी उसके जी का फंदा बन गई है।गरीबी के कारण वह यह सोच सोचकर परेशान है कि सुरती तेरी आबरू गई। धींग के हाथों तेरी खाट उठने ही वाली है।वह अपने बेटे राधू की ट्यूशन फीस मास्टर जी को नहीं दे पाती है। सारे गाँव में उम्मीद के घोड़े दौड़ाती है उसे ले दे के धींग ही याद आता है।थोड़ी बहुत उम्मीद उसी से बनती है।जबकि वह उसकी छाया थूकती है।वह कई बार गाँव की औरतों के साथ बदसलूकी कर चुका है। एक रात थाने में भी रह आया है। मगर धींग की नजर कब से सुरती पर है इस बात को भी वह भली भांति जानती है। सुरती धींग के पास जरूरत में जाती है पर मन मसोस कर। हजार बार न जाने का खुद से वादा करती है मगर गरीबी उसे वहीं लाकर खड़ा करती है। जब सुरती को पता चलता है कि उसकी महीने भर की कमाई की गांठ धींग के हाथों लग जाती है, वह उसके घर जाती है और क्रोध झागती धींग पर बिजली सी टूट पड़ती है। 'चपड़ासन' कहानी में पानी का गिलास पकड़ाते समय तहसीलदार मीता के हाथ को ज़ोर से दबा देता है।गिलास किरच –किरच होकर पानी के साथ ही बिखर जाता है। मीता के हाथ पर नील के निशान उभर आते हैं। सोने वाली चूड़ियाँ मुड़ जाती हैं। मीता देखती है पानी गले तक आगया है।उसके रोम–रोम से आग उठने लगती है। मीता ने अपने आंसुओं को काबू में किया और बाबू हुकमचंद को साथ लेकर धनपाल तहसीलदार के खिलाफ एफ आई आर दर्ज करवाने पुलिस स्टेशन की ओर बढ़ गई।

रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों की स्त्री पात्र या कहूँ दलित स्त्री पात्र बदले की भावना से काम नहीं करती, मगर अगले को यह अहसास जरूर करवा देती हैं कि तुम ने जो बीते कल हमारे साथ व्यवहार किया वो गलत था ,अक्षम्य था।मगर हम वो रास्ता नहीं अपनाएंगे जो तुमने अपनाया।हमारा अपमान किया तो क्या हम भी अपमान करेंगे ? नहीं मगर उसका अहसास जरूर कराएंगे। और यह जरूरी है। दलित फुलवा यही करती है अपने आचरण से ,अपने व्यवहार से। तथाकथित उच्च जाति का गंवई रामेश्वर जमींदार का कुँवर जब शहर आता है तब जान पाता है कि शहर में जात को नहीं बल्कि पद को पूछते हैं।उच्च जाति वाले पंडित जी को कोई नहीं जानता जबकि फुलवा के बेटे को हर कोई जानता है।वह अफसर जो है।फुलवा रामेश्वर को घूम –घूमकर अपनी कोठी दिखाती है। फुलवा सोचती है रामेश्वर को एक दो दिन इस घर में रोकेगी और जो भी कीमती समान है सब दिखाएगी।कोठी में ऐसी –ऐसी चीजें हैं जैसी बनिए – बामनों और जमींदारों ने कभी देखी नहीं हैं।डायनिंग सेट दिखाती है जो सनमाइका की टेबल पर रखा है। और रामेश्वर से कहती है –आज शाम हम सब इसी पर बैठकर भोजन करेंगे। रामेश्वर को सुई –सी चुभती है यह बात। हमारे यहाँ तो चटाई बिछाते हैं मेहमानों के लिए।जब फुलवा नल खोलती है तो पानी गल्ल –गल्ल करता कूदने लगता है।यह देखकर रामेश्वर अतीत में चला जाता है।

फुलवा की जात वालों को जमींदारों के कुएं पर चढ़ने की मनाही थी। रामेश्वर को एक घटना याद आती है। वह कुएं पर नहा रहा था। फुलवा पानी लेने आई। वह बार –बार हाथ जोड़ रही थी रामेश्वर जी आज मुझे गाँव जाना है दो बाल्टी पानी उंडेल दो मटके में और उसने मटके पर थूक दिया। फुलवा ने मटका वहीं फोड़ दिया। और रोती आँखें घर लौट आई। उसे भी वह घटना याद आगई थी ।जैसे दो हाथ एक साथ गुल्लक में पड़े हों।रामेश्वर आज भी उसी कुएं पर पानी भरता है जबकि फुलवा की रसोई में भी नल है।यह कहानी पढ़ते हुए प्रेमचंद की कहानी याद आती है 'ठाकुर का कुआं'।जहां गंगी ठाकुर के डर से भाग जाती है मगर रत्नकुमार सांभरिया की फुलवा मटका फोड़ देती है फिर रोती आँखें लिए घर आती है।यहाँ विवशता कम, स्वाभिमान ज्यादा है।इस संबंध में अपनी कविता की कुछ पंक्तियाँ यहाँ देना उचित समझती हूँ – " जब वह ठठाकर हँसता है /राक्षसी हंसी /देखकर किसी कमजोर को /रिरियाते–गिड़गिड़ाते हुए /तब अंगारा आँखों से देखती रहती हूँ उसकी आँखों में /बिना पलक झपकाए /इस तरह मैं उससे अपना विरोध दर्ज कराती हूँ।"(विरोध)यह 'मैं' फुलवा ही तो नहीं?

ये कहानियां रेखाचित्रों की –सी बनावट लिए हैं।कहानीकार किसी पात्र या दृश्य का ऐसा चित्र खींचता है लगता है उस दृश्य या व्यक्ति को हम साक्षात देख रहे हैं। अगर यह कहें तो ठीक रहेगा कि लेखक को दृश्य चित्र खींचने में निपुणता हासिल है।'नट की बेटी' हो चाहे 'चपड़ासन' या हो 'बूढ़ी' सब कहानियों में यह खूबी मिलेगी।एक उदाहरण कहानी 'बूढ़ी' का

देखें –" बूढ़ी की कमर झुकी हुई थी और वह चौपाया –सी लगती थी। उसने छोटी –सी घाघरी ,छोटी –सी अंगिया पहन रखी थी।चांदी से सफ़ेद उसके सिर पर छोटी सी लूगड़ी थी। पाँवों में छोटी –छोटी चप्पलें थीं। शरीर उसका हवा –सा था। अगर आदमी हिम्मत बांध ले तो वह कुदरत की किसी भी क्रूरता को मात दे सकता है। सिर पर आग का गोला –सा सूरज था। भूभल से गर्म रेत पर बूढ़ी टूटी चप्पलों में ऐसे चली जा रही थी ,मानो कोई अभ्यस्त कलाकार अंगारों पर नंगे पाँव चलता है।" इसी तरह कहानी 'चपड़ासन' के तहसीलदार का चित्र देखें –"कल उनके शूकर से झुर्र और बगुले से बग –बग सफ़ेद बाल थे।मूंछें खरगोश के पूंछ जैसी धोली थी। आज खिजाब पुते बाल मूंछें नित हुए रोगन से आभ रहे थे।नहाने – धोने में उन्होंने कितनी जल्दबाज़ी की है,कानों के छोरों से चेहरे तक उतरे डाई के धोरे सनद थे। किसान कितनी चतुराई से खेत काटे खूँटें रह ही जाती हैं। उनके गालों पर सफ़ेद बाल चमक रहे थे जहां– तहां।"

'बात' कहानी के मास्टर जी का हुलिया देखिए –" सुरती देख रही थी ,स्कूल के बरामदे में क्लास लग रही है।मास्टर जी कुर्सी में धँसे बैठे हैं। पचासेक के कलूटे मास्टर जी का भारी भरकम शरीर है। छोटा कद है। आँखों पर चश्मा है। चश्मे की डोर जेब के छोर तक लटकी है। काले कोट पैंट पहने हैं। दस – पंद्रह दिन पहले खिजाब का मुल्लमा चढ़े बालों के बीचों – बीच निकली उनकी मांग ब्लेक बोर्ड पर चाक से खींची खड़ी पाई –सी लग रही है। उनकी उँगलियों के बीच दबी सिगरेट सुलग रही है। " इसे पढ़कर कोई चित्रकार मास्टर जी का बोलता हुआ चित्र बना सकता है। ऐसा लगता है रत्नकुमार सांभरिया कहानीकार जितने अच्छे हैं उतने ही उत्कृष्ट रेखाचित्रकार भी हैं। लेखक को जो किरदार नापसंद होते हैं वे कभी भी सुंदर नहीं होते।यानी वे कुरूप ,असुंदर होते हैं चाहे 'बात' कहानी के केंद्रीय खल पात्र धींग को ही लें। लेखक उसकी शारीरिक बनावट को कुछ यूं परिभाषित करता है कि पढ़कर मन वितृष्णा से भर उठता है –" धींग। चालीसेक उम्र। भैंसा सा शरीर। समूचे बदन पर मस्स। उसकी बिन नहाई बालों भरी देह पर मस्सों के दाने ऐसे नजर आते ,मानो घास की जड़ों में दबे कंकड़ हों। हाड़ गला देने वाली सर्दी में भी वह ऊंची एकलांघी धोती पर बनियान पहने था।मैली– सी चादर की बुक्कल मार रखी थी। उसकी मोटी –मोटी आँखों में रात पी खाटी की खुमारी थी।रंडक – भंडक। लंबी चौड़ी पुश्तैनी हवेली में अकेला जीव ,जैसे झेरे में पड़ी भेक। अकूत पैसा होने के बावजूद वह अपने खेतों में खुद खटता। वह भारी सर्दी में भी कमीज उतारकर काम करता।(उसके भीतरी शरीर की कुरूपता लेखक को दिखानी है इसीलिए कमीज उतरवाई है।)पसीना भरी , रेत– मिट्टी सनी उसकी काया ऐसी चमकती मानो नूनकी (क्षार)लगी दीवार हो। उसकी बदसूरती के कारण उसके ब्याह का कहीं जोड़ बैठा ही नहीं। ढलती वय पूरा गाँव उसे 'रंडुवा' कहने लगा था।"

इसी तरह 'चपड़ासन' कहानी के " तहसीलदार धनपाल। पचास के करीब उम्र। गेंद सा गोल –मटोल ,छोटा –सा बदन। भैंसे की आँखों जैसी बाहर झाँकती मोटी–मोटी आँखें।सिर पर ब्रश से खड़े सफ़ेद बाल। चेहरे पर धोली मूंछों के गुच्छ। ज़र्दा खाए आधे –अधूरे दाँत। वे कुर्सी पर बैठे ,पान गिलौरते फाइल देख रहे थे। " 'पुरस्कार' के धौज जी को भी जरा देखें –" साठ वर्षीय धौज जी का कद छोटा ,बदन मोटा ,तोंद जितनी आगे ,पीछे उतना ही पीछे था।चलते ,लगता लुढ़क ज्यादा , चल कम रहे हैं। उनका रंग केंचुली उतरे कृष्ण सर्प जैसा दहकता था।कौड़ी सरीखी उनकी आँखों में मोतियाबिंद उतरा था। वे पैंट पर कुर्ता पहने थे।" मगर जिन पात्रों के साथ आपकी हमदर्दी होती है वे एक तो चरित्रवान होते हैं दूसरे सदा सुंदर होते हैं।ऐसे लोगों के लिए आपकी आत्मीयता गीली मिट्टी में पड़े बीज की तरह बढ़ने लगती है।और हां ये लोग मेहनती भी होते हैं।स्वाभिमानी भी।और ऐसे व्यक्ति स्वाभाविक रूप से सुंदर दिखने लग जाते हैं।एक चित्र देखिए 'खबर' कहानी की संवाददाता का –"जींस और टॉप पहने वह आधुनिक लग रही थी। हेलमेट पहनने के कारण उसके बॉबकट केश जो कंधे छूए थे ,दबे –दबे और बेतरतीब थे। एक स्काफ जो गाड़ी चलाते समय हवा के तीखे थपेड़ों से उसके सुंदर चेहरे की सुरक्षा करता था, एक छोटा सा पर्स ,जिसमें जरूरत की पूंजी होगी , हेलमेट में खुसे थे। लगभग पाँच साल पहले किशोरावस्था से युवावस्था की देहरी पर आई उस संवाददाता के जीवट का मैं कायल था। खबर के लिए वह पूरे दिन भागती फिरती। पाताल से सिरे तक उसके स्रोत थे। यह उसकी बहुत बड़ी खूबी थी ,जो विभाग की बेचैनी का सबब थी। "

'बेस' की अगनी को लें –" बीसेक की अगनी। ना ज्यादा साँवली ,ना ज्यादा गोरी। ना ज्यादा लंबी ,ना ज्यादा अदनी। बस बीच –सी थी। बात –बात पुलकना। बात –बात ठहाका लगाकर हंस पड़ना।पतले –पतले उसके होठों पर मुस्कान पंख फड़फड़ाती तितली सी आलोड़ती। हंसमुख चेहरे पर मासूमियत रहती। " लेखक की सहानुभूति गरीब की तरफ रहती है।तभी वे 'राइट टाइम' कहानी में सूरदास और स्त्री यात्री के संदर्भ में लिखते हैं –गरीब गुरबों में फटेहाली में भी ,खुद्दारी ,इमानदारी और आत्मसम्मान की जड़ें हरी रहती हैं जबकि धर्मी कर्मी धन्ना सेठ

अपने जमीर का सौदा करने से नहीं चूकते।गरीब के प्रति किसी का रूखा या अपमानित करने वाला बरताव भी लेखक को नागवार गुजरता है।_लेखक की नायिकाएं या कहें स्त्री पात्र कहीं –भी, कभी –भी हार नहीं मानते। खुद को परिस्थितियों के सामने बौना होने से बचा लेती हैं।वे हर परिस्थिति में लड़कर –भिड़कर खड़ी रहती हैं। 'बंजारन' की रूना अपनी हंसली ही नहीं एक –एक कर सारे अपने गहने अपने दोनों पतियों के हवाले कर देती है मगर अपनी बेटी का ब्याह दूजवर और दो संतानों वाले बड़ी उम्र वाले पुरुष से नहीं करती है।_'बिल्लो का ब्याह' की शारदा की मृत्यु के पश्चात अपनी बेटी की उम्र की साली से विवाह करवा दिया जाता है अधेड़ नायक का मगर लेखक को यह मंजूर नहीं इसलिए आखिर में वह उसे अपनी पत्नी न मानकर बेटी ही के रूप में स्वीकार करता है।

आप कहीं –कहीं स्त्री पात्र को हालात से लड़ने अकेले भी छोड़ देते हैं पर उस स्थिति में भी वह अपने बचाव का रास्ता निकाल लेती है।'बेस' कहानी की अगनी ऐसी ही पात्र है। असल में लेखक संवेदनशील होने के साथ ही क्रांतिकारी ,प्रगतिशील विचारों का है। वह कहीं भी अन्याय –अत्याचार,गैर बराबरी होते नहीं देख सकता और विशेषकर स्त्रियों के साथ ।रत्नकुमार सांभरिया के स्त्री पात्र चाहे सीधे –सरल हैं मगर गलत को हरगिज स्वीकार नहीं करते।परिस्थितियां उनका एक पक्ष कमजोर करती हैं तो क्या दूसरा पक्ष मजबूत कर देती हैं।सामने वाले के गलत इरादों को पहचानने में भूल नहीं करती हैं फिर चाहे वह 'पुरस्कार' की नीना हो चाहे 'चपड़ासन' की मीता।निर्णय ले लिया तो ले लिया फिर समाज परिवार की परवाह भी नहीं करती। 'इत्तफाक' की काली अपने उस पति को सालों बाद घर ले आती है बिना समाज के डर के जिसने उसे गर्भावस्था में घर से निकाल दिया था।पति की दुरवस्था देखकर कहती है –'इससे क्या प्रतिशोध !' क्या ऐसी माफी पुरुष दे सकता है ?कहानी पढ़ने के बाद यह प्रश्न बाज पक्षी की तरह मँडराता रहता है।

स्त्री के दर्द या कि दलित स्त्री की पीड़ा को महसूस करना हो और उसके सपनों को महसूस करना हो तो इन कहानियों को पढ़ लीजिए।वे खुद भले अनपढ़ रह गई मगर अपने बच्चों को पढ़ा लिखकार बड़ा आदमी बनाना चाहती हैं। वे शिक्षा के महत्व को जान गई हैं यह बड़ी बात है। स्त्री के आँसू ढूँढ़ने के लिए हमें इतिहास को नहीं बल्कि ऐसी ही कहानियों –कविताओं को पढ़ने की जरूरत है। एक बात और कि रत्नकुमार सांभरिया की स्त्री पर जुल्म अगर कोई ढाता है तो वह है पुरुष ,उच्च जाति का पुरुष। उनकी स्त्री कभी दूसरी स्त्री की विरोधी दिखाई नहीं देती बल्कि वह भीतर से स्त्री के साथ खड़ी दिखती है।'चपड़ासन' की सास बहू हो चाहे और चाहे 'बंजारन' की माँ बेटी हों।सुख दुख में एक दूसरे को सहारा देती हैं। कन्या को किस तरह मरने के लिए जंगल में कीड़े –मकोड़ों के बीच फेंक दिया जाता है इसकी मार्मिक कहानी 'मैं जीती' है जिस पर टेलीफिल्म भी बनी है।

मैंने किताब में से कुछ ऐसे वाक्य छाँटे हैं जिनमें जीवन के सार का निचोड़ है, जो सीधे जीवन से निकले हैं। और जिनमें कथाकार की बिम्बात्मक भाषा के दर्शन होते हैं–जिस ससुरी बात का रामेश्वर टेंटुआ दबाए था,वही बात उसके सिर पर चढ़कर बैठ गई थी। –वह तेजाब में पड़े लोहे की तरह जल भी रही ही, गल भी रही थी।–वह सहमी–सहमी मास्टर जी की खाट के पास जाकर खड़ी हो गई थी और ऐसे सांस लेने लगी थी ,मानो सूखा नल सांसता हो। –शुक्ल पक्ष के चंद्रमा की तरह जितनी तेजी से मैं माँ के गर्भ में बढ़ रही थी ,बछेरी –सी छरहरी माँ की काया कृष्ण पक्ष के चाँद की तरह क्षण –क्षण कणती जा रही थी। –जब औरत सम्पन्न होती है ,सुंदरता रानी कहाती है। विपन्नता के दिनों में औरत की वही सुंदरता कयामत का काला साया बन जाती है। –बकरी मेंगन करके दूध देती है ,वह घिनौना इशारा कर अंदर की ओर बढ़ा। –वह वासना के वशीभूत सांड –सा सुड़सुड़ाता आया था। –चाँद फूल की भांति पूरा खिला था। रोशनी नवयौवना –सी जवान थी। रात्रि अपने सुरूर सोई थी। जगत बेखबर था। –धींग खरीदने के लिए "साही" हो चुकी गाय की तरह उस पर अपना हकूक जताने लगा था।–मंडी के सांड और घर के भांड का मन कभी काबू नहीं रहता। –भय के क्षरण के साथ –साथ आदमी के भीतर साहस का स्रोत भी स्वतः बहने लगता है। –गाँव में छत्तीस फांक हैं। शहर में दो ही जात होती हैं, अमीर और गरीब !

अधिकतर कहानियाँ ग्रामीण परिवेश से निकलती हैं इसलिए राजस्थानी के बहुत सारे शब्द इन कहानियों में जगह पा गए हैं। धोली,खूँटें, रंडक–भंडक,अदनी,छोर छंड,खाटा ,मूंजी,गरज–मरज, मारे खीरे, साही, पेहंडी, मंडवाते, कुबद्दी, मीह मीह, मुंडासा, टीबरी जैसे शब्द ऐसा पुल बनाते हैं जिसके सहारे पाठक ग्रामीण अंचल में घुसपैंठ है।उसकी भाषिक समृद्धि से परिचित होता है। ये शब्द उनके जीवन में ऐसे घुले मिले हुए हैं जैसे खीर में चावल।ये शब्द कहानियों को विश्वसनीय बनाते हैं। आपके पास शब्द दृष्टि है और आंचलिक भाषा तो आप के भीतर से अनायास ऐसे निकलती है जैसे पेड़ से टहनियाँ।इसी कारण ये कहानियां अनूठी बन पड़ी हैं। रत्नकुमार सांभरिया की कहानियाँ काल्पनिक नहीं हैं बल्कि

इनमें भोगा हुआ जीवन यथार्थ है। ये कहानियाँ पढ़ते हुए लगता है जैसे लेखक अपनी नस काटकर उस दर्द को लिख रहा है। स्त्री पात्रों में जीवटता है। सामाजिक दुश्चक्र की आग में वे जल रही हैं मगर इससे बाहर निकलने का माद्दा भी रखती हैं। ये स्त्रियां अपनी कोई अलग दुनिया नहीं बसाना चाहती हैं बस ये सामान्य मानवीय जीवन जीना चाहती हैं और ये जानती हैं कि ऐसा जीवन तभी मिल सकता है जब जीवन में शिक्षा की ज्योति जलेगी। तभी तो फुलवा ने अपने बेटे के हाथ से किताब नहीं छूटने दी।राधू की माँ भी हर कष्ट सहन कर के बेटे को पढ़ने स्कूल भेजती है।इस समय मुझे हरजेंद्र चौधरी की एक कविता याद आ रही है। देखें –"किताबों में मौजूद है हमारा अतीत /हमारी भाषा , हमारी संस्कृति /आप मानें या न मानें /उन्हीं से सुरक्षित है हमारा भविष्य /किताबें ही हमारी पूर्वज हैं /किताबें ही हमारी सन्तानें। "(किताब : पाँच)

स्त्री जीवन का लेखा–जोखा इन कहानियों में है। दलित और वह भी स्त्री जीवन को व्यापक धरातल पर देखने–दिखाने का सार्थक प्रयास इनमें है। स्मृतियों को दृश्यों में रूपांतरित करने की कला में लेखक माहिर है। यह संग्रह रत्नकुमार सांभरिया के सृजनात्मक सौंदर्य का उत्कृष्ट उदाहरण है।'स्त्री विमर्श' की इन नायाब कहानियों के चयन के लिए डॉ अनामिका को साधुवाद और रत्नकुमार सांभरिया जी को बधाई।

25.रत्न कुमार सांभरिया की कहानियों में नारी चेतना

– [1]*शिखा पाण्डेय* [2]*शिल्पी शर्मा*

[1] असिस्टेंट प्रोफेसर(हिन्दी)

[2] असिस्टेंट प्रोफेसर(अंग्रेजी) गिन्दो देवी महिला महाविद्यालय, बदायूँ

नारी जीवन की समस्याओं को केंद्र में रखकर कई साहित्यकारों ने कहानी, नाटक, उपन्यास आदि विधाओं में अपनी लेखनी चलाई है। इन लेखकों में प्रेमचंद (निर्मला, प्रतिज्ञा), जयशंकर प्रसाद (ध्रुवस्वामिनी), यशपाल (दिव्या), अमृतलाल नागर (नाच्यो बहुत गुपाल), भगवती चरण वर्मा (चित्रलेखा) आदि के नाम प्रमुखता से लिए जा सकते हैं। रत्नकुमार सांभरिया का साहित्यिक फलक व्यापक है। उन्होंने हुकुम की दुग्गी, काल तथा अन्य कहानियां, दलित समाज की कहानियां, एयर गन का घोड़ा (कहानी संग्रह), बीमा, उजास, भभूल्या (नाटक) तथा समाज की नाक (एकांकी संग्रह) आदि की रचना की। उनकी एक आलोचनात्मक कृति 'मुंशी प्रेमचंद और दलित समाज' भी प्रकाश में आई। परन्तु इन्हें अपनी कहानियों से विशेष ख्याति प्राप्त हुई। रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में नारी, स्वाभिमानी एवं सशक्त रूप में हमें दिखाई देती है। इन्होंने दलित एवं श्रमशील वर्ग की नारी का चित्रण अपनी कहानियों में प्रमुखता से किया है। इनकी कहानियों के नारी पात्र अपनी विपरीत परिस्थितियों को अपनी नियति न मानकर अपने श्रम एवं साहस से स्वयं को समाज में ऊंचे दर्जे पर प्रतिष्ठित करते हैं। रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में नारी –चेतना की पड़ताल करने का प्रयत्न प्रस्तुत शोध–लेख में किया गया है।

हिंदी साहित्य में हमें चेतना के विविध पक्ष दिखाई दे रहे हैं। समाज में शोषित एवं दमित वर्ग अपने अधिकारों के प्रति सचेष्ट होता दिखाई पड़ रहा है। यह साहित्य के क्षेत्र में चलने वाले दलित, आदिवासी, स्त्री, वृद्ध, किन्नर आदि विमर्शों का ही परिणाम है। इन वर्गों में अपने अस्तित्व एवं अधिकारों के प्रति चेतना का नवीन उन्मेष दिखाई पड़ रहा है। हिन्दी साहित्य में नारी चेतना के संबंध में दो पक्ष दिखाई देते हैं– एक पुरुष लेखकों का, दूसरा महिला लेखिकाओं का। पुरुष लेखक जहाँ स्त्री–स्वतंत्रता एवं बराबरी की बात करता है,वहीं वे उसे उसकी मर्यादाओं का भी स्मरण करवाते चलते हैं, परन्तु महिला लेखिकाओं ने उन मर्यादाओं एवं सामाजिक वर्जनाओं खण्डन किया है, जो पुरुष स्वयं के लिए स्वीकार नहीं करते। इसी संदर्भ ने मैत्रेयी पुष्पा ने लिखा है– "अपनी पूरी शारीरिकता और मानसिकता के साथ औरत ने पुरुष को चुनौती दी है जिससे उसकी हैसियत

ISSN-2454-6283 PEER Reviewed JOURNAL

जोड़कर देखी जाती थी................ जानते जानते वह इतना तो जान ही गई है कि वर्जनाएँ या तो सत्ता तोड़ सकती है या तो प्रेम।"1

प्राचीन काल से ही नारी को समाज में वह स्थान नहीं मिला, जिसकी वह अधिकारिणी थी। असीम शक्ति, अदम्य साहस, विश्वास, प्रेम और समर्पण भाव रखने वाली नारी को पुरूष समाज ने सम्मान देना हमेशा से अपनी तौहीन माना। परिवार की समस्त जिम्मेदारियों का वहन करने वाली स्त्री को पुरुष ने सदैव ही दोयम दर्जे पर रखा। नारी पर अधिकार जताना और उसका शोषण करना पुरुष वर्ग की आदत बन गया। पुरुष वर्ग अपने अहं में यह भी भूल गया कि वो जिसका शोषण कर रहे हैं वह उनकी क्रीत दासी नही है बल्कि उसकी सहधर्मिणी एवं चिरसंगिनी है। उसका भी अपना निजी व्यक्तित्व है। नारी को सशक्त बनाने के लिए उसमें चेतना का होना बहुत ही आवश्यक है। जब तक वह स्वयं अपना सहारा नहीं बनती तब तक समाज में उनकी स्थिति को सुधारना कठिन प्रतीत होता है। डॉ. सुदेश बत्रा ने भी इस ओर सबका ध्यान आकृष्ट करने का प्रयत्न किया है– "नारी अस्मिता का प्रश्न अनेक आयामी है। व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया में नारी की व्यक्तिवादी चेतना की अभिव्यक्ति और प्रकाशन ही उसकी अस्मिता की स्वीकृति है, एक लंबी पुरानी स्थापित व्यवस्था को तोड़कर जन संघर्ष से जुड़ना और कदम कदम पर यथार्थ से मुठभेड़ करना अस्मिता की पहचान का तकाजा है।"2

भारत में नवजागरण एवं पुनर्जागरण के समय नारी से संबंधित अनेक आंदोलन चलाए गए, जिससे समाज में नारी चेतना का प्रचार – प्रसार होना प्रारंभ हुआ। नारी–शिक्षा को उसके उत्थान के लिए आवश्यक माना जाने लगा। जैसे–जैसे उनकी शिक्षा पर ध्यान दिया गया, वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुई। आज नारी को क्या करना चाहिए, क्या नहीं इसका निर्णय वह स्वयं करने लगी है। शिक्षा एवं आर्थिक स्वावलंबन ही वह कुंजी है, जिससे नारी की किस्मत के बंद ताले खोले जा सकते हैं। महादेवी वर्मा जी ने इस बात की पुष्टि अपने निबंध संग्रह 'श्रृंखला की कड़ियां' में की है– "यदि उन्हें अर्थ संबंधी वे समस्त सुविधाएं प्राप्त हो सकें जो पुरुषों को मिलती आ रही हैं, तो उनका जीवन उनके निष्ठुर कुटुम्बियों के लिए न भार बन सकेगा और न वे गलित अंग के समान समाज से निकाल कर फेंकी जा सकेंगी।"3

इस बात को रत्नकुमार सांभरिया जी भी भली–भांति जानते थे , इसलिए उन्होंने अपनी कहानियों में नारी को अपनी स्थिति में सुधार हेतु शिक्षा के प्रति जागरूक दिखाया है। 'फुलवा' कहानी की केंद्रीय पात्र 'फुलवा' अपने बेटे को पढ़ा–लिखा कर एस.पी. बनाती है। किसी समय मिट्टी के घर में रहकर धूप और बरसात की मार तथा जमीदारों की दुत्कार झेलने वाली फुलवा, शहर में आलीशान कोठी में महारानी बन कर स्वाभिमान के साथ अपना शेष जीवन बिताती है। अपने बेटे को उच्च शिक्षा देकर वह तथाकथित उच्च जाति के रामेश्वर के जातिगत दंभ को भी चूर–चूर कर देती है। उसकी संपन्नता को देखकर रामेश्वर कह उठता है– "फुलवा चालाक निकली इसने सौ पापड़ बेल लिए लेकिन राधामोहन के हाथ से किताब नहीं छूटने दी वरना उसकी हथेली तले हमारा हल होता आज।"4

सांभरिया जी ने अपनी कहानियों में चेतना–सम्पन्न नारी पात्रों की सर्जना की है। सांभरिया जी की कहानियों में नारी जीवन के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत किया गया है। उनके नारी पात्र कमजोर और डरे हुए नहीं हैं बल्कि वे अपने एवं अपने परिवार के लिये साहस के साथ किसी का भी सामना करने को तैयार हो जाते हैं। उनकी कहानी 'बात' की पात्र 'सुरती' विधवा होने के साथ ही आर्थिक तंगी का भी शिकार है, परन्तु वह अपने पुत्र की शिक्षा एवं अपने सम्मान दोनों की रक्षा के हित जिस साहस का परिचय देती है व वह प्रशंसनीय है। बेटे के भविष्य को संवारने का दृढ़ निश्चय कर चुकी सुरती धींग से कुछ रुपए उधार लेती है तथा एक महीने में चुकाने का वादा करती है, यदि वह नहीं चुका पाए तो फिर धींग के आगे शरीर का समर्पण कर देगी। धींग पहले से ही उस पर गंदी नजर रखता है। अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए सुरती कड़ी मेहनत करके महीने के अंत तक रुपए का इन्तजाम कर लेती है। " सुरती सुबह से ही उतावली में थी। धींग के दाम चुका आऊँ। 'बात' मिटा आऊँ। साहूकार का बच्चा हो रहा है तीन सौ रुपये उधार देकर जैसे मैं खरीद ली हूं उसने।"5

धींग किसी भी हाल में सुरती को पाना चाहता है। इसीलिए वह सुरती के पैसे चोरी कर लेता है। सुरती को यह ज्ञात हो जाता है कि उसके रुपये धींग ने चुराए हैं, तब वह अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए निर्भीकतापूर्वक धींग का सामना करती है। सुरती यह स्पष्ट कर देती है कि नारी अपने परिवार की खातिर अपना सर्वस्व न्योछावर भी कर सकती है तथा अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए शेरनी की भांति लड़ भी सकती है। " नाहर गच्चा खा जाए। बाज चूक जाए। क्रोध झागती सुरती धींग पर बिजली सी टूट पड़ी।"6 सुरती एक चेतना संपन्न स्वाभिमानी स्त्री है, जो बदनियत पुरुषों से पार पाने के लिए कुछ भी कर गुजरने का माद्दा रखती है। सांभरिया जी की यह कहानी

हमें संदेश देती है कि यदि नारी चाहे तो अपने बचाव के लिए अकेले ही पूरे समाज का सामना करने में सक्षम है।

सांभरिया जी की प्रसिद्ध कहानी 'चपडासन' की पात्र मीता एक स्वाभिमानी एवं सशक्त नारी है। वह तहसीलदार की पत्नी के रूप में सम्मानित जीवन जीती है। परंतु उसी ऑफिस में उसे चपड़ासन की नौकरी करनी पड़ती है। समाज किसी भी स्त्री को तभी तक आदर और सम्मान देता है जब तक उसका पति जीवित रहता है। पति के मरते ही समाज की गिद्ध नजरें उसे नोच खाने को आतुर दिखाई देती है। 'चपड़ासन' कहानी में सांभरिया जी ने इसी तथ्य की ओर इशारा किया है। मीता के पति मुनींद्र का देहांत होते ही उसे ऑफिस के ही वर्तमान तहसीलदार धनपाल की वासनापूर्ण नजरों का सामना करना पड़ता है। जब तहसीलदार धनपाल पानी के गिलास के बहाने उसका हाथ पकड़ लेता है, तब वह उसका पुरज़ोर विरोध करती है तथा उसकी पुलिस में रिपोर्ट भी करवाती है। कहानी 'मदारिन' स्त्री के सशक्त रूप को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। थानेदार की कुदृष्टि जब मदारिन पर पड़ती है तो वह सहम जाती है। जब कामान्ध थानेदार मदारिन की छरहरी काया को देखकर उसके साथ दुष्कर्म की चेष्टा करता है तो मदारिन का भय, क्रोध में परिणत हो जाता है वह छिटककर थानेदार से दूर जा खड़ी होती है। लेखक ने थानेदार की हरकत पर मदारिन की प्रतिक्रिया को निम्नलिखित शब्दों में अभिव्यक्ति दी है– "ज्यदा भय क्रोध में बदल जाता है 'तेरी तो.' उसने ओंठो पर रखी थानेदार की लकड़ी जैसी अंगुली झटकी और लाल – पीली हुई, भाड़ में फेंक तेरी लंबी चोटी निकल जा म्हारा डेरा से, नहीं कुत्तो बुलाऊं।"7 सांभरिया जी की कहानी 'इत्तफ़ाक' एक मजबूत मानसिकता वाली स्त्री का चित्र हमारे समक्ष उपस्थित करती है। शादी के दो–चार दिन बाद ही घर से निकाली स्त्री अपने मजबूत इरादों एवं परिश्रम से अपना ठौर–ठिकाना, सम्पत्ति, सम्मान आदि सब कुछ हासिल कर लेती है। अपने उसी पति की वृद्धावस्था में दुर्गति वह सहन नहीं कर पाती और उसे अपने साथ घर लाकर स्वयं उसकी सेवा करती है।

सांभरिया जी ने अपनी कहानियों में नारी जीवन के विविध आयामों को बखूबी समेटा है। उनके नारी पात्र कमजोर, पीड़ित और डरे हुए नहीं बल्कि आवश्यकता पड़ने पर वीरांगना का रूप भी दिखाते हैं। इनकी कहानियों में नारी हृदय की कोमलता, भावुकता को तो स्थान मिला ही है साथ ही उसके दृढ़ संकल्प एवं निर्भीकता को भी पोषण मिला है। इनके नारी पात्र अपने प्रति होने वाले दुर्व्यवहार को चुपचाप सहन नहीं करते बल्कि उसके प्रति अपने विरोध का स्वर बुलन्द करते है। कहानी 'गाड़िया' में जब जमींदार का बेटा लोहार लूणसिंह की बेटी के साथ दुष्कर्म करने की चेष्टा करता है, तो वह शोर मचा कर अपने माता–पिता को बुला लेती है और उससे अपनी रक्षा करती है। लूणसिंह जब जमीदार के बेटे को मारने निकलता है तो उसकी पत्नी उसे बदनामी के डर से रोकना चाहती है, परन्तु उसकी बेटी अपने अपमान का बदला लेने के लिए अपने पिता का साथ देती है। "शर्म और क्रोध से भरी लड़की बोली– 'मां चुप करो तुम'। वह लूणसिंह से मुख़ातिब हुई – मैं साथ हूँ तुम्हारे।"8 सांभरिया जी की कहानियों में हमें अपनी अस्मिता को पहचानने वाली जागरुक और चेतना सम्पन्न नारी के दर्शन होते हैं।

व्यक्ति से ही परिवार और समाज बनता है, व्यष्टि से ही समष्टि की निर्मिति होती है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था का आदी हो चुका पुरुष यह भूल गया कि नारी की अपनी व्यक्तिगत अस्मिता है। उसे दबा कर, उसका दमन करके एक स्वस्थ और विकसित समाज का निर्माण नहीं किया जा सकता है। चेतना का संचरण व्यष्टि से समस्त की ओर होता है, जब तक नारी स्वयं चेतन नहीं होगी, तब तक समाज का निर्माण एवं विकास नहीं कर सकेगा। उसमें चेतना का संचार करने हेतु उसके अंदर आत्मविश्वास पैदा करना अत्यंत आवश्यक है। डॉ रतन कुमार सांभरिया जी ने अपनी कहानियों में आत्मविश्वास एवं स्वाभिमान से परिपूर्ण नारी पात्रों का सृजन किया है। 'फुलवा' कहानी की पात्र फुलवा, 'बात' कहानी की नायिका सुरती ,चपड़ासन की कहानी की पात्र मीता, 'इत्तफ़ाक' की बुढ़िया, डंक कहानी की मांगी, 'मदारिन' कहानी की पात्र मदारिन आदि ऐसे ही पात्र हैं। सांभरिया जी के नारी पात्र अपने स्वाभिमान, चरित्र, शील आदि के रक्षार्थ किसी भी हद तक जाने को आतुर दिखाई पड़ते हैं। हम देखते हैं कि सांभरिया जी एक सजग एवं जागरूक लेखक हैं जिन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से नारी को सशक्त एवं चेतना संपन्न बनने हेतु प्रेरित किया है।

सन्दर्भ–(1)पुष्पा, मैत्रेयी : खुली खिड़कियाँ, पृष्ठ संख्या– 207 **(2)**बत्रा,सुदेश :सृजन के विविध परिदृश्य, पृष्ठ– प्राक्कथन **(3)**वर्मा,महादेवी : श्रृंखला की कड़ियाँ, पृष्ठ सं.–21 **(4)**सांभरिया, रत्नकुमार : हुकुम की दुग्गी, कहानी–फुलवा, पृष्ठ– 6 **(5)**सिंधु, कामराज(संपादक) : रत्नकुमार सांभरिया की चयनित कहानियाँ– बात, पृष्ठ–78 **(6)**सिंधु, कामराज(संपादक) रत्नकुमार सांभरिया की चयनित कहानियाँ– बात, पृष्ठ–79 **(7)**सिंधु, कामराज(संपादक) रत्नकुमार सांभरिया की चयनित कहानियाँ– मदारिन,पृष्ठ–133 **(8)**सिंधु, कामराज(संपादक) रत्नकुमार सांभरिया की चयनित कहानियाँ– गाड़िया पृष्ठ–108

26.रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में– 'दलित चेतना'

–डॉ0 इन्दु यादव
विभागाध्यक्ष, दयानन्द गर्ल्स (पी0जी0) कॉलेज, कानपुर

दलित साहित्य का जिक्र आते ही सबसे पहले आत्मकथाओं की चर्चा होती है। दलित लेखकों ने साहित्य की अन्य विधाओ की अपेक्षा सबसे ज्यादा समय आत्मकथा लेखन को दिया। दलित साहित्य की शुरूआती रचनाओं के पात्र कमजोर स्थिति में रहते हुए अपने अस्तित्व के लिए प्रतीकात्मक स्तर पर जूझते दिखाई देते हैं। पर इधर कुछ वर्षों से दलित साहित्य के ढाँचे में काफी परिवर्तन आ गया है।

हिन्दी के दलित लेखकों में से एक "रतनकुमार सांभरिया" भी हैं। सांभरिया की कहानियाँ एक सीढ़ी आगे की हैं। उनके पात्रों को अस्तित्व की लड़ाई की जरूरत नहीं है। उनके पात्र अपने सम्मान के लिये संघर्ष करते हैं। सांभरिया जी का मानना है कि दलित कहानियाँ ऐसी होनी चाहिए जो दलित में नए जीवन का संचार करे, न कि उनकी का पहाड़ खड़ा करे। कहानी के पात्र अगर रूआंसे, समझौतापरस्त और हारकर बैठ जाने वाले होंगे तो दलित कहानी को समृद्धि नहीं मिलेगी। सांभरिया जी की कहानी 'मुक्ति', धर्म के नाम पर लोगों की भावनाओं से खेलने की कहानी है। नानक धर्म के नशे में इतना बेसुध हैं कि महंत द्वारा उकसाने पर बेटे को उसकी रक्षा के लिये आगे कर देते हैं। धर्म के लिये बेटे की जान न्यौछावर करने के बाद जब नानक मंदिर में रथ की मूर्ति उतारने के लिए आगे बढ़ता है तो महंत उसे मेहतर जाति का बोल के उसे मूर्ति छूने नहीं देते। इस घटना से नानक को जाति के गठजोड़ की असलियत का भान होता है। उसका स्वाभिमान जाग उठता है। वह तलवार लेकर महंत का वध करने उसके पीछे दौड़ता है।

सांभरिया जी की 'आखेट' शोषणकारी सत्ता से टकराव की कहानी है। असली पिस्तौल और गोली देखकर कहानी का नायक सोमा बुखार में भी पत्नी रेवती को लेकर अपने गांव निकल पड़ता है। वह नानक सिंह से पत्नी की बेइज्जती, माँ की मौत, घर और खेत का बदला लेने जाता है।

सांभरिया जी की 'माण्डी' कहानी में भी सक्रिय टकराव देखा जा सकता है। दानीदास गाय को माण्डी देने जाता है पर उसके मुंह तक पहुंचने से पहले ही सुबे सिंह की पत्नी गाय की रस्सी खींच देती है। माण्डी नीचे गिर जाती है। कुमुद की इस प्रतिक्रिया से पता चलता है कि दलित अब सचेत हो गये हैं। वे हिन्दू धर्म के शोषण के विरोधी हैं। वे ऐसी धार्मिक व्यवस्था को फलने नहीं देना चाहते।

सांभरिया जी की कहानियों में कोई भी स्त्री पात्र कमजोर या हारी हुई नहीं दिखती। 'आखेट' की रेवती और 'माण्डी' की कुमुद भरपूर विद्रोही चेतना का परिचय देती है।

सांभरिया जी की कहानी 'फुलवा' में पद और पैसे के सामने जाति छोटी पड़ जाती है। जो रामेश्वर फुलवा के घर का पानी भी पीना स्वीकार नहीं करता वह बदबू से घबराकर उसी दलित फुलवा के घर की ओर निकल पड़ता है।

सांभरिया जी की अधिकतर कहानियों में गांव की पृष्ठभूमि है। जहाँ जातिगत और आर्थिक शोषण बहुत होता है। 'कला', 'भैंस' और 'डंक' जैसी कहानियाँ इसका अच्छा उदाहरण है।

रत्नकुमार सांभरिया केवल सामाजिक रूप से अस्पृश्य लोगों को अपनी कहानी का पात्र नहीं बनाते। इनकी दलित संवेदना का दायरा काफी विस्तृत है। अनुसूचित जाति या जनजाति के गरीब किसान, श्रमिक, बंधुआ मजदूर, सफाईकर्मी दलित कहानी के पात्र होने का अधिकार पाते हैं। दलित कहानी का मुख्य उद्देश्य इन्हीं उपेक्षित वर्ग को उबारकर उन्हें शिक्षा की ओर उन्मुक्त करना है।

सांभरिया जी की कहानियों में हिन्दू, मुस्लिम, सिख धर्मों एवं विभिन्न जातियों के आर्थिक दृष्टि से कमजोर, निम्न वर्ग, खेहितर मजदूर, विकलांग, यहां तक की पशु पक्षियों तक को जगह मिली है। वे सबसे आत्मीयता से संवाद करते हैं। उनकी कई कहानियों में पशु–पक्षी मौजूद हैं। 'कला' उनकी पशु संवेदना की बेहद मार्मिक कहानी है।

सांभरिया जी की कहानियों में दलित जीवन के तमाम शेड्स मौजूद हैं। इनकी कहानियों में ज्यादातर दलित समाज के बदलते यर्थात् और दलितों की बदलती सामाजिक हैसियत के विषय हैं। इनकी कहानियों के जरिये भारतीय समाज के जातिवादी चरित्र के तमाम पेंचोखम को समझा जा सकता है।

सांभरिया जी अतीत में नहीं उलझते हैं। इनकी निगाह दलित समाज के वर्तमान पर है। इनकी कहानियाँ अतीत के भार से मुक्त दिखाई पड़ती हैं। वे दलित समाज की वर्तमान तस्वीर को उभारते हैं। सांभरिया जी अपने कहानी संग्रह 'दलित समाज की कहानियाँ' की भूमिका में लिखते हैं– "वातावरण का निर्माण करते, दलितों की इन्हीं पीड़ाओं का पहाड़ खड़ा कर देना दलित कहानी नहीं है। .... उसका अतीत केवल पृष्ठभूमि के रूप में झलक सा प्रतीत हो, कहानी में कथानक पर हावी न हो, उस

अतीत की पृष्ठभूमि में दलित किस तरह संघर्ष कर नए सामाजिक वातावरण में समायोजित होता है– देशकाल की यह दरकार दलित कहानीकार के लिए अपेक्षित है।''

सांभरिया जी की कथा भाषा में स्थानीय शब्दों और वाक्यों का प्रयोग कहानी के भूगोल के साथ उसकी सांस्कृतिक संवेदना से जुड़ने में पाठक की मदद करती है। इनकी कथा भाषा ढेर सारे सुंदर और व्यंजन बिम्बों से भरी हुई है। ये सारे बिंब देशज और लोक से जुड़े हुए हैं। कहावतों का प्रयोग इनकी भाषा को लोक के और करीब ले जाता है। लोक में प्रचलित कहावतों और मिथकों के सहारे लेखक कई बिंब बनाता है। ऐसा ही एक बिंब सांभरिया जी को अत्यंत प्रिय है– 'द्रौपदी के चीर जितनी लंबी सांस'। यह बिंब सांभरिया जी की कई कहानियों में मौजूद है।

दलित साहित्य के अध्येता ''डॉ0 बजरंग बिहारी तिवारी'' दलित कहानियों के कथ्य में दलित उत्पीड़न की केंद्रियता से पैदा होने वाली सकारात्मकता की ओर संकेत करते हैं। वे कहते हैं कि ''एकमात्र उत्पीड़न को ही कहानी रचना का उत्प्रेरक मानने की जिद दलित कहानियों को एकरस बना देती है। इस प्रवृत्ति से दलित जीवन के दूसरे पहलुओं की उपेक्षा होती है।''

सांभरिया जी की कहानियाँ इस रूढ़ि और एकरसता को तोड़ती हैं। इनकी कहानियाँ दलित समाज की वर्तमान तस्वीर प्रस्तुत करती हैं। इसमें दलितों के शोषण के दृश्य तो हैं ही, लेकिन उससे ज्यादा दलित प्रतिरोध और सामाजिक परिवर्तन में दलित समाज की आस्था के दृश्य हैं। इनकी कहानियाँ पाठकों में दलितों के प्रति दया नहीं जगातीं, बल्कि उनकें संघर्षों का साझीदार बनाती हैं। सांभरिया जी की कहानियाँ दलित विमर्श के विस्तार की परिपक्व कहानियाँ हैं। इनके माध्यम से वे लगातार दलितों को समाज की मुख्यधारा से जोड़ने का सार्थक प्रयास कर रहे हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1.दलित समाज की कहानियाँ– रत्नकुमार सांभरिया, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण– 2011 **2.**कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, इतिहासबोध प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007 **3.**बजरंग बिहारी तिवारी, दलित साहित्य : एक अन्तर्यात्रा, नवारूण प्रकाशन, गाजियाबाद, 2015

27.रत्नकुमार सांभरिया के कथा साहित्य में दलित चेतना

–डॉ0फतेह सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष : हिन्दी
शोध एवं अध्ययन केन्द्र,नेशनल पी0जी0 कालेज भोगाँव,मैंनपुरी, उ.प्र.

कथाकार रत्नकुमार सांभरिया का कथा–साहित्य हमारा साक्षात्कार उन अमानवीय स्थितियों, घटनाओं और प्रसंगों से करवाता है जो निस्संदेह मानवता के नाम पर कलंक है। एक जीते–जागते इंसान को व्यवस्था के भीमकाय पहिये ने इतना निरीह पंगु और असहाय क्यों बना दिया है ? स्वयं लेखक के शब्दों में "एक ओर अभावों में जीना, दूसरी ओर दबावों में बने रहना, खुद को जीवित रखने के लिए मात्र 'रोटी उसका लक्ष्य रह गई। जिस प्रकार रज्जु के निरन्तर आने–जाने से पत्थर भी घिस घिस कमजोर होता जाता है, उसी प्रकार वर्णव्यवस्था की अनवरत प्रताड़ना ने शूद्र जीवन को अंत्यज बना दिया। इस प्रकार लेखक का सृजन दलित जीवन का दीपक है। जिसमें समाज की मजबूरियां भी हैं और असंतोष भी। लेखक के अन्तर्मन में जो आन्तरिक पीड़ा और व्यवस्था के प्रति जो घृणा है उसी का सृजनात्मक विस्फोट इनकी कहानियों में हुआ है। सांभरिया की कहानियां अतीत और अंधेरों का हाहाकार करते दलित साहित्य के अधिकांश लेखकों जैसी नहीं है। इनमें सुखद व स्वर्णिम भविष्य के राजपथ के जीवन चित्र हैं। सरल भाषा में आंचलिक शब्दों का प्रयोग करते हुए सांभरिया, पिछड़े, दलितो, शोषितों और निर्धन, अनपढ़, बेसहारा समुदाय में कहानियों के माध्यम से अदम्य ऊर्जा का संचार करते हैं।

सांभरिया के कथा–साहित्य में 'दलित–चेतना' के विवेचन से पूर्व दलित चेतना' का अर्थ जान लेना उचित होगा सामान्यतः 'दलित' शब्द का अर्थ 'पददलित' से लिया जाता है। अर्थात् जिसे दबाया गया है, कुचला गया है या उत्पीडित किया गया है। "चेतना" शब्द से तात्पर्य जागरूकता से है। अर्थात् सामाजिक प्राणी होने के नाते आपका अपने राष्ट्र और समाज के प्रति क्या दायित्व और कर्तव्य होने चाहिए का बोध होना ही 'चेतनहै लेखक के शब्दों में कहें तो दलित कहानी लिखते इस प्रकार के कथानक का चयन किया जाए जो उगते सूरज की अरूणिमा जैसी ताजगी और चेतना लिए हो डूबते सूर्य से हारे थके कथानको पर श्रेष्ठ दलित कहानी का विकास नहीं हो सकता कथाकार की पहली सफलता का आंकलन इसी में निहित है कि उसने किस सजगता के साथ अपने प्लाट का चयन किया है,

जिस पर वह दलित कहानी रूपी इमारत खड़ी करने जा रहा है।"1

दलित शब्द का अर्थ और परिभाषाः–

"दलित शब्द वास्तव में दलित पैंथर आन्दोलन द्वारा दिया गया था और वह आन्दोलन को परिभाषित करने का औजार था, जिसने स्वयं को अछूत–बहिष्कृत, मजदूरों–किसानों के मुक्ति आन्दोलन के रूप में परिभाषित किया था।"2

"दलित : (वि.) (सं.) (स्त्री दलिता) 1. मसला, रौंदा या कुचला हुआ। 2. नष्ट किया हुआ।"3

"दलित वर्ग (संज्ञा) समाज का वह वर्ग जो सबसे नीचा माना जाता गया हो अथवा दुखी हो और उच्च वर्ग के लोग उठने न देते हों। डिप्रेस्ड क्लास । "4

"दलित (भू.क.कृ) (दलक्त) 1. टूटा हुआ, चीरा हुआ, फाड़ा हुआ, फटा हुआ, टुकड़े–टुकड़े हुआ। 2. खुला हुआ, फैलाया हुआ।" 5

"ज्ञान शब्दकोश में दलित का अर्थ 'रौंदा, 'कुचला', 'दबाया हुआ', 'पदाक्रांत के साथ हिन्दुओं में वे शूद्र, जिन्हें अन्य जातियों के समान अधिकार प्राप्त नहीं है, भी दिया है।" 6

डॉ. भीमराव अम्बेडकर के अनुसार "अंग्रेजी में डिप्रेस्ड व मराठी में बहिष्कृत तथा अस्पृश्य शब्द जिन लोगों के लिए इस्तेमाल किये मराठी व हिन्दी साहित्य में उन्हें आज दलित कहा जाता है। इस दायरे में व्यावहारिक रूप से वही लोग अधिक आते हैं जिन्हें भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति का दर्जा दिया गया है।"7

सुपरिचित दलित रचनाकार रत्नकुमार सांभरिया के अनुसार – "दलित कहानी से अभिप्राय एक ऐसी अनूठी रचना से है, जो दलित में नये जीवन का संचार करती हो। कथाकार दलित हो या गैर–दलित, दलित कहानी की थीम हाथ में लेते समय उसे शोधकर्ता की भाँति सावचेत रहना है।"8

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि लेखकों द्वारा जो परिभाषाएँ दी गई हैं, उनमें काफी कुछ व्यापक और उदारवादी दृष्टिकोण पर आधारित है। उनके अनुसार 'दलित' शब्द का अर्थ 'कुचला हुआ', 'शोषित', 'पददलित' है।

अब कहा जा सकता है कि दलित वर्ग के साथ सदियों से अमानवीय व्यवहार होता आ रहा है। अतः इस वर्ग का अपनी पहचान के लिए संघर्ष ही दलित साहित्य का वर्ण्य विषय है। दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकी के शब्दों में कहे तो– "दलित साहित्य जन साहित्य है यानि 'मॉस लिटरेचर' है। सिर्फ इतना ही नहीं, 'लिटरेचर ऑफ एक्सन' भी है। मानवीय मूल्यों की भूमिका पर सामन्ती मानसिकता काआक्रोशित जन संघर्ष है। इसी संघर्ष और विद्रोह से उपजा है– दलित साहित्य ।" 9

रत्नकुमार सांवरिया के कथा साहित्य में आक्रोश एवं विद्रोह के स्वर दिखाई पड़ते हैं उनका आक्रोश उनकी कहानियों में एक थीम है और एक प्लॉट उपलब्ध कराता है उनका आक्रोश सामाजिक राजनीतिक आर्थिक और धार्मिक सभी रूपों में अभिव्यक्त हुआ है उनकी अधिकांश कहानियां दलितों को केंद्र में रखकर लिखी गई है इसलिए वह ऊपर से देखने पर वे दलितों के पक्ष में सहानुभूति पैदा करने वाले दलित लेखक प्रतीत होते हैं। लेकिन ध्यान से देखेंगे तो उनकी एक भी कहानी ऐसी नहीं जो दलितों पर होने वाले अत्याचारों, छूआछूत, शोषण, भेद–भाव का अतिरंजित चित्र खींचने के बाद निस्सहाय क्रंदन के बीच समाप्त हो जाती है। उनकी कहानी में बर्दाश्त की हदें टूटने के बाद दलित अत्याचारी पर थूकता है (गूंज), आक्रोश से मुट्ठियाँ भींचकर दांत किटकिटाते हुये हाथ में लाठी उठाता है (डंक), बगावत करता है (चपड़ासन), बन्दूक उठाता है (झझा, आखेट) और अस्मत के बदले अस्मत की मांग करता है (शर्त) गाड़िया का लूणसिंह लाख प्रयासों के बावजूद पुलिस एफ.आई.आर. दर्ज करवाता है (गाड़िया)।"शर्त' कहानी में लेखक का आक्रोश अपने चरम पर है। जिसमें एक दलित की बेटी के साथ गाँव के मुखिया के बेटे द्वारा बलात्कार की घटना है। जिसमें दलित बाप अस्मत के बदले अस्मत की मांग करता है। आलोचकों ने इस कहानी पर आरोप लगाया है कि लेखक ने स्त्री पक्ष को अनदेखा किया है। 'स्त्री' के साथ बलात्कार अपने आप में जघन्य अपराध एवं शर्मनाक घटना है। यह जानते हुये भी उसके बदले में दूसरे बलात्कार की माँग कहाँ तक उचित है ? स्त्री–विमर्श के दरम्यान इस कहानी की आलोचना उचित जान पड़ती है। किंतु व्यापक दृष्टि से देखा जाए तो लेखक कहानी में स्वयं बलात्कार जैसी जघन्य घटना तथा उसके पश्चात् उत्पन्न एक और पुत्री के लिए अपमानजनक स्थितियों, सामाजिक उत्पीड़न एवं बहिष्कार के प्रति सचेत है। यह सदियों से इसी प्रकार के अपमानिक कृत्यों एवं उत्पीड़न का शिकार होते आये दलित व्यक्ति का आक्रोश एवं बगावत का भाव लिये हैं। यह एक विवश पिता के आहत सम्मान के पश्चात् उसके मुख से निकले शब्द है जो इस सामाजिक विषमता के सम्मुख विद्रोह है न कि स्त्री अस्मिता पर आघात। कथाकार सांभरिया के कथा–साहित्य में आये आक्रोश एवं विद्रोह का अन्तिम रूप है धर्म से संबंधित धर्म और राजनीति के रथ पर आरूढ होकर सवर्णों ने ऐसी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था स्थापित की कि निम्न जातियों को युगों–युगों तक पीड़ा का दर्द सहना पड़ा। लेखक अपनी कहानियों के जरिए इस जड़ स्थिति को तोड़ने का साहस दिखाते हैं। मुक्ति कहानी में धर्म पर लेखक का आक्रोश अपनी चरम सीमाओं को छूता हुआ नजर आता है।

लेखक के मतव्य के स्पष्टीकरण में यह कथन अवलोकनीय है "जो धर्म एक को ज्ञानी बनाकर दूसरे को अज्ञानी रखे वह धर्म नहीं,

बल्कि लोगों को बौद्धिक गुलाम बनाकर रखने वाला मंदिर रूपी जेलखाना है। जो धर्म एक के हाथ में शस्त्र देता है और दूसरे को निःशस्त्र रहने का आदेश देता है, वह धर्म न होकर परतंत्रता की बेड़ी है। जो धर्म कुछ लोगों को धनोपार्जन की खुली छूट देता है और दूसरे को अपने जीविकोपार्जन के लिए दूसरों पर निर्भर रहने का आदेश देता है, वह धर्म न होकर कुछ स्वार्थियों का धर्म है।"10 चमरवा, फुलवा बदन दबना और डंक ऐसी ही कहानियां है जो धर्म के प्रति लेखक के आक्रोश एवं विद्रोह का रूप लिये खड़ी है। धर्म की ध्वजा कैसे कुतर्का और अन्धी परम्पराओं के सहारे फहराती है इसको 'चमरवा' कहानी बखूबी उद्घाटित करती है। 'फुलवा में इस बदलते दौर में भी रामेसर जैसे सामती सोच के लोग हैं जो ऊँचे पायदान पर पहुँच चुकी फुलवा को सम्मान देने के लिये आज भी तैयार नहीं ? जबकि वैश्वीकरण के इस दौर में सभी को समता व स्वतंत्रता से जीने का पूर्ण अधिकार लोकतांत्रिक सरकार के रामराज्य में प्राप्त है। "डॉ. अंबेडकर के अनुसार समता, आजादी, भाईचारा लक्ष्य का नहीं, बल्कि जन्मसिद्ध अधिकार है मनुष्य का। इन्हें हासिल करने के लिए दलित समाज को शिक्षित होना संघर्षरत रहना और संगठित होना लाजिमी है।"11 रत्नकुमार सांभरिया के कथा–साहित्य में आक्रोश व विद्रोह का रूप बहुआयामी है जो सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक सभी स्तरों पर प्रकट हुआ है। वे जड़ एवं पुरातन हो चली मान्यताओं व धारणाओं पर करारी चोट करते हैं। वे कहानी से दलित समाज को स्वस्थ रूप देना चाहते हैं। साम्यवादी विचारधारा में विश्वास रखने वाले सांभरिया का मानना है कि कोई भी समाज केवल एक समुदाय विशेष के उन्नत हो जाने से उन्नत नहीं हो सकता, बल्कि वह समस्त जातियों के समान उत्थान से उन्नत माना जाना चाहिए।

कथाकार सांभरिया की कहानी 'मुक्ति में अछूत समझी जाने वाली जातियों के प्रति सवर्ण जातियों का घृणा भाव किसी–न–किसी रूप में आज भी मुखर है और इस भेदभाव में धर्म के ठेकेदार पण्डे, महत आदि आग में घी का काम करते हैं। "महत ने ऊँचे कंठ से नानक को हड़की मारी अरे नानकीय! तू मेहत्तर है। झाडू वाले हाथ मूर्ति नहीं छूते।"12 सांभरिया की लघुकथा 'द्रोणाचार्य जिन्दा है इसका जीता–जागता प्रमाण है। परीक्षा में गुरूजी के बेटे से अधिक अंक उसी गांव के मोची के पुत्र रामदीन को मिलते हैं। इस पर गुरुजी की प्रतिक्रिया निम्नवत शब्दों में फूट पड़ती है "रामदीन स्साला मोची का पूत। इतने अंक ले मरा कि पूरी कक्षा के सिर पर चढ़ बैठा मेरे खुद के लड़के से भी ऊपर) गद थूककर ऑट लेगा मुझे कि गुरुजी के लड़के से भी ऊपर मोची का लड़का ज्यादा होशियार है, जिसका बुढऊ जूते सीकर उसे पढ़ा रहा है। " 13 सांभरिया के जाति व वर्ण संबंधी विचारधारा जानना है तो इसके लिए उनकी 'चमरवा' कहानी पढ़ना पर्याप्त है। इसमें लेखक ने बताया है कि दलित भी अनेक भेदों–उपभेदों में बंटा है। जिनमें से कुछ रोटी का संबंध तो रखते है, लेकिन बेटी का संबंध बिल्कुल नहीं रखते तथा आपस में भी जाति–भेद का पूर्ण पालन करते हैं। यहां तक की छुआछूत का भी चलन है जो आज तक भी है। 'चमरवा कहानी ब्राह्मणवादी सोच तथा सामंती मानसिकता पर चोट करती जातीय व्यवस्था के गढ़ को डहाती नजर आती है। ग्रामीण परिवेश में जातिगत भावना को उकेरती कहानी 'फुलवा' है। इस बदलते दौर में भी रामेसर जैसे सामती सोच के लोग हैं जो ऊँचे पायदान पर पहुंच चुकी फुलवा को सम्मान देने के लिए आज भी तैयार नहीं फुलवा से मदद लेने की सलाह पर पण्डिताइन से रामेसर कहता है "दादी, फुलवा सोने की हो जाए रहेगी उसी जात की। मैंने तो उसका घर का पानी तक नहीं पिया धर्म भ्रष्ट होने से मर जाना अच्छा समझता है रामेश्वर सिंह ।"14 लेखक बताता है कि आज जमींदारी व्यवस्था तो खत्म हो गई. किन्तु इनकी सोच में विशेष बदलाव नहीं आया है। यही कारण है कि मन से चाहते हुए भी फुलवा के घर का नाश्ता करने में संकोच करता है "कॉफी, नमकीन, बर्फी और लड्डू रामेसर के सामने रखे थे। उसका मन बार–बार ललचा रहा था। खा–पीकर चट कर जा, क्या धरा है, जात–पांत जैसी छोटी बात में.. । उसका धर्म आड़े आ गया था।"15

दलित चेतना एक ऐसी अवधारणा है जो आधुनिक मूल्यों, संवैधानिक मान्यताओं, सामाजिक न्याय एवं जनतांत्रिक संरचनाओं के संघर्षो से विकसित हुई है। इसमें धार्मिक जीवन की विकृतियों के विरुद्ध मानव की प्रतिष्ठा का चिंतन है। यह देश के सबसे बड़े कानून भारतीय संविधान में दलितों, आदिवासियों एवं महिलाओं के उत्पीड़न के हजारों वर्षों की गाथा की समाप्ति हेतु प्रदत्त प्रावधान तथा उसके अनुपालन में उठने वाले स्वरों और जन आन्दोलनों से शक्ति लेता है। परन्तु इन सब प्रयासों एवं स्थितियों के बावजूद जाति का डंक कैसे चुभता है, को लेखक ने 'डंक' कहानी में उजागर किया है। यह जातीय दंश का ही घिनौना रूप है कि खेरा से विपरीत हालात में बेटी के ब्याह में ली गई आर्थिक मदद से उसके जातीय अहं को ठेस पहुँचती है। मंदिर कमा रहा कर्मकांडी सतना वर्ण व्यवस्था को वर्णमाला की तरह मानता था अमिट।लेखक सांभरिया का मत है कि आज का जमाना सामाजिक जागरण का है, और जिन विडवनाओं को हम हिन्दूधर्म से दूर करना चाहते हैं, आवश्यक है कि उसे हम दलित समाज से भी दूर करें। यदि दलित भी हिन्दू समाज की इन्हीं ऊँच–नीच की मान्यताओं में बँधा रहकर जातियों–उपजातियों एवं गोत्रों में बंटा रहेगा तो हमारी आवाज में तो दम होगा ही नहीं, ऐसे में हम दूसरों को भी इस व्यवहार को छोड़ने के लिए बाध्य नहीं कर सकेंगे। कुछ ऐसा ही आह्वान करती उनकी कहानियां है बिपर सूदर एक कीने, चमरवा और डंक जिनमें लेखक ने संकीर्ण मानसिकता से ऊपर उठकर व जातीयता की केंचुल से बाहर निकलकर दलितों के लिए प्रतिरोध की भावना जगाती है। लोग आज जाति प्रथा व छुआछूत का प्रतिकार करने लगे हैं। लेखक के शब्दों में "जात की फांक थूक का पतासा है। एक कोख जाये हैं, हम दोनों। यहाँ छोटे भाई जीवण के प्रति बड़े भाई श्यामू की आपसी एकता को दर्शाया गया है जो जाति के नाम पर दोनों भाई

अलग–अलग बटे हुये हैं। दोनों को कहानी के अंत में जाति व्यवस्था का प्रतिरोध करते हुये एक होता दिखाया है।

रत्नकुमार सांभरिया के कथा–साहित्य के मूल्यांकन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनका समग्र साहित्य दलितों को चेतना की मिशाल थमाकर उसके प्रकाश में आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

निष्कर्षः–दलित साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर रत्नकुमार सांभरिया का सृजन दलित जीवन के सच्चे यथार्थ, बीहड़ सत्य, अनन्त छटपटाहट, तीव्र आक्रोश एवं विद्रोह से रू–ब–रू कराता हुआ, एक बहुत बड़ा प्रश्न चिह्न उस सामाजिक व्यवस्था के सामने लगा देता है जिसने ब्राह्मणवाद, जातिवाद और सामंतवाद के झण्डे तले बड़ी निष्ठुरता और निर्ममता से दलितों का दमन किया है। ऐसे ही प्रश्नों का जवाब माँगता लेखक का कथा–साहित्य प्रश्न करता है किसने दिया उन्हें यह अधिकार ? क्यों रौंदा गया समाज का एक लंबा–चौड़ा तबका ? इसलिए क्यों चुप है ? धर्म क्यों बगले झांकता है ? अलबत्ता, अमानवीयता का यह तांडव तो किसी न किसी स्तर पर आज भी विद्यमान है।अंबेडकरवादी विचारधारा से प्रभावित कथाकार सांभरिया की कहानियां समता, स्वतंत्रता व बंधुत्व के भावों को हृदयंगम कर रची गई हैं। जो दलित कहानी की थीम तैयार करती हैं। दलित कहानी की नयी परिभाषा गढ़ी हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः–

(1)सांभरिया, रत्नकुमार दलित समाज की कहानियां, पृ. मेरी बात / 9–10 **(2)**तेजसिंह (सं.) अपेक्षा, अंक–15 अप्रैल–जन. 2006, पृ.16 **(3)**पाण्डेय, मैनेजर (सं.) अनभै सचा पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ.172 **(4)**नवल नालन्दा विशाल शब्द सागर आदिश बुक डिपो, नई दिल्ली, 2013, पृ.568 **(5)**आप्टे, वामन शिवराम संस्कृत हिन्दी शब्दकोश रथा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली,2003, पृ.11 **(6)**प्रो. चमनलाल दलित साहित्य एक मूल्यांकन, पृ.14 **(7)**गुप्ता, रमणिका (स) : युद्धरत आम आदमी, संयुक्ताक 41–42, नवलेखन प्रकाशन, हजारी बाग झारखण्ड पृ.15 **(8)**सामरिया, रत्नकुमार दलित समाज की कहानियां, पृ. मेरी बात / 10 **(9)**पड्या, मनोज (सं.) : माही सृजन, अंक–1, बाँसवाड़ा, 2013, पृ. 34 **(10)**शर्मा, कुमकुम (स.) दलित साहित्य विशेषांक, सित. अक्टू 2002, पृ 55 **(11)**उपरिवत्, पृ. 21 **(12)** सामरिया, रत्नकुमार दलित समाज की कहानियां, पृ. मक्ति / 219 **(13)**सांभरिया, रत्नकुमार चाँग व अन्य लघुकथाएँ, पृ. द्रोणाचार्य जिंदा है/15 **(14)**सांभरिया, रत्नकुमार दलित समाज की कहानियां, पृ. फुलवा / 27 **(15)**यथावत्, पृ. फुलवा / 24

28.रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में दलित चेतना

–[1]शिल्पी शर्मा, [2]शिखा पाण्डेय

[1]असिस्टेंट प्रोफेसर(अंग्रेजी) [2]असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी)

गिन्दो देवी महिला महाविद्यालय, बदायूँ

दलितों और पीड़ितों की आवाज़ को साहित्य की अनेक विधाओं के माध्यम से समाज के सामने प्रस्तुत किया गया है। जहाँ कई लेखको ने दलितों को सदैव पीड़ित एवं उपेक्षित प्रस्तुत किया है, वहीं रत्नकुमार सांभरिया जी ने दलितों को सशक्त एवं जागरूक रूप में अपनी कहानियों में स्थान दिया है। सांभरिया जी ने अपनी कहानियों में दलितों के उस यथार्थ जीवन को सामने रखा है, जो जातिवादी अहं से पोषित सामाजिक–व्यवस्था को कठघरे में खड़ा कर देता है। उन्होंने उस सशक्त दलित वर्ग का चित्रण किया है, जो अब पीड़ित पद – दलित एवं शोषित रहने को बिल्कुल तैयार नहीं है। इस शोध–लेख में सांभरिया जी की कहानियों में चित्रित दलितों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति का वर्णन किया गया है। साथ ही उन कहानियों पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है, जिनमें सांभरिया जी ने दलितों को सशक्त रूप में प्रस्तुत किया है।

रत्नकुमार सांभरिया जी के साहित्य में अंबेडकर जी की विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। हरिनारायण ठाकुर ने अपने आलेख में अंबेडकर के विचारों को स्पष्ट करते हुए लिखा –" दलित चेतना आज जाति और वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध बुद्ध की करुणा, मैत्री और समानता के संदेश और कबीर आदि संतों की सामाजिक क्रांति तथा अंबेडकर की विचार– क्रांति एवं संघर्ष से दलित तत्व के उसी कलंक को मिटाना चाहती है।"1 सांभरिया जी समाज की उन सच्चाइयों से रूबरू करवातें हैं, जो समाज के लिए सदियों से कलंक के रूप में विद्यमान है। समाज की एक ऐसी व्यवस्था जो इंसान को भी जानवरों के सदृश निरीह एवं असहाय बना देती है। सदियों से चली आ रही ऐसी वर्णव्यवस्था में समाज के एक वर्ग को इतना ज्यादा शोषित बना दिया कि बहिष्कृत सा जीवन जीने के लिए मजबूर हो गया। सांभरिया जी अपने दलित–लेखन संबंधी प्रतिमान एवं मानदंडो पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि– "दलित कहानी लिखते समय इस प्रकार के कथानक का चयन किया जाए, जो उगते सूरज की अरुणिमा जैसी ताजगी और चेतना लिए हो। डूबते सूर्य से थके – हारे कथानकों पर श्रेष्ठ दलित कहानी का विकास नहीं हो सकता।"2 उनकी कहानियाँ दलितों के लिए उस दीपक की भांति हैं, जो उनका पथ प्रदर्शन करने में उनकी सहयोगी बन

सकतीं हैं। उन्होंने अपने मन के आक्रोश एवं पीड़ा को कहानियों के माध्यम से समाज के सामने रखा है। उनका मंतव्य स्पष्ट है कि सदैव पीड़ितों का जीवन जीने वाले दलित अब अपने अधिकारों को भली–भांति समझ चुके हैं तथा उन्हीं अधिकारों को प्राप्त करने के लिए आवाज़ उठाने से भी पीछे नहीं हटेंगे।

हरियाणा के रेवाड़ी जिले में सन् 1956 में जन्मे रत्नकुमार सांभरिया जी ने समाज में व्याप्त जातिवादी अन्याय को अपनी कई कृतियों में चित्रित किया है। उन्होंने दलित – केंद्रित साहित्य की रचना कर राजस्थान के साहित्यक मंच पर उच्च स्थान प्राप्त किया है। उनके पांच कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'मुंशी प्रेमचंद और दलित समाज' शीर्षक से उनकी एक आलोचनात्मक कृति भी प्रकाशित हुई है। उनकी रचनाओं को अंग्रेजी, गुजराती, मराठी, पंजाबी आदि कई भाषाओं में अनूदित भी किया जा चुका है। उनकी अधिकांश कहानियों के कथानक का केंद्र दलित वर्ग ही है। अन्य दलित लेखक जहाँ अपनी रचनाओं में दलितों की पीड़ाओं का पहाड़ प्रस्तुत करते हैं, वहीं सांभरिया जी अपनी कहानियों में दलितों को शोषित परंतु जागरूक वर्ग के रूप में प्रस्तुत करते हैं। दलितों को केंद्र में रखते हुए सांभरिया जी ने उन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक विचारधाराओं को समाज के सामने रखा है, जिनमें की बदलाव की अत्यंत आवश्यकता है। उन्होंने अपनी कहानियों में अत्याचार, छुआछूत, शोषण, भेदभाव का जो चित्र प्रस्तुत किया है, वह उस शोषण की समाप्ति के साथ पूरा होता है। उनकी किसी भी कहानी का दलित पात्र अत्याचार सहकर बैठा हुआ नज़र नहीं आता, बल्कि वह सहनशक्ति की सीमा पार होते ही विद्रोह का स्वर मुखरित करता हुआ खड़ा पाया जाता है। सांभरिया जी की कहानी 'शर्त' में लेखक ने जातिवादी व्यवस्था पर कड़ा प्रहार किया है। गांव के मुखिया का पुत्र जब एक दलित की पुत्री का बलात्कार करता है, तो किस प्रकार मुखिया परिवार को तिरस्कार झेलना पड़ता है, इसका अत्यंत सुंदर उदाहरण हमें इस कहानी में देखने को मिलता है। अपने जाते हुए गर्व एवं इज्जत को बचाने के लिए मुखिया उस दलित के साथ समझौते का हर संभव प्रयास करता है। वह दलित अपनी आबरू का सौदा पैसों से नहीं करता और न ही अपनी बेटी का विवाह ही उस बलात्कारी के साथ करना उचित समझता है। वह न तो इतना सक्षम है कि पुलिस थाने के चक्कर काट सके और न ही सपरिवार जहर खाकर जान देना चाहता है। वह तो केवल अपनी इज्जत का बदला लेना चाहता है। वह दलित एक पुरुषवादी शर्त पर सहमति देता है जो कि है– बेटी की इज्जत के बदले बेटी की इज्जत। भले ही यह शर्त अमानवीय एवं स्त्री विरोधी हो, भले ही समाज के लिए एक घृणित कार्य हो परंतु एक दलित की यह शर्त जातिवादी समाज को सही आईना दिखाती है। एक दलित का यह बगावत का स्वर स्पष्ट चेतावनी है कि वह अब किसी भी प्रकार उच्च जाति के शोषण को स्वीकार नहीं करेंगे। एक दलित की इज्जत उतनी ही मूल्यवान है, जितनी की एक उच्च जाति की।

आज भी समाज के छोटे गांवों एवं कस्बों में दलितों के साथ वैसा ही व्यवहार किया जाता है जैसा कि सदियों पूर्व किया जाता था। गांव का दलित आज भी इतना जागरूक नहीं है कि वह अपने अधिकारों को जान सके। आज भी कई स्थानों पर उच्च जातियों को देवता सदृश पूजा जाता है तथा दलितों के साथ बिना किसी गलती के अपराधियों का सा व्यवहार किया जाता है। सांभरिया जी ने अपनी कहानी 'बदन दबना' में एक ऐसी प्रथा का चित्रण किया है– जो आज के समय में अप्रासंगिक लगती है। जमींदार हल्का सिंह पैसों के बदले दलितों को पांच वर्ष के लिए अपनी चाकरी पर रख लेता है। उनसे हाथ–पैर दबवाने का कार्य लेता है। पांच वर्ष के लिए वह दलित उसके लिए गुलाम सा हो जाता है। जमींदार की इच्छा के विरुद्ध वह कुछ भी नहीं कर सकता। यहाँ तक कि बदन दबाना पूछाराम अपनी बहन के विवाह तक में शामिल होने की अनुमति नहीं प्राप्त कर पाता। अंत में वह विद्रोह का स्वर मुखरित करता है। अंबेडकर जी के विचारों से प्रभावित सांभरिया जी दलितों की मृत आत्मा में अपनी कहानियों के माध्यम से प्राण फूंकने का कार्य करते हैं।

सांभरिया जी की कहानियों के पात्र जाति एवं पैसे दोनों से ही दलित हैं। वे दलित जो समाज में कोई स्थान प्राप्त नहीं कर पाते, वे दलित जो कि सरकार के अनेक प्रयास एवं योजनाओं के बाद भी उनका लाभ नहीं उठा पाते, वे दलित जो कि उच्च जाति को ईश्वर सदृश मानते हैं, वे दलित जो अपनी दुर्दशा को ही अपनी नियति मान लेते हैं, सांभरिया जी इन्हीं दलितों को जागरूक करने का प्रयास अपनी कहानियों के माध्यम से करते हैं। अपनी कहानियों में वे इन्हीं दलितों को निम्न से उच्च स्थिति को प्राप्त करता हुआ दिखाते हैं एवं इंगित करते हैं कि यदि वे इच्छा करे, प्रयास करें तो अपने नारकीय जीवन को बदलकर समाज में बराबरी का अधिकार प्राप्त कर सकते हैं।

'फुलवा' कहानी में सांभरिया जी ने एक ऐसी दलित स्त्री का चित्रण किया है, जो जमींदार की सेवा–टहल कर के अपने पुत्र को पढ़ा लिखाकर एस.पी. बनाती है तथा वह अपने पुत्र के साथ शहर में जाकर एक सुखी और संपन्न जीवन बिताती है। आर्थिक एवं सामाजिक रूप से संपन्न फुलवा के घर वही

जमींदार अपने पुत्र की नौकरी के लिए सिफारिश लेकर जाता है। इस प्रकार सांभरिया जी ने फुलवा कहानी में जमींदार रामेश्वरसिंह के जातिगत दंभ को चूर–चूर होते एवं जातिवादी बेड़ियों को टूटते हुए दिखाया है।सांभरिया जी ने इस कहानी के माध्यम से यह संदेश दिया है कि जाति नहीं बल्कि पैसा व्यक्ति को दलित बनाता है। कहानी में पंडिताइन रामेश्वर से कहती है कि– "अब तो पद और पैसे का जमाना है, जांत–पांत का नहीं।"3 यह कहानी एक ऐसे समाज को चित्रित करती है, जिसमें एक दलित अपनी जागरूकता, शिक्षा एवं प्रयास से समाज में बराबरी का हक प्राप्त करता है।

धर्म के नाम पर उच्च जातियां हमेशा से दलितों को अपना शिकार बनाती रही हैं। सवर्णों ने एक ऐसी जाति व्यवस्था का जाल बना रखा है, जिसमें सदैव से ही दलित उलझे रहे हैं। सांभरिया जी ने इस स्थिति को समाप्त करने का प्रयास अपनी कहानियों के माध्यम से किया है। कहानी 'मुक्ति' के माध्यम से दलितों को यह बताने का प्रयास किया है कि किस प्रकार सवर्ण उनकी धार्मिक भावनाओं का दुरुपयोग अपने स्वार्थ के लिए करते हैं। गांव की रथ–यात्रा में सांड के आ जाने से व्यवधान उत्पन्न हो जाता है। जहाँ सब खड़े तमाशा देखते रहते हैं। रथ पर सवार महंत मेहतर नानक को धर्म की दुहाई देकर मदद की गुहार लगाता है। धार्मिक रूप से भावुक नानक अपने बेटे चंदू को सांड का मुकाबला करने भेज देता है। इस मुकाबले में चंदू गंभीर रूप से घायल हो जाता है। भावावेश से आतुर नानक जब मूर्ति उतरवाने के लिए आगे बढ़ता है, तब वही महन्त उसे जातीय शब्द कहकर दुत्कारता है तथा उसे मूर्तियां छूने से दूर रहने को कहता है। सच्चाई का ज्ञान होते ही नानक का स्वाभिमान जाग जाता और वह वह महन्त का वध करने के लिए तलवार उठा लेता है। यह कहानी दिखाती है कि धर्म की आड़ में दलितों के साथ दोहरा व्यवहार किया जा रहा। इसी प्रकार का एक प्रसंग उपन्यासकार मुल्कराज आनंद के अंग्रेजी उपन्यास 'अनटचेबल' (अछूत) में देखने को मिलता है। समाज में जहाँ जमादार की परछाई से भी लोग परहेज करते हैं, वहीं अपनी कामवासना को पूरा करने के लिए एक पुजारी जमादार की पुत्री के साथ मंदिर जैसे पवित्र स्थल पर घृणित कार्य करने का प्रयास करता है। यह जातिवादी समाज के लिए एक प्रश्न है कि– यदि अछूत को छूना पाप है, तो अछूत की बेटी को अपनी कामवासना के निमित्त छूना कहाँ तक तर्कसंगत है?

सांभरिया जी एक ऐसे समाज की कल्पना करते हैं, जिसमें सभी को समान अधिकार मिल सके। कोई भी समाज तभी विकसित माना जा सकता है, जब समाज के सभी वर्गों उन्नत हों। शोषक और शोषित जैसे शब्दों का समाज में स्थान ही नहीं होना चाहिए। आज दलित जागरूक है परंतु उसकी दयनीय स्थिति से निकलने में सवर्णों का बराबर का सहयोग अपेक्षित है। सांभरिया जी की कहानियां डंक, चमरवा, चपड़ासन, फुलवा, झंझा आदि ऐसे दलित वर्ग को दर्शाती हैं जो कि स्वयं ही अपनी प्रगति के लिए तत्पर है।

निष्कर्ष–

कहानीकार रत्नकुमार सांभरिया अपनी कहानियों की सर्जना करते समय स्वतंत्रता, समता, बंधुत्व जैसे भावों को अपने हृदय में रखते हैं। उनकी कहानियां दलितों की सवर्णों के अत्याचार के प्रति घृणा को उभारने के साथ ही उनकी शिक्षा के प्रति सजगता, उनके साहस एवं आर्थिक उन्नयन के प्रति जागरूकता को हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं। सांभरिया जी की भैंस, बूढ़ी, शर्त, बेस, चपड़ासन, आखेट, गूँज, बात, चमरवा आदि कहानियों में अत्याचार, बलात्कार, असमानता, शोषण, अन्याय आदि के प्रति दलितों के मन का विक्षोभ एवं उनका खुला विरोध दिखाई पड़ता है। लेखक ने अपनी कहानियों के माध्यम से यह स्पष्ट कर दिया है कि दलित तभी तक पीड़ित और शोषित है, जब तक वह आर्थिक रूप से सशक्त नहीं है। पेट की आग ही उसे शोषण सहने को विवश करती है। कहानी 'भैंस' में लेखक ने इस बात को स्पष्ट किया है– "पैसा शेर होता है। मंगला में आत्मविश्वास अंकुआ आया था। ठसक भरने लगी थी। भिखारी की आंखें झुकी रहती है, कमेरे की नजरें रूबरू होती हैं।"4 इस इस प्रकार हम देखते हैं कि सांभरिया जी की कहानियां दलितों में नवीन चेतना, अदम्य साहस एवं ऊर्जा का संचार करने में पूर्णतः समर्थ है।

सन्दर्भ–

(1)ठाकुर, हरिनारायण : समकालीन हिंदी साहित्यः मुख्यधारा बनाम दलित साहित्य (आलेख), आजकल दिसंबर,2003, पृष्ठ– 5 **(2)**सांभरिया, रत्नकुमार : दलित समाज की कहानियाँ, (मेरी बात) पृष्ठ–9 **(3)**सांभरिया, रत्नकुमार : दलित समाज की कहानियाँ,(कहानी–फुलवा), पृष्ठ– 27 **(4)**सिंधु, कामराज(सं) : रत्नकुमार सांभरिया की चयनित कहानियाँ (कहानी–भैंस), पृष्ठ– 31

29.रत्नकुमार सांभरिया के कथासाहित्य में दलित सामाजिक यथार्थ

–डॉ.मनिषा गंगाराम मुगळीकर
हिंदी विभाग,
इंद्रराज कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, सिल्लोड, औरंगाबाद

हिंदी साहित्य में प्रत्येक रचनाकार अपने युग के परिवेश को सहित्य के माध्यम से चित्रित ककरता है। हिंदी साहित्य में विमर्श को स्वातंत्र्योत्तर काल से आज तक दिखाई देनेवाले सामाजिक समस्याओं, अन्यायग्रस्त वर्ग की अपने हक के प्रती आवाज उठाई है। दलित जीवनपर हिंदी में भी बहुत से कहानी, उपन्यास, कविताएँ, आत्मकथाएँ, नाटक, संस्मरण आदि रचनाएँ लिखी है।दलित कहानीकार में रत्नकुमार सांभरिया जी दलित कहानीकार के रुप में उभरकर आए है। उनकी कहानियाँ दलित समाज से जुडी हुई है जिनमें दलित समाज के सामाजिक यथार्थ के सभी पहलू मौजूद है। कहानी सृजन के क्षेत्र में उन्होंने राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान बनाई है। दलित साहित्य का जिक्र आते ही सबसे पहले आत्मकथाएँ या दलितोंद्वारा लिखा गया यथार्थ वर्णन आता है। दलित साहित्य का दौर चल रहा है तो कुछ रचनाकारों के नाम सामने आते है उनमें रत्नकुमार सांभरिया जी ने दलित साहित्यधारा को अलग नजरिए से पेश किया है। सांभरिया जी की कहानियों में भारतीय समाज के जातिवादी चरित्र के तमाम पहलुओं को सकारात्मक दृष्टि से विवेचन–विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

सामान्यतः दलित रचनाकारों ने दलित साहित्य में दलित की मुश्किलों, उनके यथार्थ को चित्रित कर कहानियाँ बुनी जाती है पर उनका मानना था कि, "दलितों की पीडाओं का पहाड खडा कर देना दलित कहानी नही है। दलित कहानी से अभिप्राय एक ऐसी अनूठी रचना से है, जो दलितों में नए जीवन का संचार करती हो। कथाकार दलित हो या गैर दलित .... जिस कहानी के पात्र रुआँसे, गिडगिडाते से, समझौतापरस्त, पलायनवादी से, हारकर बैठनेवाले से तथा यथास्थिति को प्रारब्ध मानने वाले से हों, उनसे दलित कहानी वैभव नही पाती।"[1] अन्य बहुत से दलित रचनाकारों की कहानियों ने शोषणकारी सत्ता से उतना कडा और सीधा प्रतिरोध नही मिलता। सांभरिया जी की कहानियों में दलित समाज के बदलते यथार्थ और दलितों की बदलती सामाजिक परिस्थितियाँ तथा अस्सी–नब्बे के दशक में उँचे वर्ग में होनेवाले सामाजिक समायोजन की परिस्थियों के संदर्भ में वर्णन मिलता है।

रत्नकुमार सांभरिया की अधिकतर दलित कथा यह गाँव और छोटे कस्बे की कहानियाँ है जो जातिगत शोषण तथा आर्थिक शोषण पर आधारित है। दलितों की सामाजिक परिवर्तन का चित्र उनके कहानियों की विशेषता कही जा सकती है। सांभरिया जी खुद अपनी कहानी संग्रह दलित समाज की कहानियाँ की भूमिका में लिखते है– "वातावरण का निर्माण करते, दलितों की इन्हीं पीडाओं का पहाड खडा कर देना दलित कहानी नहीं है। उसका अतीत केवल पृष्ठभूमि के रुप में झलक सा प्रतीत हो, कहानी में कथानक पर हावी न हों उस अतीत की पृष्ठभूमि में दलित किस तरह संघर्ष कर नए सामाजिक वातावरण में समायोजित होता है–देशकाल की यह दरकार दलित कहानीकार के लिए अपेक्षित है।"[2]

सांभरिया जी की मुक्ति, बात, झंझा, भैंस, शर्त, आखेट आदि कहानियों में दलितों के शोषण के अलग–अलग रुप दिखाई देते है। सांभरिया जी की कहानियों की विशेषता यह है की दलित वर्ग पर होनेवाले शोषण को परिवर्तित सामाजिक, भौतिक, आर्थिक गतिविधियों को लेकर चला आक्रोश और प्रतिरोध है। भारतीय समाज में आए परिवर्तन को सांभरिया जी की कहानियों में जो दलित आक्रोश और प्रतिरोध दिखाई पडता है, वह ज्यादा विश्वसनीय मालूम पडता है। 'खेत' कहानी पूँजीवादी तंत्र में दलितों के शोषण और उसके सामने दलित प्रतिरोध की कहानी है।बूढा कैरसिंह सैनी के पास कुल जमा दो सौ वर्ग गज जमीन है, जिस पर बिल्डरों और कारपोरेटों की निगाह थी।यह पूँजीवादी एजेंट उस जमीन को किसी भी प्रकार से हासिल करना चाहते थे। लेकीन बूढे केरसिंह उस जमीन को बेचना नही चाहता था।आखिरकार बूढा केरसिंह लाठी उठाए हुए विरोध करता है। बूढा अपनी जमीन किसको जबरदस्ती हडपने नही देता।कहानी में केरसिंह का बेटा बडा अफसर है। पुलिस–प्रशासन के लोगों पर इस बात का दबाव है। कहानी में रत्नकुमार सांभरिया ने यह भी दर्शाया है कि दलित के बेटे का बडा अफसर होना बदले हुए सामाजिक यथार्थ का संकेत है, जो सांभरिया जी की कहानियों में बार–बार अभिव्यक्त हुआ है। आजादी के बाद सामाजिक व्यवस्था में काफी बदलाव आए है और इन सभी सामाजिक बदलावों ने दलित कहानी में भी स्वरुप में बदलाव आया है। सांभरिया की कहानियाँ इस बात का साक्ष्य प्रस्तुत करती है।

'फुलवा' कहानी में दलित समाज के लिए शिक्षा के महत्व को लेखक रेखांकित करता है। दलित समाज में शिक्षा ऐसा माध्यम है जो इस समाज की उन्नती के लिए शिक्षा का महत्व पेश करती हुई फुलवा किसी भी किमत पर हार न मानकर राधा मोहन के हाथ से किताब नही छूटने देती। 'बिपर सूदर एक कीने' दलित समाज की उन्नति शिक्षा से दलित समाज के उध्दार के आंबेडकरवादी सिध्दांत की व्यावहारिकता को रेखांकित करती है। 'फुलवा' तथा 'बिपर सूदर एक कीने' यह दोनो कहानी में अंतर है की फुलवा यह दलित मुक्ति के गाँधीवादी–सुधारवादी आदर्शो पर आधारित नही है। 'बिपर सूदर एक कीने' दलित समाज की उन्नति के गाँधीवादी सुधारवादी सिध्दांतो के छद्म को उद्घाटित करती है। यह कहानी दो सगे भाईयों श्यामू और जीवण की है, जिसमें से जीवण गाँव के अन्य दलितों के साथ

पंचायत में गंगाजली हाथ में उठाकर और तागा धारण करके अपनी को जातिगत रुप से अपग्रेड कर लेता है।

रत्नकुमार सांभरिया की बावन कहानियाँ अब तक प्रकाशित है। इनकी अधिकांश कहानियों में स्वातंत्रताप्राप्ति के बाद 80–90 के आसपास आए हुए परिवर्तन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्र में दलितों में हुए परिवर्तन या उन्नति के बारे में भी चित्रण है। इस दौर में काफी किस्म का जातिगत समायोजन दिखाई देना शुरु होता है। राजनीति में अपने फायदे के लिए क्यों ना सही आरक्षित सीटे हो या शैक्षणिक, आर्थिक क्षेत्र में भी आरक्षण सीटों के लिए पिछडे वर्गो को आगे बढने या जाति की मर्यादा तोडने में उँची जातियों के लोगो को कोई खास परेशानी नही हुई। परिस्थिती चाहे जो हो परंतु दलित–पिछडों के साथ मधुर संबंध बनाने में हिचकते नही है। उँचे पदों पर बैठे दलित अधिकारियों से अपना काम निकालने के लिए या उनके पद से डर और दबाव में ही सही उँची जातियों के व्यवहार में एक किस्म को बदलाव दिखाई पडता है। परंतु किसी विशेष अवसर या परिस्थिती में इस जातिगत वर्गभेद को अलग ढंग की चिढ, नफरत पैदा होती है और उँच–नीच का जातिगत भेद फिर से पूरी निर्ममता के साथ होता है। सांभरिया जी के तमाम कहानियों में यह संपूर्ण सामाजिक बदलाव का यथार्थपूर्ण चित्रण मिलता है।

'फुलवा', 'डंक', 'बदन–दबना', 'बूढी', 'बाढ में वोट' आदि कहानियों में इस रणनीतिक जातिवादी समायोजन और इससे पैदा हुई चिढ को देखा जा सकता है। 'फुलवा' यह कहानी नब्बे के दशक के बाद के भारतीय लोकतंत्र में दलितों की बदलती हुई स्थिति और उससे तालमेल न बिठा पानेवाली प्रतिगामी सवर्ण मानसिकता को अभिव्यक्त करता है। फुलवा कहानी में जाति–व्यवस्था के मानसिकता तथा समाज में बोए हुए मानसिकता का चित्रण है। फुलवा दलित जाति की है। किसी समय गाँव में जमींदार अपने बेटे रामेश्वर को नौकरी लगवाने के लिए सिफारिश करने के लिए शहर आता है। फुलवा अब अपने बहु बेटे के साथ शहर के भव्य सरकारी मकान में रहने लगती है। रामेश्वर फुलवा के घर चला जाता है और वही रहता है परंतु वह फुलवा के घर पानी तक नही लेता। फुलवा जो दलित है और गाँव में उसके हवेली में बेगार खटती थी और आज बेटे को नौकरी लगने की वजह से शहर में रानी की तरह ठाँठ से रहती है यह देखकर जमींदार रामेश्वर जल–भुन जाता है। उच्च वर्ग में आज भी जातिगत संस्कार अभी भी रुढ है जिसके चलते दलित समाज कितनी भी प्रगति करे उच्च वर्ग समझनेवाले लोग इन्हें निचा दिखाने में कहीं कसर नही छोडते और ना ही उन्हें प्रगति करने के लिए प्रोत्साहित करते है। जाति के झूठे अभिमान से भरा रामेश्वर सिंह फुलवा के आतिथ्य और सत्कार को ठुकरा देता है। रत्नकुमार सांभरिया की यह कहानी दलितों की बदलती सामाजिक स्थिति के साथ–साथ जातिवादी समाज के बदलते रवैये को पाठकों के सामने रखती है। प्रस्तुत कहानी गाँव और शहर में जातिवाद के बदलते समीकरण को भी प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करती है।

'डंक' कहानी संवैधानिक मूल्यों पर आधारित समाज में जातिवादी समायोजन और इस प्रक्रिया में तथाकथित उँची जातियों के फ्रस्ट्रेशन को और बारीकी से चित्रित करता है। जाति से चमार खेरा को आर्थिक संपन्नता से सामाजिक सम्मान भी मिलता है परंतु कहीं तो जाति के प्रति रोष भी मिलता है। पंडित को अपनी बेटी की शादी के लिए कर्ज माँगने खेरा के मन में रोष तथा जातिगत अहंकार जोर मारता है और वह बदलते हुए वक्त को कोसता है–"वक्त की डोर छूट गई, वरना कुपात्र का सारा पैसा हडप कानों में सीसा भर के गाँव से खदेड देते।"[3] प्रस्तुत कथन से सतना जैसे पंडित सामाजिक स्थितियों के बदलाव को पसंद नही करते ना ही तालमेल बिठा पाते है। प्रस्तुत कहानी के माध्यम से सांभरिया जी ने दलित समाज के बदलते यथार्थ के साथ–साथ भारतीय समाज की जातिवादी संरचना में पैदा हो रहे तनाव को भी चित्रित किया है।

'बदन दबना' कहानी में दलित रेमाराम अपनी बेटी की शादी के लिए दस हजार रुपए हलकासिंह से लेता है। बदले में हलकासिंह रेमाराम के तेरह साल के बेटे पूछाराम को पाँच साल तक हवेली में बेगार खटना है। यह सामाजिक शोषण आज भी दिखाई देता है। गाँव में दो शादियाँ थी रेमा की बेटी तथा जंगूराम महतर की बेटी की। बारात और बाजे को देख हलकासिंह भ्रम में पडता है। अगर बारात रेमा की बेटी की होती तो हलकासिंह का जातिगत अहंकार फुफकार मारने लगता। पैसे के आगे जातिगत दंभ वह जाहिर नही हर पाता है। दोनों के विवाह में आर्थिक स्तर के फर्क को सांभरिया ने दर्शाया है।

भारतीय समाज व्यवस्था में जातिवादी मनोविज्ञान को 'चमरवा' कहानी के माध्यम से दर्शाया है। चमरवा कहानी में ऐसे बाभन का चित्रण है जो सिर्फ चमारों के ही कर्मकांड संपन्न कराकर अपना बसर करते है। दरपन अपने आपको ब्राम्हण मानता है लेकिन बाकी के ब्राम्हण उसे चमार मानते है। क्योंकि उसकी जाति के आगे चमरवा बाभन लगा है। कहानी में दो राय या सोच है–एक ब्राम्हण के आगे चमरवा लगाने से कोई चमार थोडे ही बन जाता है बल्कि दूसरी सोच है–चमरवा के साथ बाभन लगाने से कोई बाभन नहीं हो जाता है। अपने आपको बाभन समझनेवाला दरपन ब्राम्हणवाद और वर्णाश्रम के अनुकूल ही आचरण भी करता है। जाति विषयक लोगों की मानसिकता तथा सोच को दर्शाते हुए लेखक ने यह जरुर रेखांकित किया है की दरपण अपने जजमान चमारों के साथ वह छुआछूत का व्यवहार करता है। दरपण की यह स्थिति इस कहानी में विचित्र है। चमार उसे अपना मानते है, लेकिन वह चमारों को अछूत मानता है। दरपण के माध्यम से सांभरिया ने जातीय श्रेष्ठता की मिथ्या सोच में उलझे समाज की मनोवैज्ञानिकता को बहुत ही सशक्त और मार्मिक

कथानक के माध्यम से पेश किया है। भारतीय जाति व्यवस्था की अजीब–सी मानसिक व्यवस्था को, सामाजिक संरचना को चुनौती देनेवाले पात्र के साथ कथानक पेश करना यह उस लेखक की सोच और समझ को उभारते है। 'बकरी के दो बच्चे' ऐसी ही प्रतिरोध और बदलाव का दृढ प्रण जो बदलाव को साबित करता है। दलपत के बकरी के दो बच्चों के हत्या करनेवाले धर्मपाल और उसके बाप दानसिंह को उनके अपराध की सजा दिलाने को प्रण करनेवाले दलपत के शोषण और उत्पीडन की पूरी शृंखला को तोड देने की यह कहानी है। कहानी के माध्यम से सांभरिया जी ने भारतीय लोकतंत्र में दलितों की बदलती सामाजिक राजनीतिक हैसियत तथा दलपत के मनुष्य साबित करने का भी संकल्प को पेश किया है। प्रस्तुत कहानी यह सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया की ओर संकेत करती है। ऐसी अनेक कहानियाँ है जो रत्नकुमार सांभरिया के कथ्य के माध्यम से दलित उत्पीडन और संघर्षों और उनकी सफलताओं को केंद्र में रखकर चित्रित की गई है।

भारतीय साकाजिक जातिव्यवस्था की गहराईया तथा चित्रित समस्याओं के माध्यम से रत्नकुमार सांभरिया जी ने अपनी कहानियों के माध्यम से दलित संवेदना का आयतन काफी विस्तृत रुप से दर्शाया है। जाति से दलित तथा अर्थ याने पैसे से दलित ऐसे दो आयामों में कहानी का कथानक तथा पात्रों का चयन किया है। जो जाति से दलित है, जिनका न जातीय सम्मान है औ न ही समाज–परिवेश में उन्हें बराबरी का हक है, ऐसे किसान, श्रमिक, बंधुआ मजदूर, पैतृक पेशा करनेवाले सफाई कर्मी, चमार ऐसे दलित उपेक्षित वर्ग के दलित्व से उभरकर उन्हें शिक्षा और पुनर्वास की ओर उन्मुख करना यह सांभरिया जी अपनी कहानी के मुख्य उद्देश्य को सविस्तार पेश करते है। इनकी कहानियाँ पाठकों में दलितों के प्रति दया या सहानुभूति नहीं जगाती, बल्कि उनके संघर्षो और उपकी सफलताओं का साझीदार बनाती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1.रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियाँ कहानी संग्रह, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स प्रा.लिमिटेड, नई दिल्ली, 2011पृ.9 **2.**रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियाँ कहानी संग्रह, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स प्रा.लिमिटेड, नई दिल्ली,2011 पृ12 **3.**रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियाँ कहानी संग्रह, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स प्रा.लिमिटेड, नई दिल्ली,2.011पृ.140 **4.**अमिष वर्मा, दलित समाज का बदलता सामाजिक यथार्थ और रत्नकुमार सांभरिया की कहानियाँ, संपादक, अपनी माटी, नवंबर 2021

30.रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में भाषा–विधान

–डॉ.स्नेहलता

(प्राध्यापिका हिंदी) माध्यमिक शिक्षा विभाग (हरियाणा)

भाषा विचारों को मौखिक और लिखित रूप में अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम है। जब बात कहानीकार की होती है तो वह विभिन्न शैलियों के माध्यम से समाज को पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है। '**हिंदी कहानी का शिल्प विधान**' में डॉ. राधेश्याम गुप्त लिखते हैं –"प्रत्येक राष्ट्र की परिस्थितियों एवं वहां के लेखकों के लेखन सामर्थ्य के अनुसार साहित्य की विधाओं में परिवर्तन आता है। साहित्य की विधाएं नवीन परिवर्तन एवं जीवन दर्शन के अनुसार अपने शिल्प में भी परिवर्तन करती रहती हैं। यही कारण है कि हिंदी कहानी–जगत में आज प्रयोगों की भरमार है। भाषा में अनेक बदलते रंग दृष्टिगत होते हैं।"[1] भाषा के इस बदलते रंग रूप के कारण कहानी में नयेपन का आभास होता है। जिस क्षेत्र की भाषा का प्रयोग लेखक द्वारा कहानी में किया जाता है उसी क्षेत्र का सोंधापन कहानी में झलकता है। भाषा के इस नित–नये परिवर्तन में ही भाषा का विकास छिपा होता है। डॉ. राधेश्याम इसे भाषिक परंपरा मानते हैं– "भाषा के विकास की एक परंपरा है। इस परंपरा की यह विशेषता है कि इसने भाषा को सदैव कथा के अनुरूप बनने में ही सहायता नहीं की वरन् उसमें समयानुसार परिवर्तन, परिमार्जन एवं बिम्ब–योजना के निर्वाह, संवेदनशीलता तथा सूक्ष्म अर्थवत्ता आदि शक्तियों में वृद्धि हुई है। भाषा अब सजीव और वस्तु तथ्य का सशक्त माध्यम बन गई है।"[2]

कहानी पर कहानीकार अपनी छाप अवश्य छोड़ता है। कहानीकार की छाप उसके क्षेत्र से, उसकी क्षेत्रीय बोलियों से स्पष्ट होती है। इन बोलियों से विभिन्न भाषाओं के आपसी मेल से उसकी भाषा शैली तैयार होती है। उसी भाषा– शैली में भावात्मकता, चित्रात्मकता, संवेदनात्मकता, अलंकारिकता का समायोजन होता है। वर्तमान समय में भाषा द्वारा विभिन्न बोलियों और भाषाओं के शब्दों को आत्मसात किए जाने के कारण उसका रूप भी बदल गया है। आज जनसामान्य द्वारा नित्य प्रयोग में लाई जाने वाली सामान्य बोलचाल की भाषा ही कहानियों की भाषा बनी हुई है। सांभरिया जी ने भी उसी जनसामान्य की भाषा का प्रयोग कहानियों में करके सीधे पाठक के हृदय में जगह बनाई है। इन बोलियों का प्रयोग करके लेखक पाठकों में चेतना पैदा करते हैं। इस चेतना के कारण ही विचारों का जन्म होता है। यह सब जनसामान्य की बोली का प्रयोग कहानियों में करने से हुआ

ISSN-2454-6283 PEER Reviewed JOURNAL

है। लेखिका अनु विग ने चेतना परिवेश और बोली को शिल्प का अंग बताया है तथा इनको कहानी से अलग नहीं किया जा सकता– "कहानी का साध्य संश्लिष्ट रचना है और इसकी सिद्धि के लिए लेखक अपने शिल्पगत साधनों को अपना सकता है। इसका मुख्य तत्व घटना है या चरित्र, परिवेश–बोध की चेतना है या प्रभाव, क्षण की अनुभूति है या मूड की अभिव्यक्ति, विचार कहानी में व्याप्त है या चरित्र में दीप्त है। ये सभी नए शिल्पगत साधन हैं जिन्हें उनकी वस्तु से अलगाया नहीं जा सकता।"[3]

भाषा की उत्कृष्टता के लिए कहानीकार उपयुक्त शब्द–चयन,वाक्य–विन्यास, चिंतन–विवेचन, प्रसंग, कहावतों और मुहावरों आदि का प्रयोग करता है। सांभरिया जी ने इन सब का प्रयोग स्वतंत्रतापूर्वक किया है। लेखक ने कहानियों में भाषा का प्रयोग पात्र, कथानक, प्रसंग तथा परिवेश के अनुरूप किया है। इनकी कहानियों के अधिकतर पात्र ग्रामीण परिवेश से संबंध रखते हैं। पढ़े–लिखे पात्र अंग्रेजी मिश्रित हिंदी का प्रयोग करते हैं। कहीं इनके पात्र क्षेत्रीय बोली बोलते दिखाई देते हैं तो कहीं चेतना से सराबोर निडरता वाली भाषा का प्रयोग करते हैं। कहानियों में चेतना होने के कारण लेखक ने सामाजिक, भावनात्मक व संवेदनात्मक माहौल तैयार करने की कोशिश की है। कथाकार जब कहानियों में किसी वर्ग की कुण्ठा, पीड़ा, अभाव को चित्रित करता है तो यह अनायास ही कथ्य के रूप में मुखरित होकर शिल्प का रूप धारण कर लेती हैं। इन कथ्यों को नए–नए रूप में प्रस्तुत करते–करते भाषा भी नया रूप धारण कर लेती है। इस तरह से लेखक ने सामाजिक विडंबनाओं और निराशा में आशा को खोजने का प्रयास किया है। रविंद्र कुमार यादव सांभरिया जी की भाषा के संदर्भ में अपने विचार कुछ इस तरह से प्रकट करते हैं– "समय, संवेदना और भाषिक दृष्टिकोण से यह कहना गलत नहीं होगा कि रत्न कुमार सांभरिया की भाषा प्रेमचंद के करीब है। भाषा में सरलता और सहजता के साथ–साथ एक पठनीयता का आकर्षण भी दिखाई देता है, जो पाठकों को अपनी तरफ खींच लेता है। इनके पात्र आधुनिकता से प्रभावित है और तार्किक हैं। इसलिए उनमें गहरा आक्रोश है। वे सामाजिक सड़ांधता की असंगतियों को बखूबी समझते हैं। जैसे को तैसा और ईंट का जवाब पत्थर से भी देना जानते हैं। सांभरिया जी ने कहानियों में कहीं–कहीं राजस्थानी एवं हरियाणवी भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है, जो उस क्षेत्र की क्षेत्रीयता और आंचलिकता की महक को पाठक के सामने जीवित रखती है। पात्रों को सजीवता व जीवंतता प्रदान करती है। भाषा में नए–नए रूपक और बिंबों का प्रयोग किया है। नई–नई उपमाओं का प्रयोग किया है। मुहावरों की उपस्थिति रोचकता के साथ–साथ कहानी की थीम को आगे बढ़ाने में मदद करती है।"[4]

दलित समाज की कहानियां में लेखक ने शैली को कहानी का सूत्रधार माना है– "शैली लेखक का व्यक्तिगत अस्त्र है जिसके आधार पर वह साहित्य जगत में अपनी पहचान बनाता है। उसका लेखन शाश्वत होता है और अमरत्व प्राप्त पाता है। लेखक का एक–एक शब्द वाक्य और अनुच्छेद शैली का द्योतन है।"[5] दलित कहानी के लिए शैली की अपनी महता है। इन कहानियों में जीवन की विविधताओं को, मार्मिक प्रसंगों को तथा सूक्ष्मतम समस्याओं को शिल्प के माध्यम से विविध रूपों में प्रस्तुत किया है। कहानी अपने परंपरागत शिल्प के दायरे से बाहर आ गई है। आज लेखक जीवन के किसी भी खण्ड, मार्मिक क्षण, अर्थपूर्ण घटना को कहानी के तंत्र में बांधकर पाठक के सामने प्रस्तुत कर रहा है। अतः के विभिन्न प्रयोग कहानी जगत में हो रहे हैं। संवेदनाओं, भावनाओं से ओत–प्रोत लेखक कहानी के अनुसार ही शिल्प गढ़ते हैं। वर्तमान समय में कहानी शिल्प को लेकर बहुत–सी चर्चाएं हो रही हैं। अलग–अलग समय के लेखकों ने अपनी कहानियों में बिंबो और प्रतीकों को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है। लेखक प्रतीकों के बारे में लिखते हैं– "भाषा में प्रतीक भी बनते हैं और बिंब भी। बनैले और जहरीले नामवादी मांसाहारी पक्षियों से दलित पात्रों के प्रतीक उभारना या बिंबो का निर्माण करना दलित कहानी का मर्म नहीं है।"[6] रत्नकुमार सांभरिया की रचनाएं दलित प्रधान होने के कारण शैली भिन्नता रखती हैं। लेखक अपनी अनुभूति की सार्थकता के अनुसार ही शिल्प को उत्पन्न करते हैं। सांभरिया जी ने अपनी रचनाओं में वर्णनात्मकता का प्रयोग अधिक किया है। दलित प्रधान रचनाएं होने के कारण चरित्र विशेष को उभारने की कोशिश की गई है। वर्णनात्मक शैली के विषय में स्वयं सांभरिया जी अपने विचार इस तरह रखते हैं– "कहानी के लिए शैली की अपनी महत्ता है। यह वह शैली है जिसके गुंफन से कहानी में बिंब उभरते हैं। तुलनाएं होती हैं। व्याख्या के साथ कहानी का विकास होता है।"[7]

वर्णनात्मकता के प्रयोग के कारण श्याम सुंदर अग्रवाल उन्हें एक कुशल शिल्पी मानते हैं– "कथानक व शिल्प के स्तर पर सांभरिया अपनी पहचान बनाने में सफल रहे। रचना के शीर्षक के चयन में भी काफी सजग हैं। लेखक की लेखनी बहुत लंबा सफर तय करेगी।"[8] लेखक की शिल्प योजना कथ्य के अनुसार अनायास ही आ जाती है, इसके लिए उन्हें कोई प्रयास नहीं करने पड़ते। लेखक का रचना साहित्य इस बात को स्पष्ट करता है कि पुराने और नए शिल्प का मिश्रण पाठकों को आनंद के चरम तक

पहुंचाता है बशर्ते रचनाकार का कथ्य सार्थक व सत्य निष्ठा पर आधारित हो। भाषा का विविध रूप इनकी कहानियों में देखने को मिलता है। इनकी कहानियां अपने कथ्य, शिल्प भाषा और भाव में अद्भुत हैं। इनकी भाषा में कहीं चित्रात्मकता, कहीं वर्णनात्मकता, कहीं आंचलिकता, कहीं गंभीर रूप एवं चिंतन प्रधानता देखने को मिलती है। लेखक ने भाषा तथा शैली शिल्प को विषयगत विविधता के अनुरूप अपनाया है। बौद्धिकता की प्रधानता तो इनकी कहानियों में लगभग मिल ही जाती है; क्योंकि जब तक दलित पात्रों में बौद्धिकता का विकास नहीं होगा चेतना से दूर रहेंगे। रविंद्र कुमार यादव सांभरिया जी की भाषा के संदर्भ में लिखते हैं–"भाषा में इतनी सरलता एवं संवेदना है की कहानी पढ़ते हुए प्रेमचंद जैसा लगने लगता है। समाज की खोखली मर्यादाएं; जिनका अब कोई अस्तित्व नहीं रह गया है, पर उसका आडंबर आज भी गांव में बना हुआ है। इन मर्यादाओं को भी ये कहानियां तोड़ती हुई दिखाई देती हैं।"[9] सांभरिया जी की सृजनात्मकता का महत्वपूर्ण आयाम उनकी वैविध्यपूर्ण भाषा है। उनकी कहानियों में भाषा के विविध प्रयोग इस प्रकार हैं–

बोलचाल की भाषाः–आम बोलचाल की भाषा के द्वारा लेखक क्षेत्र विशेष के पाठकों पर प्रभाव डालता है। सांभरिया जी की कहानियां ग्रामीण परिवेश की होने के कारण जनसामान्य को अपनी–सी लगती हैं। कहानी आखेट का उदाहरण देखें– "रेवती फटी उधड़ी दो लूगड़ियों में लिपटी–सिमटी बैठी थी। वह आग के सामने बैठी भी जाड़े से धूज रही थी। उसकी गोद में बच्चा था। वह उसे फांहों से सेंक रही थी।"[10] कहानी 'धूल' में भी लेखक ने इसी ग्रामीण शब्दावली का प्रयोग किया है–"लाव–चाक पर तैनात मजदूर चौकस हो गए थे। दोनों भाई लंगूर की तरह लाव से लूम रहे थे। मर–पच कर बाहर निकाला गया दोनों को।"[11]

बिम्बिक भाषाः–कहानी में बिम्बों का प्रयोग करना कहानी को अलंकृत करना है। इसके माध्यम से लेखक पाठक को वर्णनात्मकता, दृश्यात्मकता की ओर ले जाता है। इस तरह के प्रयोग कथाकार की अतिरिक्त कलात्मकता के परिचायक होते हैं। बिम्ब अनुभवों का आईना होते हैं। बिना बिंब के भाषा को मृतप्राय या प्रभावहीन माना गया है। डॉ. मधुसूदन पाटिल बिंब को कल्पना का अंग मानते हैं–"कथा सृजन की बेला में अनुभूतियां कल्पना का सहारा लेकर बिंब निर्माण में अपना योगदान देती हैं और कहानीकार बिम्बों के माध्यम से उन्हीं बिम्बों को सहृदय तक प्रेषित करता है, जिन्हें उसकी कल्पना अनुभूतियों के स्तर पर ग्रहण करती है। बिंब निर्माण में प्रधानता प्रत्यक्ष अनुभवों की ही रहती है, लेकिन कभी–कभी प्रत्यक्ष अनुभव के अभाव में भी कल्पना के द्वारा संवेदना के स्तर पर उनसे साक्षात्कार कर लिया जाता है।"[12] साम्भरिया जी की कहानियों में बिंब विधान देखते ही बनता है– "कोहरा जैसे सांझ उतरा अंधेरा।"[13] "पेड़ पौधों पर सर्दी की मार थी पीलिया के मरीज से दिखते थे।"[14] "जंगल में उगे झाड़–झंखाड़–सी बेतरतीब दाढ़ी थी, उसकी। दीवार पर टिके छप्पर के छोरों की तरह होठों पर पड़ी मूछें थी, उसकी।"[15] "दीवार से चिपका लंबरदार थर–थर हिल रहा था सूत–सा।"[16] हिरण के बड़े–बड़े नेत्रों–सी झांकती झपझपाती आंखें। चेहरे पर भौंरे –सी घनी काली मूछें।"[17]

प्रतीकात्मक भाषाः– सांभरिया जी ने प्रतीकों का मानवीकरण किया है।साहित्य के विद्वानों का मत है की प्रतीकों की अधिकता नीरसता लाती है। लेकिन प्रतीकों के माध्यम से भावों को सहज रूप से अभिव्यक्त किया जा सकता है। भाषा में नए प्रतीकों का प्रयोग भाषा को नयापन प्रदान कर करते हैं। तभी तो समकालीन साहित्यकारों ने प्रतीकों की उस परंपरा को त्यागकर एक नई पांत की शुरुआत की है। डॉक्टर लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय प्रतीक विधान के बारे में लिखते हैं– "आज का कहानीकार अवचेतन अर्द्धचेतन, दिवास्वप्नों वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक संकेतों के प्रतीकात्मक प्रयोगों द्वारा अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियां कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त कर रहा है। वह अपने मन की विकृतियों और कुंठाओं का विश्लेषण करते हुए भी तटस्थ रहता है।"[18] विभिन्न आलोचकों की विश्लेषण के बाद सांभरिया जी की प्रतीक योजना को संतुलित माना जा सकता है। उन्होंने प्रतीकों का प्रयोग अंधाधुंध नहीं किया जिससे कहानी में नीरसता आ जाए। उन्होंने सधे हुए अंदाज में इसका प्रयोग किया है।लेखक ने प्रतीकों के बोझ तले कहानी को दबाया नहीं बल्कि प्रतीकों का संतुलित प्रयोग उनकी कहानियों के सौंदर्य को बढ़ाते प्रतीत होते हैं। प्रतीकात्मक भाषा के द्वारा इन्होंने कहानी के बौद्धिक स्तर को दबाया नहीं बल्कि भाषिक सौंदर्य को बढ़ाया है। लेखक की लघु कथाओं में प्रतीकों और बिंबों का प्रयोग अधिक हुआ है। सांभरिया जी की लघुकथा 'आवरण' में आवरण को लोगों के नकलीपन के रूप में प्रस्तुत किया है। इस नकलीपन के कारण वे अपने असली रूप को आमजन के सामने नहीं आने देते हैं। यदि मनुष्य स्वयं को आवरण में ना ढके तो समाज का भय उसे हमेशा सताता रहता है। जब वह स्वयं को इस आवरण से ढक लेता है तो उसके सभी कार्य स्वतः ही बन जाते हैं। 'आवरण' लघुकथा में भेड़ों को समाज के उस कमजोर तबके का प्रतीक माना है जो केवल आदेशों का पालन करता आया है अपनी राय देने की हिम्मत उसने आज तक नहीं दिखाई। सामान्य जनता (भेड़ों के रूप में) दिखाई कुत्तों

(समाज के गुंडा प्रवृत्ति के लोग) से आतंकित है। लेकिन जब वह भेड़िया आवरण ओढ़ लेती है; तो कुत्ते उन से डर कर भाग जाते हैं "भेड़ दंपत्ति लौटे तो उनके शरीर पर भेड़िया आवरण था। वे गली–मोहल्ले से निकलते कुत्ते, कुत्तिया, पिल्ले उनको देखकर घरों में घुस जाते भाग खड़े होते जमीन पर लेट दुम हिला कर उनका अभिवादन करते और अपनी जान की खैरियत चाहते।"[19] लघु कथा 'अंतर' की भाषाई प्रतीकात्मकता देखते ही बनती है– "घोड़ा पीठ के असहनीय दर्द को आंसू में बहा देना चाहता है।"[20] इस कथा में लेखक ने घोड़े को उस गरीब व्यक्ति का प्रतीक माना है जो मालिक के अमानवीय व्यवहार से भी स्वयं की संवेदनाओं को समाप्त नहीं होने देता। ये संवेदनाएं ही उसे मानव बनाए रखती हैं, मानव से पशु नहीं होने देती।

अलंकारिक भाषाः–भाषाई सौंदर्य को बढ़ाने में अलंकार महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सांभरिया जी ने अपनी कहानियों में इनका बखूबी प्रयोग किया है। अलंकार ना केवल काव्य–भाषा की सौंदर्य वृद्धि करते हैं बल्कि गद्य–भाषा में भी चार–चांद लगाते हैं। लेखक ने भाषा को अलंकारों से सजा कर उसे पाठकों की दृष्टि में उच्चासीन कर दिया है। "खून पीने वाला जीव है कभी नहीं मरता।"[21] कहानी 'आखेट' में मच्छर पर मनुष्य का अभेद आरोप किया है इसी कहानी में रेवती कहती है– "वे तो गोल पत्थर हैं।"[22] "वह पंखा झलती उसके हाथ की चाम झूलती हाथी के कान हिलते हों जैसे। पंखी रुकती उसकी देह से आग का भभुका निकलता।"[23] "भेड़ की मलाई–सा घुटा बादल फट गया था। उसके भीतर से मटमैले तीतर पंखी मेघ नजर आने लगे थे। बताशा–सी बूंदे बाजरा के दानों–सी महीन–महीन हो गई थी।"[24]

दृश्यात्मक भाषाः–पाठक जब किसी कहानी का पठन करता है और कहानी का दृश्य आंखों के सामने स्पष्ट हो जाए तो यह बात एक सफल कहानी के साथ–साथ सफल कहानीकार की ओर भी इशारा करती है। सांभरिया जी की गणना इसी श्रेणी के लेखकों में होती है।"मियांजान मुर्गी की पांख पकड़कर उसे दड़बे से बाहर खींच लाए थे, जैसे सपेरा सांप की पूंछ पकड़कर उसे बांबी से खींच लाता है। मुर्गी के पंजे जमीन से चिमटते आए थे। पंजों की हल–सी गहरी रेखा उसके आक्रोश की रसीद थी। खौफज़दा मुर्गी बेतहाशा कुड़कुड़ाई। पंख फड़फड़ाए। वेग भरी फड़फड़ाहट ने मुर्गी के परों की टूटें मियांजान के सफेद सिर और चेहरे की दाढ़ी में फंस गई थी।"[25] कहानी 'चमरवा' में लेखक की दृश्यात्मक भाषा यथार्थ को प्रकट करती है– "कठपुतली के तार जुड़े अवयवों की भांति नोना का एक हाथ कभी इधर गिर पड़ता, कभी दूसरा हाथ झूल जाता। कभी उसकी गर्दन तुम्बी–सी एक ओर लुढ़क जाती, कभी समूची देह मछली–सी फिसल जाती। कितना दूरुह होता है, मृत देह से वस्त्र उतारना।"[26]

पात्रानुकूल भाषाः–पात्रानुकूल भाषा किसी भी विधा को मजबूती प्रदान करने में अहम भूमिका निभाती है। लेखक ने अपनी सभी विधा की रचनाओं में पात्रानुकूल भाषा का ही प्रयोग किया है। कहानी 'खेत' में वृद्ध व्यक्ति की बातों को लेखक ने इस तरह से चित्रित किया है–"बुढ़ा और बालक की चाम नाजुक हौवे छै। हवा पानी जल्दी लाग जावै। कभी साज कभी ना।साज किसट तो माकी काया भोगे ली।"[27] कहानी 'मैं जीती' में लेखक ने डीएसपी भाई के गुस्से को पुलिसिया अंदाज में प्रस्तुत किया है–"सात पीढ़ी को दाग लगाने वाली कुलखणी को गोली मार दूं।"[28]

हिंदीत्तर व आंचलिक भाषा का प्रयोगः– व्यक्ति जिस क्षेत्र से संबंध रखता है उस क्षेत्र की भाषा का प्रभाव उस पर बना रहता है। सांभरिया जी के शिक्षित पात्र अंग्रेजी व हिंदी दोनों भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करते हैं तथा ग्रामीण क्षेत्र के पात्रों की भाषा में आंचलिकता के दर्शन होते हैं। हालांकि लेखक हिंदी के सिद्धहस्त हैं परंतु फिर भी उन्होंने इसके लिए सीमा निर्धारित नहीं की बल्कि दूसरी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करके हिंदी को एक नया रूप ही दिया है। कहानी 'खेत' में आंचलिक बोली के साथ–साथ पंजाबी भाषा शब्दों का भी प्रयोग बखूबी किया है–"बुड्ढे बाबा पवन दास पंजाबी हां असी। चौथी गली विच रहंदे हां, उत्थों ही दुकान हन साढी।"[29] "बोल कानी छै?" "पलाट दा कि मांगने हां तुसी?" "घर का गुदड़ा।" "हूं। दसो–दसो।"[30] पानी उलीचता वह खुद ब खुद बोल रहा था– "बरसात टपने दो सामना वाला से बड़ों घर बनाऊंगो।"[31] "आज बड़ो बन गयो तू! अरे! बाजरा की रोटी चिगल चिगल मैंने तुझे खिलाई थी।"[32]

सूक्तियात्मक तथा मुहावरेदार भाषा का प्रयोगः सूक्तियों का प्रयोग भाषा में गठीलापन लाता है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है की सूक्तियां गागर में सागर भरने का काम करती हैं। सामाजिक व आर्थिक विपन्नता के अनुभव ने भी लेखक की भाषा को कसावट प्रदान की है। इन सूक्तियों का अपना महत्व है। कहानी **फुलवा** में लेखक ने मुहावरेदार भाषा का प्रयोग करके कहानी को सुस्ती प्रदान की है– 'शहर बड़े होकर भी छोटे हैं। गांव छोटे होकर भी बड़े हैं।' 'मानो उसे भी वही घटना याद हो आई थी जैसे दो हाथ एक ही समय गुल्लक में पड़े हो समय सौदागर है।' 'तू तो कुएं का मेंढक ही रहा रामेसरिया।' कहानी **बकरी के दो बच्चे** में भी लेखक ने सूक्तियात्मक भाषा का बखूबी प्रयोग किया है– 'पुलिस अधीक्षक अभावों के बल्ले और गरीबी की

गेंद से खेलते बड़े हुए थे।' 'गर्म लोहा पानी में बार–बार डुबोते ठंडा हो जाता है।'

कहानी आखेट की मुहावरेदार भाषा–'उसकी आंखों से खून के फव्वारे छूट पड़े थे।''नाक कटने से बड़ी सजा तुम दोगे?''रेवती ने फटी छाती हांफती सांस और भरी आंखों से सोमवार को आप बीती सुना दी थी।'

कहानी चपड़ासन की मुहावरेदार भाषा:'आदमी गिरगिट से बेहतर रंग बदलू होता है।''चांदी चढ़ा गिल्ट ताप पाते ही अपना रंग दिखा देता है।''रोम–रोम में आग उठने लगी थी।' कहानी **सनक** में 'शहर में घर–घर अपने सर्कस हैं।' 'सोता हुआ जाग जाए, जागा हुआ क्या जागे।' 'पर निकला चींटा मौत के नजदीक होता है' आदि वाक्यों में मुहावरेदार भाषा का प्रयोग हुआ है। कहानी **भैंस** में 'पैसा शेर होता है।' 'भिखारी की आंखें झुकी रहती हैं। कमेरे की नजरें रूबरू होती हैं' आदि। इस प्रकार लेखक की भाषा शैली कहानियों में ऊब पैदा ना करके कसावट पैदा करती है;जो जनसामान्य को ना केवल चेतन करती हैं बल्कि नयी राहों की ओर अग्रसर भी करती हैं।उनकी भाषा शैली ही है जो कहानी को धाकड़ बनाती है तथा दूसरे लेखकों से उन्हें अलग करती है।

संदर्भ–ग्रंथ सूची:– (1)डॉ.राधेश्याम गुप्त, हिंदी कहानी का शिल्प विधान, पृ. 107। हिंदी साहित्य संस्थान प्रकाशन अजमेर, संस्करण–1977। (2)डॉ.राधेश्याम गुप्त, हिंदी कहानी का शिल्प विधान, पृ.107 हिंदी साहित्य संस्थान प्रकाशन अजमेर, संस्करण–1977 (3)अनुकुमारी विज्ञ, यशपाल की कहानी कला, पृ. 93 नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली,संस्करण–1966। (4)(सं.) डॉ. राकेश रामपुरिया, प्रणु शुक्ला,समाजदृष्टा साहित्यकारः रत्नकुमार सांभरिया, पृ. 176–177।दृष्टि प्रकाशन जयपुर, संस्करण –2016। (5)रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियां, 'मेरी बात' पृ.14 अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स(प्रा.) लिमिटेड नयी दिल्ली,संस्करण –2011 (6) रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियां, 'मेरी बात' पृ. 14। अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड नयी दिल्ली, संस्करण –2011 (7) रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियां, 'मेरी बात' पृ. 14। अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड नयी दिल्ली, संस्करण –2011। (8) (सं.) डॉ. राकेश रामपुरिया, प्रणु शुक्ला, समाजदृष्टा साहित्यकारः रत्नकुमार सांभरिया, पृ. 180। दृष्टि प्रकाशन जयपुर, संस्करण –2016। (9) (सं.) डॉ. राकेश रामपुरिया, प्रणु शुक्ला, समाजदृष्टा साहित्यकारः रत्नकुमार सांभरिया, पृ. 174। दृष्टि प्रकाशन जयपुर, संस्करण –2016। (10) रत्न कुमार सांभरिया, हुकम की दुग्गी, कहानी 'आखेट', पृ 31। रचना प्रकाशन जयपुर, संस्करण–2003। (11) रत्नकुमार सांभरिया, काल तथा अन्य कहानियां, कहानी 'धूल', पृ. 65। रचना प्रकाशन जयपुर, संस्करण–2004। (12)देवीशंकर अवस्थी नई कहानीः संदर्भ और प्रकृति, पृ. 126। राजकमल प्रकाशन– दिल्ली, संस्करण–1973। (13)रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियां, कहानी 'हथौड़ा' पृ. 268। अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड नयी दिल्ली, संस्करण –2011। (14)त्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियां, कहानी 'हथौड़ा' पृ.268 अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड नयी दिल्ली, संस्करण –2011। (15)रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियां, कहानी 'हथौड़ा' पृ.269 अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड नयी दिल्ली, संस्करण –2011। (16) रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियां, कहानी 'भैंस' पृ.110अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड नयी दिल्ली, संस्करण –2011। (17) रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियां, कहानी 'काल' पृ. 111। अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड नयी दिल्ली, संस्करण –2011। (18) लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, आधुनिक कहानी का परिपार्श्व, पृ.123। साहित्य भवन प्रकाशन प्रा. लिमिटेड इलाहाबाद, संस्करण– 1966। (19) रत्नकुमार सांभरिया, प्रतिनिधि लघुकथा शतक, लघुकथा 'आवरण,' पृ. 31। अनामय प्रकाशन, लाल कोठी योजना जयपुर, संस्करण –2010। (20)रत्नकुमार सांभरिया, प्रतिनिधि लघुकथा शतक, लघुकथा 'अंतर,' पृ. 31। अनामय प्रकाशन, लाल कोठी योजना जयपुर, संस्करण –2010। (21)रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियां, कहानी 'आखेट' पृ. 42। अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड नयी दिल्ली, संस्करण –2011। (22)रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियां, कहानी 'आखेट' पृ. 45। अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड नयी दिल्ली, संस्करण –2011। (23) रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियां, कहानी 'बूढ़ी' पृ. 52। अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड नयी दिल्ली, संस्करण –2011। (24) रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियां, कहानी 'गूंज' पृ. 61। अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड नयी दिल्ली, संस्करण –2011। (25) रत्नकुमार सांभरिया, हुकम की दुग्गी, कहानी 'मियांजान की मुर्गी', पृ 114। रचना प्रकाशन जयपुर, संस्करण–2003। (26) हंस, जुलाई–2004, कहानी 'चमरवा'। (27) रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियां, कहानी 'खेत' पृ. 235। अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड नयी दिल्ली, संस्करण –2011। (28) रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियां, कहानी 'मैं जीती' पृ. 53। अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड नयी दिल्ली, संस्करण –2011। (29)रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियां, कहानी 'खेत' पृ. 235। अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड नयी दिल्ली, संस्करण –2011। (30)ऊपरीवत्। (31)रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियां, कहानी 'बिपर सूदर एक कीनै',पृ. 245। अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड नयी दिल्ली, संस्करण –2011। (32) ऊपरीवत्।

31.रत्नकुमार सांभरिया का व्यक्तित्व : एक दृष्टि

–डॉ.अनिता वर्मा
सहआचार्य–हिन्दी विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा

व्यक्तित्व किसी भी मनुष्य के परिवेश, परिस्थिति व संस्कार का परिचायक होता है, इस दृष्टि से रत्नकुमार सांभरिया एक लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार है जिनके साहित्य में लोक माटी की गंध, आँखों से देखें जीवनानुभव, संघर्ष सब कुछ समाहित है दलित विमर्श पर चिन्तन करने वाले, आमजन की पीड़ा को महसूस करर शब्द बद्ध करने वाले साहित्यकारों में आपका नाम अग्रणी है। हाशिये पर धकेल दिये गये मनुष्य की पीड़ा, वेदना, दर्द व उसके जीवन की विसंगतियों पर आपने बड़ी सूक्ष्म दृष्टि के साथ कलम चलाई है। श्री रत्नकुमार सांभरिया बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी है सच्चाई को बेबाकी व निडरतापूर्वक सहज भाव से अभिव्यक्ति प्रदान करना आपके व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य है। श्री सांभरिया मृदुभाषी, मिलनसार व सकारात्मक भाव से सामाजिक सरोकार का निर्वहन करते हैं जो इनके लेखन में दिखाई देता है। जमीनी रचनाकार श्री रत्नकुमार सांभरिया बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी रचनाकार हैं। सहजता, सरलता इनके व्यक्तित्व का गुण है। श्री सांभरिया का जन्म 6 जनवरी 1956 को हरियाणा प्रान्त के रेवाड़ी जिले के गाँव भावावास में हुआ। आपके पिता श्री राम सांभरिया एक गरीब खेतिहर मजदूर थे। माता जुगरीदेवी धर्मपरायण एवं कुशल गृहिणी थी। दो बड़ी बहिनों के बाद माता–पिता की सबसे छोटी संतान होने के कारण आपको अधिक लाड़ प्यार मिला। इनकी माँ इन्हें प्रेम से 'रत्न' कहकर पुकारती थी। श्री सांभरिया की प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय पाठशाला में ही हुई। मेट्रिक की परीक्षा अहीर स्कूल रेवाड़ी से उत्तीर्ण की, उसके बाद अहीर कॉलेज रेवाड़ी से सन् 1976 में बी.ए. की परीक्षा पास की 1978 में सतीश पब्लिक कॉलेज ऑफ एजुकेशन रेवाड़ी से बी.एड उत्तीर्ण किया।

इनका प्रारम्भिक जीवन अत्यन्त संघर्षपूर्ण रहा। घर की आर्थिक स्थिति अत्यन्त कमजोर होने के कारण इन्हें अध्ययन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, परन्तु दृढ़ निश्चय और मजबूत इरादों ने इन्हें हौंसला प्रदान किया जिससे ये समस्याएँ कभी भी इनके मार्ग की रूकावट नहीं बन पायी। प्रतिभा व कौशल सम्पन्न होने के कारण अध्ययन जारी रहा। आपने 1986 में राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से बी.जे.एम.सी. पत्रकारिता में डिप्लोमा कोर्स किया। प्रारम्भ में आपकी नियुक्ति प्राइमरी अध्यापक पद उदयपुर की धरियावाद पंचायत समिति की राजकीय पाठशाला गदवास में हुई। 1984 में लेखाकार के रूप में आपकी नियुक्ति हुई। 1990 तक इस पद पर कार्यरत रहने के पश्चात् आकाशवाणी के जोधपुर और जयपुर केन्द्रों पर आप हिन्दी अनुवादक रहे। इसके बाद जुलाई 1996 से राजस्थान सरकार में जनसम्पर्क अधिकारी बने। वर्तमान में आप सेवानिवृत होकर सामाजिक सरोकार के निर्वहन हेतु साहित्य सृजन कर रहे हैं। संवेदना सृजन का आधार होती है जो किसी भी संवेदनशील रचनाकार को अपने परिवेश व समाज से जोड़ती है यह जुड़ाव रचनाकार को अनुभूति प्रदान करता है, उस अनुभूति बाद में संवेदनशील रचनाकार को दृष्टि प्रदान करती है। यही सूक्ष्म दृष्टि से वह अपनी अनुभूतियों व चिन्तन को गहराई से परखते हुए शब्दबद्ध कर अभिव्यक्ति प्रदान करता है। यह अभिव्यक्ति उसे समाज से जोड़ती है परन्तु इन सबके सृजन के लिए 'प्रेरणा' का होना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। परिवेश, विशिष्ट व्यक्तित्व, सम्पर्क आदि सृजन को गति प्रदान करते हैं। श्री सांभरिया को साहित्य सृजन की प्रेरणा रेवाड़ी महाविद्यालय में हिन्दी प्राध्यापक पद पर कार्यरत गुरू डॉ. रामपत यादव से मिली। डॉ. यादव की प्रेरणा ने रत्नकुमार सांभरिया के भीतर उत्साह व ऊर्जा का संचार किया। उनके स्नेह, आत्मीयता ने इनके व्यक्तित्व को सम्बल प्रदान किया। डॉ. यादव से प्रेरणा प्राप्त करके आपकी साहित्य सृजन यात्रा प्रारम्भ हुई। आज साहित्य के क्षेत्र में रत्नकुमार सांभरिया जाना पहचाना नाम है। आपको विभिन्न संस्थाओं द्वारा साहित्यिक उपलब्धियों पर सम्मानित किया जा चुका है जिनमें हरियाणा सरकार द्वारा प्रदत्त हरियाणा गौरव साहित्य सम्मान वर्तमान में 2022 से माननीय मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत द्वारा 'भीमरत्न सम्मान' दिया गया है। अब तक आपके कहानी संग्रह 'हुकुम की दुग्गी' राजस्थान साहित्य अकादमी के आर्थिक सहयोग से 2003, 'काल तथा अन्य कहानियाँ' रचना प्रकाशन से 2008 में, 'खेत तथा अन्य कहानियाँ'–2010, 'दलित समाज की कहानियाँ'–2011 एयरगन का घोड़ा–2015 में। एकांकी : नाटक समाज की नाक–1988, वीमा – 2014, उजास–2014, भभूल्या नाटक प्रमुख है आपकी रचनाओं के मंचन व अनुवाद हो चुके हैं। सृजनात्मक की दृष्टि से आपका लेखन अत्यन्त समृद्ध व उत्कृष्ट है। आपको सृजनधर्मिता को अनेक सम्मान मिले है जिनमें नवज्योति कथा सम्मान, अखिल भारतीय कथा लेखन, राजस्थान पत्रिका सृजनात्मकता पुरस्कार, हरियाणा गौरव सम्मान–2017, नाटक 'वीमा' पर राष्ट्रीय अश्वघोष नाट्य पुरस्कार, नागपुर–2020 मिल चुका है। देश की प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में सांभरिया जी की रचनाएँ प्रकाशित हो रही है। संवेदनशील रचनाकार रत्नकुमार सांभरिया की सृजनधर्मिता व प्राप्त सम्मान आपके व्यक्तित्व विशिष्टता अनुभूत की गहराई व संवेदना की व्यापकता का प्रमाण

है। उनके व्यक्तित्व में जीवन की कठोर जमीन से जुड़ा यथार्थ, जीवन्त अनुभूतियाँ मानों उस युग का साक्षात्कार कराती प्रतीत होती है। अपने आत्मकथ्य में वे लिखते हैं– ''एक दिन का वाकया है। तेज आंधी आ गई थी। वह आंधी तूफान जैसी तबाही का रूख किये थी। किसी आततायी की तरह घर में घुस आई थी बार–बार मुसीबत में उपाय इख्तियार हो जाया करता है। काका फुर्ती से स्टूल पर चढ़े और पानी खींचने की नेजू (रस्सी) को छान टिकी बल्ली में डालकर उससे लूम गये थे। उन्हों मुझे भी ताकीद की कि मैं ताकत से रस्सी को पकड़ लूँ। छान कहीं उड़ गई, कंगाली में आटा गीला हो जायेगा। मुफलिसी और शब्द में एक बड़ा अंतर यह हुआ कि मुफलिसी को श्रमिक और बेसहारा सुहाते हैं। शब्द विकास और पुनर्वास के अपेक्षी होते हैं यदि एक सच्चे साधक की तरह शब्द से सरोकार रखा जाये तो आदमी सोपान–दर–सोपान शीर्ष की ओर बढ़ता जाता है और जिस शख्स ने शब्दों का लंगर कस लिया हो, वह गरीबी से मैदान मार लेता है।''1

आत्मकथ्य का प्रस्तुत उदाहरण रत्नकुमार सांभरिया जी के जीवन संघर्ष और उसके प्रति उनकी दृष्टि जो कि शब्द सृजन से जुड़ी हुई है उसे उद्घाटित करता है। श्री सांभरिया द्वारा कहा कथन – 'शब्दों का लंगर' और शब्द विकास और पुनर्वास के अपेक्षी होते हैं, उनके व्यक्तित्व को समझने की दृष्टि प्रदान करते हुए उनके साहित्य साधक होने की लगन और सृजन को सार्थकता प्रदान करता है। अद्भुत व्यक्तित्व के धनी रत्नकुमार सांभरिया जीवन संघर्ष के झाड़–झकाड़ को साफ करते हुए 'शब्द' को अपने व्यक्तित्व निर्माण का संबल मानते है। साहित्य–साधना के इसी समर्पण, लगन, रूचि जुनून ने उन्हें आज एक प्रतिष्ठित साहित्यकार के रूप में स्थापित कर दिया है जो अनुकरणीय और प्रशंसनीय है। प्रेरणास्पद है। हरियाणा और राजस्थान को सीमा पर बसे गाँव की मिश्रित बोली राजस्थानी और मेवाती बोली उन्हें घुट्टी के रूप में मिली थी। जिसमें माटी की सौंधी महक व संस्कार बीज रूप में थे। दिखाई देते हैं। आत्मकथ्य में ही वे इसी बात को स्वीकारते हुए कहते हैं– ''मुझे जिस बोली की घूंटी दी गई वह राजस्थानी और मेवाती मिश्रित थी। पगइया–पगइया चलकर घर आंगन और गांव की गलियों से मैंने जो बोली सीखी वह हरियाणवी थी। दो प्रदेशों के जो भाषाई संस्कार मुझमें पैदा हुए वे आज मेरी शिराओं और शब्दों में है।''2

रत्नकुमार साहित्य का व्यक्तित्व अपने उत्कृष्ट व सामाजिक सरोकार से जुड़े होने के कारण पाठकों के ह्रदय में एक अलग सी अमिट छाप छोड़ता है। इनके पात्र जीवन, जीवट, जिजीविषा, जज़्बा व संघर्ष से पूर्ण है। इन पात्रों में विकसित दृष्टि, हिम्मत और बहुत कुछ कर लेने का विश्वास दिखाई देता है। परिवेश व्यक्तित्व को आकार प्रदान करता है। जहाँ और जिस परिवेश में मनुष्य पलता है बढ़ा होता है वही आगे चलकर उसके व्यक्तिव व चिन्तन को दिशाबोध भी प्रदान करता है। परिवेश के साक्षात्कार के साथ मन मस्तिष्क पर अंकित बिम्ब, दृश्य, घटनाएँ मानव को अवश्य प्रभावित करती है फिर संवेदनशील रचनाकार के व्यक्तित्व के संदर्भ में विचार किया जाये तो परिवेश उसके लिए, उसके व्यक्तित्व निर्माण, सृजन सभी के लिए अतिमहत्वपूर्ण हो जाता है। दिनेश विजयवर्गीय द्वारा रत्नकुमार सांभरिया का लिया साक्षात्कार इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। जब उनसे प्रश्न किया गया– ''सांभरिया जी आपकी फुलवा, बकरी के दो बच्चे, चपड़ासन, काल, विपर सूदर एक कीने जैसी कहानियाँ पढ़कर लगता है, आपके अंतस में गरीबी और अभाव के अनुभवों का एक बड़ा दफीना है। तब रत्नकुमार सांभरिया प्रत्युत्तर में कहते है– ''विजय जी आपने मेरी दुखती रग पर हाथ रख दिया है सच कहूँ, गरीबी के साथ मैंने बड़ी कुश्तियाँ लड़ी है। मैंने अपनी शिक्षा और बौद्धिक कौशल से उसे हराया है। एक दो बार ऐसे अवसर आये जब गरीबी ने मुझे आ दबोचा। मैंने सोचा सांस–सांस मरती जिंदगी से मौत का वरण बेहतर है। लेकिन बाबा साहब के 'शिक्षित बनो' मंत्र ने मुझमें नई चेतना फूंक दी। शिक्षा संघर्ष के लिए बड़ा हथियार होती है। समय सौदागर है। अब दरिद्रता और दलित्व का लबादा कब का उतर चुका।''3

साक्षात्कार का उक्त संवाद इनके प्रारम्भिक जीवन के आर्थिक संघर्ष की गाथा अवश्य कहता है पर संवाद की समाप्ति 'शिक्षा को हथियार' बनाकर जीवन नैया आगे बढ़ाने की बात वे कहते हैं, जो अतिमहत्वपूर्ण है। इससे सिद्ध होता है कि श्री रत्नकुमार सांभरिया के व्यक्तित्व निर्माण में बाबा साहब अम्बेडकर का प्रेरक वाक्य 'शिक्षित बनो' की महती भूमिका है। उनके व्यक्तित्व निर्माण में गाँव, आस–पास के लोग, परिजन, मित्र, परिस्थितियों ने उन्हें समृद्ध किया। हिम्मत, हौंसला और आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान मिली। संवेदना सृजन का आधार होती है जिससे रत्नकुमार सांभरिया जी का साक्षात्कार जीवन संघर्ष और जीवन यात्रा में होता रहा है। यह सब कुछ उनके सृजन में स्पष्ट दिखाई देता है। प्रतिबिम्बित होता है। ये पात्र विपरीत परिस्थितियों में रोते कराहते, दीनहीन नहीं दिखाई देते वरन् वे तो अपनी बुद्धि व कौशल से उस विकट परिस्थिति का डटकर मुकाबला करने को तैयार खड़े दिखाई देते हैं। श्री रत्नकुमार सांभरिया की कहानियाँ लाठी, बात, झंझा, कील, डंक, चपड़ासन, स्पष्टवादिता, बेबाकी व

अन्याय शोषण के खिलाफ आवाज बुलन्द करती दिखाई देती है। जो रत्नकुमार सांभरिया के व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब कहा जा सकता है। 'काल' कहानी का एक प्रसंग यहाँ उल्लेखनीय है– "विषम परिस्थितियों से जूझते हुए भी मिनखू अहम् का पूरा था। कह पड़ा– "खूब मखौल है। जिनको भूख है, उनको काम नहीं है।"4

प्रस्तुत संवाद रचनाकार के रूप में श्री रत्नकुमार सांभरिया को एक अलग श्रेणी में ला खड़ा करते हैं। जो साहस, चेतना और दृष्टि सम्पन्न है। श्री रत्नकुमार सांभरिया एक संवेदनशील साहित्यकार हैं, जो अपनी जड़ों से गहराई तक जुड़े हुए हैं सुनना और अनुभूति को शब्दों में ढालकर उसे सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान करना आपके व्यक्तित्व का विशेष गुण है आपकी शोध परख दृष्टि ने अनेक पात्रों के मन को गहराई से टटोलते हुए उनकी पीड़ा, वेदना व अंतस संघर्ष को परखा व समझा है। आपके लेखन में माटी की गंध का जादुई स्पर्श महसूस होता है। हाशिये पर धकेल दिये गये लोग जैसे सपेरा, सांसी, कंजर कालबेलिया, बहुरूपिया, नट आदि जातियों को केन्द्र में रखकर आपने अनेक कहानियाँ व उपन्यास लिखे हैं जो अत्यन्त चर्चित हुए है और प्रभावी है जिनका नाट्य रूपान्तरण विविध प्रतिष्ठित नाट्यमंचों से होता रहा है। इन लोगों का जीवन संघर्ष, अभाव, पीड़ा वेदना, मनुष्य को मनुष्य न मानने का दर्द, अपने ही लोगों द्वारा बहिष्कृत कर दिये जाने की कसक, इनके अस्तित्व का प्रश्न जैसे विचारणीय बिन्दुओं को श्री सांभरिया ने अपनी कलम द्वारा उल्लेखित किया है। जो आपके व्यक्तित्व की सहजता सरलता और संवेदनशीलता का परिचायक है। अपनी सृजनधर्मिता के विषय में लिखते हुए वे कहते हैं– "मेरी कहानियों का मुख्य ध्येय दलित ध्येय दलित और सर्वहारा वर्ग के पात्रों में संघर्ष के माध्यम से हक की लड़ाई जीतना है। इन्हीं पात्रों को नायकत्व प्रदान करना है। गरीब का रिरियाना बिलखना, गिड़गिड़ाना, कूटना–पीटना, ठुकना, अस्मिता का लुट जाना मेरी कहानियों के पात्रों को गंवारा नहीं है उनमें जीवट, जज़्बा और जिजीविषा होगी। वे पहाड़ काटकर भी अपनी राह बनायेगें।"5

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है, व्यक्तित्व मनुष्य के जीवन यात्रा में अनुभूत सत्य का प्रतिबिम्बन होता है जिसे वह जन्म से लेकर परिपक्व होने की अवस्था तक उन्हें संचित करता चलता है। जीवन के विविध चित्र चलचित्र की भाँति उसके भीतर चलते रहते है। श्री रत्नकुमार सांभरिया एक विशिष्ट व्यक्तित्व व प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार है जिन्होंने जीवन के विविध उतार–चढ़ाव के बीच अपनी प्रतिभा व बौद्धिक कौशल से साहित्य की दुनिया में अपना लोहा मनवाया है। सांभरिया जी के पास मान सम्मान की एक लम्बी फेहरिस्त है। इन्हें कथा लेखन क्षेत्र में दो बड़े पुरस्कार मिले है। एक 'कथादेश हिन्दी कहानी प्रतियोगिता' का प्रथम पुरस्कार उनकी कहानी 'विपर सूदर एक कीने' को दूसरी और 'राजस्थान पत्रिका सृजनात्मक साहित्य पुरस्कार'–2008 से सम्मानित किया है। आपका सम्पूर्ण व्यक्तित्व जीवटता, सहजता, सरलता व संवेदनशीलता का पयार्य है, जो आपके सृजन व कथा के पात्रों के साथ–साथ चलता है, संवाद करता है वे कहते हैं– मेरी कहानियाँ आत्याचार अनाचार, उत्पीड़न और शोषण के विरुद्ध आम आदमी के हक में खड़ी होती है। व्यवस्था के खिलाफ आक्रोश है, लेकिन यह आक्रोश हिंसा या प्रत्यक्रमण का अपेक्षी नहीं है। संदेश दलित चेतना और वर्ग संघर्ष। लक्ष्य साहित्यिक क्रान्ति लाना चाहता हूँ।"6 व्यक्तित्व मानव के जीवन का जीवन्त दस्तावेज कहा जा सकता है जो विविध परिस्थितियों, घटनाओं के साथ कदमताल मिलाता हुआ आकार लेता रहता है। व्यक्तित्व निर्माण में परिस्थितियाँ महत्त्वपूर्ण होती है, श्री सांभरिया ने अपने चिन्तन, शिक्षा रूपी हथियार, सामाजिक सरोकार का ईमानदारी से निर्वहन करते हुए अपने व्यक्तित्व को संवेदना के स्तर पर ढलते हुए निर्मित हुआ है। जनपक्षधरता के साथ वे सदैव खड़े दिखाई देते हैं यही उनके व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य है।

संदर्भ सूची–

1.मोनोग्राफ–87 राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर,69 2.मोनोग्राफ–87 राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर,69 3.मोनोग्राफ–87 राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर,पृष्ठ सं.–80–81 4.काल तथा अन्य कहानियाँ, रत्नाकुमार सांभरिया, पृष्ठसं.–75 5.मोनोग्राफ–87 राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर,पृष्ठ सं.–82 6.मोनोग्राफ–87 राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर,पृष्ठ–82

32.रत्नकुमार सांभरिया के कथा साहित्य में सामाजिक समस्याओं पर मंथन

–श्रद्धा श्री यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा, गिंदो देवी महिला महाविद्यालय, बदायूं

रत्न कुमार सांवरिया जी की कहानियां व साहित्य समाज के उस विकट कुरीतियों की ओर ध्यान आकर्षित करता है जो सृजन व आदर्श के विपरीत कार्य करती हैं आपका साहित्य समाज से इस प्रकार जुड़ाव रखता है की दर्शन व समाज की इस परिदृश्य के बारे में किसी ने विचार भी ना किया होगा। मार्क्सवादी अंबेडकर वादी विचारधारा से प्रभावित आपका साहित्य सत्य व ईमानदारी का पूरण चरित्र चित्रण करता है आपकी स्वाभि आपका स्वाभिमान संघर्षशील जीवन का विद्रोह क्रांति के भाव जो आपके साहित्य में सहजता सरलता विनम्रता सहयोग की भावना इत्यादि के साथ–साथ समाज की सामंती व्यवस्था के प्रति आपकी कृष्णा भेदभाव के प्रति आपका विचार प्रदर्शित करते हैं ग्रामीण परिवेश में जन्म होने के कारण आपने समाज के कमजोर वर्ग का सृजनात्मकता के साथ चित्रण किया है। साहित्य के क्षेत्र में आपसे मानव की बुनियादी समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित किया है आपका लेखन सामंती व्यवस्था व ब्राह्मण वादी मानसिकता से विक्षिप्त लोगों के प्रति कठोर प्रहार करता है। आप मानवता मानवतावादी मूल्यों का समर्थन करते हैं धर्म विषयक अवधारणा को सक्रियता में ना रखते हुए उसका व्यवहार और विचार में खुलापन वा गुणों को प्राथमिकता देते हैं। के साहित्य में निश्चित रूप से एक कवि की कृतित्व कलाकार की रचनात्मकता वह समाजवादी की संघर्षशीलता दिखती है।

इक्कीसवीं शताब्दी की चर्चित कहानीकारों में शामिल रत्न कुमार साभरिया के जीवन का एकमात्र उद्देश्य मानव में चेतना का संचार करना है।उन्होंने इस उद्देश्य की पूर्ति करने हेतु अपना समस्त जीवन अर्पित कर दिया उनकी रचना ही उनका समस्त संसार था उन्हीं के माध्यम से वे सामाजिक अवस्थाओं व्यवस्थाओं व परिस्थितियों का चरित्र चित्रण कर पाते थे। उन्हें हिंदी के सशक्त कहानीकार के रूप में जाना जाता है। इनका साहित्य लेखन न केवल हृदय को झकझोर देने वाला था अपितु समाज का दर्पण प्रदर्शित होता है आपके साहित्य में सरलता ,विनम्रता, जीवटता, विद्रोह,संघर्षशीलता, स्वाभिमान ,इत्यादि की सादृश्यता सदैव ही प्रति लक्षित होती रहती है। समाज के संदर्भ में आपका दृष्टिकोण प्रतिवादी है कथा साहित्य में कई बार परिवर्तनशीलता व विकास का उद्देश्य भी प्रदर्शित होता है।

समाज के विभिन्न वर्गों से जुड़ाव, उनकी समस्या, परिस्थिति, ताकत, कमजोरी, संघर्ष व प्रगतिशील प्रवृत्तियों को उजागर करना तथा भाषा व चरित्र की मर्यादा को बनाए रखना आपके साहित्य में चार चांद लगा देता है। आपने मुख्यता मध्यम व निम्न वर्ग को केंद्रबिंदु में रखा है। उनकी उपयोगिता व समस्याओं को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है। एक कहानीकार के रूप में आपके साहित्य में समाज के विभिन्न वर्गों से गहरा जुड़ाव व उनकी आशा आकांक्षाओं ताकतों कमजोरियों तथा बदलते युग के साथ इस में होने वाले परिवर्तन की समझ उन परिस्थितियों और शक्तियों की पहचान स्पष्ट रूप में प्रदर्शित होती है। माननीय सामाजिक संघर्षों की बात करें तो अंतः वाह्य संघर्ष उत्कृष्ट रूप में चरित्र चित्रण में प्रदर्शित होता है। समाज में निम्न व मध्यम वर्ग की समस्याएं, कुंठा आदि की अभिव्यक्ति की गई है।

जातीय विभेद–प्राचीन काल से ही समाज में वर्ण व्यवस्था व्याप्त थी धीरे धीरे आदिम समाज आगे चलकर श्रम के आधार पर ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र चार वर्णों में विभाजित हो गया।" वर्ण तो चार ही थे परंतु जातियों की संख्या हजारों में है अंबेडकर ने लिखा है मूल रूप से शुरू में केवल 4 जातियां थी आज कितनी है अनुमान है कि कुल मिलाकर यह 2000 से कम नहीं है यह 3000 भी हो सकती हैं बहुत सी जातियां होने का एक कारण समय–समय पर नए–नए कबीलों का सामंती व्यवस्था में शामिल होना है"1 आपकी कथाओं में आऐ जातीय संघर्ष व राजनीतिक संघर्ष की चर्चा करें तो यह बात स्पष्ट होती है की प्रजातांत्रिक व्यवस्था में अधिकार तो बहुत मिले परंतु राजनीतिक चेतना का अभाव व जातिवाद का अवसर वादियों में समाज में जो जहर घोला समाज में मित्रता शांति व सद्भावना का शत्रु सिद्ध हुआ।

"भारतीय राजनीति और जाति व्यवस्था के संबंध में यह आशा करना कि जनतंत्रीय संस्थाओं की स्थापना के बाद जाति व्यवस्था का लोप हो जाना चाहिए एक भ्रामक और त्रुटिपूर्ण धारणा है। जो लोग भारतीय राजनीति में जातिवाद की की शिकायत करते हैं एक ऐसी राजनीति की कल्पना करते हैं जो समाज में संभव नहीं है वास्तविकता तो यह है कि भारत में जिसे राजनीति का जातिवाद कहा जाता है वह जातियों का राजनीतिकरण ही अधिक है"2

वर्ण व्यवस्था पर कटाक्ष– लेखक सांभरिया जी का कथा साहित्य समाज के सामंती सोच व ब्रह्मणवादी मानसिकता को प्रदर्शित करता है वर्षों से ही वर्ण व्यवस्था की रूढ़ियां व सूत्र वर्ग की शोषण के कारण सामाजिक व शैक्षणिक स्तर पर पीछे ही

रहा इन्हीं घणा व तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता था। अंबेडकर ने भारत की जातीय वीडियो को तोड़ने का प्रयास करते हुए कहा था कि" सभी जातियां स्वागत है पुरातन पंथियों में जाति के नाम पर सुधार को को हतोत्साहित किया है।"2 एक कहानीकार के रूप में अपने भारतीय समाज में व्याप्त वर्ण व्यवस्था व उसकी की कुरीतियों को प्रदर्शित करने का पूर्व प्रयास किया है आपकी रचनाएं फुलवा, चमरवा, मुक्ति , बदन दबाना आदि मी आपने वर्षों से चली आ रही वर्ण व्यवस्था की कुरीतियों पर प्रकाश डाला है।"मुक्ति कहानी इसी समस्या को उठा के तक पहुंचती है" महंत ने ऊंचे कंठ नानक को हड़की मारी अरे नानकिया मेहततर है तू झाड़ू वाले हाथ मूर्ति नहीं छूटे"3

जातीय संघर्ष व वैमनस्य– कथाकार सांभरिया जी की कहानियां समकालीन जीवन की स्थितियों को व्यक्ति के माध्यम से व्यक्त करती हैं व्यक्ति परिस्थितियों के बस में होता है और इन परिस्थितियों का निर्माण सामंती और पूछी प्रति लोगों ने किया है जिसका प्रभाव निम्न वर्ग पर ही पड़ता है। कहानी तलाश की बात की जाए तो आपसी दुश्मनी व तकरार के कारण धर्मदेव को काफी कुछ संघर्ष करना पड़ता है कहानीकार ने कहानी बकरी के 2 बच्चे में सामाजिक विषमता का ऐसा दर्पण प्रस्तुत किया है की किस कदर किसी गरीब की छोटी–छोटी खुशियों को यह वैमनस्यता खत्म कर देती है।"कहानी बकरी के दो बच्चे जिसमें कहानी का पात्र दलपत रोते हुए कहता है "चार दिन की मासूम बच्चे क्या जाने दलपत का घर। क्या जाने दान सिंह की हवेली, कुलांचते कुलांचते रास्ता पार कर हवेली में चले गए............... दलपत ने जूतियों से पीटा अपना सिर उठाया नहीं –शर्मचंद , की मार से नहीं मरे हैं मेरे बच्चे दानसिह के धर्मपाल ने पीट–पीटकर मार दिया है इनको"4

आर्थिक विसंगतियां–भारत में जातिय व आर्थिक आधार पर बीती तो प्रायः दिखी जाते हैं स्वतंत्रता के पश्चात कई परिवर्तन आए पर आर्थिक व सामाजिक विषमता समाज में प्रायः प्रतिबिंबित होती ही रहती है आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग का शोषण विशेषतः ग्रामीण परिवेश में प्रायःदेखने को मिल ही जाता है उन्हीं हीन भावना व कुंड की दृष्टि से देखा जाता है गांव में अर्थव्यवस्था का प्रमुख स्रोत कृषि होता है मजदूर व कृषक वर्ग इतनी मेहनत वह परिश्रम के बावजूद तरंगी कठिन समस्याओं व परिस्थितियों का सामना करते रहते हैं। कहानीकार रत्न कुमार सांवरिया जी अंबेडकरवादी विचारधारा से प्रभावित थे उनका मानना था मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति बिना किसी भेदभाव करना लोकतंत्र का प्रथम कर्तव्य है। कहानी के माध्यम से ग्रामीण वर्ग की आर्थिक विसंगतियों को दूर समाजवादी दृष्टिकोण पर जोर डालने का प्रयास किया है।

जमीदारी प्रथा में निम्न वर्ग का शोषण–जमीदारों नहीं किस प्रकार निम्न व मजदूर वर्ग का शोषण किया है उनको मानवीय अधिकारों से वंचित रखा है यह आपकी कहानियों में प्रतिबिंबित होता है इस संबंध में रजनी पाम दत्त ने लिखा है, "जैसे–जैसे किसान की घटनाएं बढ़ती है वैसे–वैसे उसके ऊपर कर्ज का बोझ भी बढ़ता जाता है और उसकी कठिनाइयों में वृद्धि हो जाती है इस तरह वह एक दुष्चक्र में फंस जाता है जिसकी अंतिम परिणति यह होती है कि वह अपने जीवन से बेदखल कर दिया जाता है" |(46) लेखक की कहानी भैंस हो या दबाना दोनों ही जमींदारों की शोषण पर केंद्रित है आपके विचार में सामाजिक और आर्थिक मुक्ति के बिना सामाजिक स्वतंत्रता की कल्पना नहीं की जा सकती इस समस्या का मूल कारण सामंतवादी अर्थव्यवस्था है इसी वजह से आप की कहानियों में सामंतवादी अर्थव्यवस्था के प्रति घृणा का भाव है। यह व्यवस्था मनुष्य के मानवतावादी विचारों को खत्म कर ईर्ष्या वादी तथ्यों व सामाजिक मानवीय संघर्षों के लिए प्रेरित करती है। निंबा मजदूर वर्ग का शोषण कोई नई बात नहीं है आज भी उनकी उपेक्षा होती रहती है यह असंतोषजनक स्थिति है कि अधिक लोगों को अपनी जीविका चलाने के लिए भारत ढोने वाले पशुओं के भांति कई कई घंटे पसीना बहाना पड़ता है और इस प्रकार है वे मनुष्य की अमूल्य धरोहर मस्तिष्क एवं मन का प्रयोग के अवसरों से सर्वथा वंचित रह जाते हैं"50

बेरोजगारी एक समस्या–बढ़ती जनसंख्या, वैज्ञानिक उपकरणों का प्रौद्योगिकी के कारण गा बेरोजगारी की समस्या बढ़ती ही जा रही है। ग्रामीण परिवेश की बात करें तो कृषि ही एकमात्र रोजगार का साधन रहा है आप की कहानी तलाश में इस समस्या पर विशेष प्रकाश डाला गया है। अंबेडकरवादी व मानवतावादी विचारों से प्रभावित होने के कारण रतन कुमार सांवरिया जी की कहानियों में मानव की समानता पर विशेष बल दिया गया है आर्थिक विषमता के कारण जातीय व सामाजिक संघर्ष शुरू हो जाता है जिसमें निम्न वर्ग का ही सदैव शोषण होता है। धार्मिक आडंबर वा राजनीति में धार्मिक हस्तक्षेप–रत्न कुमार सांवरिया जी ने अपनी साहित्य के माध्यम से ग्रामीण परिवेश में शायरी धार्मिक विसंगतियों को उजागर करने का अथक प्रयास किया है आपने अपनी कहानी कथाओं के माध्यम से समाज का वास्तविक चित्रण करने का प्रयास किया है लघुकथा स्वर्ग की बात करें तो मानव में स्वर्ग नरक की धारणा पर प्रहार करती है धर्म में सांप्रदायिकता तथा पुनर्जन्म अंधविश्वासी विचारों पर कटु

प्रहार किया है। कहानी अनुष्ठान में भी अंधविश्वास तंत्र मंत्र आडंबर का पर्दाफाश किया गया है।

साभरिया जी का सामाजिक दृष्टिकोण–रत्न कुमार सांवरिया जी मानवतावादी साहित्यकार थे साहित्य समाज का प्रतिबिंब होता है साहित्यकार की संवेदनशीलता विचार दृष्टिकोण की कहानी या कथा को आकार प्रदान करते हैं अपने साहित्य के माध्यम से अपने उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत किया है साथ ही साथ जात पात झूठे आडंबर कुप्रथा सामाजिक व्यवस्थाओं सामंती व्यवस्था जमीदारी प्रथा का भरसक विरोध करने का प्रयास किया है। लेखक के विचार में सामंती व्यवस्था में निम्न कमजोर वर्ग को बेवजह ही परेशान किया गया हर कदम पर उनका शोषण किया गया जब तक समाज में जातीय भेदभाव समाप्त नहीं हो जाता निम्न जातियों की उन्नति संभव नहीं है समाज में व्याप्त जातिवाद साम्प्रदायिकता भ्रष्टाचार पारिस्थितिक असंतुलन होते रहेंगे तब तक मानव मूल्यों की रक्षा नहीं की जा सकती।

सन्दर्भ–(**1**)विजय राय (स): समकालीन , संस्कृति, कला और विचार का मासिक (साहित्य विशेषांक सितंबर अक्टूबर 2002) पृष्ठ संख्या 9 (**2**)राजाराम कल्पना (स) भारत का संविधान और राजनीतिक व्यवस्था पृष्ठ संख्या 416– 417 (**3**)संभरिया कुमार खेत तथा अन्य कहानियां पृष्ठ संख्या65 (**4**)संभरिया, रत्न कुमार: हुकुम की दुखी पृष्ठ संख्या14 (**5**)पाम दत्त ,रजनी: आज का भारत पृष्ठ संख्या262 (**6**)शर्मा कुमकुम (स): समकालीन, कला,और विचार का मासिक(दलित साहित्य विशेषांक)पृष्ठ संख्या58

ISSN-2454-6283 PEER Reviewed Journal

33. 21वीं सदी का दलित साहित्य; रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में दलित जीवन के संदर्भ में

–डॉ0विजय पाल
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
दयाल सिंह कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) लोदी रोड़, नई दिल्ली

दलित कहानियां किसी अंचल या क्षेत्र विशेष तक सीमित न रह कर कमोवेश सम्पूर्ण भारतीय दलित समाज और जीवन की वास्तविक स्थिति, संवदेना, भावना और चेतना का प्रतिनिधित्व करती है। हिन्दू धर्म और उसकी वर्ण व्यवस्था के कारण दलितों का जीवन मानवोचित सभी अधिकारों से वंचित रहा है। हिन्दू धर्म और व्यवस्था में उसकी स्थिति पशु से भी निम्न स्तर की रही है। एंक पशु व पक्षी किसी के घर की रसोई मे घुस सकता था वह मनुष्य को छू सकता था और मनुष्य भी उसे छू सकता था लेकिन किसी दलित को छूना तो दूर उसके पैरों के निशान व परछाई तक से सवर्ण समाज के लोग अपवित्र हो जाते थे। वेद, पुराण, स्मृति, रामायण, महाभारत, गीता, रामचरितमानस आदि धार्मिक ग्रन्थ इन कुरीतियों को पुष्ट करते ही नजर आते हैं। लेकिन डां0 अम्बेडकर द्वारा निर्मित भारतीय संविधान दलितों की इस अंधकार पूर्ण स्थिति के विपरीत बदलाव की सुबह के रूप में सामने आया। संविधान में उल्लिखित अधिकारों की बदौलत दलितों ने पढ़ने–लिखने, सरकारी नौकरियां प्राप्त करने, परम्परागत घृणीत पेशे को छोड़कर मन–मर्जी का पेशा अपनाने तथा जागरूकता और चेतना आने के कारण समाज, धर्म और साहित्य–संस्कृति में हस्तक्षेप किया। रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में इनकी अभिव्यक्ति हुई है। संग्रह की पहली कहानी 'फुल्ला' की नायिका फुलवा अपने बेटे को पढ़ा लिखा कर अफसर बनाती है। अफसर बनने के बाद वह शहर में आ जाता है और आलीशान बंगले में रहता है। नौकर–चाकर सब हैं। वह जिले का एस0पी0 है। गॉव का जमींदार उसके घर आता है। भूख से बेहाल होता है लेकिन उसका जात्याभिमान उसे फुलवा के घर खाने पीने और ठहरने से रोकता है। 'उसका धर्म उसके आड़े आ जाता है। उसके मन में ईर्ष्या व द्वेष ऐसी जलन पैदा करते हैं जैसे अधपके फोडे में पीव और लहू'। वह कहता है फुलवा सोने की हो जाये, रहेगी उसी जात की। मैंने तो उसके घर का पानी तक नहीं पिया। धर्म भ्रष्ट होने से मर जाना अच्छा समझता है, रामेश्वर सिंह।1

दलितों पर अत्याचार व शोषण ग्रामीण परिवेश में अधिक होता है। सम्पूर्ण दलित साहित्य में इसकी अभिव्यक्ति हुई है। गांव में पानी लेने तक के लिये स्त्री–पुरूष को अपमान सहना

पड़ता है। फुलवा की जात वालों को जमींदारों के कुएं पर चढ़ने की मनाही थी। वह जिस कुएं से पानी लाती थी, वह आधा कोस दूर था, उसके घर से। रामेश्वर कुएं पर नहा रहा था। फुलवा कुएं के घेर के नीचे खड़ी थी मटका लिए। वह रामेश्वर को बार–बार हाथ जोड़ रही थी– ''आज मुझे गांव जाना है, रामेश्वर जी। दो बाल्टी पानी उड़ेल दो मटके में'' फुलवा का बार–बार रामेश्वर कहना रामेंश्वर को काट गया था। उसने गुस्सा कर मटके पर थूक दिया था। फुलवा ने मटका वहीं फोड़ दिया और वह रोती आंखें लिये घर लौट आई थी। 2 डॉ0 अम्बेडकर अपने भाषणों में कहा करते थे – 'गांव मनुवाद और शोषण की पाठशाला है। दलितों को गांवों को छोड़कर शहर का रूख करना चाहिए।' फुलवा कहानी डां0 अम्बेडकर की दलितों को कही गई बात याद दिलाती है। शहर में फुलवा के घर में नल लगा हुआ था। उसने नल खोला और गल्ल–गल्ल पानी कूदने लगा। फुलवा ने बताया–चौबीस घंटे पानी आता है हमारे नल में।

दलितों के जीवन में घुटन से बाहर निकलने का माध्यम शिक्षा है इसलिये शिक्षा के माध्यम से उन्नति उन्होंने अपना ध्येय बनाया है। कहानी के दलित पात्र अनेक कठिनाइयों–कष्टों को झेलते हुए अपने बच्चों की पढ़ाई जारी रखते हैं। 'बात' कहानी का पात्र मरते समय अपने पत्नी को कहता है–''गरीब के लिए पढ़ाई ही उसकी पूंजी होती है। अपना बेटा पढ़ाई में अव्वल है। अफसर बनेगा। कितने किसट उठा लेना। राधू के हाथ में किताब रखना।''3 इसी प्रकार 'मेरा घर' कहानी में पिता पुत्री को होस्टल में दाखिला दिलवाते हैं और प्रेरित करते हुए कहते हैं– ''बेटी, जी जान से पढ़ाई कर पुस्तकें ही तेरा भविष्य है। ये ही तूझे सोपान–सोपान शिखर ले जायेगें।''4

ग्रामीण जीवन में दलितों को बेगार और बंधुवा मजूरी का अनवरत शोषण झेलना पड़ता है। जमीदारों के घर–हवेली बननी हो या गांव में कोई बिल्डिंग उन्हें बिना मेहनतताना के मजदूरी करनी पड़ती है। 'बदन–दबना' कहानी में रेमा अपने पुत्र को बताता है कि गॉव के जमींदार की हवेली 'पाव भर चना और पाव भर गुड़ की बेगार' में ही बनी थी। इसी प्रकार 1000– रूपये लेने पर रेमा के पुत्र को बंधवा रहना पड़ता है। रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों के पात्र इस अनवरत चलने वाले शोषण को नहीं सहते और उसका पुत्र पूछाराम जमींदार को रावण की लंका की तरह जला देता है। उसमें इतनी हिम्मत इसलिए आई क्योंकि वह डां0 अम्बेडकर का फोटो अपने छात्रावास के कमरे में लगाता है जिस पर लिखा होता है ''शिक्षा शेरनी का दूध होती है।'' और उसने यह शिक्षा पाई थी। गांव में शोषण और मजदूरी के दुष्चक्र से बाहर निकलने का प्रयत्न सभी पात्र करते हैं। वह अब आगे मजदूर का जीवन नहीं जीना चाहते है। 'हथौड़ा' कहानी के छोटूराम के होठों पर हमेशा एक ही बात रहती है– ''मैं अपने दोनों लड़को को मजूर कतई नहीं बनने दूंगा। एक को किलेक्टर (कलेक्टर) बनाऊंगा और दूसरे को ए0पी0 बनाऊंगा।''5 सांभरिया जी की कहानियॉ उपेक्षित दलित वर्ग को दलित्व से उभार कर उन्हें शिक्षा औंर पुनर्वास की ओर उन्मुख करती है। इनके पात्र जीवट, खुद्दारी और ईमानदारी का प्रर्याय है। सभी पात्र विषम परिस्थितियों में भी हार नहीं मानते और जमींदार के शोषण को झेलते, प्रतिरोध करते, डटकर मुकाबले में खड़े रहकर अपनी जीवटता का परिचय देते हैं। चाहे वो 'बकरी के दो बच्चे' कहानी के दलपत सिंह, धर्मकली, शर्मचंद हो, 'आखेट' के रेवती ओर सोमा 'भैसं' का मंगला, 'झंझा' का दरयाव सिंह, 'डंक' का खेरा, 'बात' की सुरती, 'चपड़ासन' की मीता, 'मुक्ति' का नानक राम, 'बदन–दबना' का पूछाराम, 'हथौड़ा' का छोटूराम सभी के सभी जीवट, खुद्दार ओर ईमानदार पात्र हैं ये सभी मेहनत, मजदूरी करके विषम परिस्थितियों को पराजित कर देते हैं।

अभावों में जीने वाले जिनके लिए तरक्की के सभी रास्ते बन्द थे, संसाधन जिनके पास नगण्य थे उन लोगो के लिए संविधान के प्रावधान के कारण सरकारी मदद होती है । लेकिन इसको लेकर भी सवर्ण समाज के लोगों द्वारा किये व्यंग्य का सामना दलितों को करना पड़ता है। 'बदन–दबना' कहानी का पूछाराम होस्टल में रहकर पढ़ता है तो जमींदार उससे व्यंग्यात्मक मुदा में कहता है – ''अरे पूछिया, छात्रावासी को कपड़ा–लत्ता, रहना–सोना, पढ़ाई–लिखाई, किताब–कॉपी सब फ्री हैं ना?'' उसकी ऑखों में अखरी थी। ... उसने छोटी अंगुली जमीन पर टेक कर अंगूठा आसमान की ओर करके एक नाप से बनाया – '' सुना है, छात्रावासी थई की थई रोटियां खा जाते हैं। '' खीज और कुढ़न से उसकी भुकुटी सिकुड़ी हुई थी।''6 सरकारी योजनाओं ओर दलितों के हक पर दबंगो व तथाकथित उच्चे लोगों द्वारा डाका डाला जाता है। 'काल' कहानी में इसका वर्णन किया है। गरीबों को काम के बदले अनाज या पैसा देने की योजना बनती है। इन योजनाओं का लाभ गरीबों को न मिल कर दूसरे लोगों को मिलता है। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना, मनरेगा आदि नग्न यथार्त कहानी में उजागर हुआ है। कहानी का पात्र मिनखू सूखे व अकाल के कारण बेहाल ''अपनी कस्सी (फावड़ा) कन्धे पर धरे, मुंडासा बांधे, मिनखू कार्य–स्थल पर गया। वहां का नजारा देख मिनखू को ताज्जुब हुआ। रात–रात में इतने नाम मंड गये। उसे बड़ा अचम्भा हुआ कि चढ़ते सूरज ऊंचे तबके

की वे औरतें भी नाम में काम कर रही थी, सूरज उनकी उंगलियां भी नहीं देख पाता था... उन औरतों के आदमी इधर–उधर डोलते, गपियाते, हरामखोरी करते, बीड़ी सुट्टाते दिहाड़ी कर रहे थे। 7

गॅाव में दबंगों और जमीदारों द्वारा दलितों के घर और जमीन पर कब्जा आम बात सी लगती है। 'आखेट' कहानी में गांव का जमींदार नानक सिंह दंबगई से सोमा की जमीन हड़प लेता है। वह अपने लठैतो को कहता है– ''उसकी दो बीघा जमीन की मेंड मिटा दो। उसके घर में भूसा भर दो। बुढ़िया से कह दो वह भी गांव छोड़ दे।'' 8 गांव में ठाकुर, जमींदार, सामंत और पुरोहित शैतान के रूप में होते हैं। गॅाव की सारी व्यवस्था उनके इशारों पर चलती है। लेकिन सांभरिया जी की कहानियों के पात्र इसके विरूद्व आवाज उठाते हैं और अपने तरीके से इनसे निपटते हैं। इनके दलित पात्र चाहे वे पुरूष हो या स्त्री किसी भी विषम परिस्थिति में अपनी 'डिग्निटी' नही खोते। स्त्री पात्र किसी लोभ, मजबूरीवश तथा जोर जबरदस्ती और गुण्डा गर्दी में भी अपनी इज्जत और मर्यादा की रक्षा करती है। 'आखेट' कहानी में गांव का जमींदार नानक सिंह रेवती के साथ बलात्कार का प्रयास करता है। एक निरीह व असहाय सी दिखने वाली रेवती अपने खुरपे से ठाकुर की नाक काट देती है। रेवती का पति सोमा भी रिवाल्वर हाथ लगने पर उसे गोली मारने निकल पड़ता है। ये दोनों पात्र आज के दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं ओर अपने अपमान का बदला लेते हैं। इसी प्रकार बात कहानी की सुरती भी पैसे की तंगी होने के बावजूद अपनी मर्यादा का सौदा नहीं करती। वह मेहनतकश है। वह दुगना काम करके पैसा कमाती है और अपने बच्चे की टयूशन फीस भरती है। जमींदार धींग द्वारा उसके घर में चोरी करने और पैसे चुराने पर वह उस पर क्रोध में बिजली सी टूट पड़ती है। 'बकरी के दो बच्चे' में दलित गॅाव के जमींदार दान सिंह को उसकी शैली में जवाब देता है – ''दान सिंह अपने चबूतरे पर बैठा बन्दूक की सफाई कर रहा था। बंदूक की नाल दलपत के घर की ओर थी। दान सिंह का रोज–रोज बंदूक साफ करना और दोनाली उसके घर की तरफ होना, दलपत को नागवार गुजरा।... दलपत भीतर से अपनी लाठी निकाल लाया। वह अपने चबूतरे पर बैठ गया और लाठी के सिरों पर तांबें के बंद लगाने लगा था। उस दिन के बाद दानसिंह ने बंदूक साफ करनी छोड़ दी थी।''9 दलपत हर पल संघर्ष को तैयार रहता है। वह अपनी स्थापना के लिए संघर्षरत रहता है। वह जिस परिवेश में सांस ले रहा है, वहॉ कुठाएं, घुटन, क्रोध और आक्रोश मुहं बाऐ खड़े हैं लेकिन फिर भी वह हार नहीं मानता।

दलितों के साथ बड़ी विडम्बना है कि जिस हिन्दू धर्म को अपना मानते हैं उसमें उनके लिए कोई स्थान नहीं है। जिसकी रक्षा के लिए वे अपना सर्वस्व लुटा देते है। और प्राणों तक को न्यौछावर कर देते हैं वह उन्हें नीच समझता है। 'मुक्ति' कहानी का नायक नानक मंदिर की मूर्ति स्थापना और महंत की रथयात्रा में किसी भी प्रकार की रूकावट को अधर्म समझता है। वह महंत के लिए खतरा और रथ यात्रा में रूकावट बनें गुसैल सांड को हटाने के लिए अपने पुत्र चन्दू को मौत के मुॅह में झौक देता है। पुत्र की मृत्यु का उसे दुःख नहीं है। क्योंकि मंदिर के महंत, मूर्ति और रथयात्रा सुरक्षित थे। परन्तु नानक जब मूर्ति को छूने का प्रयास करता है तो उसे इस धर्म की वास्तविकता समझ में आती है। लेखक बताता है – ''नानक ने रथ से उतरती मूर्ति की ओर हाथ बढ़ाया। मंहत की ऑखें जल उठी थी। घृणा का जिन्ह सुरसा के शरीर से ज्यादा बड़ा हो गया था। कलुष से उसका रोआं–रोंआं उठ खड़ा हुआ था।... महंत ने ऊंचे कंठ नानक को हड़की मारी–''अरे नानकिया, मेहतर है, तू। झाडू वाले हाथ मूर्ति नहीं छूते।'' नानकराम का सिर मानो आकाश से जा टकराया। पांवों तले धरती निकल गई। उसे भयानक चक्कर आया। गिरते–गिरते संभला। माथा घूमने लगा।... उसकी मुट्ठिया तलवार की मूठ पर कसती गई। तलवार आसमान की ओर सीधी उठ गई थी। खून पीयेगी। नानक की जलती आंखें महंत की ओर देखे जा रही थीं।... महंत की धूजनी छूट गई थी। इतना भयानक रूप सांड का भी नहीं था जितना नानक का था।... भागते महंत पर नानकराम ने तलवार लहराई – तेरी तो।'' 10 इस प्रकार जैसे ही नानक को वास्तविकता का आभास होता है, वह रौद्र रूप धारण कर मंहत का तलवार से कत्ल कर देता है। महात्मा फूले कहते हैं कि गुलाम को गुलामी का अहसास करा दो इसके बाद वह स्वयं अपनी बेड़िया काट देगा। महंत के वाक्यों ने नानक राम को यह अहसास करवा दिया था इसलिए वह उससे स्वयं ही मुक्त हो गया। वह भाग्य भगवान, मूर्ति ,मंदिर, अज्ञानता–अंधविश्वास से निकल कर जमीनी सच से जुड़ता है।

दलितों में जागृति आ गई हैं। उन्हें लगता है जैसे गन्दे पेशे के कारण ही उनकी यह हालत हुई। चमड़े का काम उनकी तथाकथित वर्तमान निम्न स्थिति का कारण है। इसलिए अपनी इस वर्तमान स्थिति से बाहर निकलने का आग्रह उनमें इतना अधिक है कि वे सामूहिक रूप से इन कार्यों को छोड़ने की बात करते है। ''बिपर सूदर एक कीनें' कहानी में सभी दलित पंचायत करते हैं। वे कहते हैं – ''मेरे जात भाईयों सुनो, अपन जब तक यो धंधो करांगा बदनामी खड़ी रहेगी। सिर ना उठा पावांगा। यो गंदों धंधों छोड़ो, मान–सम्मान से सिर ऊंचो करके जीओ। सौ को तोड़ यो है। अपनो रेजा (कपड़ा बुनना) या चेजा (मकान बनाना) को काम पकड़ लो। मिल मजदूरी कर पेट भर लो, खेत–क्यार कर लो। पर चमड़ा वाला काम से निजात पालो। बड़ी जात हमसे नाक–भौ चढ़ावे। नीड़े (नजदीक) ना बैठन दे।... आबरू से एक दिन जीनों अच्छो, बेआबरू हजार दिन बुरा।''11 बाबा साहब डां0 अम्बेडकर ने भी दलितों का आह्वान किया था कि 'तुम गन्दे काम छोड़ दो'। उनकी प्रेरणा और आह्वान इस कहानी में फलीभूत हुआ है।

'बकरी के दो बच्चे' कहानी यह संदेश देती है कि यदि दलित अपने संगठन बना कर रहेगें तो बड़ी से बड़ी मुसीबत का सामना कर सकते हैं। अपने अधिकारों के लिए किसी भी बड़े से बडे अधिकारी

से लड़ सकते है और उचित न्याय प्राप्त कर सकते है। कहानी में नायक की बकरी के दो बच्चे जब मार दिये जाते हैं तो वह इसकी शिकायत एस0 एच0 ओ0 से करता है लेकिन वह उसे ही थाने में बन्द करने व मारने पीटने की धमकी दे कर भगा देता है और एफ0 आई0 आर0 दर्ज नहीं करता। यह बात वह कहानी के अन्य पात्र रामदुलारे जो कि सफाई कर्मचारियों की यूनियन का अध्यक्ष है को बताता है। रामदुलारे एस0 पी0 को फोन करता है– ''सिंह साहब?... रामदुलारे अर्ज कर रहा हूँ, सिंह साहब। सफाई कर्मचारियों की यूनियन का अध्यक्ष।... उसने एक एक बात सहेज–सहेज कर अपने नेताई अंदाज में कान में डाल दी थी।... समुद्र को चाहे अपनी अतल गहराई की थाह न हो, हाथी को अपने असीम बल का भान न हो, रामदुलारे अपने संगठन की शक्ति बखूबी जानता था।... एस0पी0 गौरतलब थे, एक बात पर उसने तहसीलदार के गेट के सामने कचरे का ढेर लगा दिया था। झुंझलाये एस0पी0 ने दरोगा को फोन मिलाया–एस0 एच0 ओ0।

''दो घंटे के अन्दर दान सिंह को हथकड़ी लगा कर थाने ले आओ, वरना मैं तुम्हारे तीनो स्टार खींच कर तीन फीते लगा दूंगा।''12 रत्नकुमार साभरिया जी की कहानियों में गहरी संवेदना, दर्द और जागृति का भाव मिलता है। इनकी कहानियॉ तिरस्कार की परम्परा को खारिज करते हुए दलितों में साहस, संबल और स्वाभिमान पैदा करती है। कहानियों में दलित अस्मिता के लिए संघर्ष है। कहानी के दलित शोषित पात्र शोषको और उत्पीड़तो को चुनौती देते हैं। इस प्रकार स्वतंत्र भारत के दलित समाज की सच्ची तसवीर दिखाई देती है। कहानियों में अतीत के वर्णन के साथ–साथ वर्तमान का चित्रण और भविष्य के लिए रास्ते के 'मैप' बनाये गये हैं।

सन्दर्भः–

1.दलित समाज की कहानियां–रत्नकुमार सांभरिया, पृ0–27 **2.**वही,पृ0–20 **3**वही,पृ0–150 **4.**वही,पृ0–277 **5.**वही,पृ0–271 **6.** वही,पृ0–257–258 **7.**वही,पृ0–113 **8.**वही,पृ0–47 **9.**वही,पृ0–32 **10.** वही,पृ0–219–220 **11.**वही,पृ0–20 **12.**वही,पृ0–38–39

34.रत्नकुमार सांभरिया का व्यक्तित्व व कृतित्व

–यादवेन्द्र चेजारा
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
राज ऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर

मानवीय जिजीविषा के रचनाकार रत्नकुमार सांभरिया का नाम साहित्य जगत् में सहज व सरल व्यक्तित्व के लिए लिया जाता है। कथाकार, लघुकथाकार, नाटककार, आलोचक और अनुवादक के रूप में साहित्य को समृद्ध बनाया है तथा विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों में इनके व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। सांभरिया जी का परिवेश ग्रामीण जीवन, कृषक मजदूर वर्ग से जुड़े होने के कारण साहित्य में आमजन की पक्षधरता के साथ–साथ ग्राम्य जीवन का जमीनी यथार्थ स्पष्ट दिखाई देता है। इनकी कहानियों में ग्रामीण और नगरीय बोध, पलायनवादी (गाँवों से शहर में मजदूरी के लिए) जीवन तथा जमींदारों, सामंतों द्वारा निम्न समक्षी जाने वाली जाति, कृषक मजदूर इत्यादि वर्ग का शोषण, दमन, उत्पीड़न, अत्याचार को बड़े कलात्मक ढंग से व्यक्त किया इन्होंने अपने पात्रों को जीवट संघर्ष, जज्बे व जिजीविषा के साथ मौजूदा परिस्थितियों का सामना बड़े ही साहस से करते दिखाया है। वह किसी के सामने हाथ फैलाते या रिरियाते या गिड़गिड़ाते नहीं वरन् हिम्मत के साथ डटकर मुकाबला करते हैं। इनकी कहानियों की यह खास बात है और कहीं ना कहीं इनके व्यक्तित्व को परिलक्षित करती नजर आती है।

जन्म, माता–पिता, शिक्षा, कार्य क्षेत्र, पुरस्कार हिन्दी साहित्य जगत् में दलित चेतना के मेरुदण्ड एवं बहुमुखी प्रतिभा के धनी श्री रत्नकुमार सांभरिया का जन्म 6 जनवरी, 1956 में हरियाणा राज्य के रेवाड़ी जिले के गाँव भाड़ावास में खेतिहर मजदूर के घर हुआ। इनके पिता श्री सिंहराम सांभरिया श्रमिक थे। माता श्रीमती जुगरीदेवी एक धर्मपरायण एवं कुशल गृहिणी थी। दो बड़ी बहनों के बाद माता–पिता की सबसे छोटी संतान होने के कारण परिवार में अत्यधिक स्नेह व लाड–प्यार मिला। प्यार से इन्हें 'रत्न' कहकर पुकारा जाता था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव की स्कूल में ही हुई। मैट्रिक की परीक्षा अहीर स्कूल, रेवाड़ी से उत्तीर्ण की। उसके बाद अहीर कॉलेज, रेवाड़ी से सन् 1976 में बी.ए. की परीक्षा पास की। बी.एड. 1978 में सतीश पब्लिक कॉलेज ऑफ एज्यूकेशन, रेवाड़ी से उत्तीर्ण किया। पिता खेतिहर मजदूर होने के कारण परिवार की आर्थिक स्थिति कमजोर रही। जिससे पढ़ाई में अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा, किन्तु पढ़ाई के प्रति इनकी ललक

और जिज्ञासा बराबर बनी रही। आपने 1986 में राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से बी.जे.एम.सी. (BJMC) पत्रकारिता में डिप्लोमा किया।आपकी प्रारंभिक नियुक्ति प्राइमरी अध्यापक के पद पर उदयपुर की धरियावद पंचायत समिति की राजकीय प्राथमिक पाठशाला, गढ़वास में हुई। सन् 1984 में लेखाकार के रूप आपकी नियुक्ति हुई। 1990 तक इस पद पर कार्यरत रहने के पश्चात् आकाशवाणी के जोधपुर और जयपुर केन्द्रों पर हिन्दी अनुवादक रहे।जुलाई 1996 राजस्थान सरकार में जनसम्पर्क अधिकारी बने। सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, जयपुर से उपनिदेशक (प्रशासन) पद से जनवरी, 2016 में सेवानिवृत्त हुए।

आपकी अध्ययन काल से ही साहित्य के प्रति गहरी रुचि रही। साहित्य–सृजन के प्रति प्रेरणा रेवाड़ी महाविद्यालय में हिन्दी प्राध्यापक गुरु डॉ. रामपत यादव से मिली। डॉ. यादव से प्रेरणा प्राप्त करके आप साहित्य–सृजन की लम्बी यात्रा पर निकल पड़े। साहित्य जगत् में अपना विशिष्ट योगदान तथा साहित्यिक उपलब्धियों को देखते हुए विभिन्न संस्थाओं द्वारा साहित्यिक सम्मान व पुरस्कारों से नवाजा गया। जिनमें आपकों 'आखेट' कहानी पर वर्ष 2005 में 'नवज्योति कथा सम्मान' मिला। 'चपड़ासन' कहानी के लिए उपराष्ट्रपति द्वारा 'कथा चयन सम्मान' से सम्मानित हुए तथा 'कथादेश अखिल भारतीय हिन्दी कहानी' प्रतियोगिता में 'बिपर सूदर एक कीने' कहानी को प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ।राजस्थान पत्रिका सृजनात्मक पुरस्कार–2008 'खेत' कहानी पर मिला। फरवरी, 2020 में अम्बेडकर राइट मूवमेंट ऑफ कल्चर एंड लिटरेचर, नागपूर की ओर से राष्ट्रीय पुरस्कार उनकी नाट्यकृति 'वीमा' के लिए 'अश्वघोष नाट्य पुरस्कार' सम्मानित किया। कथा साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्थान जोधपुर की ओर से राज्य स्तरीय कथा अलंकरण समारोह में 19 दिसम्बर 2021 में रत्नकुमार सांभरिया को पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी कथा सम्मान से सम्मानित किया गया। हाल ही में 14 अप्रेल 2022 को डॉ. अम्बेडकर मेमोरियल वेलफेयर सोसायटी, जयपुर द्वारा डॉ. अम्बेडकर जयंती के उपलक्ष में डॉ. अम्बेडकर भवन जयपुर में आयोजित एक भव्य कार्यक्रम में राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत ने जनकथाकार श्री रत्नकुमार सांभरिया को 'भीम रत्न' सम्मान से सम्मानित किया। ये सम्मान व पुरस्कार साहित्य में निरन्तर अपनी रचनात्मकता, आत्माभिव्यक्ति और संवेदना की गहरी व्यापकता का प्रमाण हैं।

कथाकार, लघुकथाकार, नाटककार, आलोचक एवं अनुवादक के रूप में

सांभरिया अपनी विलक्षण प्रतिभा से साहित्य के हर पहलू को समृद्धि प्रदान करते हैं। कथाकार, लघुकथाकार, नाटककार, आलोचक व अनुवादक इत्यादि के क्षेत्र में अपनी वैचारिक एवं बौद्धिक सम्पदा को आत्मसात् किया।

डॉ. अनीता वर्मा का कहना है कि ''आज साहित्य के क्षेत्र में श्री सांभरिया एक नामचीन साहित्यकार हैं।......................आपके अब तक तीन (वर्तमान पांच) कहानी संग्रह 'हुकम की दुग्गी', 'काल तथा अन्य कहानियां', 'खेत तथा अन्य कहानियां' तथा दो लघुकथा संग्रह 'बाँग और अन्य लघुकथाएँ' और 'प्रतिनिधि लघुकथा शतक' प्रकाशित हो चुके हैं। 'समाज की नाक' आपका एकांकी संग्रह है। 'मुंशी प्रेमचन्द और दलित समाज' आलोचनात्मक पुस्तक है। 'डॉ. अम्बेडकर: एक प्रेरक जीवन' का सम्पादन कर चुके हैं। राजस्थान गौरवान्वित है कि इस पुस्तक का अनुवाद अरेबिक सिंधी में हुआ है। डॉ. अम्बेडकर पर इस भाषा में प्रकाशित होने वाली विश्व की यह पहली किताब है।........देश–विदेश की हिन्दी की शायद ही कोई पत्रिका हो, जिसमें आपकी कहानियां प्रकाशित नहीं हुई हो।''1 ऊपर उल्लेखित तीन कथा संग्रहों के बाद दो अन्य कथा संग्रह 'दलित समाज की कहानियाँ' तथा 'एयरगन का घोड़ा' भी प्रकाशित हुए।

इनके अतिरिक्त एकांकी–नाटकों में 'समाज की नाक' (एकांकी–संग्रह), 'बीमा' (नाटक), 'उजास' (नाटक), भभूल्या (नाटक) तथा आलोचना के क्षेत्र में प्रेमचंद साहित्य की विवेचना की है। लेकिन ग्रामीण जीवन की शैली तथा गाँव–गॅवई की बानी–बोली इत्यादि पर प्रेमचंद की कहानियों का प्रभाव इन पर देखने को मिलता है, जैसे दलित पात्रों के नाम इत्यादि। इसी के निमित्त इन्होंने 'मुंशी प्रेमचंद और दलित समाज' नामक आलोचनात्मक पुस्तक लिखी। अनुवादक रूप में भी सृजनात्मकता का परिचय दिया। जिसमें डॉ. 'अम्बेडकर: एक प्रेरक जीवन' का अरबी–सिंधी में अनुवाद किया। पन्द्रह कहानियों का 'मियाँजान की कुकिड' शीर्षक से अरबी–सिंधी में अनुवाद तथा कहानियों, लघुकथाओं और नाटकों का अंग्रेजी, मराठी, पंजाबी, सिंधी, उड़िया सहित अन्य भाषाओं में अनुवाद–

"Thunderstorm" Dalit stories, Published by Hachette India (U.K.) London Company, Publication-2015 etc.

यह सत्य ही है कि पिछले कई वर्षों से हंस, कथादेश, समकालीन भारतीय साहित्य, नया ज्ञानोदय, आउटलुक, शुक्रवार साहित्य वार्षिकी, पुनर्नवा साहित्य विशेषांक, हरिगंधा, मधुमती, अक्षरा, शेष, अन्यथा (अमेरिका से संपादित) तथा युद्धरत आम–आदमी जैसी साहित्यिक पत्रिकाओं में इनकी कहानियाँ, लघुकथाएं, पुस्तक समीक्षाएँ प्रकाशित होती रही हैं। 'मैं जीती' कहानी पर समाज कल्याण विभाग, राजस्थान सरकार द्वारा

टेलीफिल्म का निर्माण, कहानियों एवं लघुकथाओं का रेडियो नाट्य रूपान्तर प्रसारित तथा 'वीमा' तथा 'उजास' नाटक का रवीन्द्र मंच जयपुर, जवाहर कला केन्द्र, जयपुर सहित विभिन्न रंगमंचों पर मंचन हुआ। सांभरिया का लेखन साहित्य की विभिन्न विधाओं में बहुआयामी व्यक्तित्व और सृजनात्मकता को दर्शाता है।

रत्नकुमार सांभरिया के साहित्य में दलित संवेदनाः हिन्दी साहित्य जगत् में जहाँ दलित कथा साहित्य में ग्राम्य जीवन की अभिव्यक्ति दलित कथाकारों के माध्यम से यथार्थतः अभिव्यंजित हुई हैं। उनमें सांभरिया का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। 'हुकम की दुग्गी', 'काल तथा अन्य कहानियां', 'खेत तथा अन्य कहानियां' कहानी संग्रहों में संकलित अधिकांश कहानियों की पृष्ठभूमि ग्रामीण है। जिसमें समाज के अमानवीय व्यवहार, तिरस्कार जातिगत अस्पृश्यता की गहराती संकीर्णता, विवशता, गरीबी, अत्याचार, शोषण के शिकार आम–आदमी की आशा–आकांक्षा, आस्था–विश्वास की पीड़ा गहरी संवेदना के साथ अभिव्यक्ति हुई है। सांभरिया जी की कहानियों में ग्रामीण जीवन यथार्थ के साथ–साथ सामाजिक बिम्बों की झलक मिलती है। जिसमें चाहे ग्रामीण अंचल की सामाजिक विषमता अभाव, विवशता भले ही समाहित हो, किन्तु पात्र जिजीविषा लिए हुए जीवंत और संघर्ष करने वाले तथा समाज में न्याय के लिए साफ–सुथरी जिन्दगी बसर करने और स्थितियों से जूझने की कूवत लिए है। रत्नकुमार सांभरिया के कथा साहित्य में कलात्मक दृष्टिकोण बड़ी शिद्दत से आया। यह दृष्टिकोण इन्हें अन्य दलित कथाकारों से अलग स्थापित करता है। जीवन, समाज तथा साहित्य के संदर्भ में इन्होंने अन्य कथाकारों से अलग हटकर दलित साहित्य को संकीर्णता से मुक्ति दिलाई है। सांभरिया के कथा साहित्य में हरियाणवी तथा राजस्थानी पृष्ठभूमि के ग्रामीण जीवन को बड़ी ही संवेदना के साथ उभारा गया है। कहना न होगा कि इनका मूल जीवन हरियाणा के रेवाड़ी की पृष्ठभूमि रहा है, लेकिन पिछले 40 वर्षों से जयपुर में रह रहे हैं। अतः हरियाणवी कथा शिल्प के साथ–साथ राजस्थानी शिल्प का भी समावेश कथा साहित्य में है। जिसे हरियाणवी ग्राम्य बोध तथा राजस्थान के जयपुर शहर के नगरीय परिवेश से अभिहित कर सकते हैं।

रत्नकुमार सांभरिया दलित संवेदना के कथाकार है। चूँकि संवेदना ही लेखक की सृजन शक्ति होती है। हिन्दी साहित्य में अनेक कथाकारों ने अपने चिन्तन और अनुभवों को आत्मकथाओं, कहानियों, उपन्यासों इत्यादि विधाओं के द्वारा दलित संवेदना से रूबरू कराया। आपकी कहानियों की मूल संवेदना आमजन को समर्पित है। आपने ग्रामीण जीवन या आमजन के उस तबके को अपनी कहानियों में स्थान दिया। जिसे अन्य कथाकारों की कहानियों में भारत की एक गौरवशाली समृद्ध कही जाने वाली परम्परा नाम से अभिहित किया जाता रहा है और वह परम्परा जिसे सदियों से आमजन व अशिक्षित वर्ग के द्वारा तोड़ने के बजाय अपने बाप–दादाओं की लीक पीटते हुए, सामंती, पूँजीवादी तथा ब्राह्मणवादी व्यवस्था के बने–बनाए सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक भेदभावों के ढर्रों को ढोता आया था। वहीं आपने अपनी कहानियों के पात्रों द्वारा इस ढर्रे को जो सदियों से जड़े जमाए हुए था, उस सामाजिक व्यवस्था को बड़ी ही बुलंद आवाज में तोड़ने का आगाज करते हैं। 'शर्त', 'चपड़ासन' व 'फुलवा' जैसी कहानियाँ इसका अच्छा उदाहरण हैं।

आपने अपने कथा लेखन में हर पृष्ठभूमि से जुड़े जीवन यथार्थ को अपनी कहानियों में एक प्रगतिवादी सोच के साथ स्थापित किया है। जिनमें 'लाठी', 'चपड़ासन', 'काल', 'कील' इत्यादि ऐसी कहानियां हैं जो दलित और सर्वहारा वर्ग में संघर्ष के माध्यम से हक की लड़ाई जीतना दिखलाती है। यह नहीं है कि इनके पात्र छायावाद की तरह सहानुभूति या दया की चाहत नहीं रखते, बल्कि प्रगतिवादी सोच के साथ उस पूँजीवादी, सामंती, ब्राह्मणवादी समाज की खोल को उतारकर और आवरण को बेंध कर नवीन चेतना के साथ अपने को खड़ा पाते हैं। 'बात' कहानी में लेखक जहां द्विवस्वप्न रूप सुरती को उसके मृत पति द्वारा मेहनत का रास्ता दिखावता और घिग्गी बंधी सुरती को ढाढ़स बंधाता उसका पति कहता है– "दिलेर हो, इतनी सी विपदा से घबरा गई। मैं खुश हूँ, राधू का स्कूल नहीं छूटा। मेहनत कर।"2 चूँकि यह परिणाम था सुरती के पति ने सुरती का हाथ अपने हाथ में लेकर राधू के सिर पर रखकर कहे गए वक्तव्य का कि– "गरीब के लिए पढ़ाई ही उसकी पूँजी होती है। अपना बेटा पढ़ाई में अव्वल है। अफसर बनेगा। कितने किसट उठा लेना। राधू के हाथ में किताब रखना।"3 इसी निमित्त डॉ. अनिता वर्मा लेखक की कहानियों के पात्रों के बारे में कहती है– "ये पात्र ऊर्जा से भरपूर, संघर्षशील और सजग है तथा शिक्षा को हथियार के रूप में इस्तेमाल करना चाहते है; वैसाखी के रूप में नहीं।"4

इसी प्रकार 'फुलवा' कहानी जिसमें कठिनाइयों की परवाह न करके, वह डॉ. अम्बेडकर के मूल मंत्र 'शिक्षित बनो' को आत्मसात् कर लेती है और अपने राधामोहन को पढ़ा–लिखाकर एस.पी. बनाती है। शहर में एक बड़ी कोठी में रहता है। फुलवा भी बेटे के साथ रहती है। गाँव के जमींदार रामेश्वर सिंह जिनके यहाँ वह कभी चाकरी करती थी को उसकी कोठी पर आने पर वह यह एहसास करा देती है कि आदमी जाति से नहीं, पैसे और

पद से बड़ा होता है। अंततः मौजूदा परिस्थितियों में जहाँ गाँवों में आज भी शोषण, दमन व पीड़ा, अशिक्षा, अन्याय, अत्याचार तथा वर्ण–व्यवस्था बनी हुई है, वहाँ सांभरिया ने अपनी कहानियों के माध्यम से अन्याय, शोषण, वर्ण–व्यवस्था इत्यादि के विरूद्ध 'शिक्षा' को हथियार के रूप में उपस्थित करके मुकाबला करने की वैचारिक अभिव्यक्ति प्रदान की है। बतौर उदाहरण– 'बात', 'चपड़ासन', 'फुलवा', 'बिपर सूदर एक कीने' जैसी कहानियाँ इस बात को आत्मसात् करती नजर आती है। उदाहरण तौर पर 'फूलवा' कहानी में जातिगत दंभ के कारण रामेश्वर पं. मातादीन के यहाँ आकर पंडिताइन से अपने पुत्र की नौकरी की याचना करता है तो पंडिताइन का कथन रामेश्वर के जातीय दंभ को कुचलता नजर आता है–''तू तो कुएँ का मेढ़क ही रहा रामेरिया। अब तो पद और पैसे का जमाना है। जात–पाँत का नहीं, फुलवन्ती का बेटा राधामोहन कोई छोटा–मोटा अफसर नहीं है। एस.पी. है, एस.पी. ।''5 वह उससे फुलवा के बेटे से सिफारिश लगवाने की बात कहती है। इस कहानी द्वारा सांभरिया जी यह सिद्ध करते हैं कि सोच बदल रही है, परिवर्तन की बयार चल पड़ी है। भौतिकवादी युग में पद और प्रतिष्ठा महत्त्वपूर्ण हो गए हैं। यह परिवर्तन संभव हो सका–'शिक्षा द्वारा'।

ईमानदारी व निडरता की अभिव्यक्ति शायद ही अब तक किसी दलित कथाकार ने अपने कथा साहित्य में दलित समाज या यूँ कहूँ कि साहित्य क्षेत्र के व्यापक परिप्रेक्ष्य में इतनी ईमानदारी व निडरता के साथ वैचारिक गुंफन को पूर्ण यथार्थ के साथ अभिव्यक्ति दी हो। जहाँ तक सवाल है, शुरुआती दौर के लेखकों में आत्मकथाओं का दौर चलकर उसी तक सिमिट जाने तक, अपनी वैचारिक अभिव्यक्ति करता रहा है। कुछ कहानियों, उपन्यासों के माध्यम से पात्रों को समस्याओं से जूझता दिखाते हैं। वहीं सांभरिया सजगता के साथ कहानियों, नाटकों में पात्रों को समस्याओं और बड़े ओहदे वालों द्वारा मंढ़ी गई झूठी सामाजिक व्यवस्था को तार–तार करते दिखाते है।

सांभरिया दलित वर्ग की जागृति और उसके सशक्तिकरण के पक्षधर है। इन्होंने कहानियों में शिक्षा व आत्मनिर्भरता पर बल दिया है। शिक्षा से ही आत्म–निर्भरता बढ़ती है। चेतना आती है। जो अन्याय के खिलाफ साहस पूर्वक आवाज उठाने की दिशा में बढ़ाया गया क्रांतिकारी कदम है। हिन्दी में दलित कथा साहित्य में ग्राम्य–जीवन की अभिव्यक्ति दलित कथाकारों के माध्यम से यथार्थ व्यंजित हुई, किन्तु समाज में व्याप्त मनुष्य–मनुष्य के अस्पृश्यता की गहराती संकीर्णता से मुक्ति की बात किसी ने नहीं की, जो रत्नकुमार सांभरिया ने कर दिखाया। जहाँ ''ग्रामीण और शहरी परिवेश पर लिखी कहानियों में लेखक तो यहाँ तक कह जाता है कि ''पैसे और पद के सामने जात जूती है।'' (बूढ़ी) इसी को स्पष्ट करते हुए डॉ. धूलचन्द मीना ने अपने एक आलेख में लिखा है कि ''पूँजीपति लोग दलित वर्ग के साथ अमानवीय पूर्ण व्यवहार करते हैं इससे इनकी मानवीय संवेदना खो गई है। ऐसे समय में सुपरिचित दलित कथाकार रत्नकुमार सांभरिया ने दलित काहनियों का सृजन किया है। इन्होंने ग्रामीण परिवेश का दयनीय जीवन बहुत ही निकटता से देखा, भोगा, अनुभव किया है।''

इन सब बातों को पढ़कर जहन में एक सवाल बार–बार आता है कि समाज में इतनी विषमताऐं क्यों ? एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से इतनी घृणा क्यों पाले हुए ? खैर आप इन सब से ऊपर उठकर अपनी कहानियों को जमीनी धरातल पर उतारते है। अपने कथा साहित्य में ग्राम्य जीवन के अन्य कथाकारों से भिन्नता प्रदान कर 'पद एवं प्रतिष्ठा' के द्वारा इन विषमताओं और घृणा को समाप्ति की राह दिखाई तथा समाज के अमानवीय व्यवहार, तिरस्कार, जातिगत संकीर्णता इत्यादि को पूर्ण संवेदना और साहस के साथ प्रकट किया है। 'हुकम की दुग्गी' कहानी संग्रह के प्राक्कथन कहानी : गरीब का दर्द में इनका यह मन्तव्य ईमानदारी और निडरता की अभिव्यक्ति करता नजर आता है– ''सच में ही सच्ची कहानी रूढ़िवादिता को बेंध कर परिवर्तनकामी होती है। यही मार्क्सवाद है। यही जनवाद है। यही प्रगतिशीलता है और यही दलितोन्मुख सृजन है।''6

संदर्भ ग्रंथ–

1.राजस्थान साहित्यकार प्रस्तुति योजना (अंक–87), डॉ. अनीता वर्मा, राज. साहित्य अकादमी, उदयपुर–2011, पृष्ठ संख्या–7–8 **2.**रत्नकुमार सांभरियाः 'काल तथा अन्य कहानियाँ (बात), रचना प्रकाशन, जयपुर–संस्करण–2008, पृष्ठ संख्या–20 **3.**वहीं, पृष्ठ संख्या–20 **4.**राजस्थान सा.प्र.यो. (अंक–87) डॉ. अनीता वर्मा, राज. सा. अकादमी, उदयपुर–2011, पृ.सं.–8 **5.** रत्नकुमार सांभरियाः 'हुकम की दुग्गी' (फुलवा), रचना प्रकाशन, जयपुर–संस्करण–2003 पृष्ठ संख्या– **6.**वहीं, प्राक्कथन, पृष्ठ सं. –(प)

35.वंचितों की कलम : रत्न कुमार सांभरिया

–रिछपाल
शोधार्थी, गाँव–मावा, तहसील–डीडवाना, जिला–नागौर (राज.)

सन् 1947 ई. में हमारा देश विदेशी सत्ता से आजाद हुआ और सन् 1950 ई. में संविधान पूरे देश में पूर्णतः लागू हुआ। संविधान की उद्देशिका में निहित कर्तव्यों का भी पालन पूर्ण तरीके से शायद हो नहीं पाया। सरकारें बदलती है, मुखोटे बदलते हैं, मगर पीड़ित–शोषित–वंचित समुदाय की तस्वीरें नहीं बदलती। एक–दो धर्मों को छोड़ के सभी धर्मों में जाति–उपजाति का अकाट्य जाल बना हुआ है, जो सब कुछ करने को तैयार है, मगर इंसान को एक इंसान मानने के लिए कदापि तैयार नहीं होता। हाशिए पर पटके समाज की दुर्गति किसी से छिपी नहीं है, बस स्वीकार करने में शर्म आती है। मगर रत्न कुमार सांभरिया ने उन बस्तियों पर अपनी कलम चलाई, जिधर लोग अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए नजर गड़ाए रहते हैं। कलम की स्याही भी रो पड़ी, जब नंगी आँखों से रोते–बिलखते इंसानों को करीब से देखा। सभ्य समाज की केंचुली पहने हैवानों से डग–डग पर गरीबों को जूझते हुए देखा। सांप्रदायिक आग से घर नहीं, पूरे देश को जलते हुए देखा। वंचित तबके को आजादी के इतने वर्षों बाद भी मुख्यधारा से दूर रखना मानवीय संवेदनाओं की हत्या करने जैसा है।

हरियाणा राज्य के रेवाड़ी जिले के भाड़ावास गाँव में 6 जनवरी 1956 ई. को रत्न कुमार सांभरिया का जन्म हुआ। इन्होंने अपनी कर्मभूमि राजस्थान प्रदेश को बनाया। आपने कहानी, एकांकी, लघुकथा, आलोचना, अनुवाद आदि विधाओं में प्रतिभा हासिल की। राजस्थान सूचना एवं जनसंपर्क सेवा से उपनिदेशक (प्रशासन) के पद से आप सेवानिवृत्त हुए। प्रो. किशोरी लाल 'पथिक' द्वारा संपादित कहानी संग्रह 'हाशिए का समाज : रत्न कुमार सांभरिया की चयनित कहानियां' में कुल तेरह कहानियां हैं, जिनका क्रमशः यहां विवेचन किया जा रहा है।

पहली कहानी 'गूंज' में बहुरूपिया समाज से संबंध रखने वाले मालू की पीड़ादायक दास्तान है।मालू मेहनती–निष्कपट मिजाज का युवा है। अनाथ मालू से चाचा कालू और चाची रूपली सब कुछ हड़पना चाहते हैं। मालू को अपने कमरे को देख के लगता है कि– 'जैसे वह कमरा नहीं, उसके माँ–बाप की प्रतिमा हो ।[1] रूपली का कालू संग नाता हुआ था। तब रुपली ने साफ–साफ कह दिया–'रूपली अपने तीनों बालकों के साथ बासी उठेगी, सोएगी नहीं।कालू उसके तीनों लड़कों को पढ़ा–लिखाकर आदमी बनाएगा।[2] मगर इधर मालू की जिन्दगी भूखे–प्यासे भागते–भागते कट रही है। आदमी बनने की दूर, ये तो जो है, वही रह जाए काफी हैं। कभी–कभार झूठी सहानुभूति के जरिये चाची रूपली के मुख से हकीकत अनायास निकल पड़ती है – 'वह तो मालू बहुरूपिया होकर भी बावला है, बेचारा। नहीं, इनकी तान तो हम भूखों मरते। घर भर के गुदड़े लाद दिए हैं, गरीब पर।[3] पार्वती नामक प्रगतिशील विधवा ब्राह्मणी मालू को पुत्रतुल्य सम्मान देती है और यह मालू के भविष्य को लेकर चिंतित रहती है। ये पूरी कहानी मालू के इर्द–गिर्द ही गूंजती है।बहुरुपिया बन के मनोरंजन कराने वालों की जिन्दगी स्वांग से ज्यादा कुछ बन नहीं पाती है।

'मैं जीती' कहानी नाजायज संबंधों की पृष्ठभूमि पर लिखी गई है। इसमें ये बतलाने की कोशिश की गई है कि दोष किसी ओर का और परिणाम जिंदगी भर भुगते कोई ओर।जिस बच्ची को जन्म लेते ही कूड़े में फेंक दिया गया हो, वह किसे अपना माँ–बाप कहे।बदलते परिवेश की समझ होना आवश्यकता बन आई है। इसमें दो धर्मों के पारिवारिक रिश्तों के नियमों की बात करते हैं– 'मामा–फूफी के लड़के–लड़की का रिश्ता मुसलमान परिवारों में शोहर–बीवी के रूप में एक सहज संजीदा रिश्ता होता है, हिंदुओं में यह रिश्ता राखी से जुड़ा है।[4] मर्द कभी चरित्रहीन नहीं कहलाता, केवल औरत ही दोषी मानी जाती है। पल भर की कामाग्नि जिंदगी को नरक बना देती है– 'ना जाने कब पिंड छूटेगा।[5]

तीसरी कहानी का शीर्षक है – 'लाठी'। भारत एक विविधतापूर्ण देश है, यहां भिन्न–भिन्न जाति–धर्म–संप्रदायों के लोग निवास करते है। इस कहानी का मुख्य पात्र चांद मोहम्मद मिरासी समुदाय से आता है। घर–घर शादी पर्व आदि पर ढोल बजाके अपनी बेगम सलमा के साथ जिंदगी बसर कर रहा है। बाबरी मस्जिद विध्वंस कांड ने पूरे देश में सांप्रदायिकता के बीज बो दिए। लाठी के बल पर देश को हांका जाने लगा। राजनेताओं व धर्मांध लोगों के द्वारा फैलाई गई नफरत देखते ही देखते आग बरसाने लग जाती है। जिसमें मरने वाले सबके सब भारतीय होंगे, ये विचार दिमाग में कब आएगा । दोनों समुदायों में दहशत घर कर चुकी थी– 'पड़ोसी सा सगा नहीं, पड़ोसी सा दगा नहीं।[6] सांप को मारने के लिए लाई गई दो लाठियां हथियारों के समान लगने लगी। हरमन चाचा से काफी पुराना रिश्ता होने के बावजूद माहौल ने कान भर दिए। कल तक एक थाली में खाने वाले

यकायक खून के प्यासे हो गए– 'उसके हाथों जालिम हरमन की गर्दन है, बेदम करके ही दम लेगा।'[7]

'मेरा घर' कहानी दो सहपाठी छात्राओं की मासूमियत से लबरेज कहानी है। पुष्पा गंदी बस्तियों में रहने वाली गरीब घर की बेटी है।ये सहेलियों के सामने अपने घर की खूब तारीफ करती है। सरला और पुष्पा दोनों आवासीय विद्यालय में पढ़ती है। गुरु भूरमल ने भागदौड़ करके पुष्पा को दाखिला दिलवाया– 'बेटी, जी–जान से पढ़ाई कर। पुस्तकें ही तेरा भविष्य है।'[8] नगरपालिका के एक बाबूजी को पुष्पा के पिताजी ने सलाम नहीं किया, जिसकी सजा घर के सामने रखे कचरे पात्र के रूप में मिली– 'अरे! पुष्पा, कोठियां दिखाती, कूड़े ले आई।'[9] अब पुष्पा सहेली से कैसे कह दे कि यही मेरा घर है। पुष्पा जैसी अनेक आँखे है, जिनमें अधूरे सपने आजादी के इतने बरसों बाद भी बाट जोहते रहते हैं। इनकी पहुँच से रोटी–कपड़ा–मकान आज भी दूर है।

'गाड़ियां' कहानी में जुल्म के खिलाफ एकजुट होने पर न्याय मिलता है; ये बताने की कोशिश की गई है– 'महाराणा प्रताप घास की रोटी खाकर मुगलों से लड़े थे। उनके वंशज हवा–पानी पीकर नीचता के विरुद्ध डटे थे।'[10] लोहे को पीटने वाले लोहारों को अपने मान–सम्मान की खातिर हर रोज डेरा बदलना पड़ता है, क्योंकि फौलाद बन चुके हाथों से मांग के खाने की एवं गुलामी में जीने की आदत नहीं है। लूणसिंह लोहार की बेटी पर गाँव के जमींदार का बेटा फकीरचंद अपना अधिकार समझकर लपक पड़ता है। मगर स्वाभिमानी पिता ने अंत तक लड़ाई जारी रखी और सजा दिलवाकर सदा–सदा के लिए गाँव छोड़ दिया– 'जिस दिन फकीरचंद को सजा सुनाई गई, लोहार ने अपना डेरा उठा लिया।'[11]

'बेस' कहानी जाति संकीर्णता को प्रदर्शित करती है। आदिवासी समुदाय की बेटी अगनी की इज्जत राजपूती पोशाक पहनने की वजह से बच जाती है। मानो, अन्य समुदायों के लिए इज्जत मायने नहीं रखती। नशेड़ी होने के बावजूद हरजी और मरजी को जातीय संस्कार का पूरा ख्याल है– 'यह आदिवासी नहीं, किसी राजपूत की बीनणी है,बेस देख।'[12] अगनी जिद्दी और विद्रोहिणी स्वभाव से ओतप्रोत है क्योंकि जो पढ़ेगा, वो दुनिया से भिड़ेगा, सवाल–जवाब करेगा – 'माँ दुनिया अंतरिक्ष में डोल रही है, हम है कि कपड़े–लत्ते की जात से चिपके हैं।मैं बेकार के बंधन नहीं मानती।'[13] देश में बहन–बेटियों के ऊपर होने वाले जुल्म दिनों–दिन बढ़ते जा रहे हैं, लेकिन मानव समाज जाति–धर्म के चक्कर में फंसा पड़ा है। उसे दूसरे के घर की इज्जत अपनी इज्जत मालूम नहीं पड़ती। मगर जालिमों की नजर में सब समान है – 'मूर्ख, औरत का क्या आदिवासी, क्या राजपूत।औरत,औरत होती है।'[14]

'बंजारन' कहानी में रुना बाई बंजारन जो अपने दो पतियों सादुराम और दोदूराम के बीच कांटे में फंसी हुई मछली के समान बेबस पड़ी है।सादुराम और दोदूराम ने अपनी नाबालिक बेटी की सगाई बिना किसी को बताए तय कर दी।जब रुना बाई को पता चला तो आग उगलती हुई कहने लगी– 'जिंदा मक्खी ना निगली जावे। वो लड़का ने अपनी अनपढ़ बिरवानी मार दी। अगर उनै ऐसी ही पढ़ी–लिखी लड़की की भूख थी तो अपनी घरवाली ने खुद पढ़ा तो। सिम्मान पातो । दो बालकां की मां पीट–पीट घर से निकाल दी। तंग आई ने जोहड़ में जिंदगानी होम दी अपनी। ना–ना–ना, मैं तो अपनी फूल सी लाडो ना ब्याहों ऐसा पापी के।'[15] अपनी बेटी की जिंदगी को संवारने के लिए अपने पतियों से उलझ के कहने लगी – 'भले अलग रहो दोनों । मेरी बेटी पढेगी। मैं मजूरी करके उनैं पढाऊंगी।'[16] इस कहानी में माँ का वास्तविक रूप नजर आता है और मेहनत–मजदूरी करके भी अपने बच्चों को पढाने का संदेश प्राप्त होता है। शिक्षित समाज ही सभ्य लोगों को जन्म देता है।

'हिरणी' कहानी भी घुमंतु जातियों की वास्तविकता से रूबरू कराती है – 'ये धरती बिछाते थे और आकाश ओढ़कर सोते थे।'[17] लछीनाथ सपेरा ने अपने वफादार कुत्ते (शेरू) द्वारा दबोचा हिरण का बच्चा उसकी माँ को सौंप दिया क्योंकि तीन साल पहले हुई घटना पुनः स्मृति में लौट आई। लोमड़ ने झोपड़ी के सामने सोई उसकी तीन माह की बच्ची को मार कर खड्डे में फेंक दिया था। आज जैसी हालत हिरणी की हो रही है वैसी ही हालत बच्चे की माँ की उस समय हो आई थी। अपनी औलाद खातिर दुनिया की किसी भी ताकत से लड़ने के लिए माँ हमेशा तैयार रहती है – 'जिस माँ का बच्चा मौत के मुँह में हो, उसे अमन कहाँ।'[18] इस कहानी में सपेरा शावक को सम्मुख देख के अति प्रसन्नचित्त होता है। खै़र,आज तो भूखा नहीं रहूँगा । चाहे, कहीं पर भी रहने लग जाए मगर भूख पीछा नहीं छोड़ती।

'भभूल्या' कहानी धियानाराम कुचबंदा की असीम दुखों भरी कहानी है। सच है कि गरीब को सारा संसार सताता है, कुदरत भी परेशान करने से बाज नहीं आती। भभूल्या (तेज हवा का बवंडर) ने धियानाराम का आशियाना एक झटके में उजाड़ दिया– 'प्लास्टिक की पन्नी की उसकी झोंपड़ी को उड़ा ले गया। गुदड़–गाबा, बरतन– भांडा, आटे का कनस्तर सब के सब रेतम

रेत कर गया।[19] धियानाराम बाल ब्रह्मचारी और मस्त मौला है – 'दो पोई दो कांख में, मोडा लौटे राख में।[20] इस कहानी में पुलिस की गुंडागर्दी नजर आती है। हेड कांस्टेबल से लेकर अधिकारी तक धियानाराम के पाले हुए बकरे को खाना चाहते हैं। बकरा धियानाराम के सुख–दुख का इकलौता गवाह था।मगर हेड कांस्टेबल प्रेमसुख के लिए यह आज का स्वादिष्ठ मीट था। कुचबंदा का पाला हुआ बकरा खाने से धर्म–जाति भ्रष्ट नहीं होती, बस हांडी–बर्तन–पानी को काम लेने पर जरूर धर्म आदि भ्रष्ट होता है। क्या! कमाल की दुनिया है! ए मेरे वतन के लोगों... देशभक्ति से ओतप्रोत रिंगटोन हेड कांस्टेबल के मोबाइल से सुनाई पड़ती है,मगर इनके दिलों में कितनी देश भक्ति है, उसका अंदाजा आसानी से लगा सकते हैं। पुलिस का काम कानून और शांति व्यवस्था बनाए रखना होता है, ना कि गरीबों को जबरन डराना–धमकाना । पुलिस की वर्दी दिनों–दिन दागदार होती जा रही है। क्या इस पर कभी मंथन होगा।

टोकरी में गांठ' कहानी में कामवासना से घिरे सपरानाथ कालबेलिया सरूपानाथ की घरवाली रमती को हर हाल में पाना चाहता है। रमती की पहले सगाई सपरानाथ से ही हुई थी, मगर नशेड़ी होने की वजह से रिश्ता वास्तविकता नहीं ले पाया। रमती का रूप लावण्य नशे से कम नहीं था । सरुपानाथ सीधा–सादा मिजाज का था।सपरानाथ नाग के बदले एक रात के लिए रमती की इज्जत को मांगता है मगर सरुपानाथ के होते इच्छापूर्ति हो ना सकी, तब साजिश के तहत बीस रूपये में नाग (सांप) सरुपानाथ को दे देता है – 'यार सरूपा बीस रूपये उधार दे दे। नाग रख ले । टेम लागेगो, छुड़ा लूंगो।इतने दिन खा कमा इससे।[21] दूसरे दिन तमाशा दिखाते वक्त सरुपानाथ को उस जहरीले नाग ने डस लिया और जहर पूरे शरीर में फैल जाने की वजह से मौत हो गई – 'अपनी झोपड़ी पड़ा सपरा आत्ममुग्ध था, रमती उसकी हुई।[22] सिर पर चढ़ी काम–वासना आदमी से कुछ भी करवा सकती है। टोकरे की गांठ ही सपेरा की सब कुछ है। अगर नाग ने करतब दिखाया तो रोटी मिलेगी वरना मौत मिलेगी । गोचर भूमियों पर सारी जिन्दगी गुजारने वाले ये लोग ना जाने कब मानवीय क्रियाकलापों में शामिल हो पाएंगे या नहीं।

गरीब आदमी सब कुछ बेच देता है, दांव पर लगा देता है, मगर स्वाभिमान कभी भी गिरवी नहीं रखता। यही बात 'गरीब की दौलत' कहानी का निचोड़ है। प्रेमकृष्ण की पत्नी सुमती पड़ोस में नये–नये आए दंपती किराएदार धमनी–सेवाराम से काफी परेशान है क्योंकि ये लोग काफी शोरगुल करते हैं। प्रेमकृष्ण ने जमीनी हकीकत जानने की कोशिश की – 'बाबूजी, मेरा आदमी 10वीं फेल है। रिक्शा चलाते पैडल की नोक इनके टखने के नीचे घुस गई। हफ्ता बीता । घर तंगी है। दो घर पोछा–बर्तन करती हूँ। बसर नहीं होता।[23] बेरोजगारी भुखमरी को जन्म देती है और भुखमरी आत्मशांति को भंग करती है। 'दरिद्रता नासूर है। हम पढ़े–लिखे नौकरी–पेशा खाए–अखाए इन्हीं गरीब–गुरबों से तंग आए हुए हैं।[24] बेशक गांवों में जातिवाद आज भी कीचड़ की भांति पसरा पड़ा है। जैसे ही धमनी को एहसास हुआ कि बाबूजी जाति जानने के लिए बेताब है तो तपाक से बोली–'हम जोगीजति जात हैं, बाबूजी।[25] जब प्रेमकृष्ण ने धमनी को स्कूल में 'बाई' के रूप में रोजगार दिलवा दिया तथा इसके दोनों बच्चों को मुफ्त में एडमिशन भी दिलवा दिया, तब धमनी को लगा कि हमने कोई बहुत बड़ी जीत हासिल कर ली है। प्रेमकृष्ण सुमती को भी ऐसा करने से आत्मशांति मिली। सुमती ने दान–पुण्य के लिहाज़ से टेबल पंखा देना चाहा, मगर धमनी ने रोजगार मिल जाने की वजह से लेने से साफ़ इनकार कर दिया। प्रेमकृष्ण ने क्रोधित सुमती से कहा – 'सुमती, घमंडी नहीं है, वह स्वाभिमानी है।स्वाभिमान गरीब की सबसे बड़ी दौलत होती है।[26] गरीब को गरीबी मंजूर मगर अहसान कदापि मंजूर नहीं। जबकि अमीर लोग नाम और दाम के लिए कुछ भी बेचने–खरीदने के लिए हर पल तैयार रहते हैं।गरीब भविष्य की बजाय वर्तमान पर जीने का आदि है।

'नट की बेटी' कहानी नट समुदाय की वास्तविकता मानव समाज के सामने लाने के लिए काफी है। गली–मोहल्लों–चौराहों पर कलाकारी दिखाकर अपनी जिंदगी बड़ी खस्ताहाली के साथ गुजारने पर मजबूर है।इनकी कलाकारी भूख मिटाने का साधन मात्र रह गई है। कूपसिंह नट की आठ वर्षीय बेटी अपने पिता की इकलौती वारिस थी और खेल में जमूरा की भूमिका में भी । आठ फीट ऊंचे बांसों के दोनों सिरों पर रस्सी बांध के उसके ऊपर करतब दिखाती है। जरा सी चूक, जिंदगी या मौत की ओर ले जाए। मगर भूखे पेट की खातिर यह जोखिम भरा काम रोजाना करना पड़ता है। मानो, जिंदगी इन दोनों बाप–बेटी को जमूरा समझती है, तभी तो अपने इशारों पर हर रोज नचाती है। पूरा गाँव तन्मय होकर तमाशा देखने में मशगूल था। मजबूरियां इंसान को मजबूत बना देती है– 'बयार के झोंके,काया की हिल और हाथों का संतुलन बनाती लड़की पनपती पौध की तरह धीरे–धीरे खड़ी हो गई।[27] इत्तेफाक से इसी समय आवारा सांड के आ जाने से पूरी भीड़ जान बचाने के लिए

इधर–उधर भागने लगी। नट और उसकी बेटी जहां थे, वहीं खड़े रहे। हड़बड़ाहट की वजह से अकस्मात लड़की रस्सी से नीचे गिर पड़ी। सोचा, तमाशा दिखा के अपना पेट पाल लेंगे, मगर अब तो बेटी जिंदगी भर करतब नहीं दिखा पाएगी क्योंकि पैर की हड्डी जो टूट गई है। थोथी सहानुभूति से दिल और आँखें भर आती है, मगर पेट नहीं भरता। पैसों की खातिर बिछाया गया अंगोछा खाली ही रह गया। किसी की उस तरफ नजर तक नहीं गई।हां, करतब के समय सब को साफ–साफ दिखाई पड़ रहा था। अगर कमरुद्दीन की तरह दुनिया व्यवहार करे तो शायद कोई भी दुखी नहीं रहेगा – 'तेरी बेटी, मेरी बेटी। लड़की तमाशों ना दिखा पावैगी अब। मेनत मजूरी कर।लड़की ने पढ़ा–लिखा। आगे बढ़ा।'[28] मदारी को ये दो लफ़्ज़ों में कही गई बात अँधेरे में उजाला मालूम हुई।

'मदारिन' नामक कहानी इस संग्रह की अंतिम कहानी है। इस कहानी में 'गरीब की लुगाई, सारे गांव की भौजाई' वाली कहावत चरितार्थ होती है। भलीराम मदारी की पत्नी सरकी पर कामुक थानेदार आसक्त हो जाता है। मान न मान, मैं तेरा मेहमान बन के और अपने पद का रौब दिखा के अपनी काम–पूर्ति करना चाहता है– 'वाह! क्या खूब नाम रखा है, माँ–बाप ने। सरकी ! सरकंडे सी देह हैं न, तेरी।'[29] पुलिस का काम गरीब को सताना, अपनी कामवासना की पूर्ति करना ही शायद रह गया है, तभी पुलिस की दुश्मनी और दोस्ती दोनों से लोग डरते हैं– 'उसने (मदारिन) मन ही मन कहा, मैं तो सांप–सपोला, जीव–जिनावर, ओपरी–पराई भूत–परेत से ज्यादा थारे से डरती हूँ।'[30] अगर चींपू कुत्ता नहीं होता तो शायद मदारिन की इज्जत थानेदार के हाथों आज तार–तार हो आती– 'थानेदार की लाचार–लजाई नजरें जमीन में पैबस्त थी। कुत्ता अगले पंजों पर दबाव बनाए सीमा पर तैनात सैनिक की भांति चाक–चौबंद खड़ा था।'[31] पुलिस का खौफनाक चेहरा मानव सभ्यता के लिए नासूर बन आता है। सरकी को पूरा यकीन था कि भले ही कुत्ता जानवर है, पर इंसान से ज्यादा जहरीला नहीं है।

अस्तु, कहा जा सकता है कि रत्न कुमार सांभरिया ने बहुरुपिया, कालबेलिया साठिया कुचबंदा, लोहार आदि समुदायों की ओर अपना ध्यान लगाया, जिधर सामान्यतः कोई लगाना भी नहीं चाहता। भले ही कहानियां दीर्घ हो आई है मगर उबाऊपन–नीरसता नहीं होने की वजह से पाठक को शुरू से अंत तक बांधे रखती है।स्थानीय शब्दों को बड़ी संजिदगी के साथ बखूबी प्रयोग में लिया गया है ताकि सामान्य जन आसानी से समझ सके। इन समुदायों को मुख्यधारा में लाने के लिए सामूहिक रूप से प्रयास करने की अति आवश्यकता है। कहने को तो बहुत कुछ बदला है, मगर उतना भी नहीं बदला, जितना बोला जा रहा है। रोजी–रोटी की तलाश में दर–दर भटकते समुदायों का शारीरिक और मानसिक शोषण आमतौर पर देखने को मिलता है। कहानीकार घुमंतु–आदिवासी समुदाय की जमीनी हकीकत मानव समाज के सामने लाने में पूर्णतः सफल हुए हैं। अनैतिक संबंधों की आजकल बाढ़ सी आ गई है, जैसा कि मैं जीती कहानी में दर्शाया गया है।रोजी रोटी के साथ ही इनके हाथों में कलम थमा के सर्वांगीण विकास किया जा सकता है। मिथकों के सहारे वर्तमान पर तंज कसने का लेखक ने सफल प्रयास किया है। मौलिक एवं नवीन मुहावरों–लोकोक्तियों का प्रयोग नजर आता है। आज देश भर में सांप्रदायिक ताकतों की वजह से दहशत का जो माहौल बना हुआ है, लाठी कहानी उसी की ओर संकेत करती है।ये तमाम कहानियां ये सवाल उठाती है कि कब तक ये लोग धरती बिछाते रहेंगे और आसमां ओढ़ते रहेंगे। अपने ही वतन में बिना किसी पहचान के ये कब तक भटकते रहेंगे। प्राकृतिक छटाओं को उपमान के रूप में प्रयोग करके कहानियों में रोचकता लाने का यत्न किया है। कथानकों के हिसाब से भाषा शैली, वेशभूषा आदि का प्रयोग करके लेखक ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। रत्नकुमार सांभरिया की ये चयनित कहानियां हिंदी साहित्य जगत में अपना प्रतिष्ठित स्थान रखने में पूर्णतः सक्षम है। जब भी घुमंतू–आदिवासी साहित्य की चर्चा होगी, रत्नकुमार सांभरिया के साहित्य को निःसंदेह सादर याद किया जाएगा।

सन्दर्भ– प्रो.(डॉ.) किशोरीलाल 'पथिक' द्वारा संपादित कहानी संग्रह 'हाशिए का समाज : रत्न कुमार सांभरिया की चयनित कहानियाँ' से ली गई है। (1) गूंज पृ. सं. 19–20(2) गूंज पृ. सं. 21(3) गूंज पृ. सं. 31(4) मैं जीती पृ. सं. 34(5) मैं जीती पृ. सं. 39(6) लाठी पृ. सं. 45(7) लाठी पृ. सं. 48(8) मेरा घर पृ. सं. 53(9) मेरा घर पृ. सं. 58(10) गाडिया पृ. सं. 62(11) गाडिया पृ. सं. 63(12) बेस पृ. सं. 68(13) बेस पृ. सं. 66(14) बेस पृ. सं. 72(15) बंजारन पृ. सं. 77(16) बंजारन पृ. सं. 80(17) हिरणी पृ. सं. 82(18) हिरणी पृ. सं. 85(19) भभूल्या पृ. सं. 87(20) भभूल्या पृ. सं. 89(21) टोकरे में गांठ पृ. सं. 109(22) टोकरे में गांठ पृ. सं. 113(23) गरीब की दौलत पृ. सं. 117(24) गरीब की दौलत पृ. सं. 117(25) गरीब की दौलत पृ. सं. 118(26) गरीब की दौलत पृ. सं.122(27) नट की बेटी पृ. सं. 131(28) नट की बेटी पृ. सं.126(29) मदारिन पृ. सं. 135(30) मदारिन पृ. सं. 135(31) मदारिन पृ. सं.140

36.फुलवा कहानी का भाव सौंदर्य

–डॉ.मीना शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग,
रामानुजन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली

आधुनिक काल में रत्नकुमार सांभरिया जी और उनके साहित्य का विशेष योगदान है। उन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं पर अपनी लेखनी चलाईं। जैसे–वीमा नाटक, दिशा मोड़ने का दम–कहानी संग्रह आदि। रत्नकुमार सांभरिया की चयनित कहानियों में बारह कहानियाँ हैं। जो उनके भाव सौंदर्य से संबंधित हैं।रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों का भाव सौंदर्य सामान्य जनजीवन से जुड़ा है। उनकी समस्याओं के समाधान से जूझता दिखाई देता है। इन कहानियों के पात्र जीवन से संघर्ष करते दिखाई देते हैं। उनमें से एक कहानी फुलवा भी है।

फुलवा कहानी स्त्री के अंतरमन के सुख दुख के भाव को दर्शाती है। कहानी में अनेक स्थानों पर यह सुख दुख का भाव दिखाई देता है। रामेश्वर फुलवा के गाँव का ज़मींदार था । जो शहर में फुलवा के बेटे से मिलने आता है। वह फुलवा की कोठी तक एक युवक की मदद से पहुँचता है। **"एक युवक** गेट के सामने अपना स्कूटर खड़ा कर रहा था। रामेश्वर को चिंता और परेशानी में डूबा देखकर युवक ने पूछा–"राधा मोहन साहब के घर जाना है, तुम्हें ? " "जी बाबू साहब।" रामेश्वर के स्वर में चिंता, उदासी थी। रामेश्वर का सिर भन्ना उठा । पण्डित जी को कोई नहीं जानता, फुलवा के छोरे को पोर पोर जानता है। स्कूटर वाला उसे एक कँगूरेदार आलीशान कोठी के सामने छोड़कर चला गया था। रामेश्वर को आश्चर्य ने झिंझोड़ा । फुलवा की कोठी है, यह ? उसने हौले–हौले गेट बजाया। बाहर बरामदे में बैठी एक बुढ़िया वहाँ आ गई थी। मुटाई देह। गोरे चेहरे पर **पड़ी** "[1] फुलवा रामेश्वर को देख प्रसन्न होती है। अपने बुरे – अच्छे दिनों के बारे में बताती हैं। उसका हाल चाल पूछती हैं। अपना बताती है। अपनी कोठी दिखाती है। समय के साथ सब बदल गए थे।

"झुर्रियों में कान्ति दिपदिपा रही थी। उसकी आँखों पर चश्मा था। वह धुली हुई धवल साड़ी पहने थी। उसने साड़ी को सिर पर लेते हुए गेट खोला । फुलवा थी, वह। न रामेश्वर फुलवा को पहचान पाया, न फुलवा रामेश्वर को पहचान पाई । दोनों एक–दूसरे को अजनबीपन से टुकुर–टुकुर देखते रहे। फुलवा ने नाक के सिरे तक चश्मा लाकर देखा, लेकिन उसकी समझ, समझ नहीं पाई। रामेश्वर ने आँखें सिकोड़ीं– " फुलवा ! " "कौन, रामेश्वर ? " "हाँ, भाभी। "फुलवा ने माथे पर थपक मारी– " हाय राम। गाँव से आई तो मुटियार थे। बुढ़ा गए हो, पंद्रह साल में ही ।अन्दर आइए न।" फुलवा फूली नहीं समा रही थी। उसके घर गाँव के ज़मींदार के कुंवर आए हैं । वह दुर्दिन था। फुलवा का पति , ज़मींदार के एक बिगड़ैल बैल का सीधा कर रहा था। नकेल ढीली पाते ही उस गुस्सैल बैल ने उसके पेट में सींग डाल दिया। वह तड़पा, फड़फड़ाया। फुलवा की मांग पुछ गई थी। फुलवा का बेटा राधा मोहन दसेक साल का था, तब । टहलुवई फुलवा को उत्तराधिकार में मिल गई थी, जैसे साहूकार को साहूकारी मिल जाती है, ज़मींदार को ज़मींदारी। दो पेट थे। वह ज़मींदार के घर घास छीलती, पानी भरती और पशुओं को चारा–पानी करती थी। बाहर बेंत की कुर्सियाँ और टेबलें पड़ी थीं। फुलवा बेंत की कुर्सी पर बैठ गई। उसने दूसरी कुर्सी की ओर इशारा किया– " बैठिए न , रामेश्वर जी ।"

रामेश्वर कुर्सी पर बैठ गया था। सफेद रंग के छबरैल से दो कुत्ते अन्दर से आए । उन्होंने रामेश्वर को सूंघा और उसके मुँह की ओर देखकर सूँ–सूँ करने लगे। उसने पाँव ऊपर ले लिए और डर से गठरी हो गया। फुलवा ने कुत्तों को डपटा– " पंपी, मीनू अंदर जाओ। ये तो रामेश्वर जी हैं। गाँव के ज़मींदार। मेहमान हैं, अपने।"दोनों कुत्ते किसी समझदार बच्चे की भाँति वहाँ से चले गए। रामेश्वर का वहम यथार्थ में तब्दील हो गया था। फुलवा किराएदार नहीं, मालकिन है, कोठी की। जात्याभिमानी रामेश्वर ढाह से **सुलगने लगा था।** "[2]फुलवा रामेश्वर को अपनी कोठी दिखाती है । कोठी की एक एक वस्तु दिखाती है। जो गाँव में बड़े लोगों के पास भी कठिनाई से मिलती है। वह फ्रिज और मिक्सी उसे दिखाती है। अपने परिवार के सदस्यों के बारे में बताती है।

" **फुलवा रामेश्वर** की ओर देखकर उठ खड़ी हुई थी। उसने सामने के कमरे का जालीदार किवाड़ खोला और रामेश्वर को अन्दर ले गई । कोठी में दस बारह कमरे हैं। फुलवा के परिवार में पाँच सदस्य हैं । फुलवा , उसका बेटा राधा मोहन, बहूरानी, एक पोता और एक पोती । फुलवा कोठी की एक एक चीज रामेश्वर को दिखाएगी। ऐसी चीजें गाँव के ज़मींदारों और बनिए–बामनों के घरों में भी शायद हों । फुलवा के मन मे एक ऐसा उछाह था, जो ज्वार की तरह बढ़ भी रहा था और फैल भी रहा था। वहाँ रखे फ्रीज को उसने खोला । फ्रीज में पानी की ठंडी बोतलें , कोल्ड ड्रिंक्स , आम , सेब ,संतरे आदि रखे हुए थे। पास ही मिक्सी रखी थी। रामेश्वर की जिज्ञासु आँखें जब उस पर टिकी रहीं , तो फुलवा ने उसे बताया –" यह मिक्सी है , रामेश्वर जी । इसमें से आम , संतरा , अंगूर, गाजर और टमाटर **का जूस**

निकालते हैं। "[3] फुलवा अपनी रसोई दिखाती है। गैस का चूल्हा दिखाती है जो गाँव में नहीं होता। रामेश्वर आज भी कुएँ से पानी भरता है। परन्तु फुलवा को बाहर नहीं जाना पड़ता । उसके घर में नल लगा हुआ है। **"फुलवा रामेश्वर को** रसोई में ले आई। संगमरमर से बनी रसोई । कीमती बर्तनों से अटी पड़ी थी। रसोई देखकर रामेश्वर की आँखें वहीं खड़ी रह गई। गैस थी। फुलवा ने लाइटर उठाया और बटन चालू करके चूल्हा जला दिया। रामेश्वर का मुँह बया की तरह खुला रह गया था। चूल्हा फूँकते उसकी घरवाली की आँखें झरने लगती हैं।फुलवा का चूल्हा पलक झपकते ही धधक उठा। फुलवा ने गैस बन्द कर दी थी। वहाँ नल लगा था। उसने नल खोला तो गल्ल गल्ल पानी कूदने लगा। फुलवा ने उसे बताया– " चौबीस घण्टे पानी आता है हमारे नल में।" समय सौदागर है। रामेश्वर आज भी कुएँ से पानी भरता है। फुलवा की रसोई **में भी नल है।** "[4] फुलवा रामेश्वर को अपनी पोती और पोते से मिलवाती है। जो शहर के साँचे में ढले हुए थे।

"रामेश्वर को साथ लेकर फुलवा एक कमरे में गई। वहाँ उसकी पोती पढ़ रही थी। बॉब स्टाइल में कटे बाल। स्कर्ट और शर्ट में बैठी वह षोडशी रामेश्वर की आँख की किरकिरी बन गई। फुलवा की पोती के जोड़ की एक भी लडकी नहीं है, उसके गाँव में। निकलते कद की यह लड़की कितनी खूबसूरत है। लड़की ने पढ़ाई छोड़कर रामेश्वर को नमस्कार करने की औपचारिकता की और पुनः पढ़ने लग गई। वह क्रोधित हुआ , उसे देखकर फुलवा की पोती खड़ी नहीं हुई। दूसरे कमरे में फुलवा का पोता अध्ययनरत था। अपनी दादी माँ को आया देखकर उसने रामेश्वर को नमस्कार किया और फिर अपने काम में **जुट गया था।** " [5]

फुलवा रामेश्वर को कूलर दिखाती है। कभी खेत में नींद पूरी करने वाली फुलवा को कूलर भी नापसन्द थे। रामेश्वर को ये देख अच्छा नहीं लगता। **"फुलवा** रामेश्वर को अब अपने कमरे में ले आई उस बड़े कमरे में दो पंखे लगे थे। कूलर था। दो पलंग पड़े थे। कूलर ऑन करके वह रामेश्वर से बोली– "मैं तो कभी– कभार ही चलाती हूँ, इसे। शरीर चिपचिपा हो जाता है। "कूलर बन्द कर दिया था, फुलवा ने। फुलवा की बात सुनकर रामेश्वर क्रोध से उबल पड़ा। इसका मुँह नोच लूँ। कैसे चोंचले चुभला रही है, फुलवा की बच्ची। खेत में तो खूड़ों में लेटकर नींद निकाल लेती थी, आज कूलर से शरीर **चिपचिपाता है।**"[6] फुलवा का घर खिलौने से भरा रहता था। जिसका गाँव में अभाव था। उसने सोचा रामेश्वर और गाँव के बच्चों के लिए खिलौने दे देगी। बच्चे खिलौने से खेल कर प्रसन्न हो जाएंगे। **"फुलवा सोचने** लगी, दो–एक दिन में जब रामेश्वर जी गाँव जाएँगे तो वह उसके बैग में खिलौने रखवा देगी। ऐसे खिलौने पड़े हैं, जो चाभी भरते ही दौड़ते हैं, बोलते हैं। गाँव दौड़ेगा देखने, फुलवा ने भेजे हैं, ऐसे भागते, दौड़ते बतियाते खिलौने। बच्चों की एक बग्गी भी पड़ी है, अटाले में। उसे भी वह रामेश्वर को दे देगी। **पोता खेल लेगा।**"[7]

निष्कर्ष–फुलवा कहानी का भाव सौंदर्य दुख सुख से ओत प्रोत है। यह कहानी शहर की विकास यात्रा की गाथा का वर्णन करती है। शहर में पद से ही व्यक्ति का कद देखा जाता है। उसकी जाति से नहीं। फुलवा ग्रामीण समाज में उपेक्षित थी । परन्तु शहर में अपने बेटे के कारण सुख सौंदर्य से भरी हुई थी। गाँव में उसको जिन चीजों का अभाव था । शहर में वो सब सुख सुविधा उसके पास थी। जो उसे बेटे को शिक्षित करने के कारण मिली थी। यही इस कहानी का नयापन है। जो उसके गाँव से आए व्यक्ति को अच्छा नहीं लगता। उसे ईर्ष्या जलन में झौंक देता है। परन्तु पद प्रतिष्ठा के आगे मौन कर देता है। आजतक.इन लिखता है–"**फुलवा** कहानी की फुलवा को लीजिए. तमाम कठिनाइयों की परवाह न करके वह डॉ. आंबेडकर के मूल मंत्र ' शिक्षित बनो ' को आत्मसात कर लेती है और बेटे राधा मोहन को पढ़ाती लिखाती है. वह एस.पी बन जाता है और शहर में एक बड़ी कोठी में रहता है. फुलवा भी बेटे के साथ रहती है. गाँव के ज़मींदार रामेश्वर सिंह, जिनके वहाँ वह चाकरी करती थी, को उसकी कोठी पर आने पर वह यह अहसास करा देती है कि आदमी जाति से नहीं, पैसे/पद से **बड़ा होता है।**"[8]

संदर्भ–1.रत्नकुमार सांभरिया की चयनित कहानियाँ, चयन एवं सम्पा. –प्रो.(डॉ.) कामराज सिन्धु, प्रकाशक–इंडिया नेटबुक्स प्राइवेट लिमिटेड नोएडा–201301, प्रथम संस्करण–2022,पृ.8 **2.**रत्नकुमार सांभरिया की चयनित कहानियाँ, चयन एवं सम्पा–प्रो.(डॉ) कामराज सिन्धु, प्रकाशक–इंडिया नेटबुक्स प्राइवेट लिमिटेड नोएडा–201301, प्रथम संस्करण–2022,पृ.9 **3.**रत्नकुमार सांभरिया की चयनित कहानियाँ, चयन एवं सम्पा.–प्रो.(डॉ.)कामराज सिन्धु, प्रकाशक–इंडिया नेटबुक्स प्राइवेट लिमिटेड नोएडा–201301, प्रथम संस्करण–2022,पृ.10 **4.**रत्नकुमार सांभरिया की चयनित कहानियाँ, चयन एवं सम्पा.–प्रो.(डॉ.) कामराज सिन्धु, प्रकाशक–इंडिया नेटबुक्स प्राइवेट लिमिटेड नोएडा–201301, प्रथम संस्करण–2022,पृ.10–11 **5.**रत्नकुमार सांभरिया की चयनित कहानियाँ, चयन एवं सम्पा.–प्रो.(डॉ.)कामराज सिन्धु, प्रकाशक–इंडिया नेटबुक्स प्राइवेट लिमिटेड नोएडा–201301, प्रथम संस्करण–2022, पृ. 11 **6.**रत्नकुमार सांभरिया की चयनित कहानियाँ, चयन एवं सम्पा.–प्रो.(डॉ.) कामराज सिन्धु, प्रकाशक–इंडिया नेटबुक्स प्राइवेट लिमिटेड नोएडा–201301, प्रथम संस्करण –2022, पृ.11–12 **7.**रत्नकुमार सांभरिया की चयनित कहानियाँ, चयन एवं सम्पा.–प्रो.(डॉ.) कामराज सिन्धु, प्रकाशक – इंडिया नेटबुक्स प्राइवेट लिमिटेड नोएडा–201301, प्रथम संस्करण–2022, पृ.13 **8.**कहानी संग्रह : दिशा मोड़ने का दम–story collection turning direction – Aaj Tak .in

37.रत्नकुमार सांभरिया के नाटकों में दलित चेतना 'उजास' नाटक के विशेष संदर्भ में

–शेख वसीम अ. रहिम
शोधार्थी, प्रतिष्ठाण महाविद्यालय, पैठण औरंगाबाद

समकालीन नाटककारो में रत्नकुमार सांभरिया का नाम बडे आदर के साथ लिया जाता है। मानवीय सरोकारों से और संवेदनशील नाटककार के रुप में उन्होन्हें अलग पहचान बनाई है। अब तक उनके द्वारा तीन नाटकों का सृजन हुआ है। वीमा, उजास और भभूल्या आदि । अपने नाटको में दलित, घूमन्तू तथा सताए गऐ, दबाये गए वर्ग की आवाज बुलंद की । उनके नाटाकों में एक चेतना का भाव विद्यमान है। प्रगतिशील विचारों का पुरस्कार वे अपने नाटको के माध्यम से करते है।'उजास' नाटक में दलित, शोषित, पीडित वर्ग का करुणतम संघर्ष चित्रित किया है। इककीसवी सदी के द्वितीय दशक (2014) में प्रकाशित यह नाटक प्रगतिशील विचारों का संवाहक तथा चेतना से परिपूर्ण नाटक है। ब्राम्हण वर्ग की सामन्ती सोच का भंडाफोड किया गया है। रामानंद सामंती सोचवाला ब्राम्हण है। जो रामबिहारी तथा सुनाराम के साथ मिलकर दलितों के वोट हथियाने की साजिश रचता है। पंचायत चुनाव अब आने ही वाले है। अत दलितो को मंदिर प्रवेश का लालच और प्रगतशिल विचारों का ढोंग रच झूठा अभियान चलाते है। बाल्मीकी वस्ती के लोगों को बहला– फुसलाकर मंदिर प्रवेश करवाने एकत्रित किया जाता है। तथा सवर्णो द्वारा लाठियॉ और डण्डे, पत्थर बरसाये जाते है। सारा मंदिर परिसर खून से रंग जाता है।

इस नाटक में कालिया नामक पात्र के माध्यम से रत्नकुमार सांभरिया ने दलित वर्गो में चेतना जागृत की तथा प्रगतिशील विचारों का पुरस्कार किया है। वह युवक सवर्ण मानसिकता का विरोध कर डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के विचारों पर चल स्वाभिमान और आत्मविश्वास जगाता है। रामानंद नामक सवर्ण पात्र झूठ का सहारा लेकर इन दलितों को मंदिर प्रवेश के नाम पर झूठी संवेदनशीलता दर्शाकर कहता है। "हमें संघर्ष करना होगा, संती। संघर्ष हक दिलाता है, संती। संघर्ष ही जीवन है, संती। संघर्ष ! वैसा ही संघर्ष, जैसा बाबासाहब डॉ. आंबेडकर ने कालाराम मंदिर प्रवेश अधिकार के लिए किया था।"[1] रामानंद भेदभाव, जातिवाद तथा छुआछुत और मंदिर प्रवेश जैसी प्रगतिशील बाते मात्र दलितों के वोट प्राप्त करने के लिए करता है" उसके मन में दलितो के प्रति कोई आस्था नही है। कालिया इस सामंती सोच को भलिभांति पहचानता है और कहता है– "अरे भोलू, तीन–चार जमात तो पढे हो ना, तुम? समझो यह स्वांग है। परपंच है। पंचायत के चुनाव आ रहे हैं ना, स्वार्थ की लीला रची जा रही है। यह लोग है न, चुपडी– चुपडी बाते करके हमारा अमूल्य वोट ठग लेते है । हम ठहरे भोले– भाले। पैसे से छोटे जाति से छोट। मान सम्मान से छोटे। हम नही जानते इस सच्चाई को कि वोट एक मोहर होती है। जो हदय की ताप से तप कर बनती है । वह इमानदारी पर लगनी चाहिए।"[2]

आज हम इककीसवी शताब्दी के तीसरे दशक तक पहूंच गए हैं फिर भी भारत के गावों में वोट प्राप्त करने ऐसी साजिश रचाई जाती है। चुनाव के समय नौटंकी, और कुर्सी प्राप्त करने के बाद सब भूल जाते है । चुनावी दौर में दारू– मीट, मांस, पैसे उडालेते हैं और राज करते है। परंतु इस नाटक में दलित समूह अब जाग गया है वह अपना हक, अधिकार तथा डॉ. बाबासाहेब के विचारों से प्रेरित हो गया है। गुलामी मानसिकता की जंजीरों को तोडना चाहता है। अब वे जाग गए है इन राजनेताओं और जातिवादीयों की असलितय पहचान गए हैं।"ये सब ऐसे ही दोगले, तीगले है, काका यह लोग ब्राम्हणवादी है, यानी जातिवादी है, यानी अवसरवादी है। गर्ज हुई चरणों मे आ गिरते है, गर्ज निकली, हमारी छाया से भी दूर भागते है।"[3]अब गांव– गांव के दलित जाग गऐ है। सांभरिया ने दलितों के मन में आत्मश्विवास तथा चेतना को इस नाटक के माध्यम से हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है।इस नाटके बारे में डॉ. राम निवास कहते है कि, " दलितों में महादलित जातियॉ जो कि, साफ–सफाई करके अपनी रोजी– रोटी चलाती है, विकास की दौड में आज सबसे पीछे रह गई हैं। सांभरिया का ध्यान इस ओर गया है और उन्होंने सबसे बडी समस्या उठाई है। जिस पर दलित लेखकों का ध्यान प्राय: नही गया है।भारतीय समाज के कर्णधार मानवता के मूलभूत सिध्दांतो का उपदेश प्रवचन करना बंद करे और उन्हे जीकर उदाहरण प्रस्तूत करें तो

साथ ही महादलित समाज और उसके नायकों को भी सामूहिक जिम्मेदारी है कि, वे भी अने में बदलाव लाएँ। उन घृणित विचारो को दृढता से समाज के सम्मुख रखनेवाला सांभरिया का सुप्रसिध्द नाटक है 'उजास'।"[4]

यह नाटक दलित नाटक की, श्रेणी में आता है अतः रत्नकुमार सांमरिया ने अपनी संवेदनशील दृष्टि का परिचय देते हुए सुक्ष्म रूप से दलितों के जीवन का सच और वास्तविकता प्रस्तुत की है। दलित युवक अब पूर्ण वैचारिक रुप से सवर्ण मानसिकता का विरोध कर रहे है । यह स्वर कालिया के रुप में मूखर हुआ है । "रामानंद जी, आप बार–बार बाबासाहब का नाम लेकर हमें बेवकूफ मत बनाओ । उनका का भाग्य, भगवान, मृति और आरती में कतई विश्वास नहीं था। कालाराम मंदिर प्रवेश की मुहिम तो वर्ण व्यवस्था को तोडने की एक मिसाल थी। ब्राम्हणवादी मानसिकता को उजागर करणा था।"[5] गावो में हर बार दलितों को गुमराह किया जाता है। कुओ पर पानी भरने को लेकर, मंदिर प्रवेश लेकर या फिर अन्य किसी बहाने आज भी दलितों पर अन्याय आत्याचार होता रहता है। पुलिस थाने में रपट भी दर्ज नही होती है और दलितों को न्याय भी नही मिलता है । प्रस्तुत नाटक में इसी पीडा को अभिव्यक्ति मिली हैं ।परंतू अब यह समुह जाग गया है। अब मरा हुआ जानवर तथा सडा हुआ मांस तथा अन्य गंदगी से युक्त काम नही करेंगें ऐसा उन्हान्हे अब ठान लिया है। अब बस्ती के लोग पंचायत का चुनाव लढेंगे।" संकल्प स्वयं विकल्प की राह बन जाय करता है, काका जिन लोगों ने अपने पैतृक धंधोसे छुटकारा पाया, कोई भूखा मरा, उनमें ? नहीं। गंदा धंधा छोडते ही उन्होंनें बाबासाहब की 'शिक्षीत बनो' के सिध्दांत को अपनाया । मेहन मजदूरी की लेकिन अपने बच्चों को पढाया। आज उनके पास मान, सन्मान, शिक्षा, पद और पैसा सब है।"[6]

रत्नकुमार सांभरिया ने इस नाटक में दलित समूह की सामुहिक चेतना को वाणी देने का कार्य किया है। पारंपारिक व्यवसाय, मैला धोना, गुलामी करना, ढोर, डंगर खाना आदि त्याग कर शिक्षा, मान, सन्मान और पद पैसा वाली स्वाभिमानी बाते वे अपने पात्रों के माध्यम से करते है। " सरपंच जी, भूखा मरे वो, जो निकम्मा हो। उस दिन सेवानंद ने कहा या न जिसके हाथ में झाडू होगी वह दूंर बैठेंगा ही। और मैने उनकी नाक पर निबौरी मारी थी तानकर. . . . . आज मै कहता हूँ जिसके हाथ में कलम होगी यह नजदिक बैठेगा ही। अब हमारे बच्चों की हाथ में कलम होगी । सिर्फ कलम और हमारे ये हाथ मेहनत, मजदुरी करेंगे । और सुनो, राजनीति किसी की बपौती नही है। ना किसी जाती की ठेकेदारी है। बाबासाहब ने कहा है,' राजनीति वह चाबी है, जो विकास के सब ताले खोल देती है।' हम सरपंच का चुनाव लढेंगे ।"[7]

इस प्रकार रत्नकुमार सांभरिया ने अपने नाटक 'उजास' में दलित समाज की करुणतम स्थिति को संवेदनशीलता की दृष्टि से प्रस्तुत करने के साथ दलित चेतना को भी सार्थक वाणी दी है । अब शिक्षा प्राप्त कर, बाबासाहब के प्रेरक विचारों से प्रभावित होकर वे अपना हक और अधिकार मांग रहे है, प्राप्त कर रहे हैं। उजास नाटक दलितो में चेतना जागृत करने वाला इककीसवी के द्वितीय दशक का सफल और सार्थक नाटक है। प्रगतिशील विचारों का पुरस्कार सांभरिया ने इस नाटक के माध्यम से किया है ।

संदर्भ सूची –

(**1**)'उजास'—रत्नकुमार सांभरिया—लोकमित्र प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण **2014,** पृष्ट क्र. **12** (**2**) वही पृष्ठ क्र. **14** (**3**)वही पृष्ठक्र.**15** (**4**)समाजदृष्टा साहित्यकार—रत्नकुमार सांभरिया—डॉ.राकेश रामपुरिया, दृष्टि प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण **2016,** पृष्ठ क्र.**104** (**5**)'उजास'—रत्नकुमार सांभरिया—लोकमित्र प्रकाशन दिल्ली,प्रथम संस्करण **2014,** पृष्ट क्र.**12** (**6**)वही पृष्ठ क्र. **37** (**7**)वही पृष्ठ क्र. **39**

38.रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में वृद्ध विमर्श

–*नीलम*
शोधार्थी–पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़।

साहित्यकार समाज से भिन्न प्राणी होता है। समाज और साहित्यकार के बीच जो भी संवाद होता है वह अनुभूतियों के माध्यम से ही साहित्यकार अपने साहित्य में प्रस्तुत करता है। साहित्यकार उन घटनाओं तथा उन परिवर्तनों का अनुभव करता है, जो समाज में घटित होती हैं। उनका सूक्ष्म रूप से विश्लेषण करने के बाद अपनी प्रवृत्ति के अनुसार उन्हें अपनी रचना में समाहित कर देता है। साहित्यकार की दृष्टि बहुत पैनी होती है। उसके आसपास के परिवेश में जो कुछ भी घट रहा होता है, वह उसे एक भिन्न दृष्टि से देखता है और संवेदनाओं के साथ उस अनुभव को कलमबद्ध करने के बाद समाज तथा पाठक वर्ग तक अपनी रचनाओं को पहुँचाता है। वह ऐसी रचनाओं का निर्माण करता है जिनके माध्यम से समाज में एक सकारात्मक परिवर्तन आ सके। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि साहित्यकार का मन आम व्यक्ति से अधिक संवेदनशील होता है और इस संवेदनशीलता का प्रयोग वह अपनी रचनाओं के चिंतन हेतु करता है। प्रत्येक साहित्यकार के रचना निर्माण का एक लक्ष्य निर्धारित होता है। वह अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज को इस प्रकार के संदेश देता है जो समाज में सकारात्मक भाव को उदित करते हैं। जनता में और लोगों में चेतना का प्रादुर्भाव करते हैं। इसी श्रेणी में रत्नकुमार सांभरिया विराजित हैं, जो आज के समय में परिचय के मोहताज नहीं हैं। वे एक लब्धप्रतिष्ठ रचनाकार हैं, जिन्होंने अपने साहित्य में ऐसे पक्षों को उठाया है जो समाज से संबंधित हैं, परिवार से संबंधित है और राष्ट्र तक अपनी पकड़ मज़बूत करते हैं। रत्नकुमार सांभरिया का रचना संसार बहुत ही व्यापक है। उसमें समाज के लगभग हर वर्ग तथा पक्ष को उठाया गया है जैसे दिव्यांग, वृद्ध, दलित, शोषित, नारी, बालक, यहाँ तक कि जानवर भी। सांभरिया के रचना संसार में इन सभी ने अपनी जगह बनाई है। लेखक ने मात्र व्यक्ति के ही नहीं, पशुओं के मनोभावों को प्रस्तुत करने में सफलता हासिल की है। जिन लोगों को समाज के शोषक वर्ग द्वारा किसी भी प्रकार से शोषित या प्रताड़ित किया जाता है, चाहे वे समाज का कोई भी पक्ष हो, उन लोगों के भीतर सांभरिया ने चेतना का बीजारोपण कर, अन्याय के विद्रोह की मशाल को जला दिया है। वे स्वयं अपने लिए लड़ते हैं। उनके ही द्वारा अपने अधिकारों के लिए आवाज़ उठाई जाती है। वैसे तो रत्नकुमार सांभरिया की रचनाओं के पक्ष बहुत व्यापक हैं, किंतु यहाँ जो विषय उठाया गया है वह है, रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में वृद्ध विमर्श, इसलिए यहाँ उनकी कहानियों में प्रस्तुत किए गए वृद्ध विमर्श की बात की जाएगी।

वृद्ध–विमर्श– "वृद्ध–विमर्श आज की परिस्थिति में चर्चित विमर्श के रूप में उपर है, आज के समय में वृद्धों की दशा और परिस्थिति को लेकर विचार वृद्ध विमर्श कर रहा है। वृद्ध होना पाप नहीं है यह जीवन का अंतिम सत्य है, अंतिम अवस्था है जो अटल है जो प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में आती है। यह समझने का प्रयास वृद्ध विमर्श कर रहा है। वृद्ध विमर्श बुजुर्गों के मान सम्मान की बात करता है। उन्हें घर का फालतू सामान, कबाड़ा ना मना जाए, उन्हें मनुष्य माना जाए यह मांग वृद्ध विमर्श की हैं" ।1

यूँ तो वृद्ध विमर्श पहले भी हिंदी सीहित्य जगत के कई लेखकों द्वारा अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया गया है, जैसे भीष्म साहनी की कहानी चीफ की दावत। कहानी के नायक मिस्टर शामनाथ का अपनी माता के साथ किया जाने वाला व्यवहार, तथा माता की वृद्धावस्था से शर्मिंदगी का चित्रण लेखक ने किया है, लेकिन शामनाथ की माता त्याग की मूर्ति है वह तिरस्कार के बदले में भी अपने बेटे को प्रसन्न करने का प्रयास ही करती है। इसी प्रकार प्रेमचंद की कहानी बूढ़ी काकी का मार्मिक भाव भी वृद्ध विमर्श को दिखाता है। इसी प्रकार अनेक लेखकों ने अपनी कहानियों में वृद्ध विमर्श को उठाया है और सांभरिया की कहानियों में भी वृद्ध विमर्श को एक विशिष्ट स्थान दिया गया है। इस पक्ष को लेखक ने बहुत ही सरल और सादे ढंग से उठाने का प्रयास किया है। उनकी कहानियाँ है, जिनमें वृद्ध विमर्श पाठक को देखने को मिलता है, जैसे कहानी बूढ़ी। इस कहानी में लेखक दिखाते हैं कि कहानी की नायिका बूढ़ी स्त्री है जो अपनी बेटी से बहुत प्रेम करती है। उसकी एक ही बेटी है, उसके पास बुढ़ापे के समय में ख्याल रखने को घर में कोई भी सहारा नहीं है। उसकी एक बेटी थी, जिसका विवाह बूढ़ी ने एक समृद्ध घराने में करा दिया था। सांभरिया ने इस कहानी में एक वृद्ध महिला के संघर्ष भरे अकेले जीवन का चित्रण किया है।

कहानी "कील" की पीड़ा हृदय को झिंझोड़ कर रख देती है। समकालीन समय के वृद्ध विमर्श का उदाहरण इस कहानी को माना जा सकता है। एक व्यक्ति के जीवन में माँ का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान होता है। माँ भी बिना किसी स्वार्थ के संतान के जीवन के लिए सबकुछ लुटा देती है। गाँवों में रहने वाले लोग जब शहरों में जा कर बस जाते हैं तों गाँव से रिश्ता अक्सर धुंधला हो ही जाता है। अक्सर माता–पिता को गाँव में छोड़कर शहर में जाने के बाद संतान को गाँव की संपत्ति के सिवाय किसी

से कोई मोह नहीं रहता। यह कहानी ऐसे स्वार्थी बेटे– बहू पर आधारित है, जो कलयुगी स्वार्थी संतान की मिसाल हैं। ऐसी संतानें अपने बूढ़े माँ–बाप की संपत्ति की एक–एक बूंद डकार लेती हैं और जब माता–पिता के पास कुछ बाकी नहीं रहता तो उन्हें बोझ समझने लगती हैं। ऐसे लोग अक्सर ये भूल जाते हैं कि उनका भी मानव शरीर है और बुढ़ापे के पड़ाव से उन्हें भी गुज़रना पड़ेगा। यदि उनकी संतानें भी बुढ़ापे में उनके साथ ऐसा बर्ताव करेंगी तो उन्हें कैसा महसूस होगा। "कील" कहानी की नायिका एक वृद्ध महिला सोनवती है जो गाँव में अकेले रहती है। उसके बहू–बेटे शहर में रहते हैं। सोनवती का बेटा उसे अपने पास शहर बुलाकर साथ रहने का झांसा देता है। वह माँ से गाँव की संपत्ति को बेचने के लिए कहता है तथा सारा पैसा लेकर शहर आने को कहता है। संतान के मोह से बँधी माँ भी अपना सबकुछ बेचकर शहर आ जाती है। शहर में आते ही एक–एक करके उसके पैसे और गहने बेटे और बहू के द्वारा हथिया लिए जाते हैं। उसे वे अपने लिए खर्च करने लगते हैं। सोनवती को इसके बारे में कुछ भी पता नहीं चलता है। जब उसे पता चलता है कि उसका सबकुछ उसी के बहू और बेटे के द्वारा लूटा जा चुका है तो उसे बहुत बड़ा झटका लगता है। अब वह अपने बेटे–बहू पर बोझ बन चुकी है। वे परिचित लोगों से कहते हैं कि माँ जी का शहर में मन नहीं लगता और अब वे वापस गाँव चली जाएंगी।

किंतु यहाँ पर कहानी का अगला ट्विस्ट सामने आता है, सांभरिया की कहानियों के पात्र कमज़ोर नहीं हैं, वे अपने जीवन जीने के जज़्बे के लिए प्रसिद्ध हैं। जीवन के इतने कटु अनुभव के बाद भी सोनवती के भीतर स्वाभिमान और संघर्ष का भाव बाकी है। वह निर्णय लेती है कि ऐसे घर में नहीं रहेगी जहाँ उसके परिवार में उसकी बोझ समझकर अवहेलना जाती है। अभी उसके भीतर की संघर्षशीलता का अंत नहीं हुआ है। उसे मंज़ूर है एक चौराहे पर आने–जाने वाले राहगीरों के पैरों के जूतों पर कील ठोकना, लेकिन वह अपने बेटे और बहू के दिल में चोट देने वाली कील नहीं बनेगी। यह कहानी वृद्ध विमर्श का एक बेहतरीन उदाहरण है।"चैत की भभकती धूप थी। पगडण्डी पर बैठी सोनवती सामने खड़े ग्राहक के जूते में कील ठोक रही थी, ठक–ठक–ठक"। 2खेत कहानी भी वृद्ध विमर्श का एक बेहतरीन उदाहरण है। इस कहानी का मुख्य पात्र बूढ़ा है जो 74 वर्ष का है। वह अपने खेतों से बहुत प्रेम करता है और उन्हें अपना सर्वस्व मानता है। किसी भी कीमत पर वह खेत बेचना नहीं चाहता। एक समय था जब उसके पास सौ बीघा ज़मीन थी जो बिकते–बिकते मात्र दो सौ वर्ग गज का प्लाट ही रह गई। बह उस ज़मीन को घर–परिवार की आवश्यकताओं के लिए बेच देता है। अब जो दो सौ वर्ग गज का प्लाट है, वह उसके लिए खेत है। खेत में वह सब्ज़ियाँ उगाता है और उन्हें बेचता है। बूढ़े का खेत अच्छी जगह पर है इसलिए बार–बार खरीदार उसे खरीदने आते हैं। लोग सोचते हैं कि ये बूढ़ा भला क्या ही करेगा, इसकी ज़मीन बिकवाकर अपना फायदा निकलवाना बहुत आसान है, लेकिन बूढ़ा खेत बेचने से मना कर देता है तो लोग अलग–अलग पैंतरे अपनाने लगते हैं। एक बार वह बीमार हो जाता है तो गाँव में ये अफवाह उड़ जाती है कि वह खेत बेचकर अपने बेटे के पास शहर चला जाएगा। वकील तक उसके पास आकर खेत बेचने के लिए कहता है लेकिन बूढ़ा अपना खेत बेचने के लिए राज़ी नहीं होता। बूढ़े पर दबाव डालने और उसे धमकी देने के लिए डी.वाई.एस.पी को प्लाट पर भिजवाया जाता है। जब वकील बूढ़े से पूछता है कि उसने खेत बेचने के लिए स्टाम्प पेपर पर दस्तखत किए या नहीं, तब बूढ़ा गुस्से से लाल हो जाता है। उसके भीतर का आत्मसम्मान तथा चेतना, दोनों ही जाग उठते हैं। वह सीधा वकील के घर जाता है तथा स्टाम्प पेपर के टुकड़े–टुकड़े कर देता है और जो पैसे उसे खेत बेचने के लिए दिए जाते हैं, उन पैसों की पोटली को पटक देता है। "स्टाम्प की चिंदी–चिंदी कर वकील पर फेंक दी। रुपए की थैली सामने पटकी। उसने गेट पर लाठी ठकठकाई– वकील छौं ना। केरसिंह पागल कोनी, कालजो बेच दे अपणो"। 3 बूढे के क्रोध को प्रत्यक्ष रूप से देखने के बाद वकील घर के भीतर चला जाता है। इस कहानी का अंत बूढ़े की चेतना को दर्शाता है। यदि बूढ़े ने अपना विरोध न दिखाया होता तो उसकी अनुमति के बिना ही खेत की बिक्री हो जाती। समाज के कुछ दुष्ट लोग सोचते हैं कि जीवन की ढलती उम्र के साथ व्यक्ति के मन का हौसला भी समाप्त हो जाता है पर ऐसा होता नहीं है। सांभरिया की कहानियों के पात्र इसी रूप में विशिष्ट हैं। वे हारते नहीं फिर चाहे वे किसी भी वर्ग के हों।

कहानी आश्रय भी वृद्ध विमर्श को दर्शाती कहानी है। यह कहानी भी संपत्ति के लालच में अंधी संतानों के मुँह पर एक तमाचा है, जो अपने माता–पिता को मात्र धन का ही स्त्रोत समझकर केवल पैसों के लिए उनसे संबंध निभाते हैं। कहानी के नायक के.के. सेवक के बेटे और बहू पिता का घर बेचकर, अपने लिए ज़मीन खरीदना चाहते हैं, वहाँ पर कोठी बनवाना चाहते हैं, लेकिन उस घर में वे अपने वृद्ध पिता के साथ नहीं रहना चाहते। उनसे संपत्ति लेकर वृद्धाश्रम में रखवाना चाहते हैं। संतान के लिए जब माता–पिता बोझ हो जाते हैं तो अक्सर वे वृद्धाश्रम की ओर

धकेल दिए जाते हैं। माता–पिता भी बुढ़ापे से बेबस होकर इसी नियति को अपना लेते हैं। लेकिन सांभरिया की कहानी में ट्विस्ट आते रहते हैं। परमेष्वर के पिता की अपनी पेंशन है और जिस घर को बेचने के लिए उनके बेटा– बहू आतुर होते हैं, उसी घर को के.के. सेवक द्वारा वृद्धों के लिए आश्रय बना दिया जाता है। बेसहारा वृद्धों के लिए छत की व्यवस्था और दिव्यांगों को नौकरी देकर वे अपने घर को अपने जैसे वृद्धों के लिए अर्पित कर देते हैं। वे अपने बेटे से कहते हैं– "परमेष्वर जी, रिटायरमेंट के बाद मुझे लगा बहू–बेटे पर आश्रित होने की बजाय मेरा घर, धन और मन बुजुर्गों का आश्रय बन जाएँ। आप जब भी आश्रय आएँ, किसी बेसहारा को साथ ज़रूर लाएँ"।4 यहाँ पर सांभरिया की कहानी में एक नयापन देख जा सकता है कि उनकी कहानियों के पात्र अपने साथ हो रहे अन्याय को चुपचाप सहते नहीं रहते अपितु उसका मुँहतोड़ जवाब देते हैं। वे ऐसे पात्र हैं, जिनके भीतर चेतना है। जो वास्तविकता को पहचानते हैं। उनके भीतर एक विशिष्ट प्रकार की हिम्मत है।

सांभरिया की कहानियाँ आधुनिक जीवन के सत्य को दर्शाती हैं जहाँ संतोनों पर माता–पिता बोझ बनते जा रहे हैं। एकल परिवारों का चलन समाज में बढ़ता जा रहा है, संताने स्वार्थी होती जा रही हैं और माता–पिता को मात्र पैसों का ज़रिया मानने लगी हैं। लेकिन सांभरिया द्वारा सृजित किए गए पात्र भी चुपचाप अपने जीवन की कठिन परिस्थितियों को सहकर भाग्य का रोना नहीं रोते। वे अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना जानते हैं। वे कमज़ोर नहीं हैं। वृद्धावस्था जीवन का अंतिम पड़ाव होता है, इससे प्रत्येक व्यक्ति को गुज़रना पड़ता है। वृद्ध व्यक्ति को घर का कबाड़ समझना, उसका तिरस्कार करना, परिवार से अलग कर देना, इस प्रकार का अन्याय करने से समाज के पाठक वर्ग को रोकना ही सांभरिया की इन कहानियों का उद्देश्य है।

सन्दर्भ–(1)वृद्ध विमर्श (21वीं सदी के भारतीय परिप्रेक्ष्य में) - BOOKHUB (readnbora.blogspot.com) (2)कील, काल तथा अन्य कहानियाँ, रत्नकुमार सांभरिया पृ–109, रचना प्रकाशन, 57, नाटाणी भवन, मिश्रराजाजी का रास्ता, चांदपोल बाज़ार, जयपुर 302001, संस्करण– 2018 (3)खेत, खेत तथा अन्य कहानियाँ, पृ–88, रत्नकुमार सांभरिया, आधार प्रकाशन, पंचकूला (4)आश्रय, रत्नकुमार सांभरिया

39.'वीमा' नाटक की समीक्षा

–डॉ. नमिता जैसल
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय

रत्नकुमार सांभरिया द्वारा रचित वीमा नाटक 'सवांखे' कहानी का नाट्य रूपान्तरण है। जिसमें निःशक्तों और दलितों के साथ हो रहे शोषण और संघर्ष को यथार्थ के धरातल पर चित्रित किया गया है। प्रस्तुत नाटक मे प्रमुख पात्र जमन वर्मा नेत्रहीन,संगीत का शिक्षक है। नेत्रहीन जमन वर्मा व नेत्रहीन वीमा ने स्वेच्छा से एक दूसरे विवाह किए थे। वीमा का संबंध सवर्ण जाति और जमन का दलित से, दोनों का विवाह तथाकथित सभ्य समाज (सवर्ण) को अच्छी नहीं लगी इसलिए सवर्ण समाज इनके बसे– बसाये घर को उजाड़ने का हर संभव प्रयास करता है। नेत्रहीन संस्था के संस्थापक श्यामाजी जमन और वीमा के विवाह से बहुत खुश थे। लेकिन जब उन्हे पता चलता है कि वीमा उनकी रिश्तेदार है तो उसका निःसंकोच उसका अपहरण करके सारा का सारा दोष जमन पर डाल देते है। जमन अपना सर्वस्व खोने कि पीड़ा से व्यग्र तो होता है, लेकिन उनके समक्ष कमजोर नहीं पड़ता है। जमन वीमा को याद करते हुये कहता है–"बाल्टी, लोटा, मटकी (रेडियो को हाथ में लेकर) यह रेडियो भी, यही तो प्रज्ञाचक्षुओं का हँसता, बोलता, ज्ञान बांटता संसार है। इसे वीमा सुना करती थी, छाती पर रखकर।"[1]

वीमा उच्च परिवार की नेत्रहीन युवती है। उसे अपने ही परिवार में दो वक़्त की रोटी के लिए भाई–भाभियों के बच्चे को नहलाना–धुलाना, स्कूल भेजना, इसके अतिरिक्त उसे घर के सारे कम करने पड़ते थे फिर भी वह अपने इस जीवन से संतुष्ट थी लेकिन जब उसके विवाह की बात निःसंतान अधेड़ उम्र के व्यक्ति से दूसरे शादी की बात चल रही थी ,तब उसने परिवार के इस फैसले का प्रतिकार कड़े शब्दों में करती है "हाँ, जमींदार है वे। धान कि खेती होती है। उपजाऊ ज़मीन कि भांति वे मुझे रखते। मैंने ताल ठोककर ना कह दी। आंखे नहीं है तो क्या कठपुतली होऊ, उनकी ।"[2] और एक दिन वीमा अपना घर छोड़कर चली जाती है। इस तरह वीमा का घर छोड़कर भागना, स्टेशन पहुंचना तभी स्टेशन पर मनचले युवक द्वारा बहला–फुसलाकर गढढे की ओर ले जाकर बदतमीजी करता है,वीमा के रोने–बिलखने की आवाज़ सुनकर जमन पत्थर से वार कर गुंडे से बचाकर उसे अपने कमरे पर ले जाता है। वहाँ पर नेत्रहीन संस्था के संस्थापक श्यामाजी से मिलवाता है और उन्ही की

अनुमति पाकर वीमा को अपने कमरे पर रखता है बाद में उनके ही आशीर्वाद से कोर्ट मैरेज कर लेते हैं। विवाह करने से पहले जमन अपनी जाति के बारे में बताता है–"जमनः एक बात को लेकर मेरा मन बैठा जाता है, वीमा। वीमाः (थोड़ा घबराकर) बताएं? जमनः तुम ऊंची जात। मैं नीची जात। तुम सवर्ण, मैं दलित। मन में ऊंच– नीच का भेद रहते गृहस्थी की गाड़ी नहीं चलती। वीमाः(होंठ बिचका कर) छोड़ो भी जमन। पढ़े– लिखे होकर जात की काप में पांव मार रहे हो। तुम मरद हो, मैं औरत हूं। दो जात। तुम नेत्रहीन, मैं नेत्रहीन एक जात।"[3] वीमा का यह कथन उसकी प्रगतिशील सोच को दर्शाता है। समाज में सिर्फ स्त्री –पुरुष नाम कि ही जाति है।इसके अलावा ना कोई ऊंच है ना ही नीच। विवाह के पश्चात् दोनो सुखी जीवन व्यतीत करने लगते हैं लेकिन जाति नाम की काली छाया उनके ऊपर मंडराने लगती है ।एक दिन वीमा का अपहरण करवा दिया जाता है। वीमा का अपहरण हो जाने से जमन पूरी तरह से बिखर तो जाता है लेकिन अपने आप को कमजोर नहीं होने देता है।उसकी खोज में पुरजोर कोशिश के साथ लग जाता है।

नाटक की शुरुआत बहुत ही उत्सुकता के साथ होती है। जमन स्कूल से आकर दरवाज़ा खोलने का प्रयास करता है और वीमा को आवाज़ भी देता कहां हो? ना तो दरवाज़ा ही खुलता है ना ही वीमा वहां पर मौजूद होती है।घर का सारा सामान बाहर बिखरा पड़ा हुआ है,बिखरे हुये समान को वह टटोलने लगता है तभी उसके हाथ श्यामाजी का अंगोछा हाथ लग जाता है।गर्भवती पत्नी के लापता हो जाने पर परेशान जमन श्यामाजी पास पहुंचता है।यह वही श्यामाजी है, जिन्होंने वीमा और जमन के अभिभावक बनकर दोनों की शादी करायी थी लेकिन आज इनका रूख पूरी तरह से बदला हुआ है। वे मदद करने की बजाय जमन को अपनी जाति–बिरादरी में विवाह करने की सलाह देने लगते है।

सांभरिया जी इस नाटक के माध्यम से दलित एवं निःशक्तों के संघर्ष के साथ ही साथ सामाजिक कुरीतियों, सरकारी योजनाओं की धांधली, मीडिया के दोहरे चरित्र,अवसरवादिता एवं पुलिस के असंवेदनात्मक व्यवहार से दर्शकों को भलीभांति परिचित करवाते है। वीमा के लापता होने पर पुलिस मे तहरीर देने के बाद भी दो दिनों तक कोई कार्यवाही नहीं होती है । पुलिस की तरफ से मदद न मिलने पर जमन विकलांग संघ के अध्यक्ष अपने मित्र देवत सिंह के परिचित संवाददाता झा की सहायता लेता है,न्याय की पूरी उम्मीद भी करता क्योंकि वह जानता है कि प्रेस लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ,आम जन का आसरा, संकट और संत्रास के समय के वक़्त एकमात्र प्रेस से ही संबल,न्याय की उम्मीद है लेकिन उसे भी निराशा हाथ लगती है। मीडियाकर्मी झा जी जमन की पूरी बात को सुनते तो जरूर है किन्तु समाचार पत्र मे ठीक उसके विपरीत खबर को छापते है। "वीमा नाम कि भोली–भाली ग्रामीण लड़की घर से रूठकर शहर आ गयी । संयोग से रेलवे स्टेशन पर नेत्रहीन संस्था का नेत्रहीन अध्यापक जमन वर्मा मिल गया।वर्मा उस बेचारी को बहला–फुसलाकर अपने कमरे पर ले आया।कई दिनों तक अवैध रूप से उसे रखा और उसके साथ ज्यादती करता रहा। जमन वर्मा की नीची जाति का पता जब लड़की को लगा उसे मूर्छा आ गयी। लड़की कि हालत बिगड़ती रही। जमन उसके साथ ज्यादती करता रहा। एक दिन मौका पाकर लड़की नेत्रहीन संस्था के संस्थापक श्यामाजी के चेम्बर में गयी और आप बीती सुनाई। जमन के चंगुल से छुड़ाने के लिए खूब रोई, गिड़गिड़ाई। सहृदय श्यामाजी ने उसको ढाढ़स बँधाया। उन्होंने वीमा के गाँव खबर की। वीमा के पिता और भाई आए और उसे गाँव ले गए।"[4] जमन मीडिया की झूठी खबर सुनकर स्तब्ध रह जाता है, वह समझ जाता है उसकी लड़ाई किसी एक व्यक्ति से नहीं है बल्कि पूरी जाति व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था, परंपरा और सत्ता से है, क्योंकि समूची व्यवस्था जाति व्यवस्था से परिचालित है।

सांभरिया जी के पात्रों की सबसे बड़ी खासियत यह है कि वह विषम परिस्थितियों से घबराकर भागते नहीं है न ही नियतिवादी होते है बल्कि हर परिस्थिति का डटकर मुकाबला करते है। जमन कहता है "अगर निःशक्त अपनी पर उतर आएं, लोहे की गेंद है। लोहे की गेंद को न किक मारी जा सकती है,न उछला जा सकता है। फक्र है, निःशक्तों पर। निःशक्तों की एकता पर, निःशक्तों की ताकत पर।"[5] यहाँ पर बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर जी की उक्ति सार्थक दिखाई पड़ती है –'शिक्षित बनो संगठित रहो और संघर्ष करो' ।कैसे पूरा का पूरा निःशक्त समाज अपनी एकता के बल पर समूची व्यवस्था की नग्नता को समाज के समक्ष रखते हैं। कैसे सत्ता मे बैठे हुये लोग अपनी शक्ति का दुरुप्रयोग कर काला को सफ़ेद, सफ़ेद को काला कर रहे हैं।

पूरे नाटक में कुल पात्रों की संख्या 12 है कुछ गौण पात्र भी रखे गए है। जमन वर्मा शारीरिक रूप से सक्षम न होते हुये भी उसे अपनी कमजोरी नहीं मानता है शिक्षा को अपनी हथियार बनाकर जिस दृढ़ता के साथ सत्ता के खिलाफ लड़ाई लड़ता है, वह काबिलेतारीफ है। सांभरिया जी जमन के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि आज का दलित युवक

स्वयं को दीन–हीन न मानकर अपने अधिकारों के प्रति सचेत है यह उसके चरित्र का सबल पक्ष है।

भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। नाटक में कथा संवाद के द्वारा ही आगे बढ़ती है।प्रस्तुत नाटक मे संवाद सहज, सरल छोटे वाक्यों का प्रयोग पात्रों के अनुरूप किया गया है, पूरे नाटक में भाषा कहीं भी उबाऊ नहीं लगती है। पाठक वर्ग को आरंभ से लेकर अंत तक बांधकर रखती है,यह भाषा की सबसे बड़ी ताकत है। इस नाटक मे हिन्दी, अँग्रेजी और राजस्थानी भाषा के साथ–साथ लोकोक्ति एवं मुवाहरों का प्रचुर मात्रा मे प्रयोग किया है जो नाटक को जीवंत तो बनाती है पाठक एवं दर्शक वर्ग को लोक से भी जोड़ती है । जैसे– एक ध्येय, तीन काज, खग की बोली खग ही जाने, कागज़ की नाव नहीं चलती, बगुला भगत कही के, इत्ती सी जान गज भर जुबान, न हाथ न, न साथ दो कौड़ी की जात,जान बची तो लाखों पाये,आखों का पानी नहीं मरना, चोर–चोर मौसेरे भाई, जात मरि हम बड़ेर हुये आदि का बहुत ही सुंदर प्रयोग हुआ है।

इस सांभरिया जी ने 'वीमा' नाटक के माध्यम से अमानवीयता की प्रकाष्ठा को चित्रित तो किया है साथ ही जमन वर्मा का वीमा के लिए जो संघर्ष करता है वह दया का नहीं करुणा का भाव उत्पन्न करता है। संघर्ष की परिणति में जमन के जिस विजय को दिखाया है वह सुखद और अपेक्षित है। यह संघर्ष उसकी व्यक्तिगत नहीं है बल्कि सम्पूर्ण समाज से कैसे इंसानियत और ईमानदारी दरक रही है उसे उजागर कर लेखक ने अपनी चिंता भी व्यक्त की है आज भी मनुष्य से बड़ी जाति है। श्यामा जी कहते भी है–"जात–पात, छुआछूत ही हमारी सांसें। जात मरी, हम बड़ेर हुये।" लेखक ने निःशक्तों के माध्यम से पूरे भारतीय समाज को महतवपूर्ण सन्देश देते है जो देख नहीं सकते वह समता मूलक की स्थापना करना चाहते है और जो देख सकते वे जातिभेद को लेकर अंधे बने हुये है। ये हमारे समाज बहुत बड़ी विडम्बना है। इस नाटक के संदर्भ में सार्त्र की उक्ति सटीक लगती है 'लेखन केवल लिखना ही नहीं है, एक कार्यवाही है, और बुराई के खिलाफ मनुष्य के सतत संघर्ष में लेखन सायास हथियार की तरह इस्तेमाल करना चाहिए।'

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची : (1)सांभरिया,रत्नकुमार,वीमा,श्री नटराज प्रकाशन,प्रथम संस्करण :2020,पृष्ठ संख्या–11(2)वहीं, पृष्ठ संख्या–40(3)वहीं, पृष्ठ संख्या–46(4)वहीं, पृष्ठ संख्या– 71–72 (5)वहीं, पृष्ठ संख्या–77

40.परिवर्तित होते मूल्यों का नवस्वरूप रत्नकुमार सांभरिया की कहानी 'फुलवा': एक अध्ययन

–[1]डॉ0नमिता जैसल [2]चन्द्रावती

[1]सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, [2]शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ

वर्तमान कथासाहित्य जगत में रत्नकुमार सांभरिया एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। वे जनपक्षधरता के कथाकार हैं। रत्नकुमार सांभरिया समाज की सततशील असमानता को समानता की मुख्यधरा से जोड़ने के पक्षधर लेखक हैं। उनकी सभी रचनाएँ प्रगतिशील हैं। वे उपेक्षित वंचित समाज की गतिशीलता के समर्थक हैं। उनकी सभी कहानियां दमित वर्ग की त्रासदी का सिर्फ आख्यान की नहीं हैं बल्कि चेतना के शिखर तक की यात्रा करती दिखती हैं। समाज के बदलते स्वरुप को अपनी कहानियों में वर्णित करते हैं। उनके सभी पात्रों में जीवन के प्रति ललक हैं, जिसकी वजह से वे सनातन समस्याओं से दो–दो हाँथ करते हुए आगे बढते हैं। लेखक की पाँच कहानी संग्रह (जिसमे कुल 52 कहानियां संकलित हैं) व एक एकांकी तथा तीन नाटक हैं।

भारतीय समाज का आधे से अधिक हिस्सा खेमों में विभक्त रहा है। जिसमे धर्म व जाति प्रमुख लकीरें रही हैं। कुछेक वर्णों को छोड़कर बाकि सभी वर्णों को हाशिये पर धकेल दिया गया। बहुसंख्यक दलित, पिछड़ा, स्त्री व आदिवासी इस रुढ़ व्यवस्था का शिकार बने रहें हैं। कुछ विशेष वर्गों ने अपने बिल्कुल निजी हित हेतु वर्णव्यवस्था की स्थापना की तथा उसे ईश्वर का प्रतीक माने जाने वाले ब्रम्हा से उत्पन्न बताकर और भी पुष्ट किया। जातिव्यवस्था को धर्म तथा ईश्वर से जोड़ दिया गया ताकि ईश्वररचित विधान का पालन करना प्रतिबद्धता बन जाए। इस सबसे अधिक शोषण दलितों, स्त्रियों व अन्य पिछड़े वर्ग का हुआ है। क्योंकि इस व्यवस्था के अनुसार उपेक्षित तबके का कार्य है सिर्फ उच्चवर्णीय लोगों की सेवा करना। वंचित तबके के लोगों से उनके सारे मानवीय अधिकार छीन लिए गये। कुछ लोगों ने इसे नियतिवाद समझकर जुल्म सहते रहे तथा उसी में से कुछ लोगों को परतंत्रता का भान हो गया, जिससे क्रान्तिकारी आंदोलनों के द्वारा सम्मान से जीने की बात रखी गयी। इस असमानता को दूर करने हेतु असंख्य समाज–सुधारकों ने प्रयास किया जिसमें तथागत गौतम बुद्ध सबसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने जाति व्यवस्था का खण्डन किया तथा सभी के सामान हितों की बात की।

संत कबीरदास व संत शिरोमणि रविदास ने अपने सम्पूर्ण जीवन में इन्ही कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया।

कबीरदास का दोहा–'एक बूँद तैं सृष्टि रची है, कौन ब्राह्मण कौन शूदा। एक नूर तैं सब जग किआ कौन भले को मंदो'।[1] महामना ज्योतिबा फुले व उनकी पत्नी सावित्री बाई फुले पहले वे शख्स थे जिन्होंने वंचितों स्त्रियों के अधिकारों की लड़ाई में सफल महत्वपूर्ण कदम उठाया। सर्वप्रथम दोनों ने फातिमा शेख की मदद से दलित व स्त्री शिक्षा के लिए विद्यालयों की स्थापना की। तत्पश्चात डॉ. बी. आर. अम्बेडकर (संविधान निर्माता) ने इस मुहीम को मुख्यधारा से जोड़ा। उन्होंने समानता आधारित संविधान का निर्माण कर लोकतंत्र की स्थापना की जिसके तहत गरीब–अमीर, दलित व स्त्रियों के विभिन्न अधिकारों को संरक्षण प्रदान किया गया। 'हिन्दू कोड बिल' के द्वारा भारत के हर वर्ग की महिलाओं को शिक्षा, समानता, सम्पत्ति आदि का अधिकार दिया गया।समाज का सदैव से भिन्न विधान रहा है और वे उसी विधान का पालन करते रहें है। लोकतंत्रात्मक प्रणाली के बावजूद भी समाज में जातिव्यवस्था की जड़े बनी रहीं। जिससे समाज में विभेद बना रहा है। प्रभु वर्ग को दलितों महिलाओं की प्रगति शूल सी खटकती रहीं है। शोषण बना रहा, तरीकों में तब्दीली के साथ। रत्नकुमार सांभरिया की कहानी 'बकरी के दो बच्चे' में ठाकुर दानसिंह का कथन दृष्टव्य है– 'ढेड़ और भेंड़ को हम जीव नहीं मानते'।[2]

रत्नकुमार सांभरिया की कहानी 'फुलवा' 1997 को हंस में प्रकाशित हुई। यह कहानी एक दलित महिला 'फुलवा' व उसके बेटे राधामोहन के आर्थिक तथा शैक्षिक स्तर पर सशक्तिकरण की है। फुलवा ने भले ही अपने पति से उत्तराधिकार में मिले कार्य को सहर्ष स्वीकार कर लिया था, लेकिन उसमे आत्मस्वाभिमान का अंकुर फूट रहा था। रत्नकुमार सांभरिया का कहना है पीपल का एक छोटा सा बीज पत्थर को फाड़कर भी उग जाता है और अपना आकार लेता जाता है। लेखक की एक अन्य कहानी 'आखेट' में वर्णित नायक सोमा का यह कथन फुलवा की मनःस्थिति का सटीक चित्रण है– ''मेरा बेटा ऐसा–वैसा थोड़े ही रहेगा। नहीं करेगा किसी की मजूरी–वजूरी। मैं इसे अफसर बनाऊँगा, अफसर। हां, हां बेटे, तेरे पास कोठी होगी, कार होगी। नौकर–चाकर होंगे।''[3] फुलवा में शोषण के प्रति बोध था। उसने मन ही मन में दृढ प्रतिज्ञा कर ली थी कि चाहे कुछ भी हो जाए वह अपने बेटे को अपनी विरासत (टहलुवई) कदापि नहीं सौंपेगी। बरसात में टपकती उसकी छत तथा आंधी में उड़ती छान उसके हौसले की नींव को रत्ती भर भी न हिला सके। फुलवा भविष्य निर्माता के रूप में दिखती है जो अपने उठाये गये एक कदम से पूरी नस्लों को स्वाभिमान से जीने का आगाज करती हुई दिखाई देती है। लेखक के शब्दों में– ''चातुर्वर्ण्य व्यवस्था की वर्जनाओं के बरअक्स शूद्रों का सामाजिक स्तर और शैक्षणिक उन्नयन अवरुद्ध रहा, आर्थिक विकास चौपट रहा, सामाजिक स्तर घृणा और फाका का पर्याय रहा। शिक्षा का एक शब्द भी शूद्र सुन ले तो उसके कान में पिघला हुआ सीसा डाल देने की सुदीर्घ परम्परा रहीं। वे सभी पेशे–धंधे जो अर्थमूलक और मान–सम्मान के थे, शूद्रों के हाथों से छीन लिए और सेवा–कार्य से जुड़े और चार्म जैसे घृणाप्रद पेशे दे दिए गए।[4] बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर गाँवों को असमानता स्थल के रूप में देखते थे। उनके अनुसार गाँवों में दो इकाईयाँ हैं, स्पृश्य तथा अस्पृश्य। ग्रामीण सामाजिक आचारसंहिता का पालन करना दोनों इकाईयों की प्रतिबद्धता बनी रहीं है। इनके उल्लंघन पर दण्ड–विधान भी निश्चित रहे हैं। ''फुलवा की जात वालों को जमींदारों के कुएं पर चढ़ने की मनाही थी। वह जिस कुएं से पानी लाती थी, वह आधा कोस दूर था, उसके घर से।... वह रामेश्वर को बार–बार हाँथ जोड़ रहीं थी– ''आज मुझे गाँव जाना हैं, रामेश्वर जी।दो बाल्टी पानी उडेल दो मटके में।'' फुलवा का बार–बार 'रामेश्वर' कहना रामेश्वर को काट गया था। उसने गुस्सा कर मटके पर थूक दिया था। फुलवा ने मटका वहीं फोड़ दिया और वह रोती आँखें लिए घर लौट आई थी।''[5]

तब का दिन और आज का दिन रामेश्वर (जमींदार का बेटा) शहर में स्थापित फुलवा की कंगूरेदार आलीशान कोठी देखकर आश्चर्य से भर जाता है। वह पं. माताप्रसाद से मिलने शहर पहुँचता है, लेकिन गाँव के पंडित, जिनको लोग ढोक देते थे, उनको शहर में कोई नहीं जनता। वहीं फुलवा के बेटे राधामोहन को पोर–पोर लोग जानते हैं। रामेश्वर को यह बात बहुत अखरती है कि उनकी नौकरानी की शाख गाँव के पंडित से अधिक है। वर्णव्यवस्था के तहत शूद्रों को किसी भी प्रकार की सम्पत्ति रखने का हक नहीं था, न ही शिक्षा के लिए कोई विकल्प। उनका काम सिर्फ उच्चवर्णीय लोगों की सेवा करना व मांगकर खाना आदि नियम थे। वे लोग कोई भी क्रियाकलाप करते हैं तो प्रभु वर्ग की सहमति लेकर। ऐसे में फुलवा का शहर में जाकर हर चीज अर्जित कर लेना रामेश्वर को कैसे हजम हो जाता। रामेश्वर मन में फुलवा व उसके बेटे की परतंत्रता की कल्पना करता है– ''फुलवा चालाक निकली। इसने सौ पापड़ बेल लिए, लेकिन राधामोहन के हाँथ से किताब नहीं छूटने दी, वरना उसकी हथेली तले हमारा हल होता आज।''[6] फुलवा शिक्षा का महत्व समझती थी। उसने दुर्दिन में सुखद भविष्य के सपने को पल्लवित किया था। वह शिक्षा व वित्तीय संसाधनों द्वारा खुद के स्वाभिमानी होने का सिर्फ परिचय ही नहीं देती, बल्कि बरसों की जंग लगी सामाजिक संरचना को भी नव आकार देती है। पेरियार ई. वी. रामास्वामी का कथन दृ

ष्टव्य है– "जब तक बच्चों की समझदारी में विकास नहीं होता, तभी तक वे भय तथा विश्वास के समक्ष अपने घुटने टेके रहते हैं। इसी प्रकार शोषक समाज तभी तक अपनी विशिष्ट सुख–सुविधाओं को सुरक्षित रख सकता है, जब तक की वह सामान्य जन को उनके अधिकार तथा सत्याचरण के विरुद्ध अंधकार में रखे रहता है।"[7]

फुलवा चाहती तो अपने अपमानकर्ता को दरवाजे पर ही पहचानने से इंकार कर देती। किसी भी कार्यवाही से निरादर कर सकती थी। लेकिन वह ऐसा कुछ नहीं करती बल्कि रामेश्वर का आतिथ्यभाव से सत्कार करती है। घर का कोना–कोना प्रफुल्लित होकर दिखती फिरती है। वह सोंचती है की जब रामेश्वर गाँव जाएंगे तो साथ में तमाम चीजें दे देगी। जात्यभिमान से लबरेज रामेश्वर को फुलवा की शानो–शौकत रास नहीं आ रही थी। फुलवा की नौकरानी राजपूत है ये सुनकर शर्म, ग्लानि में डूब जाता है। वह फुलवा का दिया दाढ़ का दर्द बताकर खाने से भी इंकार कर देता। "कॉफी, नमकीन, बर्फी और लडडू रामेश्वर के सामने रखे थे। उसका मन बार–बार ललचा रहा था। खा–पीकर चट कर जा, क्या धरा है, जात–पांत जैसी छोटी बात में...। उसका धर्म आड़े आ गया था।"[8] रामेश्वर सदियों पुरानी परम्परा को तोड़कर पाप का भागी नहीं बनना चाहता है। इस विषय में बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर का मानना है– "जातियाँ ऐसे धार्मिक विश्वास का प्रतिफल है, जिन्हे शास्त्रीय मान्यता प्राप्त है और शास्त्र, चूँकि अलौकिक प्रतिभा–संपन्न, ईश्वरीय प्रेरणा वाले संतों एवं ऋषियों के द्वारा प्रणीत माने गये हैं, अतः उनका आदेशों की अवहेलना महापातक के समान है।"[9] गाँव में छत्तीस फाँक है। शहर में दो ही जात होती हैं, अमीर और गरीब। जिस पंडित माताप्रसाद की पत्नी फुलवा से बचकर निकलती थी की कहीं उसके छू जाने से वह भी अछूत न हो जाए वहीं अब शहर में उनका पूरा घर तथा रोजगार फुलवा का मोहताज बन गया था। 'समय सौदागर है।' परती अब फुलवा को सिरहाने बिठा खुद पाँयताने बैठकर सम्मान प्रकट करती है। वह रामेश्वर को भी सलाह देती है कि वह फुलवा की मदद से बेटे की शहर में नौकरी लगवा सकता है क्योंकि फुलवा के बेटे–बहु दोनो बड़े अफसर हैं।

फुलवा की भव्यता से सुलग रहा रामेश्वर कहता है– "दादी, फुलवा सोने की हो जाए, रहेगी तो उसी जात की। मैंने तो उसके घर का पानी तक नहीं पिया। धर्म भ्रष्ट होने से मर जाना अच्छा समझता है, रामेश्वर सिंह।" पंडिताइन ने उसे डपटा– "तू तो कुएं का मेढ़क ही रहा रमेसरिया। अब तो पद और पैसे का जमाना है, जात–पांत का नहीं।"[10] जात्याभिमानी रामेश्वर सिंह सोंचता है ये बात किसी और ने कही होती तो उसके कंठ में अंगूठा रख देता। महाकवि तुलसीदास जी कहते हैं– 'पूजहि विप्र सकल गुण हीना। शूद्र न पूजहु वेद प्रवीणा।।' जात्याभिमानी रामेश्वर की जात का अभिमान तब जाता रहा जब उसे एक रात अछूतों वाली नारकीय जीवन भोगने का समय देखना पड़ा। बकरी के मींगन, कुत्ते की खों–खों कर उलटी करना, उसकी बदबू से उसके नक्सोर रुँधने लगते हैं। वह यह सब सहन नहीं कर पाता। 'पौने बारह बजे थे। अपना बैग लेकर वह बहार निकल आया था। (पंडिताइन के घर से)... उसके कदम अनायास ही फुलवा की कोठी की ओर बढ़ने लगे थे।'[11] जिस त्रासदपूर्ण जिंदगी को समुदाय का अधिकांश हिस्सा हर रोज जीता है, उसे रामेश्वर घंटा भर भी नहीं झेल पाता। तब वह विवश हो जाता है उस स्थिति से निकल भागने को। लेखक इस लोकोक्ति को चरितार्थ करते हुए दिखते है–'जाकी पैर न फटी बिवाई, सो का जानै पीर पराई।'रामेश्वर के बढ़ते हुए कदम सिर्फ फुलवा के घर ही नहीं जाते अपितु उन तमाम कुरीतियों, परम्पराओं के विखंडन की ओर भी बढ़ते हैं जिसने मनुष्य–मनुष्य के बीच खाई बना रखी थी। वह उस धर्म का भी तिरस्कारकरता है जिसने उसके सम्पूर्ण चेतना पर कब्जा कर रखा था। फुलवा कहानी में लेखक ने सामंती मानसिकता के विसर्जन को रेखांकित करते हुए दिखाते हैं। फुलवा के माध्यम से कथाकार ने जनजागृति के नये आयामों को ही नहीं दिखाते बल्कि लोकतंत्रात्मक प्रणाली को भी पुष्ट करते हुए दिखते हैं। संत शिरोमणि गुरु रविदास का दोहा ध्यातव्य है–'जाति जाति में जाति है, जो केतन के पात, रैदास मानुष न जुड़ सके, जब तक जाति न जात।' रत्नकुमार सांभरिया की अन्य कहानी 'डंक' में वर्णित वाक्य– 'मनु मर गए। मनु की मार मर गई। मनुस्मृति की कब्र पर संविधान उग गया।[12] ऐसा माना जाता है कि पुराने शास्त्रों व स्मृतियों ने वर्णविभाजनकारी रेखाओं को समर्थन देते रहे हैं। समाज में समानता स्थापन के लिए इन ग्रंथों ने कभी कोई पहल नहीं की, उलटे पुख्ता करते रहें हैं। संविधान निर्माण के बाद काफी हद तक ऐसी चीजें बेअसर हुई हैं। संविधान के तहत भारत का हर नागरिक समान है तथा उसके अधिकार व कर्तव्य भी समान है। गाँवों में शिक्षा के आभाव में जनजागृति नहीं है, जिसके चलते स्थितियां यथावत रहती हैं। डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने आदर्श समाज के विषय में कहते हैं– "एक ऐसा समाज हो जो आजादी, बराबरी और भाईचारे पर आधारित हो। मैं किसी अन्य की कल्पना नहीं कर सकता। एक आदर्श समाज गतिशील होना चाहिए। यह ऐसे साधनों से पूर्ण होना चाहिए, ताकि एक भाग में होने वाला परिवर्तन दूसरे भाग में पहुँचाया जा सके। एक आदर्श

समाज में तमाम ऐसे सुविधाएँ होनी चाहिए, जिनका सफलतापूर्वक आदान–प्रदान हो।''[13] बाबासाहेब का मानना था की जातीयता को समाप्त करने के लिए रोटी–बेटी का सम्बन्ध कारगर उपाय है। रत्नकुमार सांभरिया कहानी 'फुलवा' में जहां रोटी का सम्बन्ध दिखाते हैं, वहीं 'विपर सूदर एक कीने' में बेटी का सम्बन्ध दिखाकर प्रगतिशील जनचेतना की सफल अभिव्यक्ति करते हुए दिखते हैं।

निष्कर्षतः रत्नकुमार सांभरिया की अन्य रचनाओं की तरह 'फुलवा' कहानी सामाजिक संरचनात्मकता की वह कथा है जो भविष्य का सुखद संकेत धारण किये हुए है। इस कहानी में लेखक ने शैक्षिक व आर्थिक स्तर की सशक्तिकरण के साथ–साथ महिला सशक्तिकरण की भी बात की है। बाबासाहेब का मानना था कि गाँवों में असमानता व शोषण के चलते आम जनों (वंचित) को शहरों की तरफ रुख करना चाहिए, क्योंकि शहर में लोगों की पहचान जात से न होकर आर्थिक स्तर पर या लोगों के कार्यों के आधार पर होते हैं। शहरों में सामंतीय व्यवस्था नहीं होती। गाँव में टहलुवई करते हुए फुलवा के मन में जो अंकुरण हुआ था, वह शहर जाकर विशाल वृक्ष का आकार ले लेता है। तत्पश्चात वही वृक्ष अन्य सभी के लिए छायादायक साबित होता है। क्योंकि एक हरा–भरा पेड़ कभी जाति पूछकर छाया या वायु नहीं देता। वह सबके लिए समान होता है। फुलवा सृजनकर्ता थी, प्रतिशोधकर्ता नहीं। रत्नकुमार सांभरिया फुलवा कहानी में महापुरुषों के समतामूलक समाज की परिकल्पना को साकार करते हुए दिखते हैं।

संन्दर्भ–1.तिवारी , रामचंद्र, कबीर–मीमांसा, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, चतुर्थ संस्करण, 2018। **2.**सांभरिया, रत्नकुमार, दलित समाज की कहानियाँ, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, संस्करण– 2017, पृ032 | **3.**वही, पृ0–43 **4.**वही, पृ0–10 **5.**वही, पृ0–20 **6.**वही, पृ0–23 **7.**रामासामी, पेरियार ई. वी., जाति–व्यवस्था और पितृसत्ता, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, दिल्ली, चौथा संस्करण, पृ048 | **8.**सांभरिया, रत्नकुमार, दलित समाज की कहानियाँ, पृ0 24 **9.**डॉ.अम्बेडकर, जातिभेद का उच्छेद, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, चतुर्थ संकरण, 2010, पृ066 | **10.**सांभरिया, रत्नकुमार, दलित समाज की कहानियाँ, पृ0 27 **11.**वही, पृ0–28 **12.**वही, पृ0–142 **13.**डॉ अम्बेडकर, जातिभेद का उच्छेद, पृ050

41.सांभरिया की कहानियां :दलित विमर्श का विस्तार एवं नई दिशा

–अनिल कुमार
हिन्दू महाविद्यालय (डी यू), नई दिल्ली

रत्न कुमार सांभरिया की कहानियां पढ़ते वक्त एक बात तो साफ़ ज़ाहिर हो जाती है कि ये रचनाकार किसी "लकीर का फ़कीर" बनने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं बल्कि उदारवादी दृष्टि के साथ दलित विमर्श को एक व्यापक विस्तार देने की आकांक्षा लिए एक "नयी लकीर "खींचनें को प्रतिबद्ध हैं।इसीलिए लेखक अपनी तमाम दलित चेतना वाली कहानियों में तथाकतित दलित धारा से इतर नजरिया अपनाता हुआ दीख पड़ता है; जिसमें निश्चित ही दलित कहानी परम्परा का रुख मोड़ने का दम–ख़म सहज ही दर्शनीय है।सांभरिया के व्यक्तित्व को ,किसी खेमे में शामिल होना कतई स्वीकार नहीं अपितु अपने कहानी में वर्णित पात्रों की तरह ही वो अपना एक स्वतंत्र ,संघर्ष शील एवं स्वाभिमानी रुख लिए हुए "भीड़ से अलग" पहचान बनाने को कटिबद्ध है ।उनका स्पष्ट मानना है कि "दलित कहानी का उद्देश्य समाज विभाजन या नफरत फैलाना नहीं ,मनुष्य में मनुष्यता पैदा करना और रूढ़ वैचारिकता में बदलाव कर नवाचार की स्थापना है।"

जिस प्रकार प्रेमचंद का गोदान ,हिंदी साहित्य उपन्यास परम्परा में अचानक आदर्शवादिता के चोगे को छोड़, चरम यथार्थवाद की छलांग लगाता हैं ;सांभरिया ने ठीक उतना ही महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय कार्य दलित कहानियों के संदर्भ में किया है, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं ।इससे पूर्व चाहे गैर दलित कथाकार हों अथवा दलित उनके दलित पात्र गिडगिडाते ,रूहांसे ,समझौता परस्त ,थके – हारे से ,तुरंत पलायन करने वाले एवं अपनी पीड़ा का रोना रोते हुए दीख पड़ते थे लेकिन सांभरिया जी ने अपने पात्रों को जूझारू ,सदैव संघर्षरत ,पलायनवादी नहीं अपितु अपनी पीड़ा का डटकर सामना करने वाला ,भाग खड़े होने वाला नहीं बल्कि अपने स्वाभिमान पर चोट का यथासमय प्रतिशोध लेने वाला आदि ऐसी चारित्रिक विशेषताओं से नवाज़ा है कि सहसा यह कहने का मन करता है कि यह प्रयास दलित कथा साहित्य परम्परा के संदर्भ में निश्चित ही "प्रेमचंदीय छलांग" हैं ;उससे कम कुछ भी नहीं।

ध्यान रहे कि यह परिवर्तन आकस्मिक नहीं है और ना ही अनजाने ही घट गया है बल्कि इसके पीछे लेखक की स्वयं की निर्धारित एवं सोची–समझी मज़बूत दृष्टि काम कर रही है ।कहना न होगा लेकिन इस सार्थक दृष्टि को साहित्यिक धरती पर आरोपित करने में इस कथाकार की सफलता बेशक अभूतपूर्व

एवं उल्लेखनीय है ।इस क्रम में उनके मन में कोई संशय अथवा उलझाव नहीं है बल्कि वो तो खुद दो टूक कहते हुए चलते हैं कि "दलितों की पीडाओं का पहाड़ खड़ा कर देना दलित कहानी नहीं है ....दलित कहानी से अभिप्राय "एक ऐसी अनूठी रचना से है ,जो दलित में नए जीवन का संचार करती हो ।कथाकार दलित हो या गैर दलित ....जिस कहानी के पात्र रूहांसे ,गिडगिडाते से ,समझौतापरस्त,पलायनवादी ,हारकर बैठने वाले तथा यथास्तिथि को प्रारब्ध मानने वाले से हों ,उनसे दलित कहानी वैभव नहीं पाती।" यही कारण है कि सांभरिया के कहानियों का कोई भी पात्र दब्बू अथवा डरे सहमे व्यक्तित्व को लिए अपने अस्तित्व एवं गरिमा के लिए गिडगिडाता हुआ खोजना लगभग असंभव है।

दलित विमर्श का नाम लेते ही सहसा ही दिमाग में उन तमाम दलित चिंतक, साहित्यकारों की बात तैरने लगती है जिनका मानना रहा है कि दलितों के "भोगे हुए यथार्थ" को हुबहू कहने की कला तो मूलतः दलित रचनाकार के पास ही संभव है;गैर दलित के पास कतई नहीं। लेकिन सांभरिया जी अपने व्यक्तित्व के निरालेपन की अनूठी छाप छोड़ते हुए यहाँ भी अलगाते हुए कहते हैं कि "दलित्त्व की फोटोग्राफी यथार्थ नहीं बल्कि साहित्य का ध्येय दलित चेतना,उसकी इज्जत ,आबरू और पुनर्वास होना चाहिए" फिर चाहे इसे दलित कथाकार लिखे या कोई गैर दलित कथाकर अपनी रचना में उतारे, उसका अधिक महत्व नहीं ।साफ़ है कि कथाकार के पास कहने की एक नवीन दृष्टि है ,कला है और भाषा का तो कहना ही क्या ।बिना आंबेडकर का नाम लिए और दलित– दलित चिलाये कहानीकार वह सब कुछ कह जाता है जिसकी जरुरत दलितों के स्वाभिमान ,अस्मिता एवं संघर्ष की प्रतिस्थापना हेतु आवश्यक है और इसी तत्व का नामकरण वो "दलित चेतना" के रूप में करते हैं।उनका साफ़ मानना है कि "सवर्ण समाज में जन्मा रचनाकार भी दलित कहानी लिख सकता है मगर जिस कहानी के पात्र रूहांसे ,गिडगिडाते से समझौता परस्त ,पलायनवादी से होते हैं वह कहानी दलित कहानी की श्रेणी में न आकर ब्राह्मणवादी ,सामंतवादी या फिर पूंजीवादी धारा की कहानी होगी ।चाहे उसे दलित लेखक ने लिखा हो या गैर दलित लेखक नें ।"

सांभरिया जी पात्रों को तो "कहानी की साँसें" कहते है।दलित चरित्र की पहचान के दो आयाम (जाति और पैसा)मानते हुए उनका सोचना है कि "दलित कहानी का पात्र जाति से चाहे छोटा हो लेकिन उसकी प्रवृति पीपल के बीज जैसी होनी चाहिए जो पत्थर को फाड़कर कहीं भी उग जाता है।" लेकिन सभी पात्रों में उनके स्त्री पात्र विशेष आकर्षण के विषय हैं।यह अक्सर कहा जाता है कि स्त्री दोगुना दलित है और जबकि स्वयं दलित स्त्री की बात की जाए तो "डेमोक्रेटिक दलित पैट्रियार्की" का हवाला देकर कांचा इलैया उस पर जाति,लिंग और श्रम की "तिहरी मार" मानते हैं।फिर भी लेखक के यहाँ के दलित स्त्री पात्र दब्बू,डरे,सहमें,दयनीय एवं समझौतापरस्त नहीं है बल्कि चाहे जाति व्यवस्था हो या पुरुषवादी सामंती संरचना,हर समय–परिस्तिथि में संघर्ष करते हुए एवं सीधे टकराते नजर आते हैं।फुलवा की फूलवती ,मांडी की कुमुद ,चपड़ासन की मीता और आखेट की रेवती सब अपने–अपने छोर पर संघर्ष से दो–दो हाथ करते नज़र आते है ;कहीं भी पलायन और डर की भावना कतई परिलक्षित नहीं।

लेखक की विचारधारा में आर्थिक स्तिथि के समक्ष ,जाति व्यवस्था रिरियाती नज़र आती है ।इस संदर्भ में उनकी सोच "मार्क्सवादी दृष्टि" के काफी कुछ नज़दीक से गुजरती प्रतीत होती है।इसीलिए तो लेखक पूरी स्पष्टता से कहता हुआ चलता है "पद और पैसे के सामने जात जूती है।"इस क्रम में लेखक की पहली कहानी "फुलवा" का उल्लेख महत्वपूर्ण है।गाँव में फुलवा नामक एक दलित स्त्री है। उसका पति गाँव के जमींदार के घर टहलुआ होता है लेकिन उसकी अचानक मौत हो जाने से टहलुआ की जिम्मेवारी पूरी तरह फुलवा पर आ जाती है। तमाम कठिनाइयों के बावजूद फुलवा पीछे नहीं हटती है और संघर्ष करती है। और तो और, इन सबके बीच वह अपने बेटे राधामोहन की पढाई लिखाई बदस्तूर जारी रखती है।दरअसल फुलवा का मनोविज्ञान मूलतः डॉ आंबेडकर के "शिक्षित बनों" वाले मंत्र से निर्मित है। उसकी दृष्टि वर्तमान की कठिनाइयों एवं संकट में नहीं उलझती है अपितु वह लगातार एक आशा आकांक्षा लिए राधामोहन के भविष्य पर टकटकी लगाये है और यही कारण रहा कि वह तमाम चीजों से अकेले जूझने का निर्णय करती है किन्तु किसी भी कीमत पर इकलौते बेटे राधामोहन की पढाई लिखाई बंद नहीं करवाती है ।आख़िरकार उसकी भविष्य का स्वप्न वर्तमान बनता है ;राधामोहन एस पी बन जाता है और आज शहर में उनकी एक बड़ी सी कोठी है ।फुलवा भी गाँव से आकर अपने बेटे के साथ इसी कोठी में रहने लगी है।

यहाँ से कहानी एक जबरदस्त मोड़ लेती है। गाँव का जमींदार रामेश्वर अपने बेटे की नौकरी के लिए परेशान है। एक दिन वह शहर आने का निर्णय करता है ताकि शहर में रह रहे पंडित माताप्रसाद से अपने बेटे की नौकरी का प्रबंध करा सके। गौरतलब है कि पंडित जी का घर भी फुलवा की कोठी के पास ही है ।यही कारण रहा जिससे रामेश्वर को पंडिंत जी के घर का

पता पूछने के क्रम में आखिर फुलवा के घर पहुंचा दिया जाता है ।ध्यातव्य रहे ,यह वही जमींदार है जिसके यहाँ फुलवा किसी ज़माने में टहलुआ हुआ करती थी।इसीलिए फुलवा उसका शानदार स्वागत करती है और अपने पूरे घर–कोठी की सैर बड़े चाव से करवाती है। यहाँ कहानी में एक पेंच है।दरअसल यहाँ रामेश्वर के जात्याभिमान और फुलवा के पद और पैसे से अर्जित स्वाभिमान के मध्य जबरदस्त टकराहट है ।चूँकि लेखक की भाषा बहुत ही मुहावरेदार ,चुस्त एवं परिपक्व है खासतौर पर मनोविज्ञान को पढनें में ,जिससे यह टकराहट और भी मार्मिक बन पड़ी है। फुलवा इस तरीके से अपना घर दिखा रही होती है जैसे बीते दिनों के संघर्ष और जाति आधारित शोषण का पाई–पाई का हिसाब अपने स्वाभिमान के वर्तमान पलों के आनंद से ले सके।रामेश्वर फुलवा के ठाठ–बाट ,शानो शौकत से पल प्रतिपल कूढ़ रहा होता है और इसीलिए वह जल्दी से पंडित जी के घर जाना चाहता है।जो औरत कभी उसकी नौकर रही हो उसका ऐशो आराम भला कैसे न खटकता रामेश्वर की आँखों में ? लेकिन फुलवा तो फुलवा है, वह गद्दों से लेकर कूलर तक एक –एक चीज़ रामेश्वर को दिखा देना चाहती है और वो भी पूरी डिटेल के साथ।

गौरतलब है कि कहीं भी फुलवा के मन में रामेश्वर के प्रति द्वेष अथवा बदले की भावना कतई नहीं दिखलाई पड़ती है ।वह हर बार रामेश्वर को "जी" कहकर ही पुकारती है।लेखक चाहता तो सहज ही ऐसा दिखा सकता था ।लेकिन वह ऐसा नहीं करता है। शायद इसके पीछे भी लेखक की व्यापक दूरदृष्टि काम कर रही है। एक और तो वह दिखाना चाह रहा है कि पद और पैसे से केवल शोहरत और स्वाभिमान ही नहीं आता बल्कि उतनी ही मात्रा में बडप्पन का भाव भी आता है ;न ही कम और न ही ज्यादा ।दूसरा शायद लेखक यहाँ भी अपने आप को तथाकथित दलितवादी दृष्टिकोण से अलगाना चाहता है अर्थात उसके यहाँ आर्थिक स्तिथि मजबूत होने पर "जैसे को तैसा" भाव नहीं है बल्कि लेखक यहाँ पुनः समन्वय का रास्ता पकड़ता है ।मानो लेखक को पता हो कि आखिर रहना तो एक ही समाज में है ।इसलिए पूरानी सामाजिक टूटन और अलगाव का समाधान एक और अलगाव या टूटन कतई नहीं हो सकता बल्कि समन्वय और परस्पर सम्मान ,बराबरी का भाव ही एकमात्र रास्ता है जो समाज को फिर से जोड़ सकता है।इसीलिए राधामोहन की गाड़ी आ जाने के बाद भी फुलवा रामेश्वर को पंडित जी के घर तक छोड़ने जाती है।वह चाहती तो दरवाजे से ही रामेश्वर को टाटा– बाय बोल अपने बेटे को तरजीह दे सकती थी ।लेकिन यहाँ लेखक का हस्तक्षेप पूरी तरह सोचा समझा हुआ है ।इसीलिए वह ऐसा नहीं होने देता है और कहानी को एक नवीन मोड़ देता है।शायद उसकी यह दर्शाने की भी चाहत हो कि गैरत के दिनों में रामेश्वर के यहाँ काम–धंधे ने ही उनके जीवन की चक्की चलाये रखी थी। फुलवा उन्ही दिनों और अपने पेशे का क़र्ज़ अदा कर रही हो जैसे।हालाँकि वह किसी अहसान के तले दबी हो, ऐसा नही था लेकिन आतिथ्य भाव एवं नेकी उसके लिए सर्वोपरि थे ।इस पूरे प्रसंग में लेखक फुलवा को एक इंच झुकाकर भी उसके कद को दो इंच बढ़ा देता है क्योंकि वह बड़ी चतुराई से दिखा पाने में सफल रहता है कि शिक्षित अर्जित स्वाभिमान अपने साथ दुसरे की इज्जत मान–सम्मान का भी ख्याल रखने की हिम्मत लिए हुए रहता है जबकि जातीय अभिमान रूढ़ है जो घृणा ,द्वेष आदि भावों से निर्मित है ।उसकी आँखे और दर्शन दोनों छोटे होते है। ऐसे में न तो वह वर्तमान को सीधी निगाह से देख पाता और ना ही उसकी भविष्य की नज़र दूर तक देख पाती है।यहाँ एक दलित स्त्री के बडप्पन की, जमींदार के जात्याभिमान के बौनेपन पर जीत है ;दलित की ब्राह्मण पर नहीं ,यह अवश्य ध्यान रहे ।

पंडितजी के घर पहुँचने पर रामेश्वर की क्रुद्ध हुई जातीय भावना सहज अभिव्यक्ति पाती है और वह फूट पडती है "फुलवा चाहे सोने की हो जाए ।रहेगी उसी जात की ।मैंने तो उसके घर का पानी भी नहीं पीया।धर्म भ्रष्ट हो जाने से मर जाना बेहतर समझता है ,रामेश्वर सिंह।"यहाँ स्पष्ट है कि आखिर भारतीय जाति व्यवस्था कितनी कठोर ,रूढ़ और परिवर्तन विरोधी है।कारण है इसका धर्म से अविच्छिन जुड़ाव ।इसीलिए रामेश्वर के लिए जात के सामने पद और पैसा आज भी पांव की जूती से ज्यादा और कुछ भी नहीं ।यहाँ प्रतिस्पर्द्धा है पद,पैसे और जात के मध्य।लेकिन अगले ही पल पंडिताईन का जवाब स्पष्ट कर देता है कि लेखक की दृष्टि में पद और पैसा ही बड़ा है। पंडिताईन कहती है "तू तो कुँए का मेंढक ही रहा रामेसरिया। अब तो पद और पैसे का जमाना है ,जात पात का नहीं।"यहाँ लेखक केवल दलित और सवर्ण ही नही बल्कि ग्रामीण सवर्ण और शहरी सवर्ण के मध्य भी एक भेद दिखाना चाहता है। शहर का सवर्ण गाँव के सवर्ण के जितना दकियानूसी नहीं रहा है। वह पद और पैसे की पावर और बदलते शक्ति संतुलन को भली भांति समझ रहा है और उसी के अनुरूप अपने आप में अपेक्षित बदलाव लाने को भी तैयार है लेकिन गाँव के सवर्ण में आज भी जात्याभिमान से ऊपर कोई चीज़ नहीं तभी तो रामेश्वर इस हेतु मरना भी उचित समझता है।यहाँ भी तथाकथित दलित विमर्श से लेखक खुद को बिना संकोच किए अलगाता है ।वह दलित की स्तिथि मनोस्तिथि में पद ,पैसे से आये अंतर को स्पष्ट करता है तो वहीँ इससे

ब्राह्मणवादी व्यवस्था में आई उल्लेखनीय लोच को भी प्रदर्शित करता है।सभी ब्राह्मणों को एक ही थाली का चट्टा – बट्टा नही मानकर ब्राह्मण और ब्राह्मणवाद में अंतर को रेखांकित करता है।साथ ही ग्रामीण परिवेश पर शहरी नजरिये की उदारवादी दृष्टि का कुठाराघात करता है।रामेश्वर को अपने बेटे दीप सिंह की नौकरी के लिए फुलवा के पैर पकड़ने तक की बात कहना एवं फुलवा को पायंती से सिरहाने बैठाने का प्रसंग पंडिताईन की "शहरी उदार दृष्टि" का ही परिचायक है। ठीक इसी तेवर के साथ उन्होंने अपनी एक और कहानी "गूंज"में भी ब्राह्मण और ब्राह्मणवाद में मौलिक अंतर को रेखांकित करने का सफल प्रयास किया है जिसमें मालू एवं पार्वती के मध्य सगी माँ–बेटे सरीखा सम्बन्ध दिखाकर उस तथाकथित दलित विमर्श पर सवाल खड़ा किया है जो हरेक ब्राह्मण मात्र को शोषक मानकर चलता है।जबकि गूंज स्पष्ट करती है कि हरेक ब्राह्मण शोषणकारी व्यवस्था का पोषक हो यह तो जरुरी नहीं ,जरुरत है तो हमें अपनी नजर को और व्यापक करने की। केवल "फुलवा" कहानी की बात नहीं बल्कि लेखक की हर कहानी का अंत बहुत ही मार्मिक और क्रांतिकारी दीख पड़ता है।फुलवा की ही बात की जाए तो जिस रामेश्वर के जात्याभिमान को फुलवा के घर पानी पीना तक स्वीकार्य नहीं था ,पंडिताईन के गैरेज के बकरी के मिंगन और पेशाब तथा कुत्ते की खांसी से नकसीर रुंध जाने से परेशान होकर "उसके कदम अनायास ही फुलवा की कोठी की और बढ़ने" लगते हैं।यहाँ लेखकीय दृष्टि का हस्तक्षेप साफ़ है। वह अंततः जात्याभिमान का ऐसे मर्दन करता है कि कोई चीख पुकार नहीं निकलती लेकिन जातीय भावना धड़ाम से नीचे गिरती है और पद और पैसे की जूती बन जाने के लिए बिना अँधेरे–बारिश का ख्याल किये, आधी रात सहर्ष निकल पडती है। यहाँ नवीन आर्थिक संरचना के आगे रुढ़िवादी सामाजिक संरचना पस्त नज़र आती है और मार्क्स का वह विचार प्रासंगिक हो उठता है कि तमाम सामाजिक राजनीतिक पहियों की धुरी एक ही है–और वो है आर्थिक ढांचा।

यहाँ एक बात काबिले गौर है कि कहानियों के अंत के मामले में लेखक वर्णनात्मक नही बल्कि सांकेतिक प्रविधि अपनाता है।बस वह एक लाइन में ही छोटे से संकेत के साथ सम्पूर्ण बदलाव की अभिव्यक्ति करके अपनी कलम को आराम का आदेश दे देता है।उसका उद्देश्य जात्याभिमान को तोडना है बस ,किसी को ज़लील करना बिल्कुल नहीं ।इसीलिए रामेश्वर के कदमों में पड़ी जाति की बेड़ियों को तोड़कर उनको "बढ़ाव" का इशारा करते हुए एक सकारात्मक अर्थ प्रदान करता है।अर्थात् लेखक की समझ बहुत ही परिपक्व जान पडती है वह अपने पात्रों को लेकर बहुत संवेदनशील है ।वह व्यक्तिगत रूप से किसी को भी किसी के समक्ष हराना–गिराना नहीं चाहता है बल्कि उसका असल उद्देश्य तो सामाजिक संरचना की रूढ़ कुरीतियों को गिराकर नए उदारवादी सामाजिक–आर्थिक मूल्यों की प्रतिस्थापना मात्र है। दलित,वंचित, शोषित, पीड़ितों के आईने से देखा जाए तो हिन्दू धर्म में गजब की असमान व्यवस्था है। जब–तब आपद स्तिथि आन पड़ती है तो धर्म को बचाने का सारा बीड़ा वंचितों–पिछड़ों को उठाना पड़ता है और धर्मरक्षार्थ जान भी चले जाए तो भी कुछ नहीं। लेकिन जब बात धार्मिक पद–प्रतिष्ठा और अधिकार –सम्मान की आये तो सारी मलाई केवल उच्च वर्ग गटक जाता हैं और दलितों को तो मंदिर और मूर्ति छूने तक से वंचित कर दिया जाता है।ऐसी ही कहानी है "मुक्ति" जो धर्म के नाम पर दलितों की भावनाओं के शोषण को बड़ी मार्मिकता से रेखांकित करती है।गाँव में एक रथ यात्रा निकल रही है और रथ पर मंदिर का महंत विराजमान है।इसी बीच रथ के रास्ते में एक आवारा ,बिगडैल सांड आ खड़ा होता है।महंत बुरी तरह डर जाता है ।सारा गांव खौफ में आ जाता है ।सब तमाशबीन बन जाते हैं कोई सामने आकर सांड को भगाने की हिम्मत नहीं कर पाता ।अंत में घबराकर महंत गाँव के दलित नानकराम मेहतर को धर्म की दुहाई देते हुए पुकार लगाता है....."नानकराम धर्म की मर्यादाएं है ।महाराज की सवारी पीछे नही मुडती है ।रथ छोड़ नहीं सकता हूँ ,मैं ।सांड भगाओ ।राह बनाओ।धर्म बचाओ।"इतना उकसाते ही नानकराम तुरंत भावनाओं के फेरे में आकर अपने पहलवान से बेटे चंदू को इशारा करता है। चंदू सांड से दो–दो हाथ करने लगता है लेकिन इसी बीच सांड उसे "घूण " मारते हुए हवा में उछालकर पटक देता है। आघात इतना तेज़ था कि चंदू गंभीर रूप से घायल होकर आखिर में दम तोड़ देता है और उसकी मौके पर ही मौत हो जाती है। यहाँ गजब का विरोधाभास है एक तरफ लेखक वंचित दलित तबके की मासूमियत, भोलेपन एवं धर्म के नाम पर छले जाने को दिखाना चाहता है तो वहीँ दूसरी और इनकी वीरता, बलिदान की भावना के समक्ष तथाकथित धर्म के ठेकेदारों एवं मलाई खोर वर्ग के वीरता ,साहस पर सवाल खड़ा कर उनके झूठ का सरेआम पर्दाफाश भी करता है।

नानकराम इतना धर्मान्ध व्यक्ति है कि महंत के कहने पर अपने बेटे को खूंखार सांड के आगे डाल देता है और मन ही मन सोचता है कि "उसका चंदू तो पूरे गाँव में शूर निकला। उसने खुद के जान की परवाह न कर धर्म की रक्षा की है। बेटा चंदू मर गया,शहीद कहलायेगा ।मंदिर में मूर्ति रखवा दूंगा,उसकी।

बच गया, गाँव में तूती बोलेगी, अपनी।" यहाँ तक सब ठीक था लेकिन अब कहानी में गजब का वक्राकर मोड़ आता है। जब सवारी मंदिर तक पहुँच जाती है तो भावनाओं में झूलता हुआ नानकराम मूर्ति उतारने के लिए हाथ लगाने के लिए आगे बढ़ता है।लेकिन जो महंत थोड़ी देर पहले सांड से रक्षा हेतु नानकराम के समक्ष घिघियाते हुए धर्म की रक्षा की विनती कर रहा था उसकी मनोग्रंथि में गिरगिट से रंग सा बदलाव आता है और उसकी जातीय घृणा अनायास ही फूट पडती है। वह कहता है "अरे नानकिया, मेहतर है, तू। झाड़ू वाले हाथ मूर्ति नहीं छूते।" अचानक "नानकराम" से "नानकिया" और ऊपर से "झाड़ू वाले हाथों" का संबोधन पाकर नानकराम ऊपर से नीचे गुस्से एवं प्रतिशोध की अग्नि में धधक उठता है। उसकी अपने बेटे के बलिदान पर गर्व की भावना जाती रहती है और वह छला हुआ महसूस करने लगता है ।इतने बड़े धोखे का अहसास पाकर नानक की आँखों में "धर्म और जाति का गठजोड़" साफ़ नज़र आने लगता है ।इसी क्रम में वह तलवार उठाकर महंत का वध करने के लिए दौड़ता है।इस बिंदु पर लेखक वंचित वर्ग के भोलेपन का फायदा उठाकर उसकी धार्मिक भावनाओं के साथ खिलवाड़ का पर्दा फाश कर अंततः उसमें स्वाभिमान जगाकर उसेशोषणकारी व्यवस्था से "मुक्त" कराने का सार्थक प्रयास करते है जो अंततोगत्वा कहानी के नामकरण को ही चरितार्थ करता है। इस कहानी के आदि से अंत तक लेखक अपनी उदारवादी दृष्टि को मुट्ठी में भींचकर रखते है और स्वाभिमान के साथ सीधे प्रतिशोध का यथार्थपरक समाधान ढूँढते हैं।गौरतलब है कि अन्य दलित रचनाकारों के यहाँ पीड़ा और उत्पीडन का चित्रण तो बहुत है लेकिन ऐसा सीधा टकराव एवं प्रतिशोध की भावना नज़र नहीं आती लेकिन साम्भरिया के यहाँ यह खासतौर पर दर्शनीय है और यही उनकी उपलब्धि भी है।

"आखेट" कहानी भी ठीक–ठीक ऐसे ही तीव्र प्रतिशोध की कहानी है। सोमा और रेवती एक ग्रामीण किसान–मजदूर दम्पति है ।आर्थिक तंगी के चलते सोमा मजदूरी करता है ।इस कहानी में नानक सिंह जमीदार द्वारा रेवती के साथ बदसलूकी किये जाने पर रेवती का खुरपी से उसकी नाक काट लेने का प्रसंग बहुत उल्लेखनीय है। लेखक के स्त्री पात्रों का यही तेवर उन्हें एकदम अलग करता है। वे बिल्कुल भी डरती दबती नहीं है बल्कि तुरंत प्रतिशोध–प्रतिकार करती है।नाक काटने का भी यहाँ एक सांकेतिक अर्थ संभव है। चूँकि जमीदार रेवती की इज्जत लूटना चाहता था अतः बदले में रेवती ने भी उसकी इज्जत (नाक)पर ही हमला किया। गौरतलब है कि उसी रात रेवती एवं सोमा शहर भाग आते हैं और एक लाला के घर से सटाकर झुग्गी बनाकर रहने लगते हैं। हालाँकि पीछे से नानक सिंह के लोग उसकी माँ को पीट–पीट कर मार डालते हैं और उसके घर–खेत पर कब्ज़ा कर लेते है। शहर में भी स्त्रियों और मुख्यतया गरीब कमेरे वर्ग की स्त्री के लिए कोई स्तिथि एकदम बदली हो ऐसा नहीं है। पास की हवेली के लाला की रेवती पर बुरी नज़र है।एक दिन वह सौ–सौ के नोटों की गड्डी झुग्गी की तरफ गिराकर रेवती को लुभाने की असफल कोशिश करता है लेकिन यहाँ पर भी रेवती का गड्डियों पर थूक कर वापस फेंक देना साफ दिखाता है कि चाहे वह गाँव से शहर आ गयी हो और स्तिथिया कितनी ही संघर्षपूर्ण हो लेकिन उसका स्वाभिमान और इज्जत की रक्षा को लेकर रवैया आज भी कायम है। तत्पश्चात क्रुद्ध होकर लाला द्वारा पिस्तौल दिखाने के क्रम में ठोकर लगने से पिस्तौल झुग्गी की तरफ गिर जाती है। यहाँ कहानी में एक और मोड़ आता है। रात में बुखार में जल रहे सोमा के लिए चाय बनाने को वह उठी तो वह पिस्तौल सोमा को दिखाती है ।पिस्तौल में एक गोली देखकर सोमा, बुखार में टूटा हुआ होने के बावजूद रेवती संग गाँव निकल पड़ता है ;नानक सिंह से बदला लेने के लिए ।यहाँ सोमा की प्रतिक्रिया काबिले गौर है।लेखक दिखाना चाहता है कि दलित अब वो दलित नहीं रहा है जो अपने पर हुए हमलों को बर्दाश्त कर चुपचाप बैठ जायगा बल्कि वह हरेक ज्यादती को याद रखता है तथा उचित समय आने पर उसका उचित प्रतिशोध लेने का सामर्थ्य भी रखता है। यही तेवर,दलित विमर्श से लेखक को एक झटके में अलगा देता है ;इनके पात्र प्रतिक्रिया दर्ज कराते हैं, बदला लेते हैं। केवल सहते नहीं रहते है।

हालाँकि पूरे दलित विमर्श के संदर्भ में साम्भरिया जी की हरेक कहानी एक युग आगे की कहानी हैं लेकिन उनमें भी "बिपर सूदर एक कीने" सबसे अधिक आगे की कहानी ठहरती है।गाँव की चमार बस्ती के लोग हाथ में गंगाजली उठाकर अपना पैतृक पेशा त्यागने का प्रण करते है, नहीं करता है तो केवल श्यामू।इस पर श्यामू की सारे समाज में भयंकर थू–थू होती है।वह चार साल की मोहलत मागता है ताकि अपने बेटे दीदार की पढाई पूरी करवा सके।आगे जाकर दीदार का राज्य पुलिस सेवा में चयन हो जाने पर तो श्यामू के प्रति सारे गाँव की बयार ही बदल जाती है ।गाँव के पुजारी की साली का भी दीदार के बैच में चयन हुआ था ।अंत में पुजारी परिवार जाति पांति छोड़ दीदार के साथ अपनी ब्राह्मण लडकी का रिश्ता तय कर देता है।यही कहानी का चरम बिंदु है और यही कहानी के नामकरण का कारण भी – बिपर (ब्राह्मण) सूदर (शुद्र) को एक कीने (एक करना)। लेकिन यहीं एक

आलोचना का पक्ष भी उभरता है जो लेखकीय दृष्टि पर अनेक सवाल खड़े करता है। बेशक पद, पैसे से प्रतिष्ठा एवं सामाजिक स्तर में बदलाव आया है लेकिन इतना भी नहीं की एक गाँव का ब्राह्मण अपने ही गाँव के चमड़े का काम करने वाले व्यक्ति के घर रोटी–बेटी का सम्बन्ध स्थापित कर ले और वो भी खुशी–खुशी । हाँ,उच्च वर्ग का कोई अत्यंत प्रगतिशील परिवार होता तो यह बात गले उतरना संभव थी ।बहरहाल ,फिर भी इसे लेखक की अत्यंत आशावादी–आदर्शवादी दृष्टि कहा जा सकता है और उनका यही दृष्टिकोण उनकी कहानियों को समय से आगे की कतार में खड़ा करता है।

अगर लेखकीय दृष्टि दर्शन की बात की जाए तो कहना न होगा लेकिन सांभरिया जी की "दलित" शब्द की परिभाषा काफी व्यापक है और यह कहीं न कहीं "दलित पैंथर" की परिभाषा से नजदीक दिखाई देती है क्योंकि ये भी दलित पैंथर की तरह 'केवल जाति से दलित को ही, अपनी कहानी का पात्र नही मानते है बल्कि पैसे से दलित व्यक्ति को भी इस हेतु अधिकृत मानते हैं; जिनका धरती बिछावन है और आकाश ओढ़न; चाहे उसकी जाति कुछ भी हो'।लेकिन "दलित साहित्य का समाज शास्त्र "नामक किताब में प्रो. विवेक कुमार का साफ़ कहना है कि 'ऐसे में दलित और सर्वहारा के मध्य अंतर धूमिल हो जाता है ।दरअसल सर्वहारा एवं दलित की मूल चेतना एवं आत्म के निर्माण में भिन्न–भिन्न कारकों की भूमिका होने के चलते मूलभूत अंतर है।सर्वहारा चेतना जहाँ आर्थिक एवं राजनीतिक सत्ता की वंचना से निर्मित होती है वहीं दलितों की भांति सामाजिक सत्ता की वंचना(अपमान ,तिरस्कार ,बहिष्कार एवं निष्कासन) का कारक वहाँ अनुपस्तिथ रहता है ।इसी प्रकार अनुसूचित जनजाति की चेतना तो एकदम स्वायत है क्योंकि वो कभी भी हिन्दू सामाजिक व्यवस्था की अभिन्न अंग नहीं रही है ।उनकी "जल जंगल जमीन" आधारित स्वतंत्र सामाजिक आर्थिक सांस्कृतिक प्रणाली है।' ध्यान रहे कि सांभरिया जी ने केवल दलित चेतना की ही कहानियां लिखी हों ऐसा बिलकुल नहीं है ।उनकी काव्य संवेदना का फलक काफी व्यापक है। "मियांजान की मुर्गी", "बकरी के दो बच्चे", एवं "काल" आदि कहानियों में उनकी संवेदना तो पशु–पक्षियों तक भी पहुंचती है। इसमें "काल' सबसे ज्यादा पशु संवेदना की मार्मिक कहानी है जिसमें मनुष्य और पशु में किसकी ज्यादा दुर्गति हो रही है; पाठक सोचता ही रह जाता है।

तमाम कहानियों में जो काबिले गौर करने योग्य तत्व है, तो वो है–सांभरिया जी की भाषा ।छोटे मगर चुस्त वाक्य रचना,मुहावरेदार किन्तु सहज मर्मस्पर्शी भाषा उनकी मूल पहचान है। उदाहरण देखिए–"न बाप। न मां।न बहन। न भाई। बीड़ का ढूंढ। कुदरत की काट।छोटी पांत।छोटी जात।न आत्मसोच ।न आत्मविश्वास.....पेट में भूख.. घर में सूख (भैंस)।" वो शब्द को जीवंत मानते हुए शब्द को ही साहित्यकार की पहचान मानते है। इसीलिए शब्दानुशासन,भाषा–शालीनता एवं वाक्य रचना को लेकर वो अतिरिक्त सजग हैं। हालाँकि वो बेझिझक स्वीकार करते हैं की "दलित सदियों से सताया दबाया गया है अतः उसमें क्रोध या आक्रोश होना पारिवेशिक हेतु है। लेकिन लेखक को उसके क्रोध एवं आक्रोश को संयम की नाव से खेना है।" हरियाणा की भूमि पर जन्म एवं पिछले चार दशक से अधिक राजस्थान में निवास के चलते कहानियों में सम्बन्धित क्षेत्र के मुहावरे ,लोकोक्ति का प्रयोग उनकी भाषा में जान डालने का काम करता है लेकिन इस "आंचलिकता' के नाम पर उनको किसी भी प्रकार की अश्लीलता एवं फूहड़ता से साफ परहेज़ है। शब्दों के स्तर पर बिरचा(गुस्से में छिड़ा हुआ), कस्सी (फावड़ा), धूण(पशु द्वारा अपने सींगों का प्रहार), गुमड़ी(फुंसी), मांडी(अमावस्या के दिन पहली सिंकी रोटी जिसे गाय को खिलते हैं) एवं मुहावरे, लोकोक्ति के स्तर पर 'ताता दूध बिलाई देखना' एवं 'आधा फूस छान' आदि के प्रयोग में स्थानीयता की साफ़ झलक है।इसी तरह वे दलित कहानी में व्यंग्यात्मकता की जगह संजीदगी एवं सम्प्रेषण के तत्व की वकालत करते हैं।

दूसरा आकर्षण का विषय है "पात्रों का नाम निर्धारण"।गैर दलित रचनाकार ही नहीं बल्कि दलित रचनाकारों के यहाँ भी "कालू","घीसू", "सुगला","घसीटा", "भुल्लन", "फेंकुराम" ,"लटूरी" आदि बड़े अजीब–अजीब मांसाहारी पशु पक्षियों से नाम देखने को मिलते है जिन्हें वे दलितों के प्रति लेखक की पूर्वाग्रही मानसिकता का प्रस्फुटन करार देते है।वे स्वयं अपनी कहानियों में नामों को लेकर काफी सजग मालूम पड़ते है ।उनके हरेक पात्र का नाम कोई न कोई सकारात्मक अर्थ लिए हुए है चाहे वो "फुलवा" की फूलवती हो या फिर "बिपर सुदर एक कीने" का दीदार और इसी क्रम में चंदू ,सोमा ,नानकराम आदि भी उल्लेखनीय हैं।नाम के अनुरूप ही उनके पात्र निराश–हताश नहीं होते। उनमें जिजीविषा के दर्शन होते हैं। वे तत्पर हैं, समाज में न्याय के लिए ,साफ–सुथरी जिंदगी बसर करने के लिए, पुनर्वास की चाह और स्थितियों से जूझने की कुव्वत लिए। तीसरा ,वो दलित विमर्श से उपजे "स्वानुभूति बनाम सहानुभूति" नामक सबसे बड़े विवाद को एकदम सिरे से खारिज करते है ।उनका बिना लाग लपेट कहना है कि "केवल दलित ही दलित कहानी लिख सकता है; वस्तुतः ऐसा मानना आरक्षण से प्रतिबद्ध लोगों का

मानसिक संकुचन ही कहा जा सकता है। जिस प्रकार दलित समाज में जन्मा लेखक सामान्य कहानी लिख सकता है, उसी प्रकार सवर्ण समाज में पैदा हुआ लेखक भी दलित कहानी लिख सकता है बशर्ते उस कहानी में गहरी संवेदना, दलित के प्रति दर्द और जागृति का भाव हो,जो दलित कहानी की धडकन है।" अत :उनके लिए स्वानुभूति और सहानुभूति के बरक्स गहरी संवेदना के कहीं अधिक मायने हैं।

अंतिम,किन्तु सर्वमहत्वपूर्ण आकर्षक तत्व हैं; उनका "समाधान–समाहार का अद्भुत कौशल"। गौरतलब है कि वर्तमान दौर में, तमाम विघटनकारी राजनीतिक–सामाजिक शक्तियाँ, जहाँ समाज के ताने–बाने को छिन्न–भिन्न करने को आमादा हैं; वहीँ लेखक की कलम अधिकांश "विवाद बिन्दुओं" का समाहार करके, हर विवाद के बरक्स एक "अद्वितीय समाधान" पेश कर "समन्वय का मार्ग" प्रशस्त करती हुई चलती है। इतना ही नहीं बल्कि इनकी कलम ने अनेकों जगह, दलित एवं मुख्य समाज के मध्य व्याप्त खाई को पाटने के लिए उस फावड़े का काम किया है जिसने इन द्वेषमूलक खाइयों को समन्वय की गीली ठंडी मिटटी से भरने का भागीरथी प्रयास किया है।लेखक की दूरगामी नज़र विध्वंश से अधिक "सृजन तत्व "को प्राथमिकता देती है जो कि साहित्य का असल उद्देश्य भी है।

उपरोक्त विवेचन का नितांत उपसंहार स्पष्ट है कि सांभरिया जी की कहानियां व्यापक दलित चेतना की ऐसी कहानियां है जो दलित विमर्श को नए पंख देती हुई एक ऊँची परवाज भरती हैं जहां आसपास कोई नहीं ;केवल है तो उन्मुक्त नीला गगन जहाँ दलित एवं मुख्य समाज के मध्य समन्वय की अपार नवीन सम्भवनायें फैली हुई हैं ।इनकी कहानियां मुख्य समाज का दलितों से अलगाव को बढ़ाने वाली नहीं बल्कि भावनाओं के स्तर पर जोड़ कर परस्पर दूरियों को कमतर करने का सायास प्रयास करती नज़र आती है और वो भी प्रतिबद्दता भरी आशावादी नज़र को धारण किये हुए।

संदर्भ ग्रन्थ :–(1)रणसुभे, डॉ सूर्यनारायण(संपा), वृद्ध विमर्श : रत्न कुमार साम्भरिया की चयनित कहानियां, दिल्ली, हंस प्रकाशन :1 जनवरी, 2021 (2)पाल, डॉ विजय; कुमार, डॉ.विवेक :दलित साहित्य का समाजशास्त्र, दिल्ली,श्री नटराज प्रकाशन, प्रथम संस्करण : 2014 (3)कौशल, जय : दलित संदर्भ बनाम रत्न कुमार साम्भरिया की कहानियां(आलोचना आलेख), हिंदी समय (4)साम्भरिया,रत्न कुमारः दलित समाज की कहानियां, नई दिल्ली, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स दरियागंज, प्रथम संस्करण: 2011(5)मासीवाल, भावना : दलित स्त्रीवाद की आत्मभिव्यक्तियाँ(आलेख), सेतु पत्रिका, पिट्टसबर्ग (अमेरिका) : अगस्त 2017 (6)विजय:दिशा मोड़ने का दम (आलेख),नई दिल्ली, इंडिया टुडे पत्रिका –2011 (7)साम्भरिया,रत्न कुमार, मोनोग्राफ,उदयपुर, राजस्थान साहित्य अकादमी :2011

42.रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में दलित चेतना

–रजाक शाह कादरी
शोधार्थी
राज ऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर (राजस्थान)

रत्नकुमार सांभरियाँ की कहानियाँ एक नये युग को जन्म देती हैं, जिसे आज के परिप्रेक्ष्य में 'चेतना का युग' कहा जा सकता है। उनके साहित्य सृजन का अपना अलग ही संसार है और जमीं है, जमीन जो उन्होंने खुद अपने हाथों से तैयार की है। उनके द्वारा तैयार इस जमीं में दलित समाज के खून–पसीने की गंध है। रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों के केन्द्र में दलित और वंचित समाज रहा है। दलित–कहानी के बारे में स्वयं सांभरिया जी लिखते हैं कि "दलित कहानी को ऐसा कथानक प्रस्तुत करता है, जो तिरस्कार की परम्परा को खारिज करते हुए दलित में साहस, संबल और स्वाभिमान पैदा करे, क्योंकि व्यक्ति की अस्मिता ही उसे संसार में बचाए रखती है। दलित कहानी में दलित अस्मिता के लिए संघर्ष को उजागर करना चाहिए। "[1]

रत्नकुमार सांभरिया न केवल राजस्थान के, बल्कि वे देश के उन गिने चुने साहित्यकारों में से हैं, जिन्होंने अपनी लेखनी के द्वारा दलित समाज को एक नई दिशा और चेतना प्रदान की है। उनके अनुसार दलित की बेचैनी, जज्बा, जीवतता, उनकी आशाएँ, आकाक्षाएँ आदि दलित–विमर्श के केन्द्र में मानते हैं। उनकी रचनाओं में जाति, धर्म, लिंग भेद की सीमाओं का कोई मायना नहीं है। वास्तव में उनकी कहानियाँ गरीब के दर्द को प्रकट करती है। वे अपनी कहानियों में दलित दृष्टि को विस्तृत रूप में देखते हैं, अतः उनकी कहानी के मर्म में गरीब, दलित का दर्द व वेदना ही प्रमुख हैं। रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में निम्नवर्गीय, दलित, उपेक्षित और .... वर्ग के स्त्री–पुरूष पात्र–पात्राओं की संवेदनाओं को सशक्त रूप में मुखरित किया गया है। पिछडे वर्गों की अनुसूचित जातियों, जनजातियों, मेहनतकाश मजदूर, सीमान्त किसान, रिक्शाचालक, विधवा, विकलांग तथा अन्य पिछडी जाति, वर्ग आदि के जीवन का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण है। उन वर्गों के लोगों की वेशभूषा, विश्वास, अंधविश्वास, जादू–टौने, अभावग्रस्तता, अकाल, बेरोजगारी, भुखमरी, यौन संबंध, बदलते जीवन–मूल्य, भ्रष्टाचार, राजनैतिक संदर्भों इत्यादि विविध पक्षों को उनके परिवेश में बड़े ही मार्मिक ढंग से उभारा गया है।

वस्तुतः कहानियाँ समाज में व्याप्त जटिलताओं, विद्रुपताओं से हमारा साक्षात्कार कराती हैं। इसमें आज के आम

आदमी की पीड़ा और दर्द को उठाया गया है। उनके माध्यम से दलितों में चेतना जाग्रत कर उन्हें विकास के पथ पर अग्रसर होने का संदेश अभिव्यक्त हुआ है। सामन्ती व्यवस्था के चलते दमित व दलित स्त्रियों का शोषण आरम्भ से ही होता रहा है। कभी वह बाहुबल से तो कभी धनबल से शोषित व पीड़ित होती रही हैं। लेकिन आज के इस बदलते युग में अब दलित स्त्री अपने अधिकारों के प्रति सजग और जागरूक हो गई हैं। अब उनमें अपने अधिकारों का हनन तथा शोषण, पीड़ित होने के खिलाफ प्रतिशोध के भाव जाग्रत हो गये हैं। वह अपने हर तरह के शोषण, पीडित तथा दमित कृत्य के विरूद्व सिंहनी की तरह साहस के डटकर मुकाबला करने के लिए हर वक्त तैयार रहती है। 'आखेट' कहानी में सोमा की शादी बचपन में ही हो जाती है और दो वर्ष बाद गौना किया जाता है। उसकी नववधू रेवती खूबसूरत थी। एक दिन गाँव का जमींदार नानकसिंह के खेत से सटे अपने खेत में रेवती व उसकी सास दोनों घास खोद रही थीं। जंमीदार नानकसिंह रेवती की खूबसूरती व सौंदर्य को देखकर विचलित होने लगता है और उसके रोम–रोम में वासना फूट पड़ती है। वासना का शिकार बनाने के लिए वह रेवती की सास को जानवर भगाने के लिए भेजता है। जैसे ही बुढ़िया दूर जाती है, कि नानकसिंह की पाश्विक प्रवृत्ति जाग्रत होती है और रेवती का हाथ पकड़ लेता है। "रेवती चीखी! चिल्लाई! छुड़ाने के लिए छटपटाई। नानकसिंह उसे अपनी क्रूर बाँहों में भींचता चला है। निरीह और असहाय रेवती जैसे छिपकली के मुँह में फसी तितली! नानकसिंह के आगोश में छटपटाती रेवती को देखकर पेड़ पर बैठी चिड़ियाँ जोर–जोर से चींची करने लगी थी। साँप को देखकर भी ऐसी नहीं चहचहाती होगी। द्रोपदी सबल थी। रक्षक श्रीकृष्ण थे। गरीब रेवती का यहाँ कौन, दुर्योधन से उसकी आबरू बचाएँ।" रेवती लाज गई। रेवती ने आव देखा न ताव जिस खुरपी से वह घास छील रही थी, उसी को नानकसिंह के नाक में भोंक दिया।"[2] इस प्रकार रेवती ने अदम्य, साहस और वीरता का परिचय देते हुए जमींदार नानकसिंह से अपनी इज्जत आबरू बचाने में अद्वितीय कार्य किया तथा समाज में पनप रहे हवश के पुजारी लोगों पर करारा तमाचा कशा है।

रत्नकुमार सांभरिया की बदन–दबना कहानी जातिगत अपमान एवं शोषण का यथार्थ चित्रण करती है। हलकासिंह के यहाँ दलित अमरिया पाँच हजार रूपये में पाँच बरस तक बंधुआ मजदूर रहता है। कहानी का नायक एक तेरह वर्षीय बालक पूछाराम है, जो छात्रावास में रहकर पढ़ाई करता है। उसकी बहन की शादी होने वाली है। इसलिए उसे दस हजार रूपयों की जरूरत थी। छात्रावास से आए दलित बालक पूछाराम को हलकासिंह के यहाँ पाँच साल तक बदन–दबना के रूप में कार्य करना पड़ता है। हलकासिंह बार–बार उसका अपमान करता है–"अरे पूछिया, कुत्ते की पूँछ–सा सीधा खड़ा ही रहेगा या कुछ करेगा–धरेगा भी।"[3] दलित बच्चे भी पढ़ लिखकर कुछ बनना चाहते हैं, किन्तु गरीबी, बेबसी और आर्थिक लाचारी उन्हें नरक में धकेल देती है। पूछाराम अत्यन्त दुःखी हो उठता है– "बहन का ब्याह। खुद बँधवा। उसके चेहरे से बिमूरन हटाए हटती न थी। आँखों में नमी खड़ी थी। जी उठा हुआ था, चढ़े बादल सा।"[4] हलकासिंह के लिए पूछाराम मासूम बच्चा नहीं रह जाता बल्कि वह उसके लिए सेवक था। वह उससे गुलामों की तरह अनेक काम करवाता था। हलकासिंह के तलवों की मालिश करते हुए पूछाराम ने हाथ जोड़कर बहन की शादी में जाने के लिए दो घण्टे की छुट्टी माँगी लेकिन निर्मम हलकासिंह कुछ जबाव नहीं देता। पूछाराम की आँखों से आँसू बहने लगते हैं। वह सोचता है –"अत्याचारी अंग्रेजों से भी ढोर निठुर है यह तो, उसे छात्रावास में रखा गांधी जी का चित्र याद आया जिस पर लिखा था – "करो या मरो। उसके बाद उसे डॉ. अम्बेड़कर का स्मरण हो आया – "शिक्षा शेरनी का दूध होती है।" उसके मन में क्रोधाग्नि पैदा हुई –"मन में उठे शाहीदाना क्रोध और जज्बाती क्षोभ से पूछा का अंतस् फटने लगा था। पूछाराम, जैसे हनुमान जी की पूँछ से उठती लपटें।" इस प्रकार यह स्पष्टतः कहा जा सकता है कि पूछाराम का यह साहसिक कदम सामूहिक चेतना का आहवान हैं जो दलितों की नई पीढ़ी में ऊर्जा का संचार करने का कार्य करेगा।

'बात' कहानी में ऐसी ही पारिवारिक और जातीय चेतना का संचार हुआ है। 'सुरती' पति की मृत्यु के बाद अपने बेटे को विपरीत परिस्थितियों में भी पढ़ाती है। यहाँ इज्जत व आबरू 'बात' के रूप में दिखाई देती है। समय पर ऋण न चुका पाने के कारण उसमें ऊर्जा भर देता है। धोखे से धींग रूपये चुरा लेता है। जब सुरती को पता लगता है तो वह सरेआम धींग के घर में घुसकर वीरांगना सी टूट पड़ती है। इस संदर्भ में कथाकार के द्वारा कहे गये शब्द बड़े ही रोचक लगते हैं–" चौक में पड़ी रेत पर बड़ी–बड़ी जूतियों के खोज देखकर उसकी आँखों से चिनगारियाँ चटकने लगी। भट्टी भी इतनी तेज नहीं लहकती होगी, सुरती का समूचा शरीर सुर्ख हो धधक उठा। वह आहत सिंहनी सी धींग के घर की ओर दौड़ पड़ी। उसने धींग का गेट खोला और गोली सी दनदनाती हुई उसके घर में जा घुसी थी। नाहर भी गच्चा खा जाए, बाज चूक जाए। क्रोध झागती सुरती धींग पर बिजली–सी

टूट पड़ी थी।''[6] इस प्रकार सुरती में कथाकार ने यह बताया है कि दलितों की बहु बेटियों को उठाकर, उन्हें हवस का शिकार बनाना पुराने जमाने की बात रही होगी। लेकिन अब समय के बदलाव के साथ ही दलितों में भी एक नवीन चेतना का संचार हो गया है। अब उनमें निडर होकर समाज मे पनपते ऐसे दरिन्दों के खिलाफ विरोध करने की शक्ति व सामर्थ्य है। ऐसा ही एक दलित पात्र इस कहानी में पानाराम है जो अपनी बेटी के साथ किया गया बलात्कार का बदला मुखिया के बेटे से इन शब्दों में लेता है– ''मुखिया साब इज्जत का सवाल है, यह। आपकी इज्जत सो मेरी इज्जत। आपकी लड़की मेरे लड़के साथ रात रहेगी।''[7] इस प्रकार समय परिवर्तन के साथ दलितों की सोच में बदलाव आया है।

'चपडासन' विधवाओं के यौन शोषण की एक महत्वपूर्ण कहानी है जो दलित चेतना पर बल देती है। कहानी की मुख्य पात्र मीता है। तहसीलदार धर्मपाल वासना से ग्रस्त होकर मीता का हाथ कसकर पकड़ते हुए कहता है– ''मीता तुम्हारे कारण अनिद्रां की बीमारी हो गई है मुझे।''[8] ऐसे वाक्य सुनकर मीता झटके से अपना हाथ छुड़ाकर तहसीलदार से प्रतिशोध लेने के लिए पुलिस थाने जाकर एफ.आई.आर. दर्ज करवाती है। इस तरह मीता ने आँधी, तूफानों का सामना करते हुए भी अपनी इज्जत आबरू के साथ मान–मर्यादा का जीवन जीती है और अपने जज्बे, जीवट और जिजीविषा का परिचय देती है। 'डंक' कहानी दलित जाति की एकता का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण पेश करती है। डॉ. अम्बेड़कर 'शिक्षित बनो' संगठित रहो' संघर्ष करो' का नारा कहानीकार ने इस कहानी में चरितार्थ किया है। गाँव का पुजारी सतना गाँव के एक दलित खेरा से अपनी बेटी की शादी के एिल बीस हजार रूपये उधार लेता है। लेकिन रूपये न चुकाने की कुटिलता पुजारी के मन में आती है, खेरा व उसकी पत्नी मांगी पुजारी की इस कुटिलता का मुंह तोड़ जबाव देते हैं, अन्त में दलित खेरा का दिल का दौरा पड़ने से मृत्यु हो जाती है। जब गाँव के सभी दलित एकजुट होकर पुजारी सतना के घर हमला बोल देते हैं।

'गूज' कहानी में दलित मालू अत्याचारी पर थूकता है। मालू किसी भी सूरत में शोषण नहीं होने देता है। ''दातुन करते–करते मालू का मुँह थूक से भर गया था। उसने थूक भरा मुँह पीका। पीक वहाँ खड़े कालु और ददद् दोनों के बीच जा गिरी थी और एक लकीर सी पड़ गई थी, तलवार की मार जैसी।''[9] दलित मालु ने शोषण, अत्याचार का कड़ा विरोध किया तथा अपनी शक्ति को पहचाना। कहानी में मालु के माध्यम से यह चेतना मिलती है कि शोषण उसी का होता है जो शोषण करवाता है। 'मुक्ति धर्म के नाम पर भावनाओं के शोषण की कहानी है। इसमें नानकराम मेहतर के साथ मंहत ने धर्म से शोषण किया। लेकिन नानकराम ने सामन्ती सोच पर करारा जबाव दिया है। कहानी में जहाँ एक ओर महन्त की उतरती महन्ती को दिखाती संवेदना पुरोहिती के पलयान और उसके पढ़स्थ करती है वहीं दूसरी ओर दलित, वंचित के शौर्य, गौरव और सामर्थ्य को सम्पूर्ण समाज के समक्ष उपस्थित करती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि रत्नकुमार सांभरिया दलित चेतना के एक सशक्त रचनाकर हैं, उन्होंने उपेक्षित, वंचित, निर्बल और दलित समाज की जीवन धारा से अनेक घटनाएँ और प्रसंगों को अपनी कहानियों की कथावस्तु बनाया है। इसमें केवल उपेक्षा, पीड़ा, अन्याय, अत्याचार और शोषण के तथ्य ही नहीं हैं, बल्कि बदलते सामाजिक परिवेश के सम्मान समता आदि को भी बराबर स्थान दिया है। यहीं सब समताधिष्ठित समाज निर्माण की आशा की एक नई किरण है। यही कारण है कि उनकी कहानियों के दबित व दलित पात्र आज वर्चस्ववादी व्यवस्था की आँखों में आँखें डालकर साहस के साथ संघर्ष करते दिखाई दे रहे हैं।

संदर्भ ग्रन्थ :–**1.**मेरी बात,पृष्ठ–10 **2.**रत्नकुमार सांभरिया, हुकुम की दुग्गी, पृष्ठ–34,रचना प्रकाशन,जयपुर, संस्करण–2018 **3.** रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियाँ, पृष्ठ–177, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली–संस्करण–2011 **4.**रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियाँ, पृष्ठ–181, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली–संस्करण–2011 **5.**रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियाँ, पृष्ठ–181,अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली–संस्करण–2011 **6.**कामराज सिंधु, रत्नकुमार सांभरिया की चयनित कहानियाँ, पृष्ठ–79, प्रथम संस्करण–2021 **7.**रत्नकुमार सांभरिया, हुकुम की दुग्गी, पृष्ठ–113 रचना प्रकाशन,जयपुर संस्करण–2018 **8.**डॉ. कामराज सिंधु, रत्नकुमार सांभरिया की चयनित कहानियाँ, पृष्ठ इंडिया नेटबुक्श प्राईवेट लिमिटेड नोएडा–संस्करण–2022 **9.**रत्नकुमार सांभरिया, हुकुम की दुग्गी, पृष्ठ–रचना प्रकाशन जयपुर संस्करण–2012

43.रत्नकुमार सांभरिया का आलोचना साहित्य

–प्रज्ञा पाण्डेय
एम0फिल0 (हिन्दी) महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

हिन्दी दलित साहित्य के मूर्धन्य साहित्यकार जिनके साहित्य से दलित साहित्य अपनी सम्पूर्णता को प्राप्त करता हैं। दलित साहित्य के आकाश में इस सूर्य का उदय छः जनवरी उन्नीस सौ छप्पन भाड़ावास, जिला–रेवाड़ी (हरियाणा) में हुआ। इन्होंने साहित्य की विविध विधाओं में अपने व समाज के कटुअनुभवों से दलित समाज के सम्मान को स्थापित करने का सफल प्रयास किया है। उनकी एक–एक रचना समाज को आइना दिखाती हुई आने वाली पीढ़ियों के लिए सीख की तरह है। मेरे लिए यह सौभाग्य की बात है कि अपने लघु शोध के दौरान अपने परम आदरणीय निर्देशक पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो0 अनुराग कुमार, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ वाराणसी के निर्देशन में सुझाए गए विषय "मुंशी प्रेमचन्द की कहानियों का दलित पाठ (दलित आलोचक रत्नकुमार सांभरिया के विशेष संदर्भ में" के लघु शोधार्थ मुझे आदरणीय सांभरिया सर के व्यक्तित्व व कृतित्व से रुबरु होने को सुअवसर प्राप्त हुआ। चूँकि विषय में ऐसे लेखक की कहानियों का दलित पाठ था जो कि दलित साहित्य में ज्वलंत मुद्दा बने हुए है उनके कथा–साहित्य के दलित पाठ न जाने कितने दलित साहित्यकारों को अपनी अभिव्यक्ति के लिए पृष्ठभूमि प्रदान की। अपने विषय के संदर्भ में मैंने और भी दलित आलोचकों को पढ़ा किन्तु जितना प्रभाव पूर्ण रत्कुमार सांभरिया जी की कहानी समीक्षा या आलोचना लगी किसी अन्य के उतना प्रभावित नहीं किया एक आलोचक के दृष्टिकोण से सांभरिया जी ने बड़ी बारीक व तथ्यात्मक आलोचना प्रस्तुत की है।

मेरी दृष्टि में एक कुशल व सफल आलोचक वो होता है जो अपनी आलोचना की आलोचना या प्रतिक्रिया को सहर्ष स्वीकार करें और निःसंदेह रत्नकुमार सांभरिया जी ने अपनी आलोचनात्मक पुस्तक "मुंशी प्रेमचन्द और दलित समाज" के माध्यम से आलोचना के क्षेत्र में भी स्वयं को सिद्ध किया है। मुंशी प्रेमचन्द के नौ ज्वलन्त कहानियों (1) मुक्तिमार्ग (2) मंत्र, (3) मंदिर (4) घासवाली (5) पूस की रात, (6) सद्गति (7) ठाकुर का कुआँ, (8) दूध का दाम (9) कफन, की अम्बेडकरवादी दृष्टि से आलोचना और अम्बेडकरवादी सौन्दर्यशास्त्र दोनों के अन्तर्गत समीक्षा की है। एक आलोचक के रूप में वे प्रेमचन्द समाज के कथा साहित्य के दलित पाठों का पक्ष व विपक्ष दोनों रूप में कड़ी आलोचना की है एक आलोचक के रूप में रत्नकुमार सांभरिया समाज के सजग प्रहरी हैं। वे लिखते हैं "प्रेमचन्द अपनी जातीय संकीर्णताओं के चलते वर्ण व्यवस्था के जाल में इस कद्र जकड़े थे कि वे वर्ग तक पहुँच ही नहीं पाए। दलित कथानकों पर लिखी उनकी कहानियों में नायकत्व नहीं है। बगैर नायक वर्ग संघर्ष हुआ है। सही बात तो यह है कि प्रेमचन्द ने जिस दृष्टिकोण से अपनी कहानियों का ताना–बाना बुना है। वहाँ वर्ण का गुणगान है, वर्ग दूर–दूर तक दिखाई नहीं देता है। 'कफन', 'सद्गति' 'मुक्तिमार्ग', ठाकुर का कुआं' 'मंत्र' में वर्ण व्यवस्था का खुला प्रतिपादन है।"रत्नकुमार सांभरिया जी के आलोचनात्मक लेख पत्र–पत्रिकाओं में भी अक्सर ही छपते रहें हैं। 'मुंशी प्रेमचन्द व दलित समाज' पुस्तक के माध्यम से पहली बार उन्होंने स्वयं को एक तटस्थ आलोचक के रूप में स्थापित किया है।

मुंशी प्रेमचन्द जैसे कालजयी साहित्यकार के दलित पाठों की विविध पक्ष से आलोचना की है। रत्नकुमार सांभरिया सच्चे अम्बेडकरवादी आलोचक हैं। और उनकी आलोचना दृष्टि उतनी ही धारदार हैं सांभरिया जी की आलोचनात्मक पुस्तक "मुंशी प्रेमचन्द और दलित समाज" को पढ़ते हुए यह पता चलता है कि सांभरिया जी सत्य के साहित्यकार है। मुंशी प्रेमचन्द के कथा साहित्य में उपस्थित दलित पाठ की सत्यता का प्रतिपादन बड़ी ही सजगता व तटस्थता के साथ की है यही नहीं अपनी बात को पूरे तर्क व पुख्ता सबूत के साथ रखी है। उदाहरणार्थ "दूध का दाम" कहानी की चर्चा करते हुए कहते है कि "दूध का दाम" कहानी कादूसरा भाग कमोबेश मनुस्मृति के अध्याय दस के श्लोक 51–52 का बीज कथानक प्रतीत होता है। इन दो श्लोकों के अनुवाद में बताया गया है कि

"चाण्डाल व श्वपचों के रहने का स्थान गाँव से बाहर होना चाहिए। इनके पात्र मिट्टी के होने चाहिए तथा कुत्ते और गधा ही इनका धन है।" 'दूध का दाम' काहनी के पात्र मंगल का चरित्र कुछ इसी तरह से प्रेमचन्द ने चित्रित किया है।

मुंशी प्रेमचन्द की कहानी 'ठाकुर का कुआँ' पर अपना आलोचनात्मक व्याख्यान देते हुए लिखते हैं कि "कहानी में दो संदेश है। ये दोनों संदेश वर्णव्यवस्था, जातिभेद और छुआछूत का पोषण करते है।" सांभरिया जी के आलोचनात्मक पुस्तक 'मुंशी प्रेमचन्द और दलित समाज' को पढ़ते समय यह प्रतीत होता है कि एक उच्चकोटि का कहानीकार होते हुए भी प्रेमचन्द ने दलितों के सकारात्मक पक्ष को अनदेखा कर दिया।

प्रेमचन्द ने दलितों पर तो बहुत कुछ लिखा पर दलितों के लिए या उनके हितार्थ उनकी लेखनी आगे नहीं बढ़ सकी। कहानी 'मंदिर' की कड़ी आलोचना करते हुए वो लिखते है कि

"प्रेमचन्द दलित महिलाओं पर लांछन लगाने का कोई मौका हाथ से जाने नहीं देते। यहाँ आशय यह है कि यह लड़का इसलिए चंचल है कि वह उसके पति की वंशबेल न होकर किसी ठाकुर की नाजायज औलाद है।"

रत्नकुमार सांभरिया में प्रेमचन्द की दलित कहानियों की बड़ी ही बेबाक तरीके से आलोचनात्मक समीक्षा की है। "मुंशी प्रेमचन्द और दलित समाज" इस आलोचनात्मक पुस्तक को पढ़कर प्रेमचन्द के साहित्य के प्रति एक नवीन पूर्णतः स्वच्छ व निष्पक्ष दृष्टिकोण जागृत होती है। रत्नकुमार सांभरिया ने प्रेमचन्द की दलित कहानियों में क्या–क्या कमियाँ, संवाद या घटनाक्रम, क्या और कैसे होना चाहिए की चर्चा बड़े विस्तार से और पुख्ता सबूतों के साथ की है।

प्रो0 दामोदर मोरे के अनुसार "सांभरिया दलितों के हितों की रक्षा के लिए कलम को शस्त्र बनाकर जूझ रहे हैं।" मेरे दृष्टिकोण से रत्नकुमार सांभरिया की इस आलोचनात्मक पुस्तक 'मुंशी प्रेमचन्द और दलित समाज' के अध्ययन के बिना मुंशी प्रेमचन्द के साहित्य के दलित पाठों को समझना भ्रांतिपूर्ण होगा।

44.रत्नकुमार सांभरिया का कथा–साहित्य

–सुरेश कुमार वर्मा,
शोधार्थी,हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय,जयपुर

साहित्य का सर्वोत्तम रूप स्वतंत्रता का पक्षधर होता है और यह स्वतंत्रता केवल राजनीतिक न होकर जीवन के प्रत्येक पक्ष में समाहित होनी चाहिए। इसी संदर्भ में साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में दृष्टिपात करे तो कथा–साहित्य उनमें भी रचित कथा–साहित्य व्यापक स्तर पर जीवन भर के हर क्षेत्र में मानवमुक्ति संग्राम की बात करते हुए अपनी अलग ही पहचान बना रहा है। शोषण का स्वरूप जटिल और संश्लिष्ट है। इसी कारण कभी यह सामाजिक और आर्थिक लगता है तो कभी सांस्कृतिक व शैक्षिक। दलित लेखक महसूस करता है कि शोषण की नींव समाज में व्याप्त विषमता है। एक मनुष्य अपने माननीय समाज की संरचना के कारण ही पशु समूह को अलग पहचान बनाता है, लेकिन जब समाज की मानवीयता पर प्रश्न उठने लगते हैं तो यह सुधार करने के लिए तत्पर हो जाता है। पीढ़ियों से चली आ रही परम्परा में वह बदलाव लाने को प्रयत्नशील हो जाता है।

इस अर्थ में हिन्दी साहित्य में दलित वर्ग को अपनी कथा के मूल में रखकर ऐसे कला साहित्य का स्वर बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस दौर के लेखन का मुख्य जोर दलित समुदाय को अपने अतीत व वर्तमान के प्रति सजग करना रहा है। साहित्य समाज को प्रतिबिम्बित करता है। इसलिए इस अभिजात्य सामाजिक व्यवस्था का दलित साहित्य ने पुरजोर विरोध किया। समाज के विभिन्न समूह जो अभी तक हाशिये पर रहे तथा जिनकी अस्मिता और आवाज को निरंतर दबाया गया था अभिजात्य और वर्चस्ववादी शक्तियों ने हाशिये पर धकेल दिया था, उनके स्वर को ही दलित कथा साहित्य के माध्यम से प्रासंगिक बनाया गया। वर्तमान भारतीय परिप्रेक्ष्य में प्रमुख वंचित तबके है–स्त्रियां अनुसूचित जातियां, अनूसूचित जनजातियां, अन्य पिछड़ा वर्ग, घुमक्कड़ जातियां। ये अपने वजूद के लिए निरन्तर संघर्ष कर रहे हैं, लेकिन इनका संघर्ष अपनी हलचल के रूप में उभर कर सामने नहीं आया था। ऐसे में साहित्यकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से इनकी पीड़ा को कलमबद्ध करके भारतीय जनमानस की इस क्रूर और अमानवीय व्यवस्था पर प्रकाश डाला। दलित वर्ग पर लिखा साहित्य आज विभिन्न विधाओ जैसे कविता, कहानी, उपन्यास, संस्मरण, निबन्ध आदि रूपों में उभर कर हमारे सामने आया है। शताब्दियों से जहां मनुष्य होने के बावजूद मनुष्य को उनका हक नहीं मिल सका दलित समाज रूढ़ियों से

ISSN-2454-6283 PEER Reviewed JOURNAL

भूख–गरीबी, तिरस्कार, दुत्कार, अस्पृश्यता आदि सहता रहा। दलित वर्ग अपनी भोगी हुई पीड़ा को साहित्यिक संवेदनाओं के माध्यम से सभी के सामने लाने का प्रयास कर रहा है।

रूढ़ियों से दबी इस वर्ग की आवाज को अभिव्यक्ति के अनेकानेक खतरे उठाते हुए मुखरित करने वाले लेखकों में कथाकार रत्नकुमार सांभरिया का महत्वपूर्ण योगदान है। कथाकार सांभरिया अपनी लेखनी से इस वर्ग को समाज के सामने लाने हेतु प्रयासरत है वे दलितों के स्वाभिमान मान–सम्मान, संघर्ष और स्थापना के मुद्दों को तल्खी से आवाज दे रहे हैं। उनका कहना है कि दलित–कथा में इनकी पीड़ा और संघर्ष दोनों सामने आने चाहिए और हमें इनकी यह सोच सांभरिया जी कहानियों (फूलवा, गूंज गाड़ियां, बेस इत्यादि) में दिखाई भी देती है। यह वर्ग भौतिक सुख–सुविधाओं से वंचित रहकर असुरक्षित जीवन जीने को बाध्य है। इनके जीवन में अंधकार की अतिशयता है। सांभरिया जी के अनुसार –"ये वीराने लोग धरती बिछाते हैं, आसमां ओढ़ते हें। अपने पसीने से नहा लेते हैं और भूख खाकर सो जाते है। परिणामतः उपेक्षा अपमान व घृणा के पात्र बने हुए हैं। इनके अन्तहीन दर्दों और जख्मों का सिलसिला सतत् जारी है। गरीबी फटेहाली, असुरक्षा, कुपोषण, भूख बीमारी, तिरस्कार इनकी स्थाई पूंजी है, जो बढ़ती जाती है, आखिर क्यों? ये प्रश्न प्रत्येक संवेदनशील व्यक्ति के मन में उठने चाहिए।"दलित कहानी का उद्देश्य समाज विभाजन या नफरत फैलाना नहीं मनुष्य में मनुष्यता पैदा करना और रूढ़ वैचारिकता में बदलाव कर नवाचार की स्थापना करना है, रत्नकुमार सांभरिया उनमें से एक है इनकी कहानियों के पास अपनी आस्मिता, समाज में सम्मान के लिए संघर्षरत है। इस संदर्भ में सांभरिया जी स्पष्ट रूप से कहते हैं कि "दलितों की पीड़ाओं का पहाड़ खड़ा कर देना दलित कहानी नहीं है। दलित कहानी से अभिप्राय एक ऐसी अनूठी रचना से है जो दलित में नए जीवन का संचार करती है। कलाकार दलित हो या गैर दलित–जिस कहानी के पात्र रूआँसे गिड़गिड़ाते से, समझौता परस्त पलायनवादी से हारकर बैठने वाले से तथा यथास्थिति को प्रारब्ध मानने वाले से हो,उनसे दलित कहानी वैभव नहीं पाती।" अन्य दलित रचनाकारों से इतर, रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में शोषणकारी सत्ता वर्ग से कड़ा और सीधा टकराव देखने को मिलता है।

"भभूल्या" कहानी से एक ओर पुलिस व्यवस्था का कच्चा चिट्ठा खोला है कि कैसे वह कमजोर को दबाती है और वरिष्ठ अधिकारियों से डरती है। कैसे ये सरकारी नौकर अपनी इच्छापूर्ति के लिए कमजोर पर हाथ मारते हैं। पिमानाराम बच्चे के समान अपने बकरे के बजाय खुद की अंगुली काट हेडकांस्टेबल के मुंह में डाल देता है। उसकी खून टपकती अंगुली और बंधी मुट्ठी अन्याय के विरूद्ध विद्रोह की ओर संकेत करती है। सांभरिया जी के कहानियों के पात्र मजदूर, नट, बणजारे, सपेरे, कलन्दर, मदारी, समाज से ठुकराये बच्चे आदि हैं जो समाज से बहिष्कृत हैं लेकिन इनके ये पात्र गिड़गिड़ाने व दया की भीख मांगने वाले नहीं है। वे आत्मसम्मान से जीने की उत्कृष्ट चाह रखते हुए बेहद दबंग और विपरीत परिस्थितियों का साहस के साथ सामना करने वाले हैं, चाहे वह स्त्री पात्र हो या पुरुष पात्र।

इनकी "फूलवा" कहानी की दलित नायिका फुलवा समस्त कठिनाइयों का सामना करके वह डॉ. भीमराव अम्बेडकर के मूल मंत्र शिक्षित बनों को आत्मसात कर लेती है। और बेटे राधामोहन को शिक्षित करती है। वह एस.पी. बन जाता है। शहर में आकर एक बड़ी सी कोठी में रहने लगता है। फुलवा भी अब गांव छोड़कर शहर में अपने बेटे के साथ कोठी पर रहने लगती है। एक दिन गांव का जमींदार रामेश्वर पंडित अपने बेरोजगार बेटे दीप सिंह के लिए नौकरी का प्रबन्ध करने के लिए शहर आता है शहर में फुलवा के ठाट–बाट देखकर रामेश्वर की जातीय भावना को ठेस पहुंचती है, क्योंकि फुलवा गांव में उसके परिवार की टटलुआ थी। वह जल्दी से माता प्रसाद के घर पहुंचता है। वहां जाकर उसके मुंह से अहं फूट ही पड़ता है–फुलवा चाहे सोने की हो जाए, रहेगी उसी जात की। मैंने तो उसके घर का पानी भी नहीं पिया। धर्म भ्रष्ट होने से मर जाना अच्छा समझता है रामेश्वर सिंह। उसकी यह बात सुनकर पंडिताइन का जवाब देना कि तू तो कुएं का मेढ़क ही रहा रामेसरिया। अब तो पद और पैसे का जमाना है, जात–पात का नहीं।" इस संबंध में सांभरिया जी यह मानते हैं कि "पद और पैसे के सामने जात पूंजी है। अर्थात् अगर आप उच्च पदासीन और पैसे वाले हैं तो जाति का प्रभाव कम हो जाता है और यह गूंज सांभरिया जी की कई कहानियों में हमें सुनाई देती हैं। इनकी अधिकतर कहानियां ग्रामीण परिवेश की है, जिनका जातिगत शोषण अत्याधिक होता है। जिसमें आर्थिक शोषण भी जुड़ जाता है। उनकी गूंज, लाठी, गाड़ियां में अच्छे उदाहरण है।

गाड़ियां धूमन्तू जाति से संबंधित लुहार–जीवन की कहानी है। जो इस जाति की एकता उनकी जागरूकता और अन्याय के प्रति विद्रोह की आवाज उठाती है। लोहारों की अपनी बिरादरी के चौधरी की जिद को दाद दी बिल्कुल मरे हटेंगे हम। दिल्ली तक लड़ेगें। लड़की के मंगेतर ने लाठी आसमान की ओर उठाई मानो छेद कर देगा। इस तरह उन्होंने अपनी कहानियां में

न केवल वेदना की पीड़ा का धनीभूत अंकन किया है वरन् उस वेदना की जन्मदात्री ताकतों को भी नकारते हुए तल्खी से आवाज मुखर की है। वे केवल सामाजिक रूप से अस्पृश्य लोगों को अपनी कहानी का पात्र नहीं बनाते वहन् उनकी दलित संवेदना का क्षेत्र काफी विस्तृत है। ये कहते हैं कि "दलित–चरित्र की पहचान के दो आयाम है। पहला जाति से दलित है लेकिन धन–दौलत से सम्पन्न है और शौहरत पा रहे हैं। वे दलित कहानी के पात्र नहीं होंगे। जो जाति से दलित है, जिनका न जातीय सम्मान है और न ही समाज परिवेश में उन्हें बराबरी का हक है–घूमन्तू खानाबदोश लोग, जिनका धरती बिछावन और आकाश ओढ़न दलित कहानी के पात्र होने का अधिकार पाते हैं।

समग्रतः कहा जा सकता है कि रत्नकुमार सांभरिया की कहानियां दलित विमर्श की परिपक्व कहानियां है। जो एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहती है जो मनुष्य में मनुष्यता के भाव पैदा कर समाज के वैचारिकता में बदलाव कर इस वर्ग के प्रति नवाचार मान–सम्मान की भावना को स्थापित कर सके।वे लगातार दलितों को इस माध्यम से समाज की मुख्य धारा से जोड़ने का सार्थक प्रयास कर रहे हैं। इनका मानना है कि साहित्य का उद्देश्य दलित चेतना उनकी इज्जत आबरू और पुनर्वास होना चाहिए।

संदर्भ सूची : **1.**दलित समाज की कहानियां–रत्नकुमार सांभरिया, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दरियागंज, नई दिल्ली–संस्करण 2011 **2.**गाटिया–राजस्थान पत्रिका, जयपुर के रविवारिय (हम–तुम पृष्ठ 2)–2012 **3.**हाशिए का समाज (रत्नकुमार सांभरिया की चयनित कहानियां)–सम्पादक–डॉ.किशोरी लाल पार्थय **4.**मोहनदास नेमिशराय (अतिथि सम्पादक), हंस, अगस्त 2002, पृ.सं.200 **5.**समाजद्रष्टा–साहित्यकार रत्नकुमार सांभरिया, भाग–2, सम्पादक–डॉ. विवेक शंकर–डॉ. अनिता वर्मा

45.दलित मिथक को तोड़, नया सौन्दर्यशास्त्र रचती कहानियां

–राजा कुमार (ऋत्विक भारतीय)
नई दिल्ली

"रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों से गुजरते हुए मुझे कुछ ऐसे चरित्र मिले,कुछ ऐसे प्रसंग, बातचीत के कुछ ऐसे नायाब टुकड़े कि मन के अज्ञात कोनों से बरबस ही आवाज आई–'यूरेका'! बहुत दिनों से एक ऐसे दलित लेखक–बंधु की तलाश थी, जिसकी विनोद–वृत्ति प्रखर हो और जो भाषा में अभिधा–लक्षणा–व्यंजना तीनों साध सकता हो, यानी कि एकलव्य–जैसाधनुर्धारी हो जो। आसान नहीं होता तीनों तरकशों सेतीर चला पाना और उन तीरों से बंजर से बंजर धरती की छाती इस तरह बीध देना कि उसके मर्मस्थल से पानी के सोते फूट पड़ें! सांभरिया जी की कहानियां पढ़कर मेरी वह तलाश मुकाम पा गई।'–अनामिका

रत्नकुमार सांभरिया जी की कहानियों पर अनामिका जी द्वारा दी गयी इस टिप्पणी से मेरा परिचय अभी हाल में हुआ। इससे पूर्व रत्नकुमार सांभरिया जी की कहानियों में जिस कहानी से मेरा सर्वप्रथम परिचय हुआ था वह है, 'बिपर सूदर एक कीने'! इस कहानी को एक बार फिर पढ़ने की दिलचस्पी तब जागी जब दलित साहित्य के आलोचक–कंवल भारती जी ने 'हंस' के दलित विशेषांक (विगत– नवम्बर 2019) में रत्नकुमार सांभरियाजी को न केवल प्रथम पीढ़ी का कथाकार मानने से इंकार किया, अपितु 'बिपर सूदर एक कीने' कहानी को दोषपूर्ण बताते हुए–उक्त कहानी को दलित चेतनाविहीन भी बताया। कंवल भारती जिस कहानी को दोषपूर्ण बताते है, मैंने जब उस कहानी को पढ़ा तो मैं जिस निष्कर्ष पर पहुंचा वह यह है कि दोष रत्नकुमार सांभरियाजी की कहानी का नहीं, बल्कि कंवल भारती जी की आलोचनात्मक दृष्टि का है।

हकीकत यह है कि वे या तो किसी की पुरजोर भर्त्सना कर सकते हैं या किसी लेखक की पुरजोर प्रशंसा। कंवल भारती जी की आलोचना के दुर्गण पक्षों पर बात करने से पहले बेहतर होगा कंवल भारती जी का लिखा पढ़ा जाए। वे लिखते हैं–रत्नकुमार सांभरिया की "कहानियां जाति–चेतना की कहानियां नहीं है.....'बीपर सूदर एक कीने' कहानी पैतृक पेशे को प्रोत्साहित करती है इसलिए अम्बेडकर मिशन के भी खिलाफ है।" (देखें विगत 2019 का नवम्बर अंक) कंवल भारती के इन कथनों से सहमत इसलिए भी नहीं हुआ जा सकता, क्योंकि सही मायने में रत्नकुमार सांभरिया दलित कहानीकारों की प्रथम पीढ़ी के

रचनाकार हैं–जिसका प्रमाण है रत्नकुमार सांभरिया जी की पहली कहानी 'फुलवा' जो राजेन्द्र यादव की कथा–मासिक पत्रिका 'हंस' के मई, 1997 में सर्वप्रथम प्रकाशित हुई थी।

दूसरा 'बिपर सुदर एक कीने' कहानी में मुख्य पात्र– तथाकथित निचली जाति का श्यामूलाल अपने पैतृक पैशे को अपनाए रहने को विवश है। उसकी विवशता यह है कि वो ऐसा नहीं करता तो शायद गरीबी और भुखमरी की चक्की में लगातार पिसते हुए वह अपने बेटे को पढ़ा नहीं पाता। फलतः उसका बेटा एक बड़ा अफसर नहीं बन पाता। फिर श्यामूलाल अपने पैतृक पेशे को छोड़ने से इंकार नहीं करता, बल्कि कुछ मोहलत मांगता है। उसी के शब्दों में देखा जाए, ''बस चार बरस की मोहलत दे दो। मेरो छोरो शहर पढ़ रहो है। मैं एक टांग से लाचार हूं। बूढ़ो होतो शरीर है। ना मैं खेत–क्यार कर सकूं। ना मैं मिनत–मंजूरी कर सकूं।'(समाजद्रष्टा साहित्यकार, रत्नकुमार सांभरिया, भाग–2, पृष्ठ सं.–160) फलस्वरूप श्यामूलाल को जात–बहिष्कृत कर दिया जाता है। पर वह हिम्मत नहीं हारता और ना ही अपने बेटे को हारने देता है। दुरावस्था में भी लगातार श्रम करता हुआ अपने बेटे को पढ़ाता है। परिणामतः उसका बेटा– दीदारसिंह राज्य पुलिस सेवा में डी.वाई.एस.पी के पद पर नियुक्त हो जाता है। ऐसा होते ही श्यामूलाल सर्वप्रथम अपना पैतृक पेशा (चर्मकार का) छोड़ देता है। जो साबित करता है कि श्यामूलाल ने पहले अपना पैतृक पेशा केवल इसलिए नहीं छोड़ा था कि वैसा करने के बाद वह अपने बेटे को पढ़ा नहीं पाएगा। और उसके बेटे की पढ़ाई बीच में ही छूट जायेगी। यह प्रसंग यह भी प्रतिपादित करता है कि श्यामूलाल कठिन परिस्थितियों में भी अपने विवेक को बनाये रखता है और अपनी मेहनत के बल पर समाज की परवाह किये बगैर प्रतिकूल परिस्थितियों में भी संघर्ष और सफलता की एक नई मिसाल कायम करता है। अंततः कहानी अम्बेडकर के सिद्धांतों का विरोधी नहीं, पोषक साबित होती है।

ध्यातव्य है कि रत्नकुमार सांभरिया जी की जिस कहानी को कंवल भारती जी दोषपूर्ण बताते हुए अम्बेडकरी मिशन के खिलाफ बताते हैं उसी कहानी के सम्बंध में माता प्रसाद गुप्त लिखते हैं, ''रत्नकुमार सांभरिया की कहानियां दलित समाज में आत्मगौरव का संचार करती हैं और जातिभेद और छुआछूत मानने वाले को कठघरे में लाकर खड़ा करती है।'' (साहित्य समर्था, संपा– निलिमा टिक्कु, अक्टू–दिस.–2019, पृष्ठ सं.–68) इतना ही नहीं वे 'बिपर सूदर एक कीने' के सम्बंध में लिखते हैं, ''यह कहानी डॉ. अम्बेडकर के शिक्षित बनो के संदेश को कारगार करती है, क्योंकि शिक्षा ही जाति–पांति की लोह दीवार तोड़ सकती है। कहानी में उच्च शिक्षा और पद का महत्त्व बताया गया है, जो नई पीढ़ी के लिए प्रेरणादायक है।''(वही पृष्ठ सं.–68) फिलहाल, रत्नकुमार सांभरिया जी की जितनी कहानियां मैं पढ़ पाया हूं, उन कहानियों के आधार पर मुझे यह कहते गर्व है कि रत्नकुमार सांभरिया जी ने दलित कहानियों के सौन्दर्यशास्त्र सम्बन्धी मिथक को तोड़ते हुए उसकी सैद्धांतिकी और सौन्दर्यशास्त्र दोनों में व्यापक बदलाव किया है।

प्रस्तुत आलेख के अन्तर्गत रत्नकुमार सांभरिया की पांच कहानियां विवेच्य हैं–.

'चमरवा' (हंस, जुलाई 2004) एक कालजयी कहानी है। यह जाति के भीतर जाति के अंतर्विरोध को दिखाती हुई एक विडम्बनाग्रस्त स्थिति से हमारा साक्षात्कार करवाती है। जिसके सम्बन्ध में अम्बेडकर ने बहुत पहले ही स्पष्ट किया था– ''हिन्दु समाज मीनार है और एक–एक जाति इस मीनार का एक एक तल (मंजिल) है। ध्यान देने की बात यह है कि इस मीनार में सीढ़िया नहीं है। जो जिस तल में जन्म लेता है, वह उसी तल में मरता है। नीचे के तल का कितना ही लायक हो, उसका ऊपर के तल में प्रवेश संभव नहीं, परन्तु उपर के तल का मनुष्य चाहे कितना ही नालायक हो, उसे नीचे के तल में धकेल देने की हिम्मत किसी में नहीं।'' पर चमरवा कहानी में सबसे अन्तिम तल में भी ऊंच–नीच वाला तल है। जिसका कारण यहां धर्म और कर्मकाण्ड बना है– धर्म जाति का पोषक होता है। कहानी का मुख्य पात्र दरपनदास है। वह तथाकथित चमार जाति का है, किन्तु उसकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति अन्य चमारों से इस स्थिति में भिन्न है कि वे चमारों का कर्मकाण्ड करता है। चमारों से सूखा वसूलता है। फलतः उसकी आथ्रिक स्थिति अच्छी है। जिसके कारण उसके भीतर ब्राह्मणवाद घर कर गया है कि वह अन्य चमारों से श्रेष्ठ है। इसलिए वह उनसे सर्वदा दूरियां बनाए रखता है। उन्हें अछूत समझता है। कहानीकार के शब्दों में दरपनदास का चरित्र–चित्रण देखें–''चमारों के धार्मिक पुरुष होने के कारण वही उनके सभी सांसारिक क्रियाकर्म पूरे कराते हैं, जन्म से मौत तक। ब्याह से छोछक तक। चमार उनको बामन कहते। दादा बोलते। देवरूप मानते। वे चमारों को नीची जात मानकर उनसे घृणा भाव रखते। छुआछूत की पोप लीला निभाते। भेदभाव में भगवा रहते।'' इसे विडंबना ही माना जाए कि गैरदलितों का विरोध जिस वजह से दलित करते हैं वही कार्य यहां एक दलित दूसरे दलित से कर रहा है। इस मायने में यह कहानी अधिक विशिष्ट जान पड़ती है। कहानी ऐसी कई विडंबनाओं से हमारा साक्षात्कार करवाती चलती है। दरपनदास का बेटा–करणदास

पढ़ा–लिखा विरोधी स्वभाव का है। जब वह अनुसूचित जाति का प्रमाण पत्र बनवाता है तो पिता– दरपनदास उसका विरोध करता है। फलस्वरूप बेटा घर छोड़कर चला जाता है। जो स्पष्ट करता है कि दरपनदास चमार ही है, पर उसका अहम उसे इसे मानने से इंकार करता है। कहानीकार ने किसी अन्य पात्र करणदास के पक्के मित्र के माध्यम से भी कहलवाया है, "अपनी जड़ पहचान और चमार जाति का प्रमाण–पत्र बनवा ले।" कहानी का अंतिम भाग भी दरपणदास के अहम की पराकाष्ठा को पार कर जाने की विडंबनापूर्ण स्थिति से परिचय करवाती है। दरपनदास की पत्नी नोना की रात में मृत्यु हो चुकी है। बेटा पहले ही घर छोड़ जा चुका है। ऐसे में पत्नी नोना का अंतिमदाह संस्कार कैसे किया जाए। पत्नी की मृत्यु पर वह रोता है, किन्तु उसके रुदन से भी उसका जात्याभिमान फूट पड़ता है, "नोना, तुझे गंगा मैया में बहाकर आना मंजूर, तेरी अर्थी चमार नहीं छुएंगे। जब तूने जीते जी छोटी जात नहीं छुआई, तेरी मृत देह को छूत क्यों?" और उच्च वर्ण के हीरानाथ को अपनी पत्नी के शव को कंधा देने को कहता है, किन्तु हीरानाथ उसे जवाब देता है– "अरे तेरी घर वाली स्वर्ग में जाए या नहीं जाए, मैं कंधा दे कर जीते जी नरक में चला जाऊंगा। धर्म का मखौल मत उड़ा चमरवा। रीत की दीवार तोड़ने को कुदाल मत उठा चमरवा।" हीरानाथ से मदद न पा वह दर्जी, खाती, तेली, अहीर, जाट आदि उच्ची वर्गीय जाति के घर भी जाता है पर उसकी मदद को कोई तैयार नहीं होता। इस तरह कहानीकार ने दरपनदास के अहम पर एक से बढ़कर एक प्रहार किये हैं। सवर्ण जातियों से अंततः मदद न पा दरपनदास घर लौटता है तो पाता है, अपने ही जात–भाय– चमारों से घृणा और अस्पृश्यता का भाव बनाए रखने वाले दरपनदास की पत्नी नोना का चमार(उसकी जाति के लोग) ही अंतिम संस्कार कर रहे हैं। सचमुच जिस अन्तर्विरोध से लेखक ने पाठकों को साक्षात्कार करवाया है। वह अनूठी और विडंबनाग्रस्त है।

'फुलवा'(हंस, मई 1997)– फुलवा सांभरिया जी की दलित स्त्री चेतना की एक सशक्त कहानी है। कहानी की मुख्य पात्र फुलवा है, जो दलित वर्ग की है। जिसे पति की मृत्यु की बाद जमींदारों की टहलवाई उत्तराधिकार के रूप में मिली है–घास छीलना, पानी भरना और पशुओं को चारा–पानी करना। वह अपने और अपने बेटा का भरण–पोषण करती है। साथ ही अपने बेटे को पढ़ाती भी है। बेटा अफसर बन मां को शहर ले आता है।

कहानी में तथाकथित उच्च जाति का एक और मुख्य पात्र रामेश्वर है, जो कहानी को विस्तार देता है। कहानी जात्याभिमान से परत–दर–परत साक्षात्कार करवाती चलती है। गंवई रामेश्वर शहर आया है। वहां आकर वह पं. माताप्रसाद का घर ढूंढता है, किन्तु उसे उसका मकान नहीं मिलता। ऐसे में वह राधामोहन के घर का पता पूछता है। कोई उसे मोटरसाइकिल से उसके घर छोड़ने के लिए तैयार हो जाता है। ऐसे में उसके आश्चर्य के साथ उसका जात्याभिमान भी अनायास वाणी पा जाता है। कहानीकार के शब्दों में, "रामेश्वर का सिर भिन्ना उठा। पंडित जी को कोई नहीं जानता, फुलवा के छोरे को पोर–पोर जानता है।"(स्त्री–विमर्श रत्नकुमार सांभरिया की चयनित कहानियां/ सम्पा. अनामिका, अनामिका पब्लिसर्श एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स/प्रथम संस्करण, 2021, पृ.स.– 16) रामेश्वर फुलवा के यहां आता है। तो फुलवा के पहचानने पर वह उसका आतिथ्य सत्कार करती है। किन्तु रामेश्वर उसकी कोठी देख दंग रह जाता है। "फर्श देखकर रामेश्वर की आंखें चुंधिया गईं। उसकी घरवाली कांसी की थाली भी साफ नहीं करती हैं, ऐसी तो।"(वही, पृ.स.– 17)कहानी कई बार फ्लैशबैक पद्धति पर भी चलती है–17 साल पहले फुलवा और उसकी जात–बिरादरी के लोगों को पानी के लिए बहुत दूर जाना पड़ता था। ऐसे में एक बार फुलवा रामेश्वर के कुएं पर उससे पानी मांगती हैं तो रामेश्वर उसके घड़े में थूक देता है। पर फुलवा यह सब स्मरण रखना जरूरी नहीं समझती, "समय सौदागर है। रामेश्वर आज भी उसी कुआं से पानी भरता है। फुलवा की रसोई में भी नल है।"(वही, पृ.स.–19) एक समय था, "फुलवा के कच्चे घर की छान पर फूस नहीं होती थी। सूरज सारे दिन उसके घर में रहता था। बरसात बाहर भी होती थी और घर में भी ...। पानी निकालते उसके हाथ टूटने लगते थे। बेदर्द जाड़ा दिन–रात घर में घुसा रहता था।" (पृष्ठ सं.–20) वह फुलवा के के प्रति कृतज्ञ होने की बजाय ईर्ष्या से जल उठता है, "फुलवा चालाक निकली। इसने सौ पापड़ बेल लिए, लेकिन राधा मोहन के हाथ से किताब नहीं छूटने दी, वरना उसकी हथेली तले हमारा हल होता आज।" (वही, पृष्ठ सं.–21)

रामेश्वर का जात्याभिमान तब देखने लायक और हो जाता है जब फुलवा उसके आतिथ्य सत्कार में उसके लिए तरह–तरह के व्यंजन परोसती है। किन्तु रामेश्वर के भीतर छिपा जातीय अहम उसे भोजन ग्रहण करने से रोक लेता है, "क्या बताऊं भाभी, मैंने दाढ़ निकलवाई थी, कल। दर्द से दोहरा हुआ जा रहा हूं।"(वही, पृ.स.–22) फुलवा द्वारा पं. माताप्रसाद के घर जाने पर वह दंग रह जाता है। उसके दंग रहने का कारण है, फुलवा की अपेक्षा पंडिताइन की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं। पंडिताइन भी फुलवा को 'फुलवा' नहीं फुलवंती सम्बोधित करती है। यहां सांभरिया जी ने 'नाम' के बहाने दलितों के इतिहास पर

बल डाला है। यह आश्चर्य का विषय है कि क्यों दलितों के नाम हमेशा बिगड़े हुए ही मिलते हैं? खैर, रामेश्वर द्वारा पंडिताइन(दादी) के कहने पर की उसके बेटे– दीपसिंह को कहीं काम दिलवा दे। तो पंडिताइन उसे कहती है– "फुलवंती की कोठी पर गया था तू?" इस पर रामेश्वर जो कहता है– "दादी, फुलवा सोने की हो जाए, रहेगी उसी जात की। मैंने तो उसके घर का पानी तक नहीं पिया। धर्मभ्रष्ट हो जाने से मर जाना अच्छा समझता है?"(वही, पृष्ठ सं.–26) यहां रामेश्वर का जातीय दंभ लावा की तरह फूट पड़ा है। इस पर पंडिताइन उसे यथार्थ से परिचय करवाती है– "तू तो कुएं का मेढ़क ही रहा रामेसरिया। अब तो पद और पैसे का जमाना है, जात–पांत का नहीं। फुलवंती का राधा मोहन कोई छोटा–मोटा अफसर नहीं है। एस.पी है, एस.पी। एक बात बताऊं तुझे। जाकर मेम साब के पांव पकड़ ले और तब तक मत छोड़, जब तक वह हां न कह दें।"(पृष्ठ सं.–26) इस तरह लेखक फुलवा कहानी के माध्यम से सवर्णवादी मानसिकता से परिचय करवाते हुए दलित स्त्री का नया धीरोदात्त रचते हैं। जो अपने साथ किये गए अपमानों को भूल अपने दुश्मनों का भी सत्कार करती है। कहना न होगा कहानी बड़ी शालीनता से जातिभेद की विषाक्त जड़ों से परिचय करवाती हुई फुलवा के विराट व्यक्तित्व के माध्यम से दलित स्त्री की चेतना से रू–ब–रू करवाती है। इसे दलित कहानियों की विशेषता कहूं या अवगुण ज्यादातर कहानियों में आक्रोश, तेवर और सवर्ण, सवर्ण, सवर्ण की लगातार जो नारेबाजी दिखती है उससे कभी–कभी ऐसा लगने लगता है कि ब्राह्मणवादी मानसिकता से ग्रसित गैरदलित की जगह अब दलित साहित्यकार भी लेने लगे हैं। एक समय था जब सवर्ण दलित, दलित, दलित कर अपनी अपनी ब्राह्मणवादी मानसिकता का परिचय दे रहे थे आज वही जगह दलित साहित्यकार ले रहे हैं और वह 'सवर्ण', 'सवर्ण' की नारेबाजी करे रहे हैं। सांभरिया जी की कहनियां बिना आक्रोश के दलित चेतना दिखाती हैं। जो दलित साहित्य की परिभाषा में बदलाव का सूचक है। प्रायः दलित रचनाकारों का मानना है–दलित साहित्य आक्रोश और तेवर का साहित्य है। पर उनसे गुजारिश है कि उन्हें एक बार सांभरिया जी की कहानियां अवश्य पढ़नी चाहिए। बिना आक्रोश के भी वे जातिभेद की गांठें ऐसे तोड़ते हैं जैसे निराला की 'तोड़ती पत्थर' की श्रमशीला ने कभी पत्थर तोड़े थे।

'इत्तफाक'(वागर्थ, फरवरी 2011) कहानी स्त्री–विमर्श के इस दौर में अपना एक अलग पाठ कायम करती है और स्पष्ट करती है कि "अन्याय का प्रतिकार अन्याय नहीं होता।" होना भी नहीं चाहिए। इस स्थिति में पूरी धरा ही अंधी हो जाएगी। हो जाएगी पूरी धरा ही रक्तारक्त। कहानी में एक बुढ़िया है जो जवानी में पति द्वारा परित्यक्त है। उसकी परित्यक्तता का कारण है। स्वयं उसके पति का कथन देखें–"भाभी बैरन थी। बोली, तुम राजकुमार जैसे हो और बहू तवे का निचला भाग–सी है। चांद–सा मुखड़ा लाऊंगी, इसे धकिया दो।" (पृष्ठ सं.– 40) भाभी का कहना था कि "मैंने उसकी एक न सुनी। उसे देहरी से बाहर धकिया कर लात मारी, 'कालाटूरी' कहीं की।' घर में घुसी गर्दन कलम कर दूंगा।" (वही पृष्ठ सं. 40) कहानी का नाम 'इत्तफाक' अपनी सार्थकता को इस तरह सिद्ध करती है कि बूढ़ा एक अपनी वृद्ध पत्नी से किसी बस में मिलता है पर वह उससे बेखबर है। बूढ़े की स्थिति फटहाली की हो चुकी है। भाभी के बच्चों– उसके भतीजों ने उसे घर से निकाल दिया है। वह अपनी बहन के यहां जा रहा है। बूढ़ी की पोती की शादी है। वह उसे अपनी जिद पर अपने घर ले आती है। बुढ़िया का बेटा नौकरी करता है। वह खुद पंच है। गांव में उसका बोलबाला है। घर लाने पर बूढ़े के प्रति दिन–पर–दिन बढ़ते प्रेम को देखते हुए बूढ़ी की बहू के भीतर भी एक अंतर्द्वन्द्व चलता रहता है जिसे बुढ़िया अपने संकेतों से खत्म करना चाहती है– "बहू कुछ गांठें होती हैं जो समय क साथ खुद–ब–खुद खुलती जाती हैं।" और गांठ खुलने का सही वक्त आता है। उस दिन आया जिस दिन बूढ़ी की पोती का कन्या दान था। बूढ़ी एक दम सजी–धजी थी, जैसे ब्याह ली आई। वह बूढ़े का हाथ पकड़ मंडप पर आती है, जहां उसे अपनी पोती का कन्यादान करना है। लोगबाग बूढ़ी के हाथ में बूढ़े का हाथ देख हक्का–बक्का रह जाते हैं, पर जल्दी ही सभी सच से रू–ब–रू हो जाते हैं–"बूढ़े के हाथ में रुपए पकड़का कर बुढ़िया ने उसका हाथ ऊपर उठाया और ऊंची टेर में खुद कन्यादान का चबोला बोला– "ये एक सौ एक रुपए कन्या के दादा रामदयाल के नाम के।"

कहानी सचमुच हृदयस्पर्शी होने के साथ चमत्कृत कर देने वाली भी है। स्त्री–विमर्श' के निकष पर कहानी के सम्बंध में अनामिका की निम्नांकित टिप्पणी देखना संगत होगा–"यह दार्शनिक आयाम है, दलित स्त्रीवाद का वही पक्ष है, जो पुरुष से निपटने में पुरुष नहीं बनता। अपना लालित्य, अपनी स्त्री–सुलभ गरिमा बनाए रखते हुए, सहज स्नेह और करुणा बरसाते हुए किसी में अपनी भूलों का पछतावा भरना एक ऐसा उपाय है जो माताएं अक्सर आजमाती हैं। वार्धक्य स्त्री को साथ रह रहे पुरुष की भी मां बना देता है। बूढ़ी नायिका सोचती है। 'कहानी में बूढ़ा तो जीवन के थपेड़े खाकर कहीं का नहीं रहा, वह हारा–थका पुरुष है। इससे क्या प्रतिशोध? किसी से भी प्रतिशोध कैसा? जो

बोया, सो काटा' का प्रकृति हिसाब कर देती है। मानवीय गरिमा तो इसी में है 'जो तो को कांटा बुवै, तोहि बोई किया है, उसके सामाजिक–आर्थिक–राजनैतिक हैसियत उसे फलों से झुकी हुई डाल की गरिमा दे देती है। इसी को तो ग्रीक नाटक में 'पोएटिक जस्टिस' कहा गया। (पृष्ठ सं. 33–34)

मैं जीती (मधुरिमा, दैनिक भास्कर,20 फरवरी, 2002) रत्नकुमार सांभरिया जी की इस कहानी पर। क्ल्याण विभाग राजस्थान द्वारा 2005 में टेलीफिल्म का निर्माण भी हुआ था। प्रस्तुत कहानी में अविहाति लड़की के गर्भ होने से लड़की के घर में जो भूचाल आता है–''धरती से बीज, औरत से पेट छुपाए नहीं छुपते हैं। औरत, औरत से कब तक छुपती।''(पृष्ठ सं.–53) उसका अंदाजा लगाया जा सकता है। कहानी में लड़की को घर–बाहर कई तरह की मानसिक समस्याएं झेलनी पड़ती है– ''कुंआरा पेट घर की आबरू की कब्र होता है।''(वही, पृष्ठ सं.–55) पर जिस लड़के ने उसकी यह दशा की उसे कोई कुछ नहीं कहता। स्वयं कहानीकार भी नहीं–शायद इस लिए नहीं कि समाज ही उनके प्रति पूरी तरह अनुदर नहीं। खासकर उस स्थिति में जहां बलत्कृत स्त्री की अस्मिता से खेलने वाला बाहर का नहीं घर का ही हो! लड़की के प्रसव के बाद–उसके बच्चे को सबसे छिपा कूड़े के डिब्बे में फेंक आता है। ऐसे में नवजात शिशु की आंखें और बदन चींटी खा जाते हैं–उसकी एक आंख भी चली जाती है। किन्तु बाद में किसी के द्वारा वह शिशुगृह के पालने में रख दी जाती है। अंततः उसकी देख–रेख शिशपाल की 'दीदी' करती हैं–मरणासन्न स्थिति में भी शनै–शनै वह जीने लगती है– नाम रखा जाता है– शोभा और अंततः मैं जीती कहानी की सार्थकता को सिद्ध करती है!

'बूढ़ी'(वागर्थ, मई 1999)– यह कहानी सामाजिक सौहार्द को दिखाती, विविधता में भी एकता पर बल देती है। कहानी में बूढ़ी की बेटी–सरिता जो बड़े घर ब्याही गयी है, का तार आया है वह बुधवार को आने को है। और बूढ़ी की पेंशन अभी आयी नहीं। पेंशन चार दिन बाद मिलेगी। फिर बेटी की खातिरदारी कैसे होगी? ऐसे में तार पढ़ने वाले मास्टर साहब से रुपया उधार न मिलने पर वह अपनी कांसे की थाली ही उन्हें बेच देती है। कांसे की थाली कोई मामूली थाली नहीं, विगत साठ वर्षों की स्मृतियां उस थाली से जुड़ी हैं, ''उसकी मां की, उसके पति की। यही एक टुकड़ा भर याद रह गई थी, जिसे संजोकर रखा हुआ था, उसने।''(वही, पृ.सं.–32) कथाकार कहानी में चुटीलता और गुदगुदी पैदा करते वाक्यपुटों को सम्बद्ध भी करते हैं। वे कांसे की थाली से जुड़ा एक प्रसंग और उल्लेखित करते हैं, जो कहानी को मर्मभेदी बनाती है, ''सुहागरात की रस्मोरिवाज थी। औरतों ने पति–पत्नी दोनों को छप्पर में बंद कर दिया था। चुन्नी दस साल की थी। उसका पति नानक ग्यारह का था। दोनों ने इसी थाली में देशी घी में डूबा चूरमा होड़–तोड़ छक कर खाया था और फिर मुंह पर हाथ फेरकर देर रात तक पकड़ा–पकड़ी का खेलते रहे थे। जब हार थक कर चूर–चूर हो गये, ब्याह में मिली जूट की जेवरी की खाट पर पति–पत्नी दोनों करवट बदल कर सो गए थे, जैसे भाई–बहन सोते हैं।''(पृष्ठ सं.–32) इतना ही नहीं थाली बेचते आसमान की ओर ताकते हुए दिवंगत पति से जो कहती है उसकी एक मार्मिक झलक देखी जाए–''कोख मेरी थी। बेटी तुम्हारी है। हिस्सा है, बराबर–बराबर। जब मैं तुम्हारे पास आऊं, एक–एक बात का लेखा ले लेना, लेकिन यह मत पूछना– 'थाली क्यों बेची, चुन्नी।''(वही पृ.सं.–32) बूढ़ी को ज्ञात होता है कि बस स्टैण्ड काफी दूर है ऐसे में उसकी बेटी कैसे आयेगी? उसकी कमर भी झुकी हुई है। ऐसे में वह बाबू खां से अपनी बेटी को तांगे पर बैठा कर लिवा लाने की जिरह करती हैं। किन्तु बाबू खां यह कह मना कर देता है, कि वह तांगा उतार चुका है उसका और उसके घोड़े का अपना उसूल है–एक बार तांगा उतर जाने पर वह दोबारा नहीं जाता। किन्तु बूढ़ी घोड़े के नजदीक जाकर उसके कान में कहती है–''घोड़ा बेटा, मेरी बेटी आएगी। वह बड़े घर में ब्याही है। पैदल नहीं चलती। तेरे गुन गाऊंगी।'' घोड़ा हिनहिना कर अपनी रजामंदी प्रकट करता है। बाबू खां आश्चर्यचकित रह जाते हैं। एक बार किसी के जाचगी होने को थी। पर घोड़ा तैयार न हुआ और लगा रह–रह अपनी दुलत्ती चला–अपनी न जाने की असहमति दर्शाने। पर बूढ़ी के मामले में उसकी हिनहिनाहट सुन उसकी रजामंदी को बाबू खां समझ जाता है। बाबू खां बूढ़ी को अपनी गाड़ी पर बैठा उसकी बेटी को लिवा लाने को बस स्टैण्ड की ओर बढ़ जाता है। यहां सांभरिया जी ने पशुओं में जो मानवीय संवेदना दिखलायी है वह अपने आप में अनूठी है। कवियों में महादेवी वर्मा और कथाकारों में प्रेमचंद और विदेशी लेखकों में टॉल्सटॉय के यहां यह भाव देखने को मिलते हैं। बस स्टैण्ड की ओर बढ़ती हुई बूढ़ी की नजरें जिस किसी सम्भ्रांत स्त्री पर पड़ती, वह उसे उसकी बेटी ही लगती। पर पास आने पर वह निराश हो जाती है–वह कोई और होती। बूढ़ी की बेटी नहीं आयी। अंततः बाबू खां अपना तांगा बूढ़ी के घर की ओर मोड़ लेता है। कहानी का अंत सौहार्द को दिखाता है। बूढ़ी की बेटी नहीं मिली पर बूढ़ी को बाबू खां का मेहनताना देना उचित लगता है। बूढ़ी उसकी ओर पैसे बढ़ाती

है, किन्तु बाबू खां यह कह पैसे लेने से इंकार करता है, "बूढ़ी, तुम्हारी बेटी आई नहीं, पैसे किस बात के।"

यहां ओमप्रकाश की 'सलाम' कहानी का स्मरण हो आना स्वाभाविक हो जाता है, जहां उस कहानी के अंत में एक तथाकथित चूहड़े जात के यहां जन्मा दस से बारह वर्षीय दीपू बाभनों की भाषा बोलता है। बूढ़े के कहने पर, "दीपू आ ..... ले रोटी खा ले।" दीपू का प्रत्युत्तर है, "न, मैं नहीं खाता, इसे खाए मेरा मूत।" बूढ़े के पूछने पर, "पर क्यों, क्या हुआ इसमें?" लड़का पुनः जवाब देता है–"मुसलमान के हाथ की बनी रोटी मैं नहीं खाता।" बूढ़े के बताने पर भी कि वह मुसलमान नहीं हिन्दू है। फिर भी लड़का साफ इंकार करता है– "नहीं, वह मुसलमान है, मैं नहीं खाऊंगा उसके हाथ की बनी रोटी। मैं नहीं खाऊंगा....।" समझ नहीं आता सदियों से गैरदलितों द्वारा यह व्यवहार दलितों के साथ होता रहा– गैरदलितों की नजर में दलित अस्पृश्य थे, आज भी यह छुआछूत के उदाहरण गांव तो गांव महानगरों में भी देखने को मिल जाते हैं।

एक समय था जब सवर्ण दलितों के हाथ का खाना तो दूर पानी भी नहीं पी सकते ऐसी घटनाएं आज भी यदा–कदा देखने को मिल जाती हैं।– जलती हुई चिता को गैरदलित आकर बुझवा देते हैं– यह कह कि यह दलितों के लिए नहीं है। पर दलित साहित्य के पुरोधा कहे जाने वाले ओमप्रकाश वाल्मीकि ने यही व्यवहार दलित पात्र दीपू के माध्यम से मुसलमानों के प्रति करवाया है। यहां दलित पात्र दीपू के लिए मुसलमान के हाथ का बना खाना अस्पृश्य है। यद्यपि कहानी शुरू से अंत तक दलित चेतना लेकर चलती है, किन्तु अचानक कहानी में दीपू नामक दलित पात्र के आने से कहानी पूर्णतः दलित विरोधी और अम्बेडकरवादी चेतना से दूर हो जाती है। स्वयं ओमप्रकाश वाल्मीकि भी किसी कहानी में दलित चेतना के लिए विभिन्न बिन्दुओं में प्रेम–भाईचारा और सौहार्द की भावना को महत्त्वपूर्ण बिन्दु मानते हैं। उन्हीं के शब्दों में देखा जाए, "स्वतन्त्रता, भाईचारा और सामाजिक न्याय, सामाजिक बदलाव की पक्षधरता" दलित चेतना के विशिष्ट बिन्दू हैं। (ओमप्रकाश वाल्मीकि/दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ/पृ.सं.– 71) 'सलाम' कहानी का अन्तिम निष्कर्ष जो दीपू के कथन से दिखता है उससे यही ज्ञात होता है कि दीपू के भीतर मुसलमानों के लिए घृणा भरी है। अतः यहां न तो दलित का मुसलमानों के प्रति भाईचारा दिखता है और न ही न्याय। पता नहीं इस कहानी के माध्यम से ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित साहित्य का कौन–सा नया सौन्दर्यशास्त्र गढ़ने की कोशिश की है।

जहां तक रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों के शिल्प की बात है तो कहना न होगा सांभरिया जी की कहानियों के शिल्प में पर्वतों–सी मजबूती, भाषा में नदियों–सा बहाव है। विषय में इन्द्रधनुष के रंगों–सी सराबोरता है। भाषा में बिम्ब, प्रतीक, संकेत, मुहावरे, लोकोक्तियों के साथ कई स्रोतों से शब्द आते हैं और बिना किसी पदानुक्रम के एक पंगत में आकर बैठ, समता के साथ समरसता का कैनवास रचते हैं। (जिन्हें कहानियों के विश्लेषण में सांभरिया जी कहानियां से पंक्तियां लेकर दिखाया है) इनकी कहानियां अम्बेडकर की समता, स्वतंत्रता के साथ बुद्ध की करुणा सम्बलित न्याय की पक्षधर हैं। इसलिए वे बिना आक्रोशित किये अपने दलित होने के धर्म और कर्म को इस तरह निभाते हैं। उनकी यही विशेषता उन्हें अपने समकालीनों में विशिष्ट होने के साथ सर्वग्राही बनाती है। जिसका एक कारण यह भी है कि वे अपने समकालीनों की अपेक्षा अपनी कहानियों के रेंज को भी व्यापक बनाते हैं– प्रकृति प्रेम, पशुओं के प्रति संवेदना के साथ अल्पसंख्यकों के प्रति भी सौहार्द की भावना उनकी कहानियों में झरने के पानी की तरह कलकल छलछल बहती है और पाठक 'तुमुल कोलाहल कलह में' भी 'हृदय की बात' गालिब का शेर उधार लेकर कहने को विवश होता है–इस सादगी पे कौन न मर जाए ए खुदा। लड़ते हैं और हाथों में तलवार भी नहीं।

46.रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में अभिव्यक्त सामाजिक विषमताओं के प्रति विद्रोह

–डॉ 0राजमुनि
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषा विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

कोई भी साहित्यकार अपने समाज से अलग रहकर जी नहीं सकता। जिस सामाजिक परिवेश में साहित्यकार का जन्म होता है, पलता–बढ़ता है उसकी अभिव्यक्ति उसके साहित्य में होना लाजमी है। विशेष रूप से सामाजिक विषमताओं की आग में जो रचनाकार जलता है वही उसको मिटाने का प्रयास करता है। पिछले लगभग चार–पांच दशक के समकालीन विमर्श ने अनेक प्रकार की सामाजिक विसंगतियों को बेनकाब ही नहीं किया बल्कि उनके प्रति विद्रोह का बिगुल भी बजाया है। डॉ सुशीला टाँकभौरे, मोहनदास, नैमिशराय, माता प्रसाद, ओमप्रकाश वाल्मीकि, मलखान सिंह आदि ऐसे अनेक रचनाकार हैं जो सामाजिक विद्रूपताओ से जूझते हुए समतामूलक समाज का निर्माण करना चाहते हैं। इसी कड़ी में एक चर्चित हस्ताक्षर हैं रत्नकुमार सांभरिया। वे अपनी नाटक, कविता, कहानी आदि अनेक विधाओं के माध्यम से सामाजिक विषमताओं से विद्रोह करते हुए नजर आते हैं।उनकी यदि कहानियों की बात की जाए तो एक से बढ़कर एक हैं जो अपने सामाजिक परिवेश से पाठकों को रूबरू कराती हैं। इतना ही नहीं सभी प्रकार की विसंगतियों से किस प्रकार लड़ा जाए यह भी संदेश देती हुई नजर आती हैं। उनकी कहानियां एक ओर जहां सवर्ण–दलित संघर्ष को दर्शाती हैं वहीं दूसरी ओर धार्मिक–अंधविश्वास, जातिगत–भेदभाव, लिंगभेद जैसी अनेक सामाजिक विसंगतियों का पर्दाफाश करती हैं। लेखक इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखता है कि इन विसंगतियों से कैसे मुकाबला किया जाए और किस प्रकार एक बेहतर समाज का निर्माण हो सकता है। रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में मानवीय संवेदना, कदम–कदम पर दिखाई देती है। इनकी कहानियां अपने स्वाभाविक परिवेश के साथ पाठक के सामने बहुत ईमानदारी के साठ प्रस्तुत होती हैं।

सांभरिया की कहानियों के पात्र प्रतिकूल परिवेश में भी अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिए निरंतर संघर्षरत दिखाई पड़ते हैं। आजादी के लगभग 7 दशक पूरे होने के बाद भी धर्म और ईश्वर के नाम पर दलितों का, किसानों, मजदूरों का, नारी का जो सामाजिक शोषण हुआ था, आज भी वह यथावत जारी है। यही वजह है आजाद भारत में आज भी 85: बहुजन आबादी को जाति, धर्म, ईश्वर एवं भेदभाव से आज भी मुक्ति नहीं मिल पाई है। सांभरिया जी के लगभग 24 कहानियां हैं जो अपनी वास्तविक सांस्कृतिक विरासत के साथ मानवीय प्रेम के प्रति बराबर आग्रह बनाए रखती हैं। लेखक की सबसे प्रसिद्ध कहानी है, 'फुलवा'। यह वह कहानी है जो हिंदी साहित्य की बहुत प्रसिद्ध पत्रिका 'हंस' के मई 1977 वाले अंक में प्रकाशित हुई। इसमें बताया गया है कि किस प्रकार 'फुलवा' सामन्ती व्यवस्था से संघर्ष करते हुए अपनी पीढ़ियों का नव निर्माण करती है। 'फुलवा' का पति जमीदार के बैल द्वारा मार दिया जाता है लेकिन 'फुलवा' ने इन हालातों में अपने बेटे राधामोहन की शिक्षा को कभी रुकने नहीं दिया, क्योंकि वह अच्छी तरह से समझ चुकी है देख चुकी है, भूगत चुकी है कि बिना शिक्षा के जीवन की कोई गति नहीं होती। वही बेटा राधामोहन कठिन संघर्ष के बाद एस.पी. के राजपत्रित पद पर आसीन होता है और सब लोग शहर में जाकर बस जाते हैं। जहां पर सभी लोग सुख सुविधा पूर्वक अपने जीवन को जीते हैं। लेकिन शहर में आने के बाद भी उनके अंदर किसी प्रकार का कोई अहंकार और घमंड नहीं होता है।

गैर दलितों और दलितों की मानसिकता में जमीन–आसमान का फर्क है। भारत का इतिहास इस बात का साक्षी है कि दलितों ने आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक अत्याचारों को सहन करते हुए जीवन जिया है। इसके बाद भी दलितों ने मानवीय व्यवहार एवं सामान्य शिष्टाचार को कभी अपनी जिंदगी से अलग नहीं किया। इसके विपरीत गैर दलित मरते दम तक नफरत और भेदभाव की मानसिकता से ग्रसित रहते हैं। इसका जीता–जागता उदाहरण है जमीदार रामेश्वर। शहर पहुंचकर जब रामेश्वर की मुलाकात आयरन लेडी एवं एस. पी. राधामोहन की मां फुलवा से होती है। तब फुलवा अपने आलीशान बंगले के बारे में विस्तार से बताते हुए कहती है– "रामेश्वर जी शाम को हम सब यहीं बैठकर भोजन करते हैं। हमारे मेहमान भी यही भोजन करते हैं। आज रात तुम भी यहीं बैठकर यही भोजन करोगे। रामेश्वर को सुई सी चुभी। उसके यहां तो मेहमानों को चटाई बिछती है।"1(रत्नकुमार सांभरिया की चयनित कहानियां: डॉ अनामिका,अनामिका पब्लिशर्स एंड डिसटीब्यूटर्स, प्राइवेट लिमिटेड, दरियागंज नई दिल्ली –पृष्ठ संख्या 18) कुछ देर बाद रामेश्वर जब फुलवा के आलीशान बंगले को अच्छी तरह से देखता है और उसके द्वारा की गई मेहमान नवाजी को देखकर अंदर ही अंदर भूसे की आग की तरह सुलगता रहता है। उसी समय वह फुलवा के साथ किए गए अपने अमानवीय कुकर्मों को याद भी करता है। किस तरह से मैंने फुलवा को पानी तक नहीं पीने दिया। फुलवा

यदि चाहती तो उस जमीदार को अपने दरवाजे से ही ठोकर मार कर भगा देती लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। क्योंकि दलित कभी बदला नहीं लेते, अच्छे बदलाव की नींव रखते हैं। भले ही कोई उसे पसंद करें या ना करें। जब रामेश्वर उसके घर में और अंदर प्रवेश करता है तो वह देखता है कि– "लड़की ने पढ़ाई छोड़कर रामेश्वर को नमस्कार की और वह पुनः पड़ने लग गई। दूसरे कमरे में फुलवा का पोता अध्ययनरत था। अपनी दादी के साथ आया देखकर रामेश्वर को उसने नमस्कार किया।" 2(वही पृष्ठ संख्या –19)

'फुलवा' कहानी के माध्यम से लेखक स्पष्ट करता है कि सवर्ण अपना स्वार्थ पूरा करने के लिए किसी भी स्तर तक किसी के सामने गिर जाते हैं। इतना ही नहीं वह अपने सम्मान (जो उन्होंने कल्पित कर रखा है।) को भी गिरवी रख देते हैं। सवर्ण लोग अपने अहंकार की आग में सुलगते रहते हैं जबकि शोषित पीड़ित लोग शिक्षा प्राप्त करके कुछ आम की डाली की तरह झुक जाते हैं जो फलों से लग गई होती है। दलितों का सदियों से मानवीय गुणों के प्रति आग्रह रहा है। वे चाहते हैं कि एक ऐसा बेहतर समाज बन सके जिसमें सभी लोग चैन की सांस ले सकें। रामेश्वर को फुलवा का सर्व–सुविधा संपन्न बंगला मन नहीं भाया बल्कि पंडिताइन का गाय भैंस व बकरी की बदबू से भरा बूचड़खाना पसंद आया। यह कहानी अंत में पंडिताइन और रामेश्वर के संवाद के माध्यम से संदेश देती है कि यदि किसी को आगे बढ़ना है तो बामनों से सीखे। वे अपना काम करवाने के लिए किसी भी जाति–धर्म से किसी भी प्रकार का समझौता कर लेते हैं यही बात इस कहानी में पंडिताइन रामेश्वर को समझाती है लेकिन जिसने सदैव श्रम से जीवन जिया हो वह सम्मान के साथ समझौता नहीं कर सकता। सांभरिया जी अपनी कहानियों में जातिगत वैमनश्य को बड़ी ईमानदारी के साथ स्वीकार करते हैं। आप की कहानियों के विषय में अनेक आलोचकों की राय अलग–अलग है। डॉ प्रमोद मीणा सांभरिया जी की कहानियों के विषय में स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि– "सांभरिया जी उन दलित लेखकों में से नहीं हैं,जो सरलीकरण करते हुए दलितों की शोचनीय स्थिति के लिए मात्र सवर्णों को ही दोषी ठहरा और उनके विरुद्ध विषवमन करके दलित जातियों का दामन पाक–साफ दिखा अपने लेखकीय कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। उनकी कलम में आत्मावलोकन और आत्मालोचन का विवेक पाया जाता है। अपनी दोनों कहानियाों 'चमरवा, और बिपर सूदर एक कीने , मैं सांभरिया इस कटु सच्चाई को व्यंजित करते हैं। कि नीची जाति के लोगों में अगर स्वयं को ऊंची जाति का दिखाने की संस्कृति घर कर जाए तो वे भी ऊंची जाति वालों से भी ज्यादा जातिवादी हो जाते हैं।"3(समाजदृष्टा साहित्यकार रत्नकुमार सांभरिया भाग–2, डॉ विवेक शंकर, डॉ अनीता वर्मा, दृष्टि प्रकाशन प्रताप नगर, सांगानेर, जयपुर, संस्करण 2020, पृष्ठ संख्या 44)

भारत में जातिगत भेदभाव की नींव मनुवादी व्यवस्था की देन है। इस व्यवस्था की असली जड़ है धर्म और ईश्वर। धर्म के नाम पर आज भी जातिगत भेदभाव का धंधा फल–फूल रहा है। जातिगत व्यवस्था ऐसा कैंसर जो दलित और गैर दलित को ही अलग नहीं करता बल्कि दलित– दलित को भी टुकड़े–टुकड़े कर रहा है। स्त्री के प्रति स्त्री में भी नफरत की आग सुलगा रहा है। सांभरिया की 'चमरवा' कहानी दलितों के अंदर फैले जातिवाद की पोल खोल कर रख देती है। इस कहानी का एक प्रमुख पात्र है 'दरपनदास'। यह जीवन भर अपनी चमार जाति के श्रम एवं सहयोग से खाता–कमाता है लेकिन अपने आपको अन्य चमारों एवं दलितों से श्रेष्ठ समझता है। जैसे एक बामन अपने आप को सबसे श्रेष्ठ समझता है। यह चमारों के घर लगभग सभी धार्मिक अनुष्ठान करवाता है। इसी वजह से लोग इसे बहुत सम्मान देते हैं। लेकिन यह अपने ही भाइयों से अछूतों जैसा व्यवहार करता है। उनके यहां भोजन तक नहीं करता है। वह अन्य बामनों की भांति अपने लोगों से आर्थिक लाभ बराबर लेता है लेकिन उन्हें सदैव हेय दृष्टि से ही देखता है। उसके इन कुकर्मों का पता जब उसके लड़के करण को चलता है तो उसे समझाता है। लेकिन दरपनदास अपनी आदत से मजबूर है। क्योंकि उसकी मानसिकता पूरी तरह से जातिवादी कीचड़ में धंस चुकी है। और अंत में करण अपने पिता दरपनदास के इस व्यवहार की वजह से घर छोड़कर दूर चला जाता है। इसी समय के बीच दरपनदास की पत्नी नोना का देहांत हो जाता है। तब दरपन जैसा नकली बामन असली बामन के पास जाता है और उसका दाह संस्कार कराने के लिए उन से निवेदन करता है। लेकिन कोई भी असली ब्राह्मण उसके यहां दाह संस्कार में शामिल नहीं होता है। कोई भी ब्राह्मण जाति का व्यक्ति उसकी पत्नी को छूना तो दूर देखने भी नहीं आता है। इस समय वह रेगिस्तान के प्यासे पक्षी की भांति ऊपर–नीचे देखता है जिसे सहायता रूपी दो घूंट पानी मिले, लेकिन वह तड़पता रहता है। इसके बाद भी उसे धर्मशास्त्र ही याद आते हैं– "नोना तुझे गंगा मैया में बहाकर आना मंजूर, तेरी अर्थी चमार नहीं छुएंगे। जब जीते जी छोटी जात नहीं छुआई , तेरी मृत देह को छूत क्यो ? उसमें जात्याभिमान पगा है –"नोना ब्राह्मणी है ना तू, ब्राह्मणों के हाथों स्वर्ग जाएगी। " 4(वही तीन नंबर वाला पृष्ठ संख्या 159)

सांभरिया की 'चमरवा' कहानी को देखकर, याद आती है सूरजपाल चौहान की 'नया ब्राह्मण', 'बहुरूपिया' कहानी जो दलितों के आपसी मतभेदों को उजागर करती है। और यह नए ब्राह्मण–ब्राह्मणों की प्रत्येक बात को आंख, नाक, कान बंद करके स्वीकार कर लेते हैं। इसके वे शिकार भी होते हैं। यह नफरत यहीं पर नहीं रुकती बल्कि इससे आगे भी निकल जाती है। इस प्रकार के नए ब्राह्मण अपनी जाति के लोगों से ही नहीं अलग रहते बल्कि अपने परिवार के सदस्य जैसे भाई–बहन, माता–पिता एवं रिश्तेदारों से भी बहुत दूरी बनाए रखते हैं। यही वजह है कि भारत देश के 85: बहुजन लोग अपनी झूठी शान शौकत के चक्कर में पड़कर जीवन भर घुट–घुट कर जीते हैं उनके साथ सहयोग करने के लिए भी कोई तैयार नहीं रहता है। न वे दलित हो पाते हैं और न वे ब्राह्मण बन पाते हैं।

सांभरिया ने हिंदू धर्म के अंधविश्वासों एवं कर्मकाण्डो के क्रियाकलापों को बड़ी ईमानदारी के साथ बेनकाब किया है। इन्हीं धार्मिक रीति–रिवाजों के आधार पर गैर दलित लोग दलितों को आदमी तो क्या जानवर की तरह संवेदनशील भी नहीं समझते। इन से अच्छा तो जानवर है जो कम से कम विश्वास करने योग्य होता है। भारत शायद दुनिया का ऐसा देश होगा जहां पर जीते जागते व्यक्ति को छोड़कर निर्जीव पत्थरों को मान सम्मान दिया जाता है और सोने–चांदी तथा धन–संपत्ति से उनको ढक दिया जाता है। लेखक इस व्यवस्था पर प्रश्न करता हुआ कहता है कि यदि ऐसा नहीं है तो दलितों की बस्ती, दलितों के पनघट, दलितों के खेत, दलितों के शमशान अलग क्यों होते हैं ? यदि किसी जाति समुदाय या व्यक्ति को जीवन भर मानसिक गुलाम बनाना हो तो उसे शिक्षा से दूर रख दीजिए और धार्मिक विश्वास और ईश्वर की अफीम चटाते रहिए। पेरियार ई वी रामासामी विश्व के ऐसे तर्क शास्त्री विद्वान थे जो बराबर धर्म और ईश्वर के विषय में अपना स्पष्ट नजरिया रखते हैं। वे धर्म के विषय में स्पष्ट करते हुए कहते हैं– "धर्म लोगों को भीरू बनाता है। धर्म चाहे जितना अन्याय करें लोगों को उसी धर्म का भय दिखाकर ऐसी घटनाओं से जुड़ा सच नहीं जानने दिया जाता है। सबसे बढ़कर यह एक व्यक्ति को दूसरे के श्रम से जुटाए गए पैसों पर जीवन बिताने के लिए प्रोत्साहित करता है। एक सच्चा शैव कहता है कि उसके तमाम प्रकट छल के बावजूद अगर पवित्र भस्म या भभूत का एक कतरा भी उस पर छिड़क दिया जाय , तो वह सारे पापों से मुक्त हो जाता है और वह सीधे भगवान शिव के कैलाश पर्वत पर जा सकता है।"5 (धर्म और विश्व दृष्टि–पेरियार ई वी रामासामी–राधाकृष्ण प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद, संस्करण 2022 पृष्ठ संख्या 78)

'मुक्ति' और 'माँड़ी' दोनों ऐसी ही कहानियां हैं जो धार्मिक पाखण्डो एवं अंधविश्वास से कैसे मुक्ति मिले इसका बराबर ध्यान रखती हैं। दोनों कहानियों में धार्मिक कर्मकाण्डो का खुलकर विरोध किया गया है। 'मुक्ति' कहानी को यदि ध्यान से देखा जाए तो हम पाएंगे कि किस प्रकार धर्म के नाम पर मनुवादी ब्राह्मण भोले भाले एवं महंती दलितों को शोषित, पीड़ित लोगों को इमोशनल ब्लैकमेल करते हैं।

एक बार किसी धार्मिक अवसर पर गांव में रथ यात्रा का आयोजन किया गया जिसमें एक पाखण्डी महंत सवार था। उसी समय जब गांव में रथयात्रा आगे बढ़ रही थी। तभी आगे से एक सांड़ आ जाता है। सांड़ को देखकर महंत के पैरों तले जमीन खिसक जाती है और उसके प्राण अधर में लटक जाते हैं। इस समय संकट की घड़ी में उसे याद आता है ताकतवर नानकराम मेहतर। वह महंत हमेशा की तरह बड़ी चतुराई के साथ कहता है– "नानकराम ,भगवान की सवारी पीछे नहीं जा सकती अब तुम सांड़ को भगाओ, राह बनाओ, धर्म बचाओ। धर्म और भगवान के नशे में अंधा नानकराम अपने पहलवान बेटे चंदू के साथ सांड़ का सामना करता है। इस समय वह मन ही मन सोच रहा है कि इस प्रकार के पवित्र धार्मिक सहयोग में यदि मेरा बेटा मर भी गया तो शहीद कहा जाएगा और यदि वह जीवित बच गया तो गांव का नायक बन जाएगा, गांव में वह भगवान की तरह पूजा जाएगा। इस संग्राम में बेटा चंदू मारा जाता है। इसके कुछ दिन बाद जब वह मंदिर में जाता है तब पाखंडी महंत कहता है–"अरे नानकिया , मेहतर है तू ! झाड़ू लगाने वाले हाथ मूर्ति नहीं छूते।"6 (दलित समाज की कहानियां–रत्नकुमार सांभरिया, पृष्ठ संख्या– 219) इसी प्रकार की एक कहानी 'माड़ी'। इस कहानी के माध्यम से लेखक ने धर्म के नाम पर फैले संस्कार, संस्कृति एवं धार्मिक कर्मकांडो को जीवन एवं समाज के लिए दो कौड़ी का भी नहीं समझा है। इसी कड़ी में एक और चर्चित कहानी है 'बदन–दबना' इस कहानी में भी लेखक ने छुआछूत जातिगत भेदभाव, सामाजिक एवं आर्थिक शोषण का खुलकर चित्रण किया है।

किसी सभ्य देश की पहचान वहां के समाज से होती है। बेहतर समाज का निर्माण स्त्री पुरुष के सामन्जस्य से होता है। भारत जैसे देश में आजादी के पहले और आजादी के बाद भी धर्म के नाम पर स्त्री को सदैव भावनात्मक रूप से कैद किया गया है। यह वही देश है जहां एक तरफ कहते हैं 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता' वहीं दूसरी ओर धर्म के नाम पर मंदिरों

में ,मठों में औरतों का शोषण किया जाता है। धर्म के नाम पर जो रूढ़ियां एवं परंपरा बनाई गई हैं उनमें नारी को सदैव हेय दृष्टि से ही देखा गया है। यदि बात की जाए दलित आदिवासी एवं अन्य शोषित नारियों की तो वह तीन तरह से मुख्य रूप से शोषण का शिकार हुई हैं– धर्म के आधार पर शोषण, जाति के आधार पर शोषण, आर्थिक रूप से कमजोर, लिंग भेद के आधार पर शोषण आदि। डॉ सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा 'शिकंजी का दर्द' एवं कौशल्या वैशंत्रयी की 'दोहरा अभिशाप' आदि अनेक दलित स्त्री की आत्मकथाएं हैं जो उसका जीता जागता प्रमाण है। डॉ अनामिका सांभरिया की कहानियों में स्त्री चेतना को व्यक्त करती हुई लिखती हैं–"दार्शनिक आयाम दलित स्त्री का वही पक्ष है, जो पुरुष से निपटने में पुरुष नहीं बनता। अपना लालित्य अपनी स्त्री–सुलभ गरिमा बनाए हुए, सहज स्नेह और करुणा बरसाते हुए किसी में अपनी भूलों का पछतावा भरना एक ऐसा उपाय है जो माताएं अक्सर आजमाती हैं।"7 (स्त्री –विमर्श, रत्नकुमार सांभरिया की चयनित कहानियां–डॉ अनामिका, अनामिका पब्लिशर्स एवं डिसटीब्यूटर्स दरियागंज नई दिल्ली 02 प्रथम संस्करण 2021,पृष्ठ संख्या–11) इतना ही नहीं बुढी फुलवा, चपड़ासीन,इत्तेफाक, बात, मेरा घर, राइट टाइम, नट की बेटी एवं मदारिन आदि अनेक ऐसी कहानियां हैं जो नारी जीवन के विविध संघर्षों से गुजरते हुए एक बेहतर समाज का रास्ता खोलती हुई नजर आती हैं।

शिक्षा ही वह साधन है जिसके माध्यम से एक बेहतर समाज का निर्माण किया जाना संभव है। विश्व के अनेक महान विद्वानों एवं चिंतकों ने शिक्षा के महत्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है– 'शिक्षा दुनिया का वह ताकतवर हथियार है जो पूरे विश्व को बदल सकता है लेकिन इसका प्रयोग बदला लेने के लिए नहीं बल्कि समाज में बदलाव लाने के लिए किया जाना चाहिए– "नेल्सन मंडेला"। इसी तरह से विश्व के सिंबल ऑफ नॉलेज माने जाने वाले विद्वान डॉ भीमराव अंबेडकर शिक्षा के महत्व को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं– 'शिक्षा वह शेरनी का दूध है, जो पियेगा वही दहाड़ेगा। रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों के पात्र भी विषम से विषम संकट में भी शिक्षा का दामन नहीं छोड़ते हैं। भले ही उनके पात्र कम शिक्षित या अशिक्षित हैं लेकिन वे अपने सुने एवं भोगे हुए अनुभव के आधार पर ही भांप जाते हैं कि जीवन में शिक्षा के बिना कोई गति नहीं है। एक बहुत चर्चित कहानी है 'बात' इस कहानी की मुख्य पात्र है 'सुरती'। सुरती का जब पति मर जाता है तब उसके बाद जीवन में शोषण, अन्याय, अत्याचार के अनेक तूफान आते हैं जिनसे वह टकराते हुए आगे बढ़ती है और अपने बेटे को शिक्षा से नहीं रोकती है। इसके अलावा अनेक ऐसी कहानियां हैं जो शोषण एवं अन्याय को नकारते हुए उसका प्रतिरोध करती हैं उसके खिलाफ आवाज उठाती हैं।

साहित्य और समाज का संबंध जन्मजात होता है। यह हम कह सकते हैं कि समाज से ही साहित्य का जन्म होता है जैसा समाज होगा वैसा ही साहित्य सृजन होगा। वास्तव में सफल एवं महत्वपूर्ण रचनाकार वही है जो दर्द भी खोजें और उसे खत्म करने की दवा भी अर्थात जैसी बीमारी वैसा इलाज भी करना जरूरी हो जाता है। रत्नकुमार सांभरिया भी ऐसे ही रचनाकार हैं जो समाज के शोषित, पीड़ित, मजदूर, स्त्री दलित आदि की पीड़ा को सबके सामने उठाते ही नहीं हैं बल्कि उसका स्वस्थ समाधान देने की पूरी कोशिश करते हैं। और वे सफल होते हैं। सांभरिया की कहानियां व्यक्ति एवं समाज के प्रत्येक पहलू से टकराती हुई विकास की नई नई संभावनाओं की तलाश करती हुई नजर आती हैं। इनकी एक कहानी है–'बीपर सुदर एक किने।" यह कहानी संपूर्ण समाज की विसंगतियों को दरकिनार करते हुए समतामूलक समाज के निर्माण का रास्ता साफ करती है। एक ऐसा समाज जिसमें ऊंच–नीच, भेदभाव न हो सभी लोग प्रेम पूर्वक मिलकर साथ–साथ रह सकें। इसमें दलित और शोषित एवं गैर दलित सभी लोग चाहते हैं कि सभी लोग अपने परंपरागत व्यवसाय को छोड़कर सम्मानजनक व्यवसाय करें। और समय के साथ–साथ समाज में धीरे–धीरे लोगों में आधुनिक शिक्षा के माध्यम से चेतना का विकास हो रहा है और लोग अपने पुराने व्यवसाय को छोड़कर नए–नए व्यवसाय की ओर ध्यान दे रहे है। कहना न होगा कि सांभरिया की कहानियां स्वतंत्रता समानता एवं बंधुत्व की त्रिवेणी का तहे दिल से सम्मान करती हुई नजर आती है।

47.दलित समाज की कहानियाँ : एक अध्ययन

–नीतू, हिसार

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में 'दलित' शब्द का वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। मानव सभ्यता एवं सामाजिक व्यवस्था के बदलाव सदैव समाज को प्रभावित करने का कार्य करते हैं। इसी प्रभाव की संवदेना को 'दलित समाज की कहानियाँ' में देखा जा सकता है। इसके लेखक रत्नकुमार सांभरिया स्वयं दलित वर्ग से हैं, इन्होंने अपने जीवन में इस प्रभाव को भोगा है और जीया है। इस प्रकार जीवन के सभी पहलुओं का समन्वित स्तर अपनी कहानियों में व्यक्त किया है। संवेदना की दृष्टि से ये कहानियाँ कालजयी सी प्रतीत है और जीवन के आधुनिक युग बोध तक अपनी युग सीमा निर्धारित करती नजर आती हैं। ये कहानी 'चेतना कहानी' का विपर्यय हैं, एक आधुनिक के साथ एक नए युग का निर्धारण करती हैं। रत्नकुमार सांभरिया अपनी भाव भूमि के सृजक हैं। उनके अपने भाव हैं, अपने अनुभव हैं, अपने संस्कार है और अपनी जमीन, इन्होंने इस जमीन को स्वयं से उर्वरा बनाया है और इस उर्वरा जमीन में दलित समाज की खून–पसीने की गंध है। यही गंध जीवन के विविध पक्षों के साथ इन कहानियों में देखी जा सकती है।

जीवन न्याय, समाज की समानता, नैतिकता, समता और संतुष्टि के आग्रह का नाम है। प्राचीन सामाजिक व्यवस्था के परम्परागत दोषों के चलते सामाजिक संदर्भ में वर्ग भेद उत्पन्न हो गया, जिससे इस समाज को स्वर्ण और दलित दो वर्गों में विभाजित कर समाज में एक दीवार खड़ी कर दी। इस दीवार सामाजिक और मूल्यों का दलन कर डाला। यही दलन दलित वर्ग की पीड़ा का द्योतन करता है। रत्नकुमार सांभरिया इसी दलन की अभिव्यक्ति करने को सृजन कर्म की ओर प्रवृत होते है। वे सामाजिक रिश्तों में स्नेह एवं सहयोग के साथ मूल्यों को तलाशने वाले साहित्यकार हैं। अंधविश्वास, कुरीतियों, कर्मकांड, रूढ़ियों, रूग्ण तंत्र उनकी कहानियों के कथ्य हैं।रत्नकुमार सांभरिया का जन्म वर्ष 1956 में हरियाणा के रेवाड़ी में हुआ था, जिसने सामान्य दलित परिवार की सामाजिक स्थिति को महसूस करते हुए लिखते हैं कि जीवन का परिवेश चाहे न्यून हो परन्तु लक्ष्य विकासोन्मुखी होना चाहिए।

'दलित समाज की कहानियाँ' कहानी संकलन रत्नकुमार सांभरिया की महत्त्वपूर्ण कहानियों का संकलन है, यह अनामिका पब्लिशर्श एवं डिसट्रीब्यूटर (प्रा.) लिमिटिड दिल्ली–110002 से प्रकाशित है। इस संकलन में चौबीस कहानियां संकलित है। इसके शीर्षक फुलवा, बूढ़ी, आखेट, बकरी के दो बच्चे, गूंज, इत्त्फाक, शर्त, मियांजान की मुर्गी, भैंस, काल, झंझा, लाठी, डंक, बात, चमरवा, चपडासन, सँवाखे, मुक्ति, बाढ़ में चोट, खेत, विपर, सदूर एक कीने, बदन दबाना, हथौड़ा, मेरा घर। ये सभी कहानियाँ दलित समाज की कहानियाँ है। स्वयं लेखक के शब्दों में, "दलित कहानी (दलित समाज की कहानी) जिसे अम्बेडकरवादी कहानी भी कहा जाने लगा है, को पूंजीवादी ताकतों, सामंतवादी दर्प, ब्राह्मणवादी प्रवृतियों से कदम दर कदम आगे निकलना और आगे निकलना है। कहने का अभिप्राय है कि जिस कहानी की प्रकृति और रूप बंध में चेतना मूलक क्षमता होगी, वही कहानी दलित होने का सेहरा बांध पाएगी।"[1] इस प्रकार लेखक के मत से साफ हो जाता है कि सामाजिक शोषण की प्रवृतियां जीवन को खूब प्रभावित करती हैं। इस प्रकार यह बात भी साफ हो जाती है कि समाज का मानसिक संकुचन समाज को खूब प्रभावित ही नही करता बल्कि नुकसान भी पहुंचाता है।

इस प्रकार आलोच्य संकलन के कथ्य में लेखक ने, "जीवन और जीविषा के साथ जीवन के जज्बे में मुनष्य को हताश नही होना चाहिए, वरन् परिस्थितियों के साथ संघर्ष करना चाहिए।"[2] यह सबकुछ रत्नकुमार सांभरिया का भोगा हुआ यथार्थ है। उनके पात्रों में वे बहुत बार स्वयं की अनुभूति के साथ स्वयं के जीवन का संयोजन करते नजर आते हैं परन्तु निराशा और शिकन में उन्हें कभी नही देखा गया। उनका कहना है, "व्यक्ति को ऐसा होना चाहिए जो उगते सूरज की अरूणिमा लिए हो और ताजगी तथा चेतना का प्रदर्शन हो।"[3] जीवन की यही परिभाषा लेखक को लेखक बनने के लिए प्रेरित करती है, उसे अनुभूति प्रवण बनाती है। उसके पात्रों का पुनर्वास करवाती है।

यदि कथ्य की बात की जाए तो सामाजिक और परम्परागत कथ्य इनकी कहानियों में देखे जा सकते हैं। लेखक सामाजिक परम्परा को जब तक स्वस्थ मानता है जब तक वह मानव के कल्याण की सिफारिश करती है अन्यथा फिर वह परम्परा रूढि में परिणित हो जाती है। उदाहरण प्रस्तुत है, "विधवा रूपली मेनत, मजदूरी, पौछा–बरतन, झाडू–बुहारी करके अपने बच्चों को पांव पर खड़ा करके बड़ा बनाने का माद्दा रखती थी। कहावत है रांड रडांपा तो काटले, न रंडुए काटने दे तब न। उसके पति को परलोक सिधारते ही उसकी दहकती काया उसके जेठ की आँखों में खूब गयी थी, मोहमाया सी। पानी सिर से उतर गुजरता दीखा तो रूपली बीच में टोक उठी, मैं अपने तीनों टाबरों को लेकर रेल तले कट मरूंगी, पण अपनी उंगली तक नही धूने दूंगी।"[4] गूंज कहानी में एक विधवा की मन स्थिति और उसके शोषण का प्रभाव

है। इस संदर्भ में डॉ. लोकेश कुमार गुप्ता लिखते हैं, ''आधुनिक मुक्तिभाव बोध और सामाजिक वेदना का विश्लेषण का विशिष्ट और अपेक्षित स्तर रत्नकुमार सांभरिया की कथा शैली में दिखाई पड़ता है, कथाकार सांभरिया उन पक्षों को अपने जीवन में भोगने की स्थिति के अनुरूप अपनी कथा में स्थान प्रदान करते हैं, जो स्वाभाविक स्थिति को द्योतन बन जाती है।''[5] कहना संगत होगा कि कहानी और दलित कहानी में इतना ही अंतर है कि दलित कहानी में समाज के दलित वर्ग की संघर्ष की गाथा होती है जो सामान्य से अलग होती है। साथ ही दलित कहानी का एक पक्ष यह भी होता है कि इसमें पात्रों की दलित मुक्ति की स्पर्धा को भी व्यक्ति किया जाता है। इसके अन्य स्वरूप के बारे में यह भी कहा जा सकता है कि इस कहानी में दलित को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास भी किया जाता है। उदाहरण प्रस्तुत है 'विपर सूदर एक कीने' कहानी का, ''जात की सांख पात की कुल्हाडी पर बैठ गयी। धनी गहरी एक जात, दो पात। दो भाई। दो पात। श्यामू रामपावत, जीवण सूत्रकार श्याम छोटी जात, जीवण बडी जात। श्यामू अधूत, जीवन छूत। श्यामू को दिन में तारे दीख रहे है जीवन को नया सूरज नजर आ रहा है। धागे सिमट गए। गंगाजली उठाई गयी और अब पंचायती भी उठ गयी यही सच है।''[6] इस प्रकार का वर्णन जीवन के संदर्भों की उसी प्रकार अभिव्यक्ति करता है जिस प्रकार वो समाज में जीते है।

यहाँ एक बात और कहनी संगत होगी कि रत्नकुमार सांभरिया मानवेत्तर प्राणियों और पालतुओं के प्रति खड़ा मोह रखते हैं। इसका कारण अपना स्वयं का हो सकता है परन्तु यह सत्य अवश्य है। यह स्नेह कथा कहानी में विन्यास उत्पन्न करते दिखाई पड़ते है। डॉ. आलोके कुमार इस प्रकार करती है कि मानों परिवार का कोई बालक वयसंधिया पार करता हुआ यौवन की दहलीज पर अपनी धमक धाचित कर रहा हो। यहाँ आस और आस्था दोनों भैंस है।''[7] वस्तुतः लेखक यह अपनापन 'बकरी के दो बच्चे कहानी' में भी देखा जा सकता है, ''एक–ब–एक बकरी मिमिया उठी, बकरी चार दिन पहले ब्यायी थी। दो बच्चे जन्मे थे– एक नर और एक मादा। नर काला–धोला था, मादा लाल–धोली थी। दलपन ने मिमियाती बकरी को चूल्हे के पास से ही पुच–पुच कर चुप कराने की कोशिश की और साथ में हाँ–हाँ कहा और यह भी कहा कि अभी चारा तो डाला है।''[8] यह अपना कलम और कहानी का ना होकर जीवन और जीव का प्रतीत होता है।

जीवन और जगत का साहित्य और साहित्य की आधी दुनियाँ नारी की मानी जाती है। लेखक की कहानियों में नारी और नारी की अस्मिता के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण है। स्वयं भी निजी जीवन में लेखक नारी के प्रत्येक रूप को अग्रणी और प्रेरणा के रूप में मानते हैं। उनके साहित्य में नारी के समर्थ और सशक्त रूप का सृजन करते है। ये नारियाँ इतनी मजबूत और आत्मरक्षणी प्रतीत होती है कि अपने चरित्र और अपनी अस्मिता के लिए जमींदार सरीखे पात्रों से लड़ भिड़ जाती हैं। समाज के हुक्मरानों और सनातनी हुकमों का विरोध करती है। वे देवर को दूसरा वर अर्थात् द्विवर मानने से इंकार कर देती हैं। रत्नकुमार सांभरिया की लेखनी कहती है, 'औकात दायरे तक होती है, काका। वह अपनी मांद का बाघ है। अभिजात पुरूष की कुत्सित मानसिकता व्यक्ति को जानवर बना देती है। सुंदर जवान नारी देह की दौलत दासी होती है।''[9] इस प्रकार नारी की अस्मिता और उसकी रक्षा के सम्बन्ध में इन कहानियों की नारी पात्र सचेत है और अपनी रक्षा करनी स्वयं जानती हैं। एक अनाथ दलित समाज की स्त्री स्वयं की रक्षा हेतु समाज के दलितपने की केंचुली उतारकर फैकना अच्छे से जानती है।

जब यदि भाषा की बात की जाए तो रत्नकुमार सांभरिया की भाषा उनके लिए एक अस्त्र का कार्य करती है जो पाठक हृदय में सीधा उतर जाती है। इसी अस्त्र के कारण उन्होंने स्वहित्य में अपनी पहचान बनाई है। कहने को खड़ी बोली है परन्तु पात्रों की मानसिक स्थिति के अनुरूप है। शब्दावली का साधु प्रयोग हुआ है। शब्द चयन, वाक्य संयोजन और अनुच्छेदों की बुनावट उनकी विशिष्ट शैली का उद्योतन करती है। इसी शैली के अनुसार वातावरण का वर्णन ही बिम्बों और प्रतीकों का सृजन करता है।

संदर्भ सूची :–

1.दलित समाज की कहानियाँ, रत्नकुमार सांभरिया भूमिका से, पृ.3 **2.**हरिगंधा जून 2017, पृ.52 **3.**दलित समाज की कहानियाँ, रत्नकुमार सांभरिया भूमिका से, पृ.6 **4.**वही, पृ.62 **5.** रत्नकुमार सांभरिया की प्रतिनिधि कहानियाँ, लोकेश कुमार गुप्ता, पृ.13 **6.**दलित समाज की कहानियाँ, रत्नकुमार सांभरिया भूमिका से, पृ.246 **7.**रत्नकुमार सांभरिया की प्रतिनिधि कहानियाँ, लाकेश कुमार गुप्ता, पृ.17 **8.**दलित समाज की कहानियाँ, रत्नकुमार सांभरिया भूमिका से, पृ.32 **9.**वही, पृ.43

48.रत्नकुमार सांभरिया के'वीमा' नाटक में विकलांग और दलित विमर्श

–डॉ.ज्योति मुंगल
हिंदी विभाग, यशवंत महाविद्यालय नांदेड़

21वी सदी विमर्शों की सदी है। इस सदी में समाज के सभी वंचित समूहों ने अपने हक, अधिकार और अपनी अस्मितागत पहचान के लिए निर्णायक लड़ाई छेड़ रखी है। ये लड़ाई किसी के विरूद्ध नही, बल्कि अपने पक्ष में लड़ी जा रही है। इन लड़ाइयों के पीछे एक सुविचारित दर्शन कार्य कर रहा है। पिछले दो–तीन दशकों में एक साथ बहुत से विमर्शों ने साहित्य ही नही तो समूचे चिंतन जगत् को मथा है। हिन्दी साहित्य में पिछले कुछ दशकों में उभरे प्रमुख विमर्शों में स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, घुमंतुक विमर्श, विकलांग विमर्श आदि को देखा जा सकता है। ये विमर्श साहित्य को देखने की नई दृष्टि देते हैं, वहीं इनका जैविक रूपायन रचनाओं में भी हो रहा है।

I)विकलांग विमर्श –आज विकलांग–विमर्श समय की माँग है। कुछ समय पहले तक हिंदी साहित्य में विकलांग–विमर्श जैसा कोई विमर्श भले ही नहीं था, किन्तु रचनाकारों ने विकलांगों के प्रति दया, सहानुभूति, स्नेह, सद्भाव दिखाने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। यथा प्रसंग उन्होंने करुणोद्रेक किया था। विकलांगों की विवशता, असमर्थता, समाज में उनकी अवस्था का उल्लेख कर सुधार की आकांक्षा प्रकट की हैं। "अद्यतन रचनाकारों का एक वर्ग ऐसा है जो विकलांगों के प्रति केवल दया और सहानुभूति दिखाने में विश्वास नहीं करता बल्कि उनके दुखद पक्ष को दूर करने के लिए समाज और सरकार से सरोकार की अपेक्षा रखता है।"1 'वीमा' नाटक में रत्नकुमार सांभरिया जी ने विकलांगों का संघर्ष, हौसला, स्वाभिमान, विश्वास, संवेदना और यथार्थ की आग में तप कर कुंदन हुए प्रेम को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। "रत्नकुमार सांभरिया जी का रचना संसार हृदय और बुद्धि के मेल से अपने समय के विभिन्न पक्षों का मूल्यांकन करने का प्रयास है। इनका साहित्य पाखंड, पीड़ा, विसंगति, उपेक्षा, प्रताड़ना, जातिभेद, धर्मभेद, दिखावा आदि के विरोध में संघर्ष करते हर दबे, कुचले, शोषित, पीड़ित के अंदर आत्मबल जगाने वाला है। 'वीमा' नाटक लेखक की चर्चित कहानी 'सवांखे' पर आधारित है।"2

II)दलित विमर्श – दलित विमर्श जाति आधारित अस्मिता मूलक विमर्श है। इसके केंद्र में दलित जाति के अंतर्गत शामिल मनुष्यों के अनुभवों, कष्टों और संघर्षों को स्वर देने की संगठित कोशिश की गई है। यह एक भारतीय विमर्श है क्योंकि जाति भारतीय समाज की बुनियादी संरचनाओं में से एक है। साहित्य की सभी विधाओं में दलित साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया है। इसपर आंबेडकरवादी विचारधारा का प्रभाव है। डॉ बाबासाहेब आंबेडकर ने दलितों को कहा था, "शिक्षा, संगठन और संघर्ष से ही दलितों का उद्धार हो सकता है।" यही बीज 'वीमा' नाटक में भी दिखाई देते हैं। नायक जमन वर्मा शिक्षित है, उसका अपना संगठन है और उसी के बलबूते पर वह संघर्ष कर अपने हक की लड़ाई लड़ता है और उसमें जीत भी हासिल करता है। दलित नाटक के बारेमे स्वयं रत्नकुमार सांभारिया 'वीमा' नाटक की भूमिका में लिखते है, "दलित शोषित व एवं वंचितों के अंधेरे पक्ष की हू–ब–हू अभिव्यक्ति मात्र दलित नाटक का लक्ष्य नहीं है। यह महज परिस्थिति जन्य फोटोग्राफी होगी सृजनात्मकता (creativity) नहीं। फोटोग्राफी में दर्पण का बिंबीय भाव परिलक्षित है, जागृति का मार्ग प्रशस्त नहीं होता। "साहित्य समाज का दर्पण है', साहित्य की कसौटी नहीं है। वंचितों के अंतरे–कोने अंधेरा रहा है। अंधेरे में प्रत्येक वस्तु अंधेरे में तब्दील हो जाती है। दर्पण भी। 'साहित्य समाज का दर्पण है' की जगह 'साहित्य समाज का दीपक है', समीचीन जान पड़ता है। अभिनेय नाटक में दर्पण का नहीं, दीपक का चेतना भाव निहित हो। यह भाव दिव्यांगों के जीवन की मूल भावना है।"3

III)'वीमा' नाटक में विकलांग एवं दलित विमर्श –नाटक का नायक जमन वर्मा विकलांग होने के साथ–साथ दलित भी है। दलित विमर्श और विकलांग विमर्श का सर्वथा नया और सटीक संयोग 'वीमा' नाटक में हुआ है नाटक में अभिव्यक्त सभी निशक्त जनों का संघर्ष और उनकी अटूट जीजिविषा सभी के लिए प्रेरणादाई है चाहे फिर हो निशक्त हो या सशक्त। " 'वीमा' नाटक में रत्नकुमार सांभरिया जी के निः शक्त पात्र जमन को अपनी दलित जाति के कारण अनेक प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ता है। इसी प्रकार हमारे देश में भी जाति–पाँति और ऊँच–नीच के संस्कारों के विरोध में संघर्ष के बिना दलित वर्ग समाज में अपने लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर पाता है।"4 जमन की पत्नी का अपहरण होने का कारण केवल जाति है। "समाज में जाति–भेज के भयंकर जहर की समस्या का चित्रण करते हुए नाटक को विकलांग विमर्श से जोडते कर नया मोड देने का काम किया गया है।"5

1) **सामाजिक दृष्टिकोण** :विकलांग और दलितो के लिए सामाजिक दृष्टिकोण कभी अच्छा नही रहा है। विकलांग होने पर उसेकमजोर समझा जाता है और दलित होने पर तूच्छ। जमन तो दलित होने के साथ विकलांग भी है इसलिए जमन का संघर्ष

दोहरा है वह किसी एक व्यक्ति से नहीं है पूरी सामाजिक व्यवस्था से है। उसके सम्मुख सभी शक्तिशाली है परंतु जमन कहीं भी हार मानता हुआ नहीं नजर आता है। इस नाटक के नायक जमन के माध्यम से लेखक ने जातिवाद ही नही तो कुत्सित सामाजिक दृष्टिकोण पर भी कड़ा प्रहार किया है। जमन जातिवाद के विरोध में अपनी आवाज को हमेशा बुलंद रखता है। वह अपनी पत्नी के अपहरणकर्ता श्यामाजी की जातिवाद को बढ़ावा देने को लेकर इन शब्दों में निंदा करता है–"जातिभेद जैसा ओछापन आपको शोभा नहीं देता, वीमा में बड़प्पन है, वह नहीं मानती जात–पात छुआछूत।"6

2) जीवन में संघर्ष : दलितों पर व्यवस्था की मार होती है तो विकलांग पर कुदरत की मार होती है यह दोनों एक साथ 'वीमा' नाटक में जमन वर्मा के माध्यम से उभर कर आया है। एक तो दलित होने से मिलने वाला दूजेपन का व्यवहार और विकलांग होने से शारीरिक कार्य क्षमता से अनेकों कामों में कठिनाई होती है। नाटक का नायक जमन वर्मा अनेक स्तरों पर संघर्ष करने के लिए मजबूर बन जाता है, इसका मुख्य कारण सरकारी योजनाओं का खोखलापन, पुलिस व्यवस्था की तिकड़मबाजी और उस पर लोकतंत्र को समृद्ध करने वाला समाचार पत्र भी पैसों के बलबूते पर अपनी विश्वासार्हता गंवा बैठा है जिसकी सार्थक प्रस्तुति 'वीमा' नाटक में हुई है। ऐसी स्थिति में भी जमन वर्मा और उसका मित्र देवत सिंह अविरत संघर्ष कर आंदोलन द्वारा दबाव लाकर न्याय पाते हैं।

3) दलित और विकलांग होकर भी सशक्त :दलित और निः शक्त होने के बावजूद सांभरिया जी के पात्र कहीं भी टूटते, निराश होते नहीं नजर आते हैं। इसकी अनुभूति निःशक्त पात्र जमन द्वारा प्राप्त होती है। जातिवाद के कारण संघर्ष और सफलता की निःशक्त जमन अद्भुत मिसाल है, जो शायद ही कहीं और देखने को मिले। इसे हम समाज की रूढ़िवादी सत्ता में दलित का बदलता स्वरूप कह सकते हैं जो स्वयं अब कमजोर और दबा हुआ ही नहीं है। निःशक्त देवत कहता है–"अगर निःशक्त अपने पर उतर आए, तो वह लोहे की गेंदे है और लोहे की गेंद को न किक मारी जा सकती है, ना उसे उछाला जा सकता है।"7 इन सवादों के माध्यम से लेखक ने निशक्तो की विशेषता को उजागर किया है। जमन अपने कर्तव्यों तथा सामाजिक सुधार को लेकर जागरूक नजर आता है। वह अपनी पत्नी के लिए अपनी नौकरी तथा घर छोड़कर अपने कर्तव्य को पूर्ण करने का संकल्प लेता है। जातिवाद पर इन शब्दों द्वारा प्रहार करता है और वीमा के विचार को समाज के सामने प्रस्तुत करता है–"वीमा ने कहा था, जाति नहीं, आदमी को इंसान होना चाहिए।"8वीमा नाटक में निःशक्तजनों और दलितों की समस्याओं का समाधान बताकर निर्बल को सबल करने का काम नाटककार ने दलित जमन वर्मा, वीमा और सभी निःशक्त पात्रों के माध्यम से किया है। यह पात्र विकलांग होकर भी सशक्त है। सारी व्यवस्था खिलाफ जाने के बाद भी जमन वर्मा हिंसा का मार्ग ना अपनाकर रचनात्मक विद्रोह करता है वह 72 घंटे बिना भोजन का अनशन करता है मित्र देवतसिंह अनशन की खबर सभी समाचार पत्रों की पहली खबर बनाता है दूसरे ही दिन गांव–गांव में नेत्रहीन जन अनशन के लिए उपस्थित होने लगते हैं अनशन आंदोलन में तब्दील हो जाता है। "अंततः आका की धोती , श्यामा जी का गमछा जमन के पैर तले रौंदा जाता है।"9

सारांश : 'वीमा' नाटक की कथा के माध्यम से रत्नकुमार सांभरिया जी ने केवल निः शक्त का संघर्ष ही नहीं दिखाया है बल्की वह इस नाटक के माध्यम से समाज में फैली जाति व्यवस्था तथा सरकारी योजनाओं की धांधली, मीडिया का दोहरा चरित्र, पुलिस का रवैया इत्यादि से पाठकों को अवगत कराते हैं। साहित्य में 'विकलांग विमर्श' भी निःशक्तों के लिए महत्वपूर्ण साबित हो रहा है। इसी क्षेत्र में रत्नकुमार सांभरिया जी का नाटक 'वीमा' दलित विमर्श के साथ–साथ विकलांग विमर्श की कसौटी पर खरा उतरता नज़र आता है। शिक्षा, संगठन, संघर्ष और जिजीविषा केवल विकलांग ही नहीं बल्कि हर हारे–थके हुए मनुष्य को उन्नतिगामी बनाने में मददगार हैं। इस दृष्टि से 'वीमा' नाटक के माध्यम से रत्नकुमार सांभरिया केवल दलित और विकलांग–विमर्श के ही नहीं बल्कि संपूर्ण मानव जाति के हित चिंतक हैं। मनुष्य की प्रबल इच्छा शक्ति किसी भी चीज की संभावना को पूरी कर सकने का सामर्थ्य रखती है। 'वीमा' नाटक के माध्यम से रत्नकुमार सांभरिया जी ने एक प्रबल और दृढ़ व्यक्तित्व वाले ज्योतिहीन दलित जमन वर्मा की कथा को सशक्त रूप से प्रकाश में लाया हैं।

संदर्भ : **1.**डॉ.छोटे लाल गुप्ता –हिन्दी साहित्य एवं विकलांग–विमर्श ,साहित्य कुंज अंक–206, जून, प्रथम अंक, 2022 **2**https://www.sahityasamvad.com/researchpaper/sambharia-553.html# **3.**रत्नकुमार सांभरिया– वीमा (नाटक), श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, 2020 पृष्ठ संख्या–7 **4.** https://www.sahityasamvad.com/researchpaper/sambharia553.html#**5**https://www.setumag.com/2021/06/Veema-by-Ratna-Kumar-Sambhariya.html **6.**रत्नकुमार सांभरिया– वीमा (नाटक), श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, 2020 पृष्ठ संख्या–18**7.**वहीं, पृष्ठ संख्या 77 **8.** वहीं, पृष्ठ संख्या–19 **9.**स्वा.रा.ती.म वि.नांदेड़–हिंदी साहित्यः विविध विमर्श, एम.ए.द्वितीयवर्ष, हिंदी खंड क्रमांक 8, पृष्ठ संख्या –128

49.वीमा नाटक में क्रांतिकारी चेतना

–डॉ.पठान जे.सी.
हिन्दी विभागाध्यक्ष,
शंकरराव चव्हाण महाविद्यालय, अर्धापूर, जि.नांदेड (महाराष्ट्र)

भारत देश में जाति व्यवस्था प्राचीन काल से समाज में मौजुद है। इस व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए सदियों से महान विभूतियों ने अनेक प्रयास किए है। कुछ सुधार भी हुआ है लेकिन आज भी समाज में सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था पर जातिव्यवस्था की पकड मजबूत नजर आती है। भारत देश में दलित समाज पर सदियों से अत्याचार हुए है। इस व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए संत, महापुरूष तथा साहित्याकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। सामाजिक परिवर्तन केवल कानुनी तौर पर संभव नही है, उसे अमल में लाने के लिए सामाजिक संघर्ष की आवश्यकता होती है। महात्मा कबीरदास से लेकर डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जैसे कई महान विभुतियों ने इस कार्य को आगे बढ़ाया है। साहित्य के क्षेत्र में मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकी, रत्नकुमार सांभरिया जैसे साहित्यकारों ने अपने परिवेश, संवेदना तथा अनुभूति को दलित साहित्य में प्रस्तुत किया है। रत्नकुमार सांभरिया जी ने 'वीमा' नाटक के माध्यम से जमन वर्मा और वीमा का जीवन संघर्ष, आत्मसमर्पन तथा प्रेम की पवित्रता को प्रस्तुत करते हुए इस नाटक के माध्यम से क्रांतिकारी चेतना को प्रस्तुत किया है। जमन वर्मा का जीवन संघर्ष निःशक्तों तथा युवाओं के लिए प्रेरणादायी है।

जमन वर्मा की उम्र 25 साल की है और वीमा 23 साल की सवर्ण युवती है। इस नाटक का नायक दलित युवक 'जमन वर्मा' जन्मांध है। वह 'वीमा' नामक सवर्ण युवती से प्यार करता है। जमन वर्मा की बुध्दी कुशलता, साहस, संवेदनशीलता आदि गुणों के कारण वीमा उसकी ओर आकर्षीत हो जाती है। जमन वर्मा एक पढ़ा–लिखा नेत्रहीन अध्यापक है। वीमा सवर्ण घराने की नेत्रहीन कन्या है। वीमा नेत्रहीन होने के कारण उसके परिवार वाले उसे बोझ समझते थे। वीमा के घरवाले वीमा का विवाह एक निसंतान अधेड़ उम्र वाले व्यक्ति से करना चाहते थे। यह विवाह वीमा को मंजुर नही था। इस कारण वह घर से भाग जाती है। अकेली, बेसहारा नेत्रहीन जवान वीमा को एक गुण्डा उसे स्टेशन के पास देख लेता है। वह गुण्डा युवक उसके साथ दुर्व्यवहार करना चाहता है। उसकी चीख–पुकार सुनकर जमन वर्मा 'वीमा' की रक्षा करता है। जमन वर्मा नेत्रहीन होते हुए भी उस गुण्डे को पत्थर से मारकर भगा देता है और वीमा को उस गुण्डे के चंगुल से बचा लेता है। जमन वर्मा को पता चलता है कि वह भी अपनी तरह जन्मांध है। तब जमन उसे अपने साथ घर लेकर आता है। जमन के घर आकर वीमा स्वंय को सुरक्षित महसूस करती है। वह जमन को स्वंय के विषय में बताती है– "हमारा खाता–पीता, नामी–गिरामी घर है। जमीन है जायदाद है। माँ नहीं है। तो क्या! बाप है। दो भाई है। दोनो सर्विस में है। दो भावजे है। एक टीचर है। दुसरी घर संभालती है। दो रोटियों के लिए घर–परिवार में हाथी का पेट बन गई, मैं। आँखे नहीं है तो क्या? जितना बनता करती। बर्तन–भांडे धोना, बच्चों को नहलाना–धुलाना, स्कुल भेजना।"1

जमन वर्मा वीमा की आपबीती सुनकर उसे भविष्य के संबंध मे जीवन भर साथ देने का भरोसा दिलाता है। जमन वर्मा के व्यवहार से वीमा प्रभावित हो जाती है। जमन वर्मा के विचार, आत्मविश्वास, चरित्र को देखते हुए वह जमन वर्मा से विवाह करने का निर्णय लेती है। दोनों के विवाह के बाद उनका जीवन कुछ दिनों तक सुखमय गुजरता है। समाज में सवर्ण युवती का दलित युवक से विवाह की बात सुनकर जातिभेद का प्रश्न निर्माण होता है। तब सारे सवर्ण एक होकर उनकी खुशहाल जिंदगी में तबाही मचाने का काम करते है। अचानक गर्भवती वीमा जमन वर्मा के घर से लापता हो जाती है। इस घटना से दुःखी जमन नेत्रहीन संस्थान के संस्थापक श्याम जी के पास पहुचता है। कुछ दिनों बाद जमन को पता चलता है कि श्याम जी वीमा के घर वालों से परिचित है। श्याम जी के इशारे से ही वीमा का अपहरण जमन वर्मा के घर से हुआ है। इस घटना के बाद जमन वर्मा का वास्तविक संघर्ष आरंभ होता है। उसके मत में अन्याय के प्रति क्रांतिकारी चेतना जाग उठती है। जमन वर्मा का संघर्ष किसी एक व्यक्ति से नही पूरी सामाजिक व्यवस्था से है। वह अपने पत्नी के लिए अपनी नोकरी तथा घर छोडकर अपने कर्तव्य को पूर्ण करने का संकल्प लेता है। जमन वर्मा जातिवाद के विरोध में अपनी आवाज बुलंद रखता है। वह अपने पत्नी के अपहरण करनेवाले नेत्र हीन संस्था के संस्थापक श्यामजी के जातिवाद के बढ़ावा देने के कार्य की निंदा करते हुए जमन वर्मा कहता है, "इस मुकाम पर खड़े होकर आप मल में पत्थर फेंक रहे हैं सर। आपकी यह संस्था सरकार के अनुदान से संचलित है। जाति भेद जैसा ओछापन आपको शोभा नही देता, वीमा में बड़प्पन है, वह नहीं मानती जात–पात छुआछुत।"2

रत्नकुमार सांभरिया जी ने 'जमन वर्मा' के चरित्र के माध्यम से निःशक्त के संघर्ष को प्रस्तुत करते हुए समाज में फैली जाति व्यवस्था तथा सरकारी योजनाओं की असफलता, मिडिया

का दोहरा चरित्र, पुलीस का गलत रवैया, आदि से पाठकों को परिचित कराया है। 'वीमा' नाटक में महत्वपूर्ण किरदारों में प्रतिष्ठित व्यक्ति आका, विकलांग कल्याण के अलमदार श्यामजी, थानेदार तथा लाकप्रिय समाचार पत्र के संवाददाता 'झा' आदि लोग जमन वर्मा को केवल निम्न जाति के कारण जुल्म करते है। उसके हद्‌य की सच्चाई, प्रेम में आत्मसमर्पण की भावना कोई नही समझता। जमन वर्मा और वीमा को एक दूसरे से अलग करके जमन वर्मा को अपनी जाति के किसी अन्य लड़की से विवाह करने की सलाह देते है। श्यामजी जमन से कहते है–''अरे भई, यह पहेली नहीं है। तुम्हारी जात–बिरादरी की किसी नि:शक्त लड़की के साथ तुम्हारे फेरे डलवा दूंगा।''3 जमन अपनी पत्नी विमा को प्राप्त करणे के लिए प्रतिष्ठित व्यक्तियों से मिलता है। अपना दर्द और सच्चाई बयान करता है। जमन की बात कोई सुनता नही। अपने जाति के अभिमान के कारण जमन वर्मा को अपमानीत किया गया। जमन को झूठ साबित करने के लिए समाचार पत्र के संवाददाता की ओर से झूठी खबर छपवाने का भी प्रयास किया गया। यह सब कुछ होने पर भी जमन वर्मा हार नही मानता। अपने दोस्त 'देवत' की सहायता से हडताल में कामयाब होता है। उसका यह प्रयास युवओं के मन में जिद्‌द और अन्याय के विरोध में क्रांतिकारी चेतना का प्रतीक है।

'वीमा' नाटक के माध्यम से रत्नकुमार सांभारिया जी ने जातिवादी व्यवस्था पर कड़ा प्रहार किया है। जमन वर्मा अपने कर्तव्यों तथा सामाजिक सुधार के लिए जागरूक है। अन्याय के प्रति उसके मन में विद्रोह की भावना है। अपने दोस्त देवत के साथ संवाद करते हुए वह आका, श्यामजी, पत्रकार झा, थानेदार आदि के प्रति क्रोध व्यक्त करते हुए कहता है– ''ये बड़े लोग भीतर से बड़े कायर होते हैं। हम गरीब लोगो के कंधो पर ही बन्दुक रख कर चलाना जानते हैं, सामना नही कर पाते।''4 विरोधी परिस्थितियों का सामना करते हुए भी वह परिस्थिती से हार नही मानता। जमन वर्मा अपने पत्नी के लिए सरकारी नोकरी तथा घर छोडकर अपने कर्तव्य को पूर्ण करने का संकल्प करता है। उसका यह दृढ संकल्प क्रांतिकारी चेतना को दर्शाता है। जब वह अपनी लापता पत्नी 'वीमा' को सवर्णों के चंगुल से प्राप्त करने हेतु हडताल करता है, तब नाटक में चित्रित सारे सवर्ण, भ्रष्टाचारी दंग रह जाते है। जमन को पूरा सहयोग विकलांग समाज की ओर से प्राप्त होता है। इस तरह का संगठन जमन वर्मा के लिए होगा इस बात की कल्पना उन्हें नही थी। इस कार्य में जमन वर्मा का दलित दोस्त देवत उसका हौसला बढ़ाता है, जो लोग जमन वर्मा का मजाक करते थे, उसे बेबस समझते थे, वे अब अचंबित हो जाते है। इस संदर्भ जमन का दोस्त देवत का कथन महत्वपूर्ण है– ''नि:शक्तों के एकत्र होने में मेंढक तोलने जैसा मानते हैं, लोग। मैं कहता हूँ, अगर नि:शक्त अपनी पर उतर आएं, लोहे की गेंद हैं। लोहे की गेंद को न किक मारी जा सकती है, न उसे उछाला जा सकता है।''5

मनुष्य की प्रवल इच्छा शक्ति किसी भी कार्‌य को पूरा करने का सामर्थ रखती है। वीमा नाटक के माध्यम से रत्नकुमार सांभरिया जी ने एक नेत्रहीन दलित पात्र जमन वर्मा के माध्यम समाज में अन्याय, अत्याचार, के विरोध में क्रांति की ज्योत जगाने का प्रयास किया है। उनका 'वीमा' यह नाटक पीड़ा, उपेक्षा, जातिभेद, धर्मभेद के विरोध में संघर्ष करणे की प्रेरणा देता है। हमारा भारतीय समाज एक सीढ़ीनुमा समाज है। जिसमें हर जाति से बड़ी तथा हर जाति से छोटी जाति का अस्तित्व हमें नजर आता है। इसजाति व्यवस्था के कारण हमारे देश को बहुत बडी क्षति पहुंची है। इस संदर्भ में डॉ.अर्जुन चव्हाण जी का मत दृष्टव्य है– ''जातीय व्यवस्था हमारे देश वासियों के खून में सदियों से समा गई है।''6 इस व्यवस्था को बदल ने के लिए विविध सामाजिक आंदोलन हुए है। सामाजिक परिवर्तन के लिए विविध प्रयास किए गए है। विद्रोह से ही समाज में बदलाव आते है। व्रिदोह आत्मसम्मान को जगाता है। वीमा नाटक में हमे जमन वर्मा के चरित्र में व्यवस्था के प्रति विद्रोह की भावना तथा क्रांतिकारी चेतना दिखाई देती है। कथा नायक जमन वर्मा सामाजिक सुधार के लिए जागरूक नजर आता है।

रत्नकुमार सांभरिया जीने 'वीमा' नाटक के माध्यम से समाज में पीड़ित लोगों के दर्द को बयान किया है। वे साहित्य को समाज का दीपक मानते है। रत्नकुमार सांभरिया जी समाज में फैले अंधकार, जातिवाद, छुआछुत, शोषण आदि से मुक्ति पाने के लिए संघर्ष और बदलाव की दृष्टि प्रस्तुत की है। उन्होंने अपने साहित्य में जिन पदिवेश का चित्रण किया है वह समाज का वास्त्व चित्रण है। उन्होंने 'जमन वर्मा' जैसे पात्र के माध्यम से उपेक्षित वर्ग को विरोधी परिस्थितियों से लढने की प्रेरणा दी है।

संदर्भ सूची :– (1)रत्नकुमार सांभरिया–'वीमा' पृ.40 (2)रत्नकुमार सांभरिया–'वीमा' पृ.18 (3)रत्नकुमार सांभरिया–'वीमा' पृ.17 (4)रत्नकुमार सांभरिया–'वीमा' पृ.77 (5)रत्नकुमार सांभरिया–'वीमा' पृ.77 (6)डॉ.अर्जुन चव्हाण–राजेंद्र यादव के उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन पृ.101